ISSN 2277-5587
Impact Factor 4.705
Indexed in ULRICH, ISIFI, SJIF & DOJI
UGC Valid Journal (The Gazette of India,
Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Shodh Shree

(A Peer Reviewed International Refereed Journal)

शोध श्री

Issue - 4 October-December 2020 RNI No. RAJHIN/2011/40531

CHIEF EDITOR
Virendra Sharma

EDITOR
Dr. Ravindra Tailor

shodhshree@gmail.com
www.shodhshree.com

Shodh Shree Issue - 4 Volume-37 October-December 2020

Shodh Shree

(A Peer Reviewed International Refereed Journal)

Virendra Sharma
Chief Editor
Government Girls P.G. College,
Ajmer

Dr Ravindra Tailor
Editor
Shodh Shree,
Jaipur

Editorial Board

Prof. H.S. Sharma (Retd.)
University of Rajasthan, **Jaipur**

Prof. T.K. Mathur (Retd.)
M.D.S. University, **Ajmer**

Prof. Ravindra Kumar Sharma
Kurukshetra University, Kurukshetra **(Haryana)**

Sarah Eloy
Museum The House of Alijn, **Belgium**

Prof. B.P. Saraswat
Dean of Commerce, M.D.S, University, **Ajmer**

Prof. Pushpa Sharma
Kurukshetra University, Kurukshetra **(Haryana)**

Dr. Manorama Upadhayay
Principal, Mahila P.G. Mahavidyalaya, **Jodhpur**

Dr. Veenu Pant
Associate Professor & Head, Department of History, Sikkim University, Gangtok **(Sikkim)**

Dr. Rajesh Kumar
Director (Journal, Publicaiton & Library), I.C.H.R., **New Delhi**

Dr. Pankaj Gupta
Assistant Professor, Department of College Education, **Jaipur**

Dr. Rajendra Singh
Archivist, Rajasthan State Archives, **Jodhpur Division**

Dr. Avdhesh Kumar Sharma
Assistant Professor, Department of College Education, **Jaipur**

Advisory Board

Prof. S.N. Tailor (Retd.)
S.D. Government P.G. College, **Beawar**

Prof. S.P. Vyas
Jainarain Vyas University, **Jodhpur**

Dr. Kate Boehme
University of Leicester, **United Kingdom**

Dr. Mahesh Narayan
Archivist (Retd.), National Archives of India, **New Delhi**

ISSN 2277-5587
Impact Factor 4.705
Indexed in ULRICH, ISIFI, SJIF & DOJI
UGC Valid Journal (The Gazette of India,
Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Shodh Shree

(A Peer Reviewed International Refereed Journal)

शोध श्री

Volume-37 Issue-4 October-December 2020 RNI No. RAJHIN/2011/40531

Published by
DR. S. N. TAILOR FOUNDATION
(A Tribute to Late Shri Paras Hemendra G Tailor)

Prof. (Dr.) S. N. Tailor
Managing Director

Chief Editor
Virendra Sharma

Editor
Dr. Ravindra Tailor

Shodh Shree

(A Peer Reviewed International Refereed Journal)

Contents

Volume-37 **Issue-4** **Ocotber-December 2020**

1. **महिलाएँ एवं लैंगिक विषमता** 1–9
   ममता गंगवार, हल्द्वानी एवं प्रो. आनन्द प्रकाश सिंह, पिथौरागढ़ (उत्तराखण्ड)
2. **बहुश्रुत चिंतक एंव मौलिक रचनाकार : आचार्य देवेंद्रनाथ शर्मा** 10–16
   डॉ. जयलक्ष्मी एफ. पाटील, धारवाड़ (कर्नाटक)
3. **ठा. केसरी सिंह बारहठ : आजादी के पुरोधा** 17–24
   डॉ. दिनेश कुमार चारण, चूरू एवं डॉ. सुदर्शना बारैठ, लक्ष्मणगढ़
4. **शहरों में बढ़ रहा बाल–अपराध** 25–31
   डॉ. रितिका सिंह, नैनीताल (उत्तराखंड)
5. **भारतीय उदारवाद और भारतीय पुनर्जागरणः विवेचना और विश्लेषण** 32–42
   डॉ. अनुज कुमार मिश्रा, कानपुर (उत्तर प्रदेश)
6. **भूमिदान पत्र ऐतिहासिक लेखन व सामाजिक सांस्कृतिक मूल्यों के संरक्षण में सहायकः आंध्रप्रदेश व कर्नाटक से प्राप्त भूमिदान पत्रों के विशेष संदर्भ में** 43–47
   डॉ. रजनी शर्मा, किशनगढ
7. **'मन की बात का समाज पर प्रभाव' एक अध्ययन (भीमताल उत्तराखंड के विशेष संदर्भ में)** 48–53
   हर्षवर्धन पाण्डे, नैनीताल (उत्तराखंड)
8. **मौर्यकाल में स्त्रियों की स्थिति** 54–58
   डॉ. (श्रीमती) प्रेरणा माहेश्वरी, बीकानेर
9. **राष्ट्र की अवधारणा और भारतीय चिन्तन** 59–62
   डॉ. संजीव कुमार लवानियाँ, विलासपुर (छत्तीसगढ़)
10. **मध्यकालीन शिकार परम्परा : एक अध्ययन** 63–66
    डॉ. प्रियदर्शी ओझा, उदयपुर
11. **प्राचीन भारत के गृहस्थ जीवन में स्त्री की स्थिति तथा भूमिका – एक विश्लेषण (धर्मसूत्रों के सन्दर्भ में 600–300 ई.पू.)** 67–72
    शबाना, दिल्ली
12. **भारतीय राजनीति में नैतिक संकट एक मूल्याकंन** 73–75
    डॉ. सोमवती शर्मा, कोटा
13. **स्वराज दल एवं सतपुड़ांचल** 76–79
    डॉ. संकेत कुमार चौकसे, छिन्दवाड़ा (मध्यप्रदेश)

14. **मालाणी के सांस्कृतिक वैभव में लोकगीतों का योगदान** 80–83
डॉ. संतोष कुमार गढ़वीर, बाड़मेर एवं तारा चौधरी, जोधपुर

15. **वंशीधर शुक्ल के काव्य में व्यवस्था–विद्रोह** 84–88
डॉ. आभा शुक्ला, लखनऊ (उत्तरप्रदेश)

16. **ज्योतिषशास्त्र में जातक के तिथि निर्णय की अवधारणा** 89–92
डॉ. हरकेश बैरवा, कोटा

17. **वर्त्तमान समय में पुलिस व्यवस्था की स्थिति : एक अध्ययन** 93–97
अंकित पाण्डेय, सिद्धार्थनगर (उत्तरप्रदेश)

18. **गांधी और वैश्वीकरण के दौर में उनकी प्रासंगिकता : हिंद स्वराज के विशेष संदर्भ में** 98–102
डॉ. नरेन्द्र नाथ एवं जगदीश प्रसाद, बीकानेर

19. **साहित्य सृजन में पंच तत्व और पर्यावरण** 103–108
डॉ. रंजन शर्मा, गुना (मध्यप्रदेश)

20. **राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोगः एक संगठनात्मक अध्ययन** 109–113
डॉ. वंदना शर्मा, कोटा

21. **वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में भारत की बदलती भूमिकाः एक समीक्षा** 114–119
डॉ. सरस कपूर, कानपुर (उत्तरप्रदेश)

22. **भारत–नेपाल : एक–दूसरे के पूरक** 120–122
अनिल सरोवा, सीकर

23. **स्वाधीनता समर में बुंदेलखंड (छतरपुर जिले के संदर्भ में)** 123–129
डॉ. चित्रगुप्त, झांसी (उत्तरप्रदेश) एवं श्री शत्रुघ्न कुमार खरे, चित्रकूट (मध्यप्रदेश)

24. **18 वीं सदी में नागौर एक प्रमुख व्यापारिक मार्ग के रूप में** 130–133
कामिनी, जोधपुर

25. **भारत में पर्यटन उद्योग की दशा और दिशा** 134–139
सुनील भारती, नैनीताल (उत्तराखण्ड)

26. **इतिहास के पन्नों में फलौदी और हुमायूं (एक अध्ययन)** 140–142
दिनेश गहलोत, शोधार्थी, जोधपुर

27. **भारत में जनजातीय समुदाय की सामाजिक, आर्थिक एवम् शैक्षणिक स्थिति** 143–145
डॉ. पूनम कुमारी, समस्तीपुर (बिहार)

28. **योगमाहात्म्य** 146–149
मनजीत कंवर, जोधपुर

29. **अर्वाचीन संस्कृत वाङ्मय में पर्यावरण चेतना** 150–152
डॉ. राजमल मालव एवं डॉ. उमा बड़ोलिया, कोटा

30. **व्यंग्यायुध : मुहावरे–लोकोक्तियाँ** 153–161
डॉ. आशा पाण्डेय, दिल्ली

31. **मध्यकालीन रेण नगर का स्थापत्य** 162–164
संजय सैन, जोधपुर

32. **मानवीय संवेदनाओं के पुरस्कर्ता : नव–वामपंथी कवि उदय प्रकाश** **165–169**
षैजू के, कोच्चि (केरल)

33. **ICT for Teaching and Learning in Primary Schools** **170-176**
Dr. Zeba Tabassum, New Delhi

34. **Impact of Employee Engagement Practices on Satisfaction Level of Employee at 321 Foundation** **177-182**
Honey Goyal, Dr. Sandeep Vyas & Dr. Bharti Sharma, Jaipur

35. **Swadeshi Movement in Rajasthan During British Period** **183-185**
Dr. Peeyush Bhadviya, Udaipur

36. **Disease and Disability in Samuel Beckett's Endgame** **186-188**
Deepika Tiwari, Patna (Bihar)

37. **Web-series and Indian Media: A Lethal Cocktail of Drugs, Sex and Violence** **189-194**
Dr. Rajesh Kumar, Kanpur (Uttarpradesh)

38. **India and Commonwealth Nation: Need Synergetic Relationship** **195-202**
Dr. Vinod Kumar Sharma, Paota

39. **Perceived Familial Gender Discrimination in Relation to Repression-Sensitization Tendency and Achievement Motivation of Adolescent Girls** **203-207**
Dr. Goswami Poornima, Bhartpur

40. **Cultural Heritage Tourism in Rajasthan: A Retrospection** **208-215**
Mr. Vikram Jha, Bikaner

41. **Social Transformation - An Analysis Concerning Freedom of Religion** **216-218**
Ashima Jain, Jaipur

महिलाएँ एवं लैंगिक विषमता

ममता गंगवार
शोधार्थी, एम.बी.राज.स्ना.महाविद्यालय, हल्द्वानी (उत्तराखण्ड)

प्रो. आनन्द प्रकाश सिंह
प्राचार्य, राजकीय महाविद्यालय गणाई गंगोली, पिथौरागढ़ (उत्तराखण्ड)

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

लैंगिक भेदभाव के कारण लैंगिक विषमता उत्पन्न होती हैं जब तक लैंगिक विषमता का कारण का पता नहीं चलेगा तब तक उस समस्या का समाधान खोज पाना भी मुश्किल है लैंगिक भेदभाव कारण स्त्री व पुरुष के मध्य एक खाई उत्पन्न होती है जिसका प्रभाव महिलाओं की स्थिति पर नकारात्मक रुप से पड़ता है क्योंकि यह भेदभाव की प्रणाली शक्ति के दुरुपयोग का कारण बनती है। इसी वजह से महिलाएँ घरों व समाज में विभिन्न प्रकार से प्रताड़ित की जाती हैं। असमानता तथा उत्पीड़न पर आधारित इस सामाजिक संरचना में सामाजिक इकाईयों (तत्वों) के मध्य अन्तर्सम्बन्ध हैं जिससे लैंगिक असमानता भी अन्तः सम्बन्धित है। अमेरिका की राजनीतिज्ञ हिलेरी क्लिंटन के अनुसार 'महिलाएँ संसार में सबसे अप्रयुक्त भण्डार है।' महिला, मानव संसाधन का आधा हिस्सा हैं। इस मानव संसाधन का प्रयोग देश की जी.डी.पी. की वृद्धि करने में किया जा सकता है परन्तु लैंगिक भेदभाव के आधार पर परम्परागत रुप से महिलाओं को शक्तिविहीन वर्ग के रुप में देखा जाता है।

संकेताक्षर : *महिलाऐं, लैगिंक विषमता, सामाजिक संरचना, मानव संसाधन, नारीवाद, संवैधानिक पद।*

लिंग विषमता का मुख्य कारण जैविक अथवा यौन भेद (Sex) नहीं अपितु स्त्री–पुरुष का भिन्न–भिन्न तरीकों से किया गया समाजीकरण तथा उन पर लागू किये जाने वाले निषेधों की प्रक्रिया है लिंग भेद के कारकों में सामाजिक, सांस्कृतिक प्रतिमान प्रमुख हैं।

''लिंग विषमता'' दो शब्दों के योग से बना है लिंग और विषमता, लिंग संस्कृत भाषा का एक शब्द है जिसका अर्थ है 'चिन्हों या निशान' और भेद का अर्थ होता है प्रकार या श्रेणी। इस प्रकार लिंग–विषमता का शाब्दिक अर्थ श्रेणियों का अन्तर। लिंग को हिन्दी के व्याकरण में परिभाषित करते हुए कहा गया है कि 'संज्ञा' के जिस रुप से व्यक्ति या वस्तु की जाति का बोध हो सके 'लिंग' कहते हैं। उपर्युक्त परिभाषा से स्पष्ट होता है कि लिंग किसी संज्ञा का ही होता है। संज्ञा किसी वस्तु, व्यक्ति या स्थान के नाम को कहते हैं। वह वस्तु, व्यक्ति या स्थान 'पुल्लिंग' होगी या स्त्रीलिंग, चाहे वह प्राणीवाचक होगी या अप्राणीवाचक।

लिंग भेद का प्रयोग भाषा को स्पष्ट, सरल बनाने तथा संसार की सभी वस्तुओं को सुविधा पूर्वक समझने के दृष्टिकोण से किया गया है, परन्तु किसी जाति या वर्ग के बीच चिन्हों के आधार पर सामाजिक, आर्थिक एवं व्यावहारिक स्तरों पर अनुचित अन्तर को लिंग भेद कहा गया है। शरीर के लक्षणों के आधार पर भेद–भाव करना अनुचित है। अर्थात लिंग भेदभाव करने के कारण समाज में स्त्री व पुरुष के जीवन स्तर, शिक्षा, आर्थिक स्तर आदि में अन्तर आ जाता है तब यही अन्तर समाज में लैगिंक विषमता के रुप में परिलक्षित होता है। लैगिंक भेदभाव बढ़ने के साथ–साथ लैगिंक विषमता भी बढ़ती जाती है।

नॉनक्रीडियन के दृष्टिकोण के अनुसार लिंग भूमिका का विकास बचपन से ही लिंग भूमिकाओं के आंतरिकरण के माध्यम से किया जाता है। जन्म से माता–पिता अपने सेक्स के अनुसार बच्चों के साथ अलग–अलग अन्तक्रिया (व्यवहार) करते हैं और बातचीत एवं अन्तक्रिया के माध्यम से बच्चों में अलग–अलग मूल्य या लक्षण पैदा कर सकते

हैं जैसे माता–पिता लड़कियों को खेलने के लिए गुड़िया लाकर देते हैं और लड़कों को कार बंदूक आदि। वर्तमान में रिश्तों में लैंगिक समानता में वृद्धि हुई है, परन्तु अभी भी अधिकांश रिश्तों के लिए शक्ति पुरूष के साथ निहित है वहाँ तक अभी पुरूष और महिलाएँ खुद को लिंग सीमाओं के अंदर विभाजित करते हैं।[1] szymanowicz and Furnham ने अपने अध्ययन में पाया कि सांस्कृतिक रूढ़िवादिता में बंदबुद्धि स्त्रीं एवं पुरूष आत्म प्रस्तुति में लैंगिक असमानता दिखाते हैं।[2]

londa schiekingers book 'हैज कौमिनिज्म चेन्जड साइन्स' में दावा करती है कि 'औसत परिवारों में विवाहित पुरूष अधिक पैसा कमाते हैं, लम्बे समय तक लाईन में रहते हैं, और अपने कैरियर में तेजी से प्रगति करते हैं जबकि एक कामकाजी महिला के लिए परिवार एक आवश्यक दायित्व है। परिवार का अतिरिक्त बोझ उसके कैरियर को नीचे (अवनति) की ओर ले जाता है।[3] सांख्यिकी से पता चलता है कि केवल 17 प्रतिशत महिलाएं जो इंजीनियरिंग के क्षेत्र में पूर्णकालिक प्रोफेसर हैं। अपने बच्चों की देखरेख भी करते हैं जबकि 22 प्रतिशत पुरूष स्वतंत्र होकर अध्ययन एवं अध्यापन कार्य करते हैं।

लैंगिक समानता की विशेषताएँ

स्त्री व पुरूष की सामाजिक व सांस्कृातिक असमानता स्त्री व पुरूष के होने की अवस्था से है। लैंगिक असमानता की प्रमुख विशेषताएँ निम्न प्रकार हैं।

- स्त्री को जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में स्वयं के विकास के बारे में सोचने की समानता प्राप्त। नहीं है।
- लैंगिक असमानता समाज के संगठन से होती है न कि प्राणीशास्त्रीय या व्यक्तित्व सम्बंधी विभेद स्त्री व पुरूष के मध्य होता है।
- प्रत्येक मनुष्य को स्वाधीन होने का अधिकार है और स्व–वास्तवीकरण की आवश्यकता होती है। यहीं पर महिला पुरूष से कम सशक्त होती है जो लिंग सम्बन्धी भेद का लैंगिक असमानता का कारक है।
- लैंगिक असमानता में शीघ्र परिवर्तन की दर काफी धीमी है।[4]

पितृसत्ता के सिद्धान्त

उदारवादी नारीवाद के अनुसार सामाजिक हितों से ऊपर व्यक्तिगत अधिकार है। उदारवादी जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है कि वह नारीवाद जो पितृसत्ता में विद्यमान असमानता, अन्याय व लिंग के आधार पर कार्य विभाजन जो पुरुषों को महिलाओं का शोषण करने में सहायक हैं। महिलाओं को पितृसत्ता की इस भूमिका से मुक्त कराना चाहती हैं। यह सिद्धांत स्त्री पुरुष की समानता पर आधारित है। जब तक लोगों के द्वारा कोई समस्या वांछनीय समझी जाती है तब तक वह सामाजिक समस्या नहीं हो सकती। लैगिंक विषमता को दूर करने के लिए हमें सामाजिक व्यवस्थाओं में परिर्वन करना पड़ेगा। लिंग भेद, विशेषतः नारीवाद के सम्बन्ध में अभी हाल में कई सिद्धांत उभर कर आये हैं जिनमें प्रमुख तीन हैः–आमूल परिवर्तन नारीवाद, मार्क्सवादी समाजवादी नारीवाद और उदारवादी नारीवाद इनके अतिरिक्त कुछ अन्य सिद्धांत ये है, जैसे–रुढ़िवाद (सामाजिक जीववादी) अश्वेत नारीवादी, उत्तरआधुनिक महिलावादी, द्वि–व्यवस्था सिद्धांत, आर्थिक महिलावादी।

उदार नारी अधिकारवाद

उदारनारी अधिकारवाद लिंग समानता में विश्वाास करता है। स्त्रियों को पुरुषों द्वारा यौन उपभोग की वस्तु समझने की बात अस्वीकार करता है परन्तु उदार नारीवाद लिंग के आधार पर श्रम विभाजन को यह चुनौती नहीं देता है कि महिलाएँ घरेलू कार्य के लिए सर्वथा उपयुक्त है और पुरुष बाहरी कार्यों के लिए सही है। इस प्रकार उदार नारीवाद समाज के स्थायी संरचना की आलोचना नहीं करती बस उनमें सुधार की बात करता है। बारबरा एपिस्टरन लिखती हैं कि ''उदारवादियों ने समान अधिकार संशोधन को लाने में असफलता अवश्य पाई परन्तु अपने संगठनात्मक कोशिशों की वजह से कई सफलताएँ भी हासिल की। वह लिखती है कि 21 वीं सदीं में युवा महिलाओं को जो अवसर प्राप्त हैं। कई दशक पहले उसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। आज उग्रवादी नारीवाद दिमागी स्तर पर रह गया है। जमीनी स्तर से जोड़ने का भी प्रयास किया जाता है परन्तु राजनीतिक कार्यसूची के अभाव में ये बौद्धिक नारीवादी उच्च शिक्षा संस्थानों तक सिमट कर रह गए है। पद, मान, सम्मान और ग्लैमर के जाल में उलझ कर रह गए है।''[5]

बैटी फ्राइडन के अनुसार ''उदारवादी नारीवादी लिंग आधारित उन भूमिकाओं को चुनौती नहीं दे रहे थे जो

घर व बाहर के बीच खिंची लक्ष्मण रेखा के कारक थे बल्कि ये सत्ता सरकार पर दबाव डालकर सार्वजनिक क्षेत्र में समानता हासिल करने के लिए नए कानून बनाने या उनमें संशोधन करने की मुहिम में जुड़े थे। अधिकाशः महिलाओं को घर व बाहर के बीच खिंची लक्ष्मण रेखा, नौकरी व गृहस्थी के बीच संतुलन बनाए रखने का दबाव, बढ़ती आकांशाओं के साथ हीनभावना या आत्माहीनता का एहसास था।''[6]

करोल पेटमैन बताती हैं कि सामाजिक समझौते से पहले यौनिक समझौता हो गया था इस समझौते के अनुसार महिलाओं ने अपने नैसर्गिक अधिकार अपनी सुरक्षा के बदले पुरुषों को सौंप दिए और महिलाएँ पुरुषों की आज्ञाकारिणी बन गई। इस प्रकार पुरुषों का महिलाओं पर वर्चश्व राजनीतिक व यौनिक दोनों माना गया।[7]

सरकार व्यक्तिगत क्षेत्र में हस्तक्षेप नहीं कर सकती है और महिलाओं का कार्यक्षेत्र, व्यक्तिगत क्षेत्र में रह कर अपनी भूमिकाओं को निभाना होता है। महिलाएँ शोषण का शिकार होती है अतः महिलाओं की स्थिति में उत्थान के लिए सरकार का व्यक्तिगत क्षेत्र में हस्तक्षेप आवश्यक है। रेडिकल नारीवाद के अनुसार उदारवादी नारीवाद महिलाओं को पुरुष के समान बनने पर बल देती है और उनकी अपनी विशेषताओं को अनदेखा करती है।

उग्रवादी नारीवाद

मौरिन जैवर अपनी पुस्तक 'डैकिनिशन ऑफ रैडिकल फैमिनिज्म ए लुक विदिन द हिस्ट्री ऑफ अडंरस्टेंडिग ऑफ द मूवमैन्ट,' 2008 में लिखती है कि 1920 में पास हुआ 19वां संविधान का संशोधन उदारवादी नारीवाद का अन्त तथा उग्रवादी नारीवाद का उदय वर्ष माना जाता है। फ्रीमन लिखती हैं कि 1964 में स्टॉपली कारमाइकल ने 'स्टूडेंट नॉनवैलेंट कोऑर्डिनेटिंग कमेटी' की बैठक में महिलाओं पर अभद्र टिप्पणी की थी इस अभद्र टिप्पणी ने इस संगठन में सक्रिय महिलाओं की आँखें खोल दी और उग्रवादी नारीवादी संगठनों के लिये जमीन तैयार करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।[8] उग्रवादी नारीवाद विचारधारा 'सेक्सुअल क्रान्ति' की आवश्यकता बताती है इनका मानना है कि विवाह, परिवार, वेश्यावृत्ति, हेटरोसेक्सुअलटी ये सभी लिंग आधारित भूमिकाओं को आगे बढ़ाते हैं अतः इनको समाप्त करना आवश्यक माना गया। उग्रवादी नारीवादी संगठन रेड स्टोकिंग संगठन के सदस्यों का मानना था कि महिला दमन के लिए सीधे-सीधे पुरुष जिम्मेदार हैं पुरुष नारी को दबा कर रखना पसन्द करते हैं न्यूयार्क के रेडिकल फैमिनिस्ट के सदस्यों का माना था कि पुरुष अपने अहंकार की संतुष्टि के लिए नारी को दबाते हैं।

उग्रवादी नारीवाद ने बताया कि पुरुष का नारी पर वर्चस्व दो गलत विचारों के कारण है-

1. पुरुष का अपनी वासना पर नियंत्रण नहीं रहता।
2. पुरुष शारीरिक तौर पर स्त्री से मजबूत है।

उग्रवादी नारीवादियों की यह विचारधारा पुरुष वर्चस्व व सामाजिक व्यवस्था को एक चुनौती है।

मौरीन ज़िबेर (Maureen Ziober) दो प्रकार के उग्रवादी नारीवादियों के बारे में लिखती हैं।

(i) Radical-Libertarian (रेडिकल लिबरटेरियन फैमिनिज्म)

(ii) Radical-Cultural Feminists (रेडिकल कल्चरल फैमिनिज्म)

रेडिकल लिबरटेरियन विचारधारा के अनुसार नारी के दमन का प्रमुख कारण पितृसत्ता है न कि व्यक्तिगत तौर पर पुरुष। उग्रवादी-मुक्तिवादी; उग्रवादी इन नारीवादियों का मानना है कि पितृसत्ता (संस्था) ही मुख्य अत्याचारी है न कि निजी तौर पर पुरुष परिवार को खासकर नारी की माँ की भूमिका को उसकी अधीनता का एक कारण मानते हैं नारी की गुलामी की बेड़ियों को तोड़ने के लिए सामुदायिक परिवार की वकालत करते हैं। नारी को यौन प्राथमिकताएँ चुनने की स्वतंत्रता होनी चाहिए यानि यौन व्यवहार में नारी को यौन प्राथमिकताएँ चुनने की स्वतंत्रता होनी चाहिए।[9]

लिंगीय विभेद के कारण

कन्या भ्रूण हत्या इस बात का द्योतक है कि लिंगीय विभेद भयावह रूप धारण कर चुका है लिंगीय विभेद के कारणों को निम्न बिदुओं द्वारा समझा जा सकता है।

- मान्यताएँ एवं परम्पराएँ
- अशिक्षा
- जागरूकता का अभाव
- संकीर्ण विचारधारा

- आर्थिक तंगी
- भ्रष्टाचार
- राजनैतिक उदासीनता
- सांस्कृतिक कुप्रथाएँ
- महिला हिंसा
- दहेज प्रथा
- दोषपूर्ण शिक्षा प्रणाली
- भेदभाव का समाजीकरण
- मदिरापान
- संवैधानिक पदों पर महिलाओं की कमी

उद्देश्य

1. लैंगिक भेदभाव के प्रमुख कारणों का अध्ययन करना।
2. ग्रामीण एवं नगरीय क्षेत्र में विद्यमान लैंगिक विषमता का तुलनात्मक अध्ययन करना।

शोध प्रारूप

प्रस्तुत अध्ययन में अन्वेषणात्मक एवं वर्णनात्मक शोध अध्ययन का प्रयोग किया गया है। अध्ययन हेतु उत्तराखण्ड राज्य के नैनीताल जिले के लालकुआँ तहसील क्षेत्र को चुना गया है। लालकुआँ तहसील के नगरीय क्षेत्र से 170 एवं ग्रामीण क्षेत्र के 170 महिलाओं का चयन किया गया है। कुल 340 महिलाओं का चयन उत्तरदाता के रूप में किया गया है।

तालिका संख्या 1
संतान के रूप में लिंग को वरीयता देने के सम्बन्ध में प्रत्युत्तर

क्र.सं.	लिंग का वरीयता क्रम	ग्राम		नगर		कुल	
		आवृति	प्रतिशत	आवृति	प्रतिशत	आवृति	प्रतिशत
1	एक लड़की	02	01.18	03	01.76	05	01.47
2	एक लड़का	23	13.53	36	21.18	59	17.35
3	दो लड़के	48	28.24	29	17.06	77	22.65
4	दो लड़की	00	00	00	00	00	00
5	एक लड़का एक लड़की	97	57.06	102	60.00	199	58.53
कुल योग		170	100	170	100	340	100

तालिका संख्या 1 से स्पष्ट होता है कि ग्रामीण क्षेत्र में 01.18 प्रतिशत उत्तरदाता एक लड़की को वरीयता प्रदान करते हैं, 13.53 प्रतिशत उत्तरदाता एक लड़के, 28.23 प्रतिशत उत्तरदाता दो लड़कों एवं 57.06 प्रतिशत उत्तरदाता एक लड़का और एक लड़की को वरीयता देते हैं। जबकि नगरीय क्षेत्र में 01.76 प्रतिशत उत्तरदाता एक लड़की को, 21.18 प्रतिशत एक लड़के को, 60.00 प्रतिशत उत्तरदाता एक लड़की एक लड़के को वरीयता प्रदान करते हैं। कुल उत्तरदाताओं में से 01.47 प्रतिशत उत्तरदाता एक लड़की, 17.35 प्रतिशत एक लड़के, 22.64 प्रतिशत उत्तरदाता दो लड़कों और 58.5 प्रतिशत उत्तरदाता एक लड़की एक लड़के को वरीयता देते हैं। तालिका से स्पष्ट होता है कि समाज परिवार नियोजन को अपनाया जा रहा है परन्तु भेदभाव अभी भी विद्यमान है। आज हम दो हमारा एक की तर्ज है परन्तु वो एक पुत्र होना चाहिए। यदि पुत्र नहीं तो फिर एक और संतान का प्रयास रहता है। तुलनात्मक रूप में परिवार नियोजन और लैंगिक भेदभाव का रूप नगरों में भिन्न है। नगर के उत्तरदाता ग्रामीण क्षेत्र की तुलना में एक लड़के को अधिक वरीयता दे रहे हैं। शिक्षा के प्रभाव से परिवार नियोजन पर सकारात्मक प्रभाव पड़ा है। परन्तु लैंगिक भेदभाव आज भी शिक्षित वर्ग में भी विद्यमान है जबकि ग्रामीण क्षेत्र में नगरों की तुलना में दो लड़कों को अधिक वरीयता दी गई है। ग्रामीण उत्तरदाता दो संतान में दोनों लड़कों की चाह रखते हैं। आज भी लड़की एक बोझ है अतः उत्तरदाता दो लड़कों की चाह रखते हैं परन्तु लड़कियों को बिल्कुल भी वरीयता प्रदान नहीं करते हैं। तालिका से स्पष्ट है कि दो लड़कों की चाह ग्रामीण क्षेत्र में अधिकांश है।

तालिका संख्या 2
लिंग को वरीयता देने के कारक के सम्बन्ध में प्रत्युत्तर

क्र.सं.	लिंग का वरीयता क्रम	ग्राम	
		आवृति	प्रतिशत
1	लड़का न होने पर ससुराल वालों द्वारा प्रताड़ित किया जाता है	53	25.60
2	लड़का होने पर परिवार व समाज में प्रतिष्ठा प्राप्त होती है	42	20.29
3	लड़कियों के कौमार्य की देख–रेख के भय से	40	19.32
4	लड़कियाँ श्रम में अपनी भागीदारी सुनिश्चित नहीं कर पाती	42	20.29
5	वंश चलाने के लिए	30	14.50
कुल उत्तरदाता		207	100

तालिका संख्या 2.1
संतान के रूप में लिंग को वरीयता देने के सम्बन्ध में प्रत्युत्तर

क्र.सं.	लिंग का वरीयता क्रम	ग्राम	
		आवृति	प्रतिशत
1	लड़का न होने पर ससुराल वालों द्वारा प्रताड़ित किया जाता है	49	24.38
2	लड़का होने पर परिवार व समाजमें प्रतिष्ठा प्राप्त होती है	47	23.38
3	लड़कियों के कौमार्य की देख–रेख के भय से	51	25.37
4	लड़कियाँ श्रम में अपनी भागीदारी सुनिश्चित नहीं कर पाती	44	21.89
5	वंश चलाने के लिए	10	04.98
कुल उत्तरदाता		201	100

तालिका संख्या 2 और 2.1 से स्पष्ट है कि उत्तरदाताओं ने एक से अधिक विकल्प को चुना है अर्थात् उत्तरदाता पुरूष लिंग को एक से अधिक कारणों से वरीयता देते हैं, ग्रामीण क्षेत्र में 31.17 प्रतिशत उत्तरदाताओं को लड़का न होने पर ससुराल द्वारा प्रताड़ित किया जाता है। 24.70 प्रतिशत उत्तरदाताओं को लगता है कि लड़का होने पर समाज में मान–सम्मान की प्राप्ति होती है, 23.52 प्रतिशत उत्तरदाताओं का मानना है कि लड़कियों के कौमार्य की चिन्ता अधिक रहती है। 24.70 प्रतिशत उत्तरदाताओं का मानना है कि लड़कियाँ श्रम में अपनी भागीदारी सुनिश्चित नहीं कर पाती हैं, जबकि 17.65 प्रतिशत उत्तरदाता वंश चलाने के लिए लड़कों को आवश्यक मानते हैं। नगरीय क्षेत्र में 28.82 प्रतिशत उत्तरदाताओं का मानना है कि लड़का न होने पर ससुराल वालों द्वारा प्रताड़ित किया जाता है, 27.64 प्रतिशत उत्तरदाताओं का मानना है कि लड़का होने पर परिवार व समाज में सम्मान प्राप्त होता है। 30 प्रतिशत उत्तरदाता लड़कियों के कौमार्य की देख–रेख के भय से लड़कियों को वरीयता नहीं देते हैं, 25.89 प्रतिशत उत्तरदाताओं का मानना है कि लड़कियाँ श्रम में अपनी भागीदारी सुनिश्चित नहीं कर पाती हैं, 05. 58 प्रतिशत उत्तरदाताओं का मानना है कि वंश चलाने के लिए लड़के आवश्यक हैं।

तालिका से स्पष्ट होता है कि आज भी वंश चलाने की परम्परा लैंगिक समानता लाने में अवरोध का कार्य कर रही हैं। मीडिया व समाज द्वारा कौमार्य को अधिक महत्व देना भी एक कार्य है। प्रायः फिल्मों में देखा जाता है कि महिला का बलात्कार होने पर पीड़िता के घर वालों को लोग ताना देते हैं। इज्जत को वस्तु बनाकर महिला की योनि में बिठा दिया जाता है और फिल्मकार ऐसे सीन को अवसाद भाव में अधिक दिखाते हैं। फिल्मकारों द्वारा महिला को सशक्ति रूप से संघर्ष करते हुए प्रायः नहीं दिखाया जाता है। खलनायक पुरुषों को महिला से प्रतिरोध लेने का सबसे अच्छा तरीका यौन हिंसा को दर्शाया जाता है जिससे समाज में गलत संदेश जाता है।

तालिका संख्या 3

छेड़छाड़ से सम्बन्धित परिस्थिति के सम्बन्ध में प्रत्युत्तर

क्र.सं.	छेड़छाड़ से सम्बन्धित परिस्थिति	ग्राम		नगर		कुल	
		आवृति	प्रतिशत	आवृति	प्रतिशत	आवृति	प्रतिशत
1	ऑफिस में सहकर्मचारी व बॉस द्वारा	09	05.29	18	10.59	27	07.94
2	रिश्तेदारों के द्वारा	13	07.65	16	09.41	29	08.53
3	अंजान लोगों द्वारा	20	11.76	23	13.53	43	12.65
4	किसी परिचित द्वारा	61	35.88	52	30.59	113	33.24
5	शराबी द्वारा	67	39.41	61	35.88	128	37.65
कुल योग		170	100	170	100	340	100

तालिका संख्या 3 से स्पष्ट है कि ग्रामीण क्षेत्र के 05. 29 प्रतिशत उत्तरदाता ऑफिस में सहकर्मियों द्वारा प्रताड़ित हुए हैं जबकि 07.65 प्रतिशत उत्तरदाता रिश्तेदारों द्वारा, 11.76 प्रतिशत उत्तरदाता अंजान लोगों द्वारा, 35.88 प्रतिशत उत्तरदाता परिचित द्वारा, 39.41 प्रतिशत उत्तरदाता शराबी द्वारा यौन हिंसा या छेड़छोड़ के शिकार हुए है। नगरीय क्षेत्र में 10.59 प्रतिशत उत्तरदाता ऑफिस में सहकर्मी व बॉस द्वारा, 09.41 प्रतिशत उत्तरदाता रिश्तेदारों के द्वारा, 13.52 प्रतिशत उत्तरदाता अंजान लोगों द्वारा, 30.59 प्रतिशत उत्तरदाता किसी परिचित द्वारा, 35.88 प्रतिशत उत्तरदाता शराबी द्वारा छेड़छाड़ की शिकार हुए हैं। कुल उत्तरदाताओं में 07.94 प्रतिशत उत्तरदाता ऑफिस में सहकर्मी व बॉस द्वारा, 08.52 प्रतिशत उत्तरदाता रिश्तेदारों के द्वारा, 33.23 प्रतिशत उत्तरदाता किसी परिचित द्वारा छेड़छाड़ का शिकार हुए हैं। तालिका से स्पष्ट है कि महिलाएँ किसी भी क्षेत्र में हो उन्हें प्रायः छेड़छाड़ का सामना करना ही पड़ता है यदि वे सार्वजनिक स्थल पर हैं तो अंजान लोगों द्वारा, कार्यस्थल में सहकर्मी, घर पर परिचित व रिश्तेदारों द्वारा छेड़छाड़ का सामना करना पड़ता है। अनुसूची साक्षात्कार द्वारा प्रश्न पूछने पर पता चलता है कि प्रायः जिन महिलाओं ने छेड़छाड़ का सामना किया वह चाहे परिचित, रिश्तेदार या अंजान व्यक्ति हो उनमें शराब पीए हुए थे। अर्थात मदिरापान लैंगिक हिंसा में वृद्धि का कारण है। संध्या में शराबी व्यक्तियों के भय से महिलाएँ घरों से बाहर नहीं निकलती अनेक बार शराबी पति द्वारा वे यौन हिंसा से प्रताड़ित होती हैं। अप्रत्यक्ष रूप में पुरूषों द्वारा मदिरा का सेवन लैंगिक हिंसा, छेड़छाड़ व महिलाओं की परिवार में निम्न् प्रस्थिति के लिए जिम्मेदार है।

तालिका संख्याक 4

लैंगिक विषमता का कारक, संवैधानिक पदों पर महिलाओं की कमी के सन्दर्भ में प्रत्युत्तर

क्र.सं.	लैंगिक विषमता का कारक, संवैधानिक पदों पर महिलाओं की कमी	ग्राम		नगर		कुल	
		आवृति	प्रतिशत	आवृति	प्रतिशत	आवृति	प्रतिशत
1	हाँ	76	44.70	89	52.35	165	48.53
2	नहीं	63	37.09	52	37.05	115	33.82
3	कह नहीं सकते	31	18.24	29	18.25	60	17.65
कुल योग		170	100	170	100	340	100

तालिका संख्या 4 से स्पष्ट है कि ग्रामीण क्षेत्र के 44. 70 प्रतिशत उत्तरदाता लैंगिक विषमता का कारक संवैधानिक पदों पर महिलाओं की कमी को मानते हैं जबकि 37.09 प्रतिशत उत्तरदाताओं का मानना है कि संवैधानिक पदों पर महिलाओं की कमी का प्रभाव लैंगिक विषमता पर नहीं पड़ता है, 18.24 प्रतिशत उत्तरदाताओं की राय अनिश्चित है एवं नगरीय क्षेत्र में 52..35 प्रतिशत उत्तरदाता लैंगिक विषमता का

कारक, संवैधानिक पदों पर महिलाओं की कमी को मानते हैं, 37.05 प्रतिशत उत्तरदाताओं की राय में, सवैधानिक पदों पर महिलाओं की कमी का प्रभाव लैंगिक विषमता पर नहीं पड़ता है, 18.25 प्रतिशत उत्तरदाता इस पर कुछ न कह पाने की स्थिति में हैं। कुल उत्तरदाताओं में 48.53 प्रतिशत उत्तरदाताओं का मानना है कि लैंगिक विषमता का कारक संवैधानिक पदों पर महिलाओं की कमी है जबकि 33.82 प्रतिशत उत्तरदाताओं का मानना है कि संवैधानिक पदों पर महिलाओं की कमी का प्रभाव लैंगिक विषमता पर नहीं पड़ता है।

तालिका संख्याा 5
यदि हाँ तो कारणों के सम्बन्ध में उत्तरदाताओं के प्रत्युत्तर

क्र.सं.	कारण के सम्बन्ध में प्रत्युत्तर	ग्राम		नगर		कुल	
		आवृति	प्रतिशत	आवृति	प्रतिशत	आवृति	प्रतिशत
1	महिला अधिकारी उन पक्षों को भली भाँति समझ सकती हैं, जिनका पुरूषों ने कभी एहसास नहीं किया	06	07.89	09	10.11	15	09.09
2	पुरूष स्त्री हित कार्य को पूरा करने में सदा न्यायशील और विवेकशील नहीं रहा है	10	13.15	08	08.99	18	10.90
3	उपरोक्त दोनों	60	78.94	72	80.89	132	80.00
कुल योग		76	100	89	100	165	100

तालिका संख्या 5 से स्पष्ट है कि ग्रामीण क्षेत्र में 07.89 प्रतिशत उत्तरदाताओं का मानना है कि महिला अधिकारी उन पक्षों को भली भाँति समझ सकती हैं जिनका पुरूषों ने कभी एहसास नहीं किया है, 13.15 प्रतिशत उत्तरदाताओं का मानना है कि पुरूष स्त्री हित कार्य करने में सदा न्यायशील और विवेकशील नहीं रहे है। नगरीय क्षेत्र के 10.11 प्रतिशत उत्तरदाताओं का मानना है कि महिला अधिकारी उन पक्षों को भली भाँति समझ सकती हैं जिनका पुरूषों ने कभी एहसास नहीं किया एवं 08.99 प्रतिशत उत्तरदाताओं का मानना है कि पुरुष स्त्री हित कार्य को पूरा करने में सदा न्यायशील नहीं रहते हैं जबकि ग्रामीण क्षेत्र के 78.94 प्रतिशत उत्तरदाता नगरीय क्षेत्र के, 80.89 प्रतिशत ने दोनों विकल्पों को चुना है। कुल उत्तरदाताओं में से 09.09 प्रतिशत उत्तरदाताओं का मानना है कि महिला अधिकारी उन पक्षों को भली भाँति समझ सकती हैं जिनका पुरूषों ने कभी एहसास नहीं किया एवं 10.90 प्रतिशत उत्तरदाताओं का मानना है कि पुरूष स्त्री हित कार्य को पूरा करने में सदा न्यायशील नहीं रहते हैं जबकि 80.00 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने दोनों विकल्पों को चुना है। स्पष्ट है कि यदि संवैधानिक पदों पर महिलाओं की नियुक्ति अधिकाधिक होगी तो वे विभिन्न प्रकार के संवैधानिक पदों पर रहकर महिला कल्याण एवं न्याय व्यवस्था स्थापित करेंगी। पुरूष वर्ग महिला पक्ष को भली भाँति नहीं समझते, कभी तो पुरूष संवैधानिक पदों का लाभ उठाकर महिला का भिन्न-भिन्न प्रकार से शोषण करते हैं। तालिका से स्पष्ट होता है कि तुलनात्मक रूप से नगरीय क्षेत्र की महिलाएं लैंगिक असमानता का कारण संवैधानिक पदों पर महिलाओं की कमी को मानती हैं क्यों कि शहरी क्षेत्र की महिलाएं संवैधानिक पदों पर आसीन व्यक्ति के सम्पर्क में ग्रामीण महिलाओं की तुलना में अपेक्षाकृत अधिक आती है। अतः विषमता को अधिकाधिक संख्या में उच्च पदों पर महिला नियुक्ति द्वारा कम किया जा सकता है।

तालिका संख्या 6
पितृसत्तात्मक परिवार को लैंगिक विषमता का कारण स्वीकार करने के सन्दर्भ में प्रत्युत्तर

क्र.सं.	पितृसत्तात्मक परिवार को लैंगिक विषमता का कारक	ग्राम		नगर		कुल	
		आवृति	प्रतिशत	आवृति	प्रतिशत	आवृति	प्रतिशत
1	हाँ	139	81.76	146	85.88	285	83.82
2	नहीं	02	01.18	00	00	02	00.59
3	अनिश्चित	29	17.06	24	14.11	53	15.59
कुल योग		170	100	170	100	340	100

तालिका संख्या 6 से स्पष्ट है कि 81.76 प्रतिशत उत्तरदाता पितृसत्तात्मक समाज को लैंगिक विषमता का कारण मानते हैं एवं 01.18 प्रतिशत उत्तरदाता पितृसत्ता को लैंगिक विषमता का कारक नहीं मानते, नगरीय क्षेत्र के 85.88 प्रतिशत उत्तरदाता पितृसत्ता को लैंगिक विषमता का कारक मानते हैं। ग्रामीण क्षेत्र के 17.06 प्रतिशत एवं 01.18 प्रतिशत उत्तरदाता पितृसत्ता लैंगिक विषमता का कारण होती है या नहीं इस अनिश्चिता की स्थिति में हैं। कुल उत्तरदाताओं में से 83.82 प्रतिशत उत्तरदाता पितृसत्ता को लैंगिक विषमता का कारण मानते हैं, 00.59 प्रतिशत उत्तरदाता पितृसत्ता को लैंगिक विषमता का कारक नहीं मानते हैं जबकि 15.59 प्रतिशत उत्तरदाता अनिश्चिता की स्थिति में हैं। पितृसत्ता की लैंगिक द्वारा पुरूष स्त्री प्रजनन क्षमता व उसकी श्रम शक्ति पर नियंत्रण रखते हैं। पितृसत्ता प्राचीन काल से हस्तांतरित होती है। यदि वे कोई बाहर का कार्य करेगी, तो इसका निर्धारण भी पुरुष की मर्जी से होगा। पितृसत्ता के द्वारा सम्पत्ति के निर्धारण हेतु पुरुष स्त्री की यौनिकता, आजादी को अपने नियंत्रण में कर लिया। रीति-रिवाज के द्वारा पुरुषों ने पितृसत्ता को पोषित किया। दायित्व अधिकार के माध्यम से पितृसत्ता की अधीनता दिखाई नहीं देती है तभी 15.59 प्रतिशत उत्तरदाता पितृसत्ता की अधीनता के बारे में अनिश्चित दृष्टिकोण रखते हैं। पितृसत्ता द्वारा स्त्री को शारीरिक आधार पर अलग कार्यक्षेत्र दिया गया है। जीवविज्ञान को सामाजिक संरचना में सम्मिलित कर लिया गया जबकि जिससे स्त्री पर वर्जनाएं स्थापित कर दी गई हैं। इस प्रकार स्त्रियों की पुरुष पर अधीनता सहज प्रतीत होने लगी। पितृसत्ता की जड़ें बहुत मजबूत हो गई हैं। जो लैंगिक विषमता का कारक है पितृसत्ता के द्वारा ही पुत्री को आर्थिक अधिकार प्रदान नहीं किए जाते हैं।

तालिका संख्या 7
परिवार में पुरुष सदस्यों द्वारा मदिरा का सेवन करने के सन्दर्भ में प्रत्युत्तर

क्र.सं.	परिवार में पुरुष सदस्यों द्वारा मदिरा का सेवन किया जाता है	ग्राम		नगर		कुल	
		आवृति	प्रतिशत	आवृति	प्रतिशत	आवृति	प्रतिशत
1	हाँ	47	27.64	51	30.00	98	28.82
2	नहीं	42	24.71	30	17.65	72	21.18
3	विशेष अवसर पर	81	47.65	89	52.35	170	50.00
कुल योग		170	100	170	100	340	100

तालिका संख्या 7 से स्पष्ट है कि कुल उत्तरदाताओं में से 28.82 प्रतिशत उत्तरदाताओं के परिवार के पुरुष सदस्य प्रतिदिन मदिरा का सेवन करते हैं, 50.00 प्रतिशत उत्तरदाताओं के परिवार के पुरुष सदस्य मदिरा का सेवन विशेष अवसर पर करते हैं जबकि 21.18 प्रतिशत उत्तरदाता मदिरा का सेवन नहीं करते हैं। ग्रामीण क्षेत्र के 27.64 प्रतिशत उत्तरदाओं के परिवार के पुरुष सदस्य मदिरा का सेवन करते हैं, 24.71 प्रतिशत उत्तरदाताओं के परिवार के सदस्य मदिरा का सेवन नहीं करते हैं जबकि 47.65 प्रतिशत

उत्तरदाताओं के परिवार के पुरुष सदस्य विशेष अवसर पर मदिरा का सेवन करते हैं। नगरीय क्षेत्र के 30.00 प्रतिशत उत्तरदाताओं के परिवार के पुरुष सदस्य मदिरा का सेवन करते हैं, 17.65 प्रतिशत उत्तरदाताओं के परिवार के सदस्य मदिरा का सेवन नहीं करते हैं जबकि 52.35 प्रतिशत उत्तरदाताओं के परिवार के पुरुष सदस्य विशेष अवसर पर मदिरा का सेवन करते हैं। तुलनात्मक रूप से देखने पर हम पाते हैं कि पुरुषों द्वारा विशेष अवसरों पर मदिरा का सेवन करने वाले पुरुषों की संख्या नगर में अधिक है जबकि प्रतिदिन शराब का सेवन करने वाले पुरुषों की संख्या ग्रामीण क्षेत्र में अधिक है। पुरुषों पर संरक्षक व समाज का अधिक दबाव नहीं होता। प्रायः पुरुष को आवश्यकता से अधिक दी गई स्वतंत्रता पुरुषों को व्याभिचार के रास्ते पर ले जाती है और वह अपनी पत्नी, बेटी, माँ के अंकुश को स्वीकार नहीं करते और व्याभिचार के रास्ते पर चल पड़ते हैं।

निष्कर्ष

उपरोक्त तालिकाओं से स्पष्ट है कि लड़कियों के प्रति बढ़ती यौन हिंसा एवं बलात्कार और दहेज, शिक्षित वर्ग भी लड़कियों को संतान के रूप में वरीयता प्रदान करने में उदासीनता उत्पन्न कर रहे हैं। आज भी यही विचार है लड़कियाँ परिवार को आर्थिक सहयोग प्रदान नहीं कर सकती हैं। यदि वे आर्थिक क्रियाएं करती भी है तो विवाह के पश्चात् महिलाओं की आमदनी पर हक ससुराल वालों का है इस प्रकार की मान्यताओं के कारण लड़कियों को शिक्षा, व्यावसायिक कोर्स आदि संसाधनों से वंचित रखा जाता है जिस कारण आर्थिक क्षेत्र में पुरुषों से बहुत पीछे रह गई हैं।

भारत में संवैधानिक पदों पर महिलाओं की कमी के कारण समाज में लैंगिक विषमता में वृद्धि हुई है क्योंकि एक महिला अधिकारी उन पक्षों को भली–भॉति समझ सकती है जिन पक्षों का पुरुषों ने कभी एहसास भी नहीं किया है। साथ ही पुरुष स्त्री हित कार्य करने में सदा न्यायशील और विवेकशील नहीं रहते है। अब महिलाएँ पितृसत्ता के प्रति जागरूक हो गई हैं। महिलाओं को पता है कि पितृसत्ता ही उनके अधिकारों के हनन करने का प्रमुख कारक है।

महिलाओं के साथ होने वाली यौन हिंसा एवं घरेलू हिंसा का प्रमुख कारण मदिरा सेवन है छेड़छाड़ एवं बलात्कार जैसे–कुकृत्य, पुरुषों द्वारा मदिरा का सेवन करने के बाद ही होते हैं। पुरुषों द्वारा मदिरा का सेवन एवं महिलाओं के प्रति हिंसा एवं यौन हिसा सकारात्मक सहसम्बन्ध पाया जाता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *Van Hoof, Jennyh, march, 2011, 'rationalizing inequality hetero sexual couple' explanations and justification for the dinision of chousemork along traditionally studies gendered lines' journal of gender studies, 20 (1) 19-30. DOI.10.1080/09588236.2011.542016*
2. *Szymanowicz, agata: Adrian Furnham, (March 2011). ''Do intelligent women stay single' cultural stereotypes concerning the intellectual abilities of men and women'' journal of gender studies. 20 (1)*
3. *Schiekingers, londa, has feminism changed science, p. 92-96*
4. *राम गणेश यादव, भारत में सामाजिक परिवर्तन एवं विकास, ओरियंट ब्लैकस्वान, 2014, पृ. 127*
5. *Barbara Epestein what Happened to the women's foremen's? monthly review, volume 53, Number 1, May 2001*
6. *Deborah L. Madsen Feminist Theory and Literacy Practice प्लूटो प्रैस 2000 http://books.google.co.in/books, Page 35–47*
7. *Susan Mollerakin women in Western Political thought Princeton University Press 1979. http://books. Google.Co.in/books page 198-202*
8. *गोपा जोशी, भारत में स्त्री असमानता, दिल्ली विश्वविद्यालय, पृ. 47*
9. *गोपा जोशी, भारत में स्त्री असमानता, पृ. 51*

बहुश्रुत चिंतक एंव मौलिक रचनाकार : आचार्य देवेंद्रनाथ शर्मा

डॉ. जयलक्ष्मी एफ. पाटील
सहायक प्राध्यापक, दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, धारवाड़ (कर्नाटक)

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

आचार्य देवेंद्रनाथ शर्मा भाषाविज्ञान और काव्यशास्त्र के विशेषज्ञ थे। साहित्य की नवीनतम गतिविधियों के प्रति वे अत्यंत जागरुक थे। स्वानतः सुखाय रचना को उन्होंने वरेष्य नहीं माना है। संपादन, अनुवाद, ललित निबंध, एकांकी, समालोचनात्मक ग्रंथ, भाषा वैज्ञानिक और काव्यशास्त्रीय ग्रंथों की जो रचनाएं हैं, वे यह प्रमाणित करते हैं, कि उनके व्यक्तित्व में कितनी अनंत संभावनाएँ छिपी थी। वे व्याकरण, साहित्य, दर्शन आदि प्राच्य विषयों के पारंपरिक विद्वानों में अग्रगण्य थे। आचार्य शर्मा एक सफल अध्यापक थे, वे व्यक्ति नहीं संस्था थे। साथ ही, वे विधाओं के छूआछूत में भी विश्वास नहीं रखते थे। उनके निबंधों में व्याख्यान है, अनुवादों में आलोचना, ललित निबंधो में नाटकीयता और एकांकियों में कवित्व, शास्त्र-विवेचन में निर्बध लालित्य और विश्लेषण में वक्तृत्व। यह अंतग्रंथन भी अद्‌भुत है।

संकेताक्षर : *प्रकाण्ड, बहुश्रुत, भाषाविज्ञान, काव्यशास्त्र, विभिषिकाओं, समाजधर्मी, आकुंचन, निष्पक्ष, आलोचना, व्यंग्यात्मकता, अध्यापक, संस्था ।*

देवेंद्रनाथजी की प्रतिभा बहुमुखी थी। हिंदी संस्कृत के तो वे प्रकाण्ड पंडित थे ही, अंग्रेजी और बांग्ला भाषा पर भी। विशेषकर रुप से उनका अंग्रेजी पर उनका पूरा अधिकार था। भाषाविज्ञान और काव्यशास्त्र के वे विशेषज्ञ थे। भाषाविज्ञान पर प्रकाशित उनके ग्रंथ का हिंदी शिक्षा जगत् में काफी आदर है। काव्यशास्त्र में उनकी पैठ गहरी थी। सैध्यांतिक आलोचना के अतिरिक्त उन्होंने सर्जनात्मक साहित्य के क्षेत्र में भी ललित निबंधों और नाटकों की रचना की थी। प्रो. देवेंद्रनाथ यशस्वी प्राध्यापक और वक्ता थे। वे बहुश्रुत और स्वाध्यायी थे। उनकी गहरी पैठ साहित्य, भाषाविज्ञान, काव्यशास्त्र, संस्कृति, दर्शन व विभिन्न कलाओं में थी। जब वे अभिभाषण देते, तो पता चलता है कि वे कितने गहरे और ज्ञान गंभीर हैं। यह सब होते हुए भी तुलसी बाबा के शब्दों में ''सब ही मान प्रद आपु अमानी''-वे सचमुच अमानी थे पर सबको यथोचित मान-मर्यादा देते थे।

आचार्य देवेंद्रनाथ शर्मा में व्यक्तित्व, कृतित्व और वकृत्व का मणिकांचन संयोग था। वे सर्जनात्मक तथा आलोचनात्मक दोनों ही प्रकार की अच्छी पुस्तकें लिखीं, पर इसके अलावा जिन दो उपयोगी और विलक्षण पुस्तकों के ये प्रणेता रहे हैं-भाषाविज्ञान की भूमिका तथा पाश्चात्य काव्यशास्त्र। ये उनके सुयश का स्थायी आधार बनीं। शर्माजी की प्रांजल और पारदर्शी भाषा उनके लेखन और भाषण दोनों में दृष्टिगतहोती थी। भाषा में वे बहुत कठोर कभी नहीं हुए, उज की खान बंगला का ललित टोन तथा अंग्रेजी के ''पन'' सबको वे स्वीकार करते थे। उनकी मेधाशक्ति अद्वितीय थी, अनुत्तर विमर्शमयी थी। उनका कथन बडा मार्मिक होता था- ''कल्पना से नहीं, अनुभव से लिखो। कल्पना उड़ जाएगी, पर धरातल पर तो स्वयं ही चलना पड़ता है।'' शर्माजी की निष्ठा पारंपरिक साहित्य की ओर अटूट थी किंतु साहित्य की नवीनतम गतिविधियों के प्रति भी वे अत्यंत जागरूक थे।

बहुमुखी व्यक्तित्वः शील, सौंदर्य और विद्वत्ता की प्रतिमूर्ति आचार्य के व्यक्तिव में एक चुंबकीय शक्ति थी, जिससे उनके संपर्क में आनेवाले व्यक्ति बरबस उनकी ओर आकृष्ट हुए बगैर नहीं रह सकते थे। उनका व्यक्तित्व नश्चल था, वे अपने मन में किसी के प्रति दुर्भाव या दुराग्रह नहीं रखते थे, जो कुछ भी उनके मन में आता, वे आपके सामने ही

उसे व्यक्तकर देते थे। परोक्ष के लिए वे अपने मनमें कोई भी मैल नहीं छोडते थे। नाक–नक्श तो तराशे हुए थे, रंग भी गौर–वर्ण था। उस पर वेश–भूषा भी सुरुचिपूर्ण रहती थी। सैंकड़ो व्यक्तियों में वे अलग से ही पहचान में आजाते थे। उनका व्यक्तित्व ही सबसे भिन्न था। आचार्यजी ने जब जिस दायित्व को स्वीकारा, उसका ईमानदारी एवं संपूर्ण निष्ठा से निर्वाह किया और सभी क्षेत्रों में वे पूर्ण सफल रहें। उन्होंने एक स्थान पर लिखा है:"योग कर्मसु कौशलम्'' अर्थात् मैं जो भी काम करता, पूजा की निष्ठा और भावना से। इसलिए सफलता ने मेरा साथ कभी नहीं छोड़ा।

आचार्य शर्माजी बड़े परिश्रमी और उद्योगी पुरुष थे। वे नित्य चार बजे सुबह उठ जाते और स्वाध्याय में लीन हो जाते। उसके बाद नित्यक्रिया में निवृत्त हो सारे दिन आवश्यक कामों में लगे रहते थे। समय को सार्थक बनाना कोई उनसे सीखता। गप–सड़ाकों में उन्हें कोई दिलचस्पी नहीं थी। निरर्थक, अनर्गल, बेमतलब बातों से कतराते रहते थे। वे किसी का न बुरा सुनना चाहते थे और न स्वयं किसी की बुराई करते थे। सुनी सुनाई बातें, बिना प्रमाण के की गई आलोचना और छिद्रान्वेषण को उदासीनता और घृणा की दृष्टि से देखते थे। पक्षपात करने की न उनकी प्रवृत्ति धी और न प्रकृति। वे किताबों को ही अपना अंतरंग और परम मित्र मानते थे। अध्यात्म, विज्ञान, धर्म और कर्म, चिंतन और मनन सभी जैसे उनके जीवन में रस–बस गए थे। उनके द्वारा लिखित भाषा विज्ञान, काव्यशास्त्र, राष्ट्रभाषा हिंदी, समीक्षात्मक एवं ललित निबंध, एकांकी, संस्मरण और यात्रावृत्तांत आदि की पुस्तकें विशेष उल्लेखनीय और ख्यातिप्राप्त हैं। आचार्यजी धार्मिक पृवृत्ती के व्यक्ति थे। गीता, रामायण, महाभारत, दुर्गापाठ आदि में रुचि रखते थे। संगीत और खेलकूद में भी उन्हें गहरी अभिरुचि थीं।

किसी व्यक्ति के लिए कोई एक ही पद संभालना बहुत मुश्किल होता है किन्तु आचार्यजी की क्षमता, उनकी विद्वत्ता, उनकी प्रशासनिक कार्यशैली एवं उनकी वाकपटुता को देखते हुए बिहार सरकार ने उन्हें सिर्फ एक ही विश्वविद्यालय का कुलपति नहीं बनाया बल्कि दो दो विश्वविद्यालयों का कुलपति बनाया और कुछ समय तक दोनों विश्वविद्यालयों का कार्यभार उन्हें एक साथ संभालना पड़ा।एक तरफ वे बिहार के प्राचीनतम पटना विश्वविद्यालय को संभालते थे तो दूसरी ओर कामेश्वर सिंह संस्कृत विश्वविद्यालय को भी संचालित करते थे।

सुसंस्कृत साहित्यकार : एक सौम्य, सुसंस्कृत साहित्यकार के रुप में आज भी वे अपनी साहित्यिक काया से मनस्वियों के मध्य पांडित्य के जीवंत प्रतिमूर्ती के रुप में जगमगा रहे हैं। शर्माजी का साहित्यिक क्षेत्र में प्रवेश विद्यार्थी जीवन से ही हो गया था। संस्कृत साहित्य में प्रवेश उन्होंने अपनी पैत्रक परंपरा से किया था। उनकी साहित्यिक प्रेरणा का स्त्रोत तो उनके परिवार का परिवेश ही था, उन्होंने अपने को काव्यशास्त्र या भाषाशास्त्र तथा सौंदर्यशास्त्र तक ही सीमित न रखकर स्वयं रचनाकार के रुप में निबंध के माध्यम से प्रवेश किया था। पहला निबंध संग्रह ''खट्टा–मीठा''1950 में, "आईना बोल उठा''14वर्ष बाद ''प्रणाम की प्रदर्शिनी में''16वर्ष बाद प्रकाशित हुआ। शर्माजी ने अभिनय एकांकीयों का सृजन भी किया। ''पारिजात मंजरी''1949 में ''बिखरी स्मृतियां'' ''शाहजहां के आंसू'' प्रकाशित हुई। उन्होनें कई स्तरीय पुस्तकों के साथ चेखव की कहानियों का भी बहुत सुंदर अनुवाद किया। शर्माजी कुशल संपादक भी थे। उनकी रचनाओं में अंधानुकरण नहीं है, न ही पिष्टपेषण।

समाज और साहित्य के अनन्य संबंध को स्वीकार करते हुए उन्होंने व्यष्टिपरक आनंदोद्गार मानकर रचना नहीं की, जीवन की विभीषिकाओं से चुनौती लेते हुए उन्होंने एक संतुलित दृष्टि की स्थापना की है। आचार्य शर्मा की मान्यता है कि साहित्य को समाजधर्मी ही होना चाहिए केवल स्वान्तः सुखाय रचनार को उन्होंने वरेण्य नहीं माना है। शर्माजी का ध्यान जीवन मूल्यों की उपेक्षकर के कहीं भी नहीं चला है। विघटित होते हुए नैतिक मूल्यों को पुनःस्थापित करने का भी उन्होंने पूरा–पूरा ध्यान रखा है। आचार्यर शर्मा हिंदी समालोचना के क्षेत्र में आलोचक के रुप में एक समादृत व्यक्ति हैं। आचार्य शर्माजी के सामने भारतीय काव्यशस्त्री भरतमुनि से लेकर पंडितराज जगन्नाथ तक की संपूर्ण परंपरा बनी रही जिसके फलस्वरुप उन्योंले काव्यशास्त्र विषयक जो ग्रंथ लिखे उनमें कहीं भी भारतीय चिंतन की उपेक्षा नहीं हुई है। सौष्ठववादी आलोचकों ने कुछ नवीन प्रयोग किए थे किन्तु आचार्र शर्मा ने उनको भी यथावत् स्वीकार नहीं किया। अंग्रेजी के बहुचर्चित ग्रंथों का उन्होंने हिंदी में सार तत्व देकर हिंदी पाठक को अंग्रेजी साहित्य से परिचित कराने में बहुत बड़ा योगदान दिया है। आचार्य शर्मा जैसा अधिकारी विद्वान ही यह कार्य कर सकता

था। अत उनका प्रदेय केवल मौलिक रचना तथा भाषविज्ञान तक सीमित न होकर भारतीय काव्यशास्त्र तथा पाश्चात्य काव्यशास्त्र तक फैला पुआ है। अचार्य देवेंद्रनाथ शर्माजी का विपुल स्थापित आगे आने वाली पीढियों का पथदर्शन करता रहेगा।

रचनात्मक गतिशीलताः हिंदी साहित्य में सृजन और समाक्षा की कोई भी विधा नहीं बची जिसे उन्होंने संपन्न न किया हो। उनकी रचनात्मक गतिशीलता पर दृष्टि डालते ही यह विविधता स्पष्ट हो जाती है। उनकी पहली पुस्तक अलंकार मुक्तावली का प्रकाशन 1948 में हुआ तो उसी के साथ इसी वर्ष साहित्यिक निबंधावली भी आई तथा पारिजात मंजरी एकांकी संग्रह 1949 में प्रकाशित हुआ। इस प्रकार आरंभ से ही एक साथ अनेक क्षेत्रों में उनकी शक्ति और प्रवृत्ति दृष्टिगोचर होती है। उनकी एक अन्य विलक्षणता प्रतिभा की नितंतर सक्रियता रही है। 1948 से प्रारंभ करके जीवन के अंत तक वे निरंतर अभिव्यक्तिशील बने रहे। उन्होंने पत्र-संपादन, अन्य ग्रंथों के संपादन, अनुवाद, ललित निबंध, एकांकी, समालोचनात्मक ग्रंथ, भाषावैज्ञानिक और काव्यशास्त्रीय ग्रंथों की जो रचनाएँ प्रस्तुत की उनकी संख्या लगभग तीस है। इन सभी कृतियों से उनके व्यक्तित्व के अनेक पक्ष आविर्भूत होते हैं जो यह प्रमाणित करते हैं, जो कि उनके व्यक्तित्व में कितनी अनंत संभावनाएँ छिपी थी। संपादक के नाते उन्होंने दृष्टिकोण,समीक्षा, और नया आलोचक आदि प्रत्रिकाओं का प्रकाशन किया। इन पत्रों में उनके संपादकीय आलेख एवं टिप्पणियाँ उनके समीक्षक व्यक्तित्व को संपादकीय सामर्थ्य के साथ उजागर करती हैं। इसके अतिरिक्त साहित्यिक निबंधावली (1948) छायावाद और प्रगतिवाद (1950) रिचर्डस के आलोचना सिध्दांत (1965) हिंदी साहित्य का ब्रहत् इतिहास- भक्तिकाल (सगुण दृभक्ति) अमर भारती (1967) उपन्यास का शिल्प (1973) और शैली (1973) आदि का भी संपादन उन्होंने किया। इन संपादित कृतियों से यह सर्वथा सुस्पष्ट है कि उन्होंने साहित्यिक इतिहास के साथ-साथ साहित्यिक समीक्षा के सिध्दांतों पर पुनः पुनः विचार किया तथा उनकी तात्विक मान्यताओं को स्थिर किया । संपादक के रुप में उन्होंने एक ओर भक्तिकाल (सगुण भक्ति) का मार्मिक प्रतिपादन किया तो दूसरी ओर आधुनिक समीक्षा के प्रथम कोटि के शलाका पुरुष रिचर्डस के आलोचना सिद्धांत और शैली को भी उसी असाधरण क्षमता और तीक्ष्ण शास्त्रीय दृष्टि के साथ प्रस्तुत किया।

समाक्षक प्रतिभाः आचार्य शर्मा के व्यक्तित्व के ताने दृबाने में सबसे प्रभावी और प्रभविष्णु सूत्र उनकी समीक्षक प्रतिभा है। किसी भी विषय पर वे गंभीरता और स्थिरता के साथ विश्लेषण करते हैं। परिणामतः उनकी कृतियों में संख्या, प्रकार और गंभीरता की दृष्टि समालोचनात्मक रचनाएँ सर्वाधिक चर्चित हैं। समालोचनात्मक कृतियों में साहित्य दृसमाक्षा (1951) हिंदी कवियों का मूल्यांकल (1952) की गणना विशेष आदर के साथ हुई है, एक कृति में साहित्यिक-समीक्षा मानदण्डों और निकष का निर्धारण है, दूसरे में उसके आधार पर कवियों की समीक्षा है। इन दोनों ग्रंथों की शैली प्रसाद गुण संपन्न और अभिव्यक्तिक्षम है। उनकी अंतदृष्टि भी यहाँ सहज रुप से प्राप्त होती है। समीक्षा के क्षेत्र में भी आचार्य शर्मा ने अपने चिंतन को व्यक्त करने के लिए विविध मार्ग अपनाया। एक में स्वतंत्र रुप से समीक्षा के तत्व और उनके आधार पर विवेचन किया है, दूसरे में संस्कृत साहित्य, साहित्य शास्त्र के महान् व्यापक और विशद और गंभीर दाय को आत्मसातकर काव्यशास्त्रीय परंपरा को आगे बढाया है। इस दृष्टि से उन्होंने अलंकार मुक्तावली (1948) एवं भामह कृत काव्यालंकार का हिंदी भाष्य (1962) की रचना की। अलंकार मुक्तावली में अलंकारशास्त्र तथा अलंकारों की व्याख्या की है। यह उनके अध्यापकीय जीवन की प्रारंभिक रचना है। हिंदी साहित्य, भाषा विज्ञान के क्षेत्र को अपने जीवन की रचनात्मक यात्रा का आधार बनाने का बाद भी पहली कृति के रुप में अलंकार मुक्तावली की रचना स्पष्टिकरण की अपेक्षा रखती है। आचार्य शर्मा की पारिवारिक परंपरा विशेष रुप से उनके पितृचरण की ज्ञान- राशि बहुत कुछ मात्रा में उनमें संक्रमित हुई है। वे व्याकरण, काव्यशास्त्र, साहित्य, दर्शन, आदि प्राच्य विषयों के पारंपरिक विद्वानों में अग्रगण्य थे।

वैयाकरण और भाषाशास्त्रीः शर्माजी के बहुआयामी व्यक्तित्व का एक और सशक्त परिपार्श्व उनका वैयाकरण और भाषाशास्त्री होता है। उनके वार्तालाप में भी भाषा के प्रयोग की मधुर, स्पष्ट और शास्त्रीय परंपरा का सहज ही अनुभव किया जा सकता था। उनके भाषावैज्ञानिक ग्रंथों में राष्ट्रभाषा हिंदीःसमस्या और समाधान (1965) भाषाविज्ञान की भूमिका (1966) हिंदी भाषा और नागरी लिपि (1972) की गणना की है। राष्ट्रभाषा के रुप में हिंदी की अनेक

समस्यांए स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से विद्यमान रही है। भाषावार प्रांत रचना से उत्पन्न विसंगतियों ने इसे और अधिक उलझा दिया है। अतः राष्ट्रभाषा से संबंधित अनेक समस्याओं का उदित होना स्वाभाविक ही है। अस्तु आचार्य शर्मा ने समाधान को भी अपनी कृति में सम्मिलित करने का साहसिक वैदुप्यपूर्ण एवं व्यापक अनुभवों से संपन्न प्रयास सफलतापूर्वक किया है। इसी भाँति हिंन्दी भाषा और नागरी लिपि भी इसी मानक के अनुरुप नए क्षेत्र में उनकी प्रतिभा का सन्निवेश करनेवाली कृति है। उनकी भाषाविज्ञान से संबंधित अन्य महत्वपूर्ण कृति ''भाषाविज्ञान की भूमिका'' (1966) है। उनकी यह मौलिक कृति है। आचार्य शर्मा ने भाषाविज्ञान का विदिवत् अध्ययन सुप्रसिद्ध भाषावैज्ञानिक प्रोफेसर फर्थ के निदेशन में किया था। संस्कृत का ज्ञान और नव्यतम भाषाविज्ञान की प्रणाली और शब्दावली के समन्वय ने आचार्य शर्मा को हिंदी का एक विशिष्ट भाषावैज्ञानिक बना दिया। इस पुस्तक की भाषा में वैज्ञानिक प्रौढ भी है रचनात्मक सरसता भी जिसका अभाव प्रायः भाषाविज्ञान –विषयक ग्रंथो में दिखता है। इस पुस्तक में उनका ज्ञान एवं आत्मविश्वास निश्छल शैली में प्रस्फुटित है और यह अपने ढंग का अद्वितीय ग्रंथ है। एक वाक्य है दृ'लडका किताब पढता है 'को लेकर किस तरह आचार्यजी ने उसे छीला है और रेशे रेशे निकालकर पाठक या श्रोता के सामने रख दिया है, देखकर आश्चर्य होता है। इसी तरह अनेक स्थानों पर उन्होंने पाठक को सीधे संबोधित कर उसके साथ संलाप किया हैः प्रश्न है कि ध्वनि एक स्थान से दूसरे स्थान तक जाती कैसे है ? मेरे मुख से निकली ध्वनि आपके कर्ण कुहरों तक किस माध्यम के द्वारा पहुँचती है।[1] यह शैली प्राध्यापकीय शैली है, जिसमें नाटकीय संवाद का भी यत्र–तत्र समायोजन हुआ है। आचार्य शर्मा न केवल भारतीय साहित्यशास्त्र के प्रकांड पंडित थे, बल्कि पाश्चात्य काव्यशास्त्र पर भी उनका पूरा अधिकार था। इसमें उनका अंग्रेजी एवं अन्य यूरोपीय भाषाओं का ज्ञान सहायक रहा। भारती भवन की पाश्चात्य समालोचना पुस्तकमाला का उन्होंने संपादन किया था पाश्चात्य काव्यशास्त्र विषयक एक स्वतंत्र पुस्तक भी लिखी थी।[2] इस पुस्तक का सबसे गुण है जटिलता का सरलीकरण। आचार्य शर्मा ने इसकी भूमिका में लिखा है– ''अध्यापक के रुप में मैंने संप्रेषण की सहजता और सरलता को सर्वाधिक महत्व दिया है। मेरी मान्यता है कि विषय कठिन नहीं होता, यदि कठिण प्रतीत होता है तो इसका अर्थ है कि संप्रेषण सदोष है। कुछ लोग पांडित्य प्रदर्शन के लिए जान–बूझकर लेखन में क्लिष्टता लाते हैं। मैं इसे तामस लेखन कहता हूँ। इससे न तो लेखक को यश मिलता है, न पाठक को ज्ञान।... हमारे हृदय में हिंदी के जिस उज्ज्वल भविष्य की कामना है उसकी पूर्ति अभिव्यंजना की क्लिष्टता से नहीं होगी। यह एक प्रकार का राष्ट्रीय दायित्व है, जिसके प्रति जागरुकता अपेक्षित है।"[3] इसी आदर्श को ध्यान में में रखकर आचार्य शर्मा ने पश्चिमी साहित्य चिंतन को हिंदी की प्रकृति के अनुकूल शैली में सरलतापूर्वक प्रस्तुत करने का साहसपूर्ण कार्य किया है। भारतीय काव्यशास्त्र के व्यापक अध्ययन के साथ पाश्चात्य साहित्यशास्त्र के अध्ययन से आचार्यजी के काव्यशास्त्रीय चिंतन को व्यापक आयाम मिला था।

6 प्राध्यापकीय व्यक्तित्व शर्माजी का दूसरा नियामक है उनका प्राध्यापकीय व्यक्तित्व। यदि सफल प्राध्यापक की यह कसौटी हो कि वह छात्र को मित्रवत् विश्वास में लेकर, उसे दुरुह, अपरिचित और अल्पज्ञान क्षेत्रों की सानंद यात्रा करा सके और उसे फिर अकेले आत्मविश्वासपूर्वक, नई राहों और नई मंजिलों की खोज में प्रेरित कर सकें, तो आचार्यजी से अधिक सफल अध्यापक हिंदी में ही नहीं, किसी भी संकाय में, भारतवर्ष में अधिक नहीं हुए होंगे। प्राध्यापक जानता है और मानता है जो उसके सामने बैठा हुआ है, वह ज्ञान, अनुभव, वय, सामर्थ्य की दृष्टि से उससे छोटा है, पर उसे सफलतापूर्वक धीरे धीरे अपने से बडा बनाना है। आचार्यजी यह कार्य शिक्षण कक्षा में तो प्रशंसनीय ढंग से करते ही थे, अपने लेखन कक्ष में भी अनुकरणीय ढंग से करते थे। वे शब्दों के चुनाव में और उदाहरणों के प्रस्तुतिकरण में बड़ा श्रम करते थे। स्वाभाविक रुप से इस कठिन कर्म में उन्हें कई भाषाओं ,कई शास्त्रों और कई प्रकार की अभिव्यक्तियों का सहारा लेना पडता था, जिसके कारण उनके भाषण और लेखन में स्फूर्ति भी आ जाती थी, पर एक सीमा के बाद वे उसे समेटने का प्रयास भी करते थे। प्रसारण और आकुंचन की इस निरंतर चलनेवाली प्रक्रिया से उनकी भाषाशैली में एक ऐसी नमनीयता आ जाती थी, जिसे कई अलंकारियों ने ''रमणीयता'' कहा।

डॉ. वर्मा जो थे प्राध्यापक भी थे, कृति साहित्यकार भी। आचार्यजी के मन में एक साथ आचार्य शुक्ल, श्यामसुंदर दास, धीरेंद्र वर्मा और रामकुमार वर्मा बनने की साध थी। इस चतुर्भुज को उन्होंने अनुकरणीय माना

और उनके विविध अंशों से कुछ कुछ ग्रहणकर स्वयं अपनी प्रतिभा का निर्माण किया। उनकी शैली पर भी चारों का प्रभाव रहा–शुक्लजी की शास्त्रीयता, श्यामसुंदरदास की प्रामाणिकता और आधुनिकता, धीरेंद्र वर्मा की वैज्ञानिकता एवं प्रौढता, तथा रामकुमार वर्मा की रोचकता, नाटकीयता और रसात्मकता के तत्वों से निर्मित हुई आचार्य देवेंद्रनाथ शर्मा की अध्ययन शैली एवं लेखन शैली।"[4]

कुशल निबंध लेखक : एक युग था जब ललित निबंधो को हिंदी में साहित्यिक विधा की मान्यता और प्रतिष्ठा प्राप्त नहीं हुई थी। अन्य भाषाओं में बंगला गुजराती और मलयालम–में इसका विकास अवश्य हो चला था। इस कमी की पूरा करने के लिए हिंदी के जिन विद्वानों ने ललित निबंध विधा को प्राण दिए उनमें मुख्य रुप से आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी और आचार्य देवेंद्रनाथ शर्मा उल्लेखनीय हैं। आचार्य शर्मा ने 1950 से 1980 तक निरंतर ललित निबंधों का प्रणयन किया खट्टा–मीठा (1950), आईना बोल उठा (1964) प्रणाम की प्रदर्शनी में (1980)उनके ललित निबंध के संग्रह हैं। इन संग्रहों में उन्होंने जीवन के विभिन्न क्षेत्रों से पातेर और घटनाएँ चुनीं तथा उनमें अपनी कल्पना से अनेक इंद्रधनुषी रंगभरे। भाषा का जो सौष्ठव उनके पास था। वह एक नए स्वर और नए परिवेश में इन ग्रंथों में उपस्थित हुआ। उनसे प्रभावित होकर फिर तो इस प्रकार के निबंधो की लेखन परंपरा विकसित हो गई। ''खट्टामीठा'' की प्रस्तावना में प्रो. श्रीकृष्ण प्रसाद ने कहा है कि– ''मुझे यह कहने में जरा भी हिचक नहीं कि ये निबंध हिंदी संसार के लिए एकदम नये हैं और सबसे महत्वपूर्ण बात तो यह है कि ये केवल नये ही नहीं है, बल्कि साहित्यिक दृष्टि से प्रौढ और पुष्ट भी है। शर्माजी की शैली इतनी जीवित और पैनी है कि किसी भी निबंध को आप एक ही साँस में शुरु से अंत तक पढे बिना नहीं रह सकते। ... सचमुच कुशल निबंध लेखक की यही खास खूबी है उसकी बात, उसका विषय नया नहीं होता, उसका दृष्टिकोण और उसके कहने का ढंग सदा नया रहता है। और, यह खूबी प्रो. शर्मा के निबंधों में पर्याप्त मात्रा में है...इसके लिए शर्माजी की सूझ तथा शैली दोनों पूर्ण समन्वित भाव से मिलकर अपना चमत्कार दिखलाती है।''[5] शर्माजी के निबंधों में जादु– जैसा प्रभाव है, सभ्य और नियत्रित व्यंग्य है, स्वरुप और निष्पक्ष आलोचना, है, विनोद है, सत्य की झलक है और विशेषकर वह गुण है जो निबंध कला का प्राण है। ... यह आनंद और यह जादू न निबंधों में पूरा है। भाषा...शर्माजी के भावों की चेरी है... सीधीसादी, चुस्त सुभती। सरलता और स्पष्टता तो उनकी भाषा के सहज स्वाभाविक गुण हैं।" भाषा के सम्यक और प्रभावशाली प्रयोग के उदाहरणों की तो शर्माजी के निबंधों में भरमार है। कहीं वे किसी शब्द के मूल अर्थ और प्रयोग की घटा पारदर्शित करते हैं, कहीं कुछ शब्दों के प्रयोग से वर्णन को भी वार्तालाप की सजीवता तथा प्रत्यक्षता प्रदान करते हैं। उदाः ''प्रणाम करना है तब तो कहीं से नहीं कर सके। हाँ, यदि प्रणाम कहना है तो कहीं से भी कह ले सकते हो। कहने और करने का अंतर समझा करो।"[6] आशुलिपिक के कारण यह सुविधा हो गयी कि कम समय में भी अधिक काम हो जाता है । ''कलियुग'' के उल गणेश को जितना साधुवाद दूँ, थोडा है।"[7]

वस्तुतः शर्माजी वस्तुस्थितियों की ही व्यंग्यात्मकता पकड़ते हैं और उसका प्रभावशाली वर्णन करते हैं, जिसके फलस्वरुप पाठक के समक्ष ऐसी ऊहापोह की स्थिति आ खड़ी होती है। जैसे– ''लोग चोरी को अपराध और चोरों को बुरा समझते हैं। मैं भी यही करता किंतु कभी–कभी चोरों के लिए मेरे मन में आदर भी उत्पन्न भी होता है। उनमें कई गुण ऐसे होते हैं जो मुझमें नहीं है। उनके जैसा साहस कहाँ है मुझमें ? मैं अपनी रोटी के लिए सिर को हथेली पर लिए चलते हैं।"[8] ये निबंध केवल हृदय में उठनेवाली भावतरंगो के ही मूर्तरुप नहीं है, बल्कि मस्तिष्क में मचनेवाली हलचलों के भी सजीव रुप हैं। यही कारण है कि साहित्यिक महत्व के साथ– साथ इन निबंधो का सामाजिक मूल्य भी है। समाज की हरेक गतिविधि का विवरण अंतरंगता के साथ मिलता है। उसकी अच्छाईयों, बुराईयों, विसंगतियों, कुरीतियों और विडंबनाओं का जिक्र कई निबंधो में सायास किया है। शर्माजी के निबंधों का उद्देश्य मनोरंजन करना नहीं है। कुछ निबंध दार्शनिकता से मंडित तो लगते हैं, लेकिन क्रमशः वह दर्शन पिघलता हुआ सहज और सरस हो जाता है। संक्षिप्तता शर्माजी के निबंधो की जान है। यदि उनके निबंधो के रचना– प्रक्रिया का विधिवत् अध्ययन किया जाए तो हम पायेंगे कि उनके निबंध सांस्कृतिक, साहित्यिक, सामाजिक, मनोवैज्ञानिक दृष्टि से अति गंभीर और प्रशंसनीय है।

विशिष्ट एकांकीकार : साहित्यकार देवेंद्रनाथ शर्मा का दूसरा रुप एकांकीकार का है। इनके तीन प्रकाशित

एकांकी संग्रह हैं–पारिजात मंजरी, बिखरी स्मृतियां, शाहजहाँ के आसूँ। पारिजात मंजरी में प्रेम, बाबर की ममता में पिता का ममत्व और शाहजहां के आसूँ में विवशता की पीड़ा का जिस प्रकार निर्माण होता गया है वह वस्तुतः विलक्षण है। शाहजहां का दर्द तो छा जाता है। बाबर का पुत्र प्रेम मां की ममता को झुठलाने लगता है। एकांकीकार ने चारित्रिक गुणों को उभारकर और महान बना दिया है। महाश्वेता, रत्नावली, जहानारा और सुजान के नारी व्यक्तित्व को गौरव प्रदान किया है। अतीत की घटनाओं में भी सामयिकता का बोध स्पष्ट परिलक्षित होता है। 1951 के बाद के एकांकियों में आचार्य शर्मा ने कथावस्तु का चयन भारतीय इतिहास के मध्ययुग से जिसे आमतौर पर मुगलकाल कहा जाता है किया। यह उनकी सर्जनात्मक सरणि में एक नया मोड़ है। सामाजिक एकांकियों में जहाँ समाज की बुराइयों या समस्याओं का प्राधान्य था वहाँ ऐतिहासिक एकांकियों में विभिन्न वृत्तों की मार्मिकता, उनके चयन का आधार प्रतीत होती है। इतिहास में विशेष रुचि होने के कारण उन्होंने बाबर, शेरशाह, अकबर, जहाँगीर, शाहजहाँ, मुहम्मदशाह आदि के जीवन के मार्मिक प्रसंगों को अपने एकांकियों का विषय बनाया। वे इतिहास की घटनाओं का इस ढंग से निरुपण करते हैं कि वर्तमान युग की समस्याएँ अपने आप प्रस्फुटित होने लगती है। इन एकांकियों में जीवन के स्थाई मूल्यों की तथा आधुनिक समस्याओं की व्यंजना स्पष्ट रुप से दिखाई पडती है। इन एकांकियों की पट–कथाएँ तो रागात्मक हैं, उनके संवाद भी कम दिलचस्प नहीं। ये जितने चुस्त हैं, उतने चुटीले भी। इतनी कुशलता से गूँथे गए हैं कि बिना उपदेश का बोझ बहन किए श्रोता पाठक का नवचेतन मन उन्हें सहर्ष ही ग्रहण कर लेता है यथा–अबुल फजल का अनुचर स्वमी से आराम करने का आग्रह करता है। ''काम करने से तबीयत ज्यादा खराब हो जाएगी।" अबुलफजल अजमल, काम करने से कहीं तबीयत खराब होती है और अबुलफजल के लिए सबसे बड़ा आराम है काम। बिना माम का आराम मुर्दा करता है, जिंदा नहीं। सारे एकांकी इस प्रकार के संजीदे कछोपकथनों से भरे पड़े हैं। इतिहास चेतना को रुपायित करनेवाले इन एकांकियों की एक और विशिष्टता है–वह है पात्रों की सीमित संख्या। एकांकी वही प्रभावी होता हैजिसमें पात्रों की बहुलता,उनकी भरमार न हो। शर्माजी के एकांकीयों की सफलता का श्रेय भाषा को है। भाषा की सहजता ही समस्त नाटकीय त्तवों की स्वाभाविकता का आधार है। ''पारिजात मंजरी'' की संस्कृतनिष्ठ भाषा उस युग को सजीव साकार कर देती है। ये संवाद – महाश्वेता (संकोच से) – नहीं आर्य। मैंने योंही, केवल उत्सुकता की विवृत्ति के लिए, इसके संबंध में जानना चाहा। इसकी मुझे आवश्यकता नहीं। ''पुंडरीक– सुंदरि!मैं तुम्हारी वाक्चातुरी से प्रभावित हूँ । ईश्वर ने तुम्हें रुप के अनुरुप वाणी भी दी है। तुम्हारी कमनयता मानव–लोक में अलभ्य है।"

''अकबर एकांकी का यह संवाद अकबर की महान संभावनाओ का उद्घोष करता है–" अकबर तुम बार–बार खनखाना का काम क्यों ले रहे हो! खादशाह खानखाना नहीं है, बादखशाह हैं जलालुद्दीन अकबर!... हुकूमत चलाने के लिए अठ्ठारह साल की उम्र बहुत काफी है। अब हमें किसी के साये की जरुरत नहीं। ''शर्माजी ऐसी सतर्कता से भाषा सामक्रियों का प्रयोग करते हैं कि न ते भाव क्लिष्ट हो पाते हैं और अभिव्यक्ति दुरुह। हिंदी संस्कृत का यह महान् मनीषी अपने मुगलकालीन पात्रों से ऐसी सलीस उर्दू बोलवा सकता है, यह देखकर सचमुच सुखद आश्चर्य होता है। शर्माजी की इस भाषा में एक सम्मोहन है यो पात्रों के देशकाल, वय अथवा परिस्थिति के बिलकुल अनुकूल लगती है।

निष्कर्ष : आचार्य देवेंद्रनाथ शर्मा हिंदी आचार्यो की उस पीढ़ी का स्मरण दिलाते हैं जिनके पास भारतीय अस्मिता को स्थापित करने की ललक थी। आचार्य शर्मा के भीतर कोई रचनाकार है जिसे हम उनके साहित्य में देखते हैं। पर आज जो कुछ भी हमारे सामने है उसे एक बहुमुखी प्रतिभा का संकेत मिलता है। ऐसा इसले संभव हुआ कि उन्होंने अध्ययन, शास्त्र, रचना को किसी मिलनबिंदु पर पहुँचाने का कृत्य किया। हिंदी भाषा और साहित्य के वे युगपूजित व्यक्तित्व थे, साहित्य एंव भाषा के विविध पक्षों पर उन्होंने जहाँ भी लेखनी चलाई है वह सबकुछ लिखा गया आज हिंदी के विद्यार्थियों के लिए आप्त वाक्य है। आचार्य शर्मा एक सफल अध्यापक थे, उनमें विषय की ज्ञान गरिमा तथा उनकी सफल अभिव्यक्ति को हम देख सकते हैं। उनका व्यक्तित्व महान था, वे व्यक्ति नहीं संस्था थे। आचार्यजी हिंदी की शोभा, शक्ति और संपदा थे। एक व्यक्ति, एक शिक्षक, एक कुशल भाषाविद्, एक सफल वक्ता, एक सिध्दहस्त लेखक के रुप में उन्होंने विपुल ख्याति एवं कीर्ति अर्जित की थी। विद्वत्ता एवं

प्रशासनिक योग्यता का सहभाव प्रायः कम ही देखने को मिलता है, शर्माजी में प्रशासनिक क्षमता भी थी। अपनी व्यवहार कुशलता, प्रशासकीय क्षमता, विनम्रता, विर्भीकता, दूरदर्शिता निर्णय की दक्षता, देश–विदेश की यात्राओं से उपार्जित अनुभवों की व्यापकता, उदारता और सहनशीलता के कारण उनके व्यक्तित्व व कृतित्व में अद्बितीय प्रभावकता थी। इस प्रकार आचार्य देवेन्द्रनाथ शर्मा साहित्यशास्त्री, शिक्षाशास्त्री, और भाषाविद थे।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1 *देवेंद्रनाथ शर्मा–भाषाविज्ञान की भूमिका–पृ 239*

2 *देवेंद्रनाथ शर्मा–पाश्चात्य काव्यशास्त्र–पृ 83*

3 *देवेंद्रनाथ शर्मा–पाश्चात्य काव्यशास्त्र–पृ 8*

4 *डॉ विद्यानिवास मिश्र–आचार्य देवेंद्रनाथ शर्मा–पृ226*

5 *डॉ विद्यानिवास शर्मा– आचार्य देवेंद्रनाथ शर्मा–पृ 312*

6 *आचार्य देवेंद्रनाथ शर्मा–खट्टा–मीठा पृ50*

7 *देवेंद्रनाथ शर्मा–आईना बोल उठा पृ दो शब्द*

8 *देवेंद्रनाथ शर्मा– प्रणाम की प्रदर्शनी पृ 19*

ठा. केसरी सिंह बारहठ : आजादी के पुरोधा

डॉ. दिनेश कुमार चारण
सह-आचार्य, राजकीय लोहिया महाविद्यालय, चूरू

डॉ. सुदर्शना बारैठ
मोदी शिक्षण संस्थान, लक्ष्मणगढ़

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

ठाकुर केसरी सिंह बारहठ ने उस समय अंग्रेजों के खिलाफ हुंकार भरी, जब भारतवर्ष में एक निराशा का माहौल व्याप्त था। भारत के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के बाद अंग्रेजी दमन के कारण क्रांतिकारी समाप्त प्रायः हो गए थे। इस कालखण्ड में हिम्मत भी समाप्त हो चुकी थी, ऐसे में ठा. केसरी सिंह बारहठ ने राजसी ठाठ-बाठ छोड़कर लोगों को आजादी के लिए जाग्रत किया। रासबिहारी बोस के कथनानुसार-दुनिया में ऐसे अनेक उदाहरण तो मिल जाएँगे कि किसी व्यक्ति ने अपने पुत्रों को देश की रक्षा व आजादी के लिए प्रस्तुत कर दिया हो परन्तु अपने जामाता को भी स्वतंत्रता युद्ध के लिए प्रस्तुत करने का एकमात्र उदाहरण ठा. केसरी सिंह बारहठ का ही है।

संकेताक्षर : *बारहठ, महामहोपाध्याय, मैजिनी, वायसराय, सोरठे, राजपूत हितकारिणी सभा, आमरण अनशन, सत्याग्रह।*

स्वतंत्रता संग्राम के प्रथम युद्ध (1857 का विद्रोह) में प्रमुख देशभक्त व नेता वीरगति को प्राप्त हो गए थे। बहुतों को उम्रकैद, कालापानी, फाँसी व तोप के गोलों से उड़ा दिया गया। बहुत से क्रांतिकारी भूमिगत हो गए तो अनेक को देश त्यागना पड़ा। इनमें से कुछ बीजतत्त्व बंगाल व महाराष्ट्र में अवश्य बच गए थे। ऐसा भी नहीं था कि ईस्ट इंडिया कम्पनी जीत गई थी। इसका प्रमाण यह है कि सन् 1858 में ब्रिटिश सरकार ने कम्पनी से राजनीतिक शक्ति छीन ली थी। ब्रिटिश सरकार ने भी सत्ता ग्रहण करके भारतीयों पर अपनी पकड़ बनाने के सभी उपाय प्रारम्भ कर दिए थे और सफलता भी मिल रही थी। यह समय भारत के स्वतन्त्रता हिमायतियों के लिए अत्यन्त निराशाजनक था।

इसी सन्नाटे में राजस्थान के भीलवाड़ा जिले के शाहपुरा कस्बे में चारण जाति के ठा. कृष्ण सिंह बारहठ की पत्नि बख्तावर कँवर की कोख से एक बच्चे का जन्म हुआ। 21 नवम्बर 1872 को जन्मे इस बच्चे का नाम केसरी सिंह रखा गया। दुर्भाग्य से एक माह बाद ही माता बख्तावर कँवर का निधन हो गया। इसके बाद बालक का पालन-पोषण उसकी दादीसा श्रृंगार कँवर ने किया। दादीसा की कहानियों का बालक केसरी पर अत्यधिक प्रभाव पड़ा। पिता ठाकुर कृष्ण सिंह जी ने दूसरा विवाह कर लिया फलस्वरूप उनके दो पुत्र किशोर सिंह व जोरावर सिंह भी हुए। बाद में किशोर सिंह पंजाब की पटियाला रियासत में ''स्टेट स्टोरियन'' हो गए और पटियाला दरबार की शोभा बढ़ाई। जोरावर सिंह स्वतंत्रता सेनानी हुए। ठाकुर साहब विद्यानुरागी थे, अतः उन्होने अपने पुत्रों की शिक्षा का समुचित प्रबन्ध किया। बालक केसरी को आठ वर्ष की आयु में उदयपुर की चारण पाठशाला में भेज दिया गया। ज्ञात रहे कि महामहोपाध्याय कविराजा श्यामलदास जी ठाकुर कृष्ण सिंह के मामा लगते थे, जो उदयपुर के महाराणा सज्जन सिंह के दरबार में सुशोभित थे। अंग्रेज भी कविराजा का अत्यधिक सम्मान करते थे। आपके आग्रह पर ही ए.जी.जी. वाल्टर ने राजपूत हितकारिणी सभा का गठन किया था, जिसमें चारणों की सामाजिक बुराइयों को भी रेखांकित किया गया था। राजपूताना के प्रसिद्ध इतिहास ग्रन्थ ''वीरविनोद'' के रचयिता श्यामलदास जी ही थे, जिन्हें मेवाड़ ने कविराजा व महामहोपाध्याय तथा अंग्रेजों ने 'केसर ए हिन्द' की उपाधि प्रदान की थी।

चारण पाठशाला उदयपुर में केसरी सिंह ने 10 वर्ष तक अध्ययन किया। पाठशाला में आपने काशी के विद्वान पं. गोपीनाथ शास्त्री के सान्निध्य में संस्कृत, धर्म, दर्शन व अध्यात्म की गहन शिक्षा प्राप्त की। इस दौरान उन्होंने

डिंगल, प्राकृत व पाली का ज्ञान भी प्राप्त कर लिया था। 1883 में स्वामी दयानन्द सरस्वती का चारण पाठशाला में आगमन हुआ; आपने उद्‌बोधन में चारण जाति, आजादी एवं वैदिक सभ्यता के अर्थ बताए...! स्वामीजी का सम्बन्ध गुजरात से होने के कारण वह चारण जाति से बेहतर परिचित थे। बालक केसरी सिंह पर स्वामीजी के भाषण व व्यक्तित्त्व का बेहद प्रभाव पड़ा।

सन् 1890 में आपका अध्ययन पूरा हो गया और इस दौरान मेवाड़ में आप एक अध्येता के रूप में प्रसिद्ध हो चुके थे। आपकी विद्वता से प्रभावित होकर मेवाड़ महाराणा ने दरबार में पहले से पदस्थापित ठा. कृष्ण सिंह जी के साथ आपको भी नियुक्त कर लिया। वैसे भी कविराजा श्यामलदास सेवानिवृत्ति की और बढ़ रहे थे।

सन् 1891 में केसरी सिंह जी ने गृहस्थ आश्रम में प्रवेश किया। उनका विवाह कोटा रियासत में स्थित कोटड़ी के ठिकानेदार कविराजा देवीदान जी की बहन माणिक कुँवर के साथ हुआ। इन्हीं माणिक कुँवर की कोख से 25 मई, 1893 को देश के महान् सपूत क्रांतिवीर कुँवर प्रताप सिंह का जन्म हुआ था। बाद में देश के स्वतन्त्रता संग्राम में जब ठा. केसरी सिंह बारहठ अपने अनुज जोरावर सिंह के साथ कूद पड़े तो कुँवर प्रताप उनसे भी आगे थे। केसरी सिंह जी द्वारा अपने पुत्र का नाम प्रताप रखना कोई महज संयोग नहीं था अपितु यह उस महान् योद्धा व स्वतंत्रता पुजारी का स्मरण था, जिसका नाम सुनते ही वीर पुरूष करने–मरने को आतुर हो जाते हैं और दुनिया नतमस्तक हो जाती है। केसरी सिंह जी चाहते थे उनका पुत्र भी मातृभूमि के लाड़ले महाराणा प्रताप जैसा ही हो! हुआ भी वैसा ही। कुँवर प्रताप सिंह बारहठ की रग–रग में भी महाराणा प्रताप जैसा स्वातंत्रय प्रेम, साहस, संघर्ष, त्याग और बलिदान भाव कूट–कूट कर भरा था। इतिहास साक्षी है कि जब जरूरत पड़ी तो कुँवर प्रताप सिंह ने भी मात्र 25 वर्ष की आयु में भारत भूमि के लिए दर्द सहते हुए परन्तु हंसते–हंसते अपने प्राण त्याग दिए थे।

ठाकुर केसरी सिंह जी को शाही नौकरी मिल गई थी परन्तु आपके संस्कार, शिक्षण–प्रशिक्षण तथा पश्चिमी देश इटली के महानायक मैजिनी के विचारों का प्रभाव ऐसा था कि गुलामी के कारण आपकी आत्मा बेचैन थी। ज्ञात रहे 19वीं सदी के प्रारम्भिक दशकों में यूरोपीय राष्ट्र इटली आठ रियासतों में खण्डित एक गुलाम देश था। 1830 के बाद इटली के एकीकरण के प्रयासों को मैजिनी का नेतृत्व मिला। मैजिनी का मत था कि यदि समाज में क्रांति लानी है तो नेतृत्व नवयुवकों के हाथ में दो, इनके हृदय में असीम शक्ति होती है..... नवयुवकों में प्राचीन गौरव और राष्ट्रप्रेम की भावना भरकर उन्हें स्वतंत्रता के लिए प्रेरित व संगठित करना चाहिए। इसी प्रकार के विचार केसरी सिंह जी के थे।

केसरी सिंह जी द्वारा किए गए प्रत्येक कार्य में देशभक्ति का पुट रहता था। श्यामजी कृष्ण वर्मा की मेवाड़ नियुक्ति, इसी बात का प्रमाण है। उदयुपर में महाराणा फतेह सिंह को एक ऐसे अधिकारी की आवश्यकता थी, जो अंग्रेजी में दक्ष एवं कूटनीतिज्ञ हो ताकि अंग्रेजों से संवाद व राजनीति के दाव–पेचों में मेवाड़ का पक्ष मजबूत रहे। इसका चयन करने के लिए ठा. कृष्ण सिंह बारहठ व उनके पुत्र केसरी सिंह जी को नियुक्त किया गया। इस पद पर पिता–पुत्र की खोज श्यामजी कृष्ण वर्मा पर आकर समाप्त हुई। श्यामजी में वो सभी गुण तो थे ही जो महाराणा द्वारा वांछित थे परन्तु साथ में वे देशभक्त व क्रांतिकारी विचारधारा के दृढ़ व्यक्ति थे। इस नियुक्ति से अंग्रेजों को आपत्ति होनी ही थी। अंग्रेज जानते थे कि यह कार्य बारहठ परिवार का है। परिणामस्वरूप महाराणा पर दबाव बनाया कि ठा. कृष्णसिंह जी बारहठ को सेवामुक्त किया जाए। मारवाड़ को जब यह भनक लगी तो बारहठ जी को तुरन्त जोधपुर आमन्त्रित करके दरबार की शोभा बढ़ाने का निवेदन किया। अनुकूल अवसर मिलते ही केसरी सिंह जी भी कोटा दरबार की सेवा में चले गए।

केसरी सिंह जी के समकालीन एवं निकट सहयोगी डॉ. मथुरा लाल शर्मा लिखते हैं कि ठाकुर केसरी सिंह बारहठ बड़े देशभक्त क्रांतिकारी, विद्वान, कवि और कुशल राजनीतिज्ञ थे। कोटा रियासत के शाहपुरा के राजाधिराज उनके पिताजी ठा. कृष्णसिंह जी का बड़ा सम्मान करते थे। जब शाहपुरा और उदयपुर में तनाव हुआ तो राजाधिराज ने दरबार के सबसे योग्य एवं विश्वस्त कृष्णसिंह जी को उदयपुर भेजा। फलस्वरूप दोनों राज्यों में पुनः मधुर सम्बन्ध स्थापित हो गए। उदयपुर के महाराणा सज्जन सिंह ठाकुर कृष्णसिंह जी से इतने प्रभावित हुए कि उन्हें अपने दरबार में ही रख लिया। परन्तु बदली हुई परिस्थिति में ठा. कृष्णसिंह जी जोधपुर तो केसरी सिंह जी कोटा चले आए।

जगदीश प्रसाद माथुर के मतानुसार कोटा आने के बाद केसरी सिंह जी 14 वर्षों तक जीवन की उत्तरोत्तर साधना में लीन रहे। यहीं आपने गुजराती, मराठी और बंगाली आदि भाषाओं का ज्ञान प्राप्त किया तथा एक सार्वजनिक पुस्तकालय की स्थापना की। कोटा में ही आपके हृदय में देशप्रेम की अखण्ड ज्योति प्रस्फुटित हुई। सन् 1902 में कोटा महाराव ने आपको एथनोग्राफी प्रमुख के पद पर नियुक्त किया। इस पद पर केसरी सिंह जी ने पाँच वर्ष तक विभिन्न जातियों, समूहों और पेशेवरों आदि के सम्बन्ध में सूचनाएँ एकत्रित की। इसी दौरान केसरी सिंह जी ने अनेक सामाजिक सुधार एवं राजनीतिक जागरण के कार्य किए। वे हिन्दू धर्म के अनुयायी ही नही प्रशंसक भी थे। ठाकुर केसरी सिंह बारहठ का विश्वास था कि हिन्दू धर्म एक मानवतावादी धर्म है। काशी के स्वामी ज्ञानानन्द उनके धार्मिक गुरू थे। ज्ञानानन्द भारतीय संस्कृति व परम्पराओं के प्रबल समर्थक थे।

सन् 1903 की घटना ने ठा. केसरी सिंह बारहठ का नाम इतिहास में स्वर्ण अक्षरों में लिख दिया। 1903 में लार्ड कर्जन भारत का वायसराय था। उसने इंग्लैण्ड के किंग एडवर्ड सप्तम के भारत आगमन पर दिल्ली में अभिनन्दन समारोह का आयोजन रखा, जिसमें देश के सभी राजे-रजवाड़ों को आमन्त्रित किया गया। मेवाड़ के शासक दिल्ली के सम्मुख नत-मस्तक होना अपने पूर्वजों की शान के खिलाफ समझते थे, अतः महाराणा फतेहसिंह ने निमन्त्रण स्वीकार नहीं किया परन्तु वे लार्ड कर्जन के दबाव में आ गए। उस समय राजपूताना में जिसने इस बारे में जाना, उसके मुँह से लम्बी आह निकली..!

महाराणा कुम्भा, सांगा और महाराणा प्रताप के वंशज का दिल्ली दरबार में जाना ; राजस्थान के स्वतंत्रता प्रेमियों के लिए घोर अपमानजनक स्थिति थी। ठाकुर केसरी सिंह उस समय जयपुर थे। राव गोपाल सिंह खरवा, ठाकुर कर्ण सिंह, ठाकुर भूर सिंह व राव उमराव सिंह आदि सहित अनेक ठाकुर-सामन्त जयपुर स्थित मलसीसर हवेली में बारहठ जी से इस विषय पर मन्त्रणा कर रहे थे। खरवा जी ने मत रखा कि जब भी राजपूताना पर कोई विपत्ति आई है तो चारणों ने ही पथ-प्रदर्शन किया है, अतः केसरी सिंह जी ही इसका निवारण करेंगे। सुर्जन सिंह शेखावत लिखते हैं कि बारहठ जी ने अंग्रेजों के कोप की रंज मात्र भी परवाह न करते हुए उसी समय 13 सोरठों की रचना की एवं उस सभा में सुनाए ; जिसे सुनकर सब आश्वस्त थे कि यदि ये सोरठे महाराणा तक पहुँच गए तो वे दिल्ली दरबार में कदापि नहीं जाएँगे। ये 13 सोरठे निम्न प्रकार से हैं, जिन्हें श्री ओंकार सिंह लखावत व डॉ. मोहन लाल गुप्ता की रचनाओं से लिया गया है –

पग पग भम्या पहाड़, धरा छोड़ राख्यो धरम।
म्हाराणा 'मेवाड़', हिरदे बसिया हिंद रै ।।1।।

अर्थात् मेवाड़ के महाराणा सच्चाई की खातिर हमेशा सिर पर विपदाओं के पहाड़ ढ़ोते रहे, मानवोचित धर्म की खातिर हमेशा नंगे पांव पहाड़ों पर भटकते रहे। कंटीले, ऊबड़-खाबड़ पहाड़ों पर। जन्मभूमि के मोह को त्याग कर भी उन्होंने सच्चाई और धर्म के मार्ग का परित्याग नहीं किया। इसी कारण हिन्दुस्तान के लिये मेवाड़ शब्द प्यारा है, महाराणा शब्द प्यारा है। ये दोनों शब्द अपने सम्पूर्ण गौरव के साथ हिन्दुस्तान के छदय मे वास कर रहे हैं।

घण घलिया घमसांण, राणा सदा रहिया निडर।
पेखंतां फुरमाण, हलचल किम फतमल हुवै।।2।।

अर्थात् इस मेवाड़ की भूमि पर हमेशा भंयकर युद्ध होते रहे, पर मेवाड़ के महाराणा हमेशा ही निडर रहे। मेवाड़ के महाराणाओं को युद्ध का भय कैसा ? आज भी यह वही मेवाड़ है, और तुम उसी के महाराणा हो, फिर अंग्रेजों के इस नगण्य फरमान को देखते ही हे फतेहसिंह, तुम्हारे हृदय में यह हलचल कैसे उत्पन्न हो गई ? कैसे संभव हो गया यह ?

गिरद गजां घमसांण, नहचै धर माई नहीं।
मावै किम महारांण, गज सौ रै घेरे गिरद ।।3।।

अर्थात् युद्ध भूमि में मेवाड़ के महाराणाओं के हाथी-घोड़ों से जो रंजी आसमान में उड़ती थी, वह तो सारी पृथ्वी में भी नहीं समा पाती थी। आज उसी मेवाड़ का महाराणा अंग्रेजों के हुक्म का कायल हो गया। विदेशी सत्ता का सम्मान करने के लिये वह दिल्ली जायेगा ? सौ गज के घेरे में अपने को समेटने की चेष्टा करेगा ?

ओरां ने आसांण, हाकां हरवल हालणे।
किम हालै कुलरांण, हरवल साहां हांकिया ।।4।।

अर्थात् दूसरे राजाओं के लिये यह बात सहज हो सकती है कि वे शाही फौज की हरावल करते हुए आगे-आगे चलें पर मेवाड़ के लिये भी आज यह बात कैसे वैसी ही आसान हो गई, जिसके पूर्वजों ने अपनी फौज के आगे

शाही फौज को हमेशा ही हांका! उस मेवाड़ का महाराणा आज अंग्रेजों के फरमान का गुलाम कैसे हो गया ?

नरियंद सह नजरांण, झुक करसी सरसी जिकां।
पसरेलो किम पांण, पांण थका थारो फता ।।5।।

अर्थात् देश के सभी अन्य राजा झुक-झुक कर सलाम करते हुए अंग्रेज बहादुर और दिल्ली की विदेशी सल्तनत को हाथ आगे बढ़ाकर नजराना पेश करेंगे, उनके लिये यह सब कुछ भी मुश्किल नहीं है। लेकिन मेवाड़ के महाराणा फतेहसिंह! तुम्हारा हाथ नजराने के लिये कैसे आगे बढ़ेगा ? क्या मेवाड़ के महाराणा का पानी उतर गया है ?

सकल चढ़ावै सीस, दान धरम जिण रो दिया।
सो खिताब बगसीस, लवण किम ललचावसी ।।6।।

अर्थात् मेवाड़ सारे हिन्दुस्तान की प्रतिष्ठा है। सभी ने आदर के साथ इसे अपना सिर झुकाया है। उसके दिये हुए दान-धर्म को अपनी पलकों पर धारण किया है! उसी मेवाड़ का महाराणा आज फिरंगियों के अकिंचन खिताब की याचना के लिये दिल्ली जायेगा? कैसे संभव होगा यह सब ?

सिर झुकिया सहसाह, सींहासण जिण सांमने।
रफ़णो पंगत राह, फाबै किम तोनै फता ।।7।।

अर्थात् यह मेवाड़ का सिंहासन था जिनके सामने बड़े-बड़े बादशाहों का दर्प खंडित हो गया था। जिन्होंने मेवाड़ के सिंहासन को अपना सिर झुकाया था, आज उसी मेवाड़ का महाराणा फिरंगियों के सिंहासन को मस्तक नवाने दिल्ली जायेगा ? दस्तक देने वालों के पांत में खड़ा बाट निहारेगा ? मेवाड़ के महाराणा फतेहसिंह यह तुम्हें कैसे फबेगा ?

देखै लो हिंदवाण, जिन सूरज दिस नेह सूं।
पण सारा परमांण, निरख निसासां नांखसी ।।8।।

अर्थात् सारे हिन्दुस्तान ने मेवाड़ को अपना सूर्य माना है। पर मेवाड़ का वही सूर्य जब अंग्रेजों के खिताब द्वारा केवल तारे के रूप में ही शेष रह जायेगा। तब देश की आशा पर तुषारापात हो जायेगा। हिन्दुस्तान के वासी अपनी आशा के सूर्य को तारे में परिणित होते देख सर्द निसासें भरेंगे। महाराणा तुम्हारी बुद्धि सठिया तो नहीं गई है ? अपनी नहीं तो मेवाड़ की तो लाज रखो !

देखै अंजस दीह, मुक्कलो मन ही मनां।
दंभी गढ दिल्लीह, सीस नमंतां सीसवद ।।9।।

अर्थात् मेवाड़ का महाराणा जब सिर झुका कर दिल्ली की फिरंगी बादशाह की बंदगी करेगा, विदेशी सल्तनत को माथा टेककर उसकी अधीनता स्वीकार करेगा, तब दिल्ली का अभिमानी किला कितना गौरवान्वित होगा ? वह दिन भी उसके लिये कितने गर्व का होगा जब अपने सामने महाराणा को सिर नवाते पायेगा। तब किले का एक-एक पत्थर, मन ही मन मुस्करा उठेगा, बेबस महाराणा की लाचारी पर ! मेवाड़ के परंपरागत गौरव पर ! वह व्यंग्य भरी मुस्कुराहट तुम्हें कैसे सहन होगी ?

अन्तबेर आखीह, पातल जो बातां पहलं
रांणा सह राखीह, जिण री साखी सिरजटा ।।10।।

अर्थात् राणा प्रतापसिंह ने मरते समय अंतिम बार जो अभिलाषाएँ प्रगट की थी उनको सभी ने आज तक निभाया है और तुम्हारे सिर की यह जटा भी उन बातों की साक्षी दे रही है ! फिर तुम कैसे भरमा गये ? अपनी जटा को देखो और मेवाड़ के सम्मान को पहिचानो।

कठण जमाणो कोल, बांधै नर हीमत बिनां।
बीरां हन्दो बोल, पातल सांगै पखियौ ।।11।।

अर्थात् वचनों को निभाना बहुत ही कठिन है। फिर भी कुछ मनुष्य हिम्मत न होने पर भी अपने वचनों को गांठ बांध कर उनका पालन करने की चेष्टा करते हैं। फिर प्रताप और सांगा तो अतुलनीय वीर थे और उन्होंने अपने वचनों को निभाया था। उनके वंशज होकर, आज तुम्हें यह बात याद दिलाने की आवश्यकता कैसे पैदा हो गई ?

अब लग सारां आस, रांण रीत कुल राखसी।
रहो साहि सुखरास, अकलिंग प्रभु आपरै। ।।12।।

अर्थात् हम सब को तो अब यही आशा है कि आप मेवाड़ के महाराणा हैं, इसलिये मेवाड़ का वंश गौरव तो निश्चय ही अखंडित बना रहेगा। मेवाड़ के इष्टदेव एकलिंग तुम्हारे सहाय हैं। अनंत सुख-राशि का यह देव तुम्हें हमेशा सुख और सम्मान प्रदान करता रहेगा।

मांन मोद सीसोद, राजनीत बल रखणो।
गवरमिंट री गोद, फफ्र मीठ दीठ फता ।।13।।

अर्थात् हे सिसोदिया वंश के राणा फतेहसिंह, अपने देश की मर्यादा और उसके अभिमान को अपने बलबूते पर कायम रखो ! असहाय की तरह, फिरंगी की गोदी में रखे हुए मीठे फलों को ताकने से कुछ भी परिणाम नहीं

होगा। यह केवल भ्रम मात्र है ! अंग्रेजी साम्राज्य की गोद में धरे हुए मीठे फलों की तरफ ताकना छोड़ो और अपने कर्त्तव्य को पहिचानो ! यह मेवाड़ है, और तुम उसी के महाराणा हो।

इसके उपरान्त जयपुर में यह तय हुआ कि सोरठे पहुँचाने का कार्य राव गोपाल सिंह करेंगे। परन्तु राव जी के उदयपुर पहुँचने से पूर्व ही महाराणा की रेल दिल्ली के लिए रवाना हो चुकी थी। गोपाल सिंह हार मानने वाले नहीं थे और अजमेर से पहले भीलवाड़ा के पास 'सरेरी' के स्टेशन पर ही ठाकुर केसरी सिंह बारहठ रचित 13 सोरठे महाराणा तक पहुँचा दिए। महाराणा; जिनके कि मन-मस्तिष्क में पहले ही द्वन्द चल रहा था ! ऐसी मनोस्थितिः में बारहठ जी के 13 सोरठों ने अचूक प्रहार किया। एक चारण कवि ने महाराणा के स्वाभिमान को ललकारा और महाराणा जैसे तो निद्रा से जाग उठे। महाराणा प्रताप के वंशज ने स्वयं को पहचाना और हिम्मत से कहा, काश यह पत्र मुझे उदयपुर में ही मिल जाता। महाराणा दिल्ली के रेलवे स्टेशन पर उतरे तो सही परन्तु दिल्ली दरबार में उनका आसन खाली रहा।

यह असम्भव कार्य जिन 13 सोरठो ने किया वो इतिहास में 'चेतावनी रा चूंगटिया' के नाम से प्रसिद्ध हो गए। ठा. केसरी सिंह जी बारहठ के ये सोरठे भारत के स्वतन्त्रता प्रेमियों के आत्मा की पुकार थी। फलतः महाराणा फतेह सिंह के जाग्रत स्वाभिमान ने अंग्रेजी दम्भ पर गहरी चोट की। अगले दिन अखबारों के मुख्य पृष्ठ पर दिल्ली दरबार में महाराणा के खाली आसन के चित्र छपे और खूब लिखा गया। लार्ड कर्जन महाराणा के खिलाफ कुछ न कर सका क्योंकि जोधपुर के सर प्रताप ने वायसराय के सचिव लारेन्स को चेता दिया था कि ऐसी किसी भी कार्यवाही की प्रतिक्रिया अंग्रेजों के प्रतिकूल भी हो सकती है। सर प्रताप ने बता दिया था कि दिल्ली में एकत्रित समस्त राजे-रजवाड़ों की सहानुभूति महाराणा के साथ है।

सभी स्वतन्त्रता प्रेमियों व क्रांतिकारियों के लिए यह एक सुखद अनुभूति थी। केसरी सिंह जी को भी सन्तोष था। इसके बाद आप कोटा आकर राजनैतिक जाग्रति में जुट गए। आप शिक्षा के बड़े हिमायती थे, अतः उन्होंने चारण व राजपूत लड़कों के लिए छात्रावास खोलने प्रारम्भ किए। केसरी सिंह जी इस बात को समझते थे कि गाँव के लड़कों को यदि शहर में रहने की सुविधा नहीं मिली तो वे स्कूलों का फायदा नहीं उठा पाएँगे और निरक्षर रह जाएँगे। छात्रावास खोलने के पीछे उनका एक उद्देश्य और भी था- तरूणों और नवयुवकों में क्रान्तिकारी विचारों का बीजारोपण करना तथा देश को आजाद कराना। उनका स्पष्ट मत था कि अंग्रेजों को शक्ति के भय से ही निकाला जा सकता है और यह कार्य क्षत्रिय जातियाँ ही कर सकती हैं।

अंग्रेजों द्वारा अजमेर में मेयो कॉलेज की स्थापना 1875 में हो चुकी की थी, यह वास्तव में एक स्कूल था, जहाँ भारतीय राजकुमारों को पाश्चात्य सभ्यता के अनुसार शिक्षा दी जाती थी। मेयो कॉलेज की शिक्षा में राजकुमारों को यह सिखाया जाता था कि दुनिया में अंग्रेज श्रेष्ठ है और भारतीय बहुत निम्न है। केसरी सिंह जी को यह बहुत अखरता था, अतः 1904 में उन्होंने अजमेर में ही क्षत्रिय कॉलेज खोलने की योजना बनाई। योजना के अनुसार क्षत्रिय कॉलेज में क्षत्रियों के सामान्य परिवारों के लड़कों को भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति की पद्धति से शिक्षित कर देशभक्त तैयार करना था। परन्तु राजपूताना के डरपोक शासकों के सहयोग के अभाव में केसरी सिंह जी इस योजना को कार्यान्वित नहीं कर सके।

इसके बाद केसरी सिंह जी सामाजिक सुधारों की ओर उन्मुख हुए। उदयपुर में कविराजा श्यामलदास जी के प्रयासों से एक अंग्रेज अधिकारी वाल्टर द्वारा राजपूत हितकारिणी सभा का गठन किया जा चुका था। लगभग सभी राजपूत राज्यों में इसकी शाखाएँ खुल चुकी थी। प्रत्येक वर्ष इस सभा का अधिवेशन होता था परन्तु सुधार कहीं भी दृष्टिगत नहीं हो रहे थे। वाल्टर प्रत्येक वर्ष इस सभा का कार्यकाल एक्सटेंसन करवा लेता था और मुफ्त में वेतन प्राप्त कर रहा था। केसरी सिंह जी इसको समझ गए थे, अतः सब से पहले उन्होंने सभा में ही सुधार के प्रयास किए। उन्होंने अंग्रेज अधिकारियों को लिखा कि सभा का अध्यक्ष अंग्रेज (वाल्टर) न होकर एक भारतीय होना चाहिए। एक अध्यक्ष का कार्यकाल एक वर्ष का ही हो। केसरी सिंह जी ने 1905 के बाद अपनी सक्रियता बढ़ा दी थी। वे राजपूत राजाओं और ठाकुरों को निज राज्य की सामाजिक बुराईयों के बारे में पत्रों द्वारा चेताते रहते थे। केसरी सिंह जी बुराइयों पर लगातार प्रहार कर रहे थे। राजपूत हितकारिणी सभा के माध्यम से केसरी सिंह जी ने राजपूतों में टीका, दहेज.....व चारणों में भी इन बुराइयों तथा त्यागप्रथा के खिलाफ बोलना प्रारम्भ किया। उन्होंने 1913 तक राजपूत रियासतों को जगाने का भरपूर प्रयास किया।

ठा. केसरी सिंह जी बारहठ शिक्षा, मातृभाषा व हिन्दी के पक्षधर थे। स्कूली शिक्षा में हिन्दी को प्रमुख भाषा बनाना चाहते थे। तकनीक के विषय पर वे जापान को अंग्रेजों से ऊपर मानते थे और मेधावी छात्रों को प्रशिक्षण हेतु जापान भेजने की योजना बनाने लगे। 1911 में बारहठ जी ने क्षात्र परिषद योजना के तहत स्कूल खोलने के प्रयासों में तेजी लाते हुए राजाओं, जागीरदारों व सामन्तों को पत्र लिखने प्रारम्भ किए। इन स्कूलों से देशभक्त तैयार होने थे, जब बंगाल के क्रांतिकारियों को केसरी सिंह जी की इन योजनाओं की जानकारी मिली तो उन्होंने उलाहना दिया कि क्षात्र परिषद योजना को समूचे देश में लागू किया जाना चाहिए। बारहठ जी सतर्कता से अपनी इस योजना के साथ आगे बढ़ रहे थे। इस बाबत पम्पलेट जोधपुर में छपवाए गए। फलस्वरूप अंग्रेजों ने जोधपुर को आँखें दिखाई तो जोधपुर प्रधानमंत्री सर प्रताप ने अपने कदम पीछे खींच लिए।

ठा. केसरी सिंह जो बारहठ की गतिविधियों पर अंग्रेजी जांच एजेंसियाँ सतर्क थी। यूँ तो 1903 के 'चेतावनी रा चूंगटिया' से ही बारहठ जी अंग्रेजी रडार पर थे। परन्तु उनका व्यक्तित्व इतना बड़ा था कि उनके खिलाफ सीधी कार्यवाही की हिम्मत किसी राजा व अंग्रेज अधिकारियों में नहीं थी। बारहठ जी भी सावधान थे। उनके सम्पर्क प्रसिद्ध क्रांतिकारी व भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम में सशस्त्र क्रांति के जनक रासबिहारी बोस से हो चुके थे। इनके अतिरिक्त सचिन्द्र सान्याल, अमीरचन्द व अर्जुनलाल सेठी के भी आप अति निकट थे। केसरी सिंह बारहठ ने अपने पुत्र कु. प्रताप सिंह व जामाता ईश्वर दान आशिया को अर्जुनलाल सेठी के स्कूल में पढ़ने के लिए भेज दिया था, जहाँ देशभक्त नवयुवकों को गुप-चुप तरीके से हथियारों को प्रशिक्षण दिया जाता था। उनके भाई जोरावर सिंह जी क्रांतिकारी बन चुके थे। एक अवसर पर रासबिहारी बोस ने अमीरचन्द से कहा था- दुनिया में ऐसे उदाहरण तो मिल जाएँगे कि किसी व्यक्ति ने अपने पुत्रों को देश की रक्षा व आजादी के लिए प्रस्तुत कर दिया हो परन्तु अपने जामाता को भी स्वतंत्रता युद्ध के लिए प्रस्तुत करने का एकमात्र उदाहरण ठा. केसरी सिंह बारहठ का ही है।

अंग्रेज लगातार साक्ष्य ढूँढ़ने में लगे हुए थे ताकि बारहठ जी या उनके करीबियों पर कानूनी शिकंजा कसा जा सके। अन्ततः एक सांकेतिक भाषा के कमजोर साक्ष्य के पत्र के आधार पर साधु प्यारेलाल की हत्या के आरोप में ठा. केसरी सिंह बारहठ को 1914 में 31 मार्च को शाहपुरा में बन्दी बना लिया गया। उनकी जागीर, सम्पति, हवेली, आभूषण, वस्त्र एवं बर्तन आदि छिन लिए गए। जब परिवार बेघर किया गया तो उनकी पत्नी माणिकजी ने केवल एक पुस्तक का मोह किया जो उसके ससुर साहब ठा. कृष्ण सिंह जी की हस्तलिखित पुस्तक ''राजपूताना का अपूर्व इतिहास'' थी। केसरी सिंह जी पर कोटा में मुकदमा चलाया गया और 20 वर्ष की कारावास की सजा दी गई। पहले उन्हें कोटा में रखना तय हुआ परन्तु उनके रुतबे को देखते हुए अंग्रेजों ने उन्हें बिहार की हजारीबाग जेल में स्थानान्तरित कर दिया।

हजारीबाग जेल में आपने अन्न त्याग दिया, जेल प्रशासन ने विकल्प के रूप में दूध और फल देने से इन्कार कर दिया। केसरी सिंह जी का आमरण अनशन 18 दिन तक चला और अंग्रेजों को झुकना पड़ा। उन्नीसवें दिन आपको थोड़ा सा दूध दिया गया..... ..... धीरे-धीरे उन्हें पर्याप्त दूध और फल दिया जाने लगा। ज्ञात रहे कि दुनिया को आमरण अनशन और सत्याग्रह, चारण जाति की ही देन है। बाद में महात्मा गांधी ने इन्हें राजनीतिक हथियार के रूप में इस्तेमाल किया। जेल में केसरी सिंह जी को अनाज साफ करने का कार्य मिला। वहाँ आप अनाज के दानों की सहायता से कैदियों को अक्षर ज्ञान करवाने लगे। भारत का नक्शा बनाकर दिखाते और समझाते कि ये देश अपना है, इसे आजाद करवाना है। बनारस षड़यंत्र के आरोप में केसरी सिंह जी के पुत्र कुं. प्रताप सिंह भी बरेली जेल में बन्द कर दिए गए। उन्हें अनन्त यातनाएं दी गई, परन्तु उन्होंने अपने साथियों के नाम नहीं बताए... ..... फिर उन्हें हजारी बाग जेल में केसरी सिंह जी के पास ले जाया गया। ताकि बेटा अपने पिता को देखकर द्रवित हो जाए..... पिता-पुत्र ने एक-दूसरे को देखा..... प्रताप ने कहा कि मैं आपका पुत्र हूँ। पिता की आँखें चमक उठी, अंग्रेज की योजना असफल रही और प्रतापसिंह को पुनः बरेली जेल लाकर यातनाएँ बढ़ा दी गई..... अन्ततः वहीं कष्ट सहते-सहते कुँवर प्रताप सिंह की 25 वर्ष की आयु में मृत्यु हो गई।

हजारी बाग में जेल के जेलर मि. मीक और मिसेज मीक केसरी सिंह जी के आचरण और विद्वता से बहुत प्रभावित हुए थे। आपने मिसेज मीक को संस्कृत भाषा

भी सिखाई..... इन्हीं कारणों से मि. मीक ने अपने उच्च अधिकारियों से सिफारिश की, कि ठा. केसरी सिंह बारहठ के अनुशासन, आचरण और चाल–चलन के आधार पर उनकी सजा कम कर दी जाए। मीक ने उन्हें मात्र 5 वर्ष में ही रिहा करने की अनुशंसा भेज दी थी। वहीं अमृतसर के कांग्रेस अधिवेशन में लोकमान्य तिलक ने केसरी सिंह जी को जेल से मुक्त करवाने का प्रस्ताव पारित कर अंग्रेजों के पास भिजवा दिया था। सौभाग्य से उसी समय प्रथम विश्व युद्ध के कारण अंग्रेजों ने भारतीय कैदियों को रिहा करने का फैसला लिया था और बारहठ जी भी 19 जुलाई 1919 को रिहा कर दिए गए। कोटा रेलवे स्टेशन पर उनकी अगवानी के लिए बहुत सारे लोग थे। वहीं डॉ. गुरूदत्त ने केसरी सिंह जी से पूछा कि 'प्रताप की मृत्यु का समाचार कब मिला, तो उत्तर मिला कि 'अभी तुमसे।' वहाँ से शान्त मुद्रा में घर पहुँच कर अपनी पत्नि को अपने पुत्र की शहादत का समाचार सुनाया।

इधर भारतीय राजनीति में गाँधीजी के अहिंसक युग का प्रारम्भ हो चुका था, जहाँ सशस्त्र क्रांति के लिए कोई स्थान नहीं था। अतः केसरी सिंह अधिकांश समय कोटा में ही रहने लगे। सब कुछ लुट चुका था। पुत्र, हवेली, सम्पत्ति के बाद भाई जोरावर सिंह भी अंग्रेजों से छुपते हुए फरारी काट रहे थे। लेकिन इसका केसरी सिंह जी को रंज मात्र भी दुःख नहीं था। जमनालाल बजाज के आमन्त्रण पर आप पत्नि, पुत्री व जामाता ईश्वरदान जी सहित वर्धा पहुँचे। उस समय वर्धा में उपस्थित श्रीरामनारायण चौधरी लिखते हैं कि वर्धा में केसरी सिंह जी का व उनके परिवार का राजाओं जैसा स्वागत हुआ। वहाँ आपने 'राजस्थान केसरी' (ज्ञात रहे कि इस साप्ताहिक अखबार का नामकरण आपके नाम से ही था, विजय सिंह पथिक इसके प्रथम सम्पादक थे) का सम्पादन भी किया और लिखने भी लगे। परन्तु तालमेल नहीं बैठ पाया और पुनः कोटा लौट आए।

कोटा महाराज उम्मेद सिंह द्वितीय अभी भी केसरी सिंह जी के सानिध्य के लिए लालायित रहते थे, अतः उन्होंने ठाकुर साहब के लिए कोटा में एक घर भी बनवा दिया, जिसे हम माणिक भवन के नाम से जानते हैं। अब केसरी सिंह जी ज्यादा समय पोतियों को पढ़ाने, अध्ययन एवं चर्चा में बिताने लगे। शेष समय मौन रहते थे। आपमें देशभक्ति कूट–कूट कर भरी थी, तभी इस अवस्था में भी आपने 1940 में गाँधी जी को पत्र लिखकर कहा कि 'मेरी 70 वर्ष की बूढ़ी हडिड्यों में अभी भी देश के लिए आहुति देने का बल व इच्छा है।' इन्हीं भावों के साथ 14 अगस्त 1941 को ठा. केसरी सिंह बारहठ पंचतत्व में विलीन हो गए।

उद्देश्य – 1947 के बाद भारत के स्वतंत्रता संघर्ष का स्वर्ण इतिहास लिखा गया और स्वतंत्रता सेनानियों को अच्छा सम्मान दिया गया। परन्तु जाने–अनजाने में अनेक महान् सेनानियों को वह सम्मान नहीं मिल पाया, जिसके वे हकदार थे। ऐसा ही एक उदाहरण है; राजस्थान के शाहपुरा का बारहठ परिवार। जिस परिवार के दामाद भी क्रांतिकारी हुए। इस परिवार को विशेष कर इनके मुखिया को प्रत्येक भारतवासी जाने, यही इस शोध पत्र का उद्देश्य है।

निष्कर्ष – प्राचीन काल से ही राजस्थान की पवित्र भूमि पर अनेक सभ्यताएँ, अवतार, योद्धा, सन्त, महापुरूष और कवि उत्पन्न हुए है; जिन्होंने मातृभूमि के प्रति अपने दायित्व का निर्वहन तन–मन–धन से किया तथा मातृभूमि की रक्षार्थ अपना परिवार व सम्पत्ति आदि समस्त दाव पर लगा दिया। ऐसे ही थे ठा. केसरी सिंह बारहठ साहब, जिनका देश–दुनिया में कोई सानी नहीं है। आप चाहते तो एक बहुत अच्छा आरामदायक जीवन व्यतीत कर सकते थे, लेकिन आपने स्वयं को ही नही अपितु पूरे परिवार को त्याग, बलिदान और आत्मोसर्ग के लिए प्रेरित किया ; यहाँ अभिभूत होने का विषय तो यह है कि परिवार में किसी को भी रंज मात्र अफसोस नहीं था।

भारत के स्वतंत्रता संग्राम के महान पुरोधा ठा. केसरी सिंह बारहठ को शत्–शत् नमन.....

प्रस्फुटित हुई आपसे रश्मियाँ,
ज्योतिर्मन को ललक दे गई।
बो गई बीज प्रेरणा के,
सर्जना, साधना, सुमन्त्र दे गई।।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. *ठा. किशोरसिंह बार्हस्पत्य – श्री करणी चरित्र*
2. *सवाई सिंह धमोरा – ठाकुर केसरीसिंह बारहठ (पुण्य–स्मरण), सम्पादित*
3. *कविराजा श्यामदास – वीरविनोद*
4. *ठा. कृष्ण सिंह बारहठ – राजपूताना का अपूर्व इतिहास*
5. *ठा. केसरी सिंह बारहठ – चेतावनी रा चूंगट्या*
6. *जी. एच. ओझा – राजपूताने का प्राचीन इतिहास*

7. डॉ. मथुरा लाल शर्मा – कोटा राज्य का इतिहास
8. डॉ. रघुवीर सिंह – पूर्व आधुनिक राजस्थान
9. रामनारायण चौधरी – बीसवीं सदी का राजस्थान
10. सचीन्द्र सान्याल – बन्दी जीवन
11. राजेन्द्र शंकर भट्ट – राजस्थान का सांस्कृतिक प्रवाह
12. डॉ. कमलेश माथुर – राजस्थान का इतिहास
13. डॉ. के. एस. सक्सेना – राजस्थान में राजनैतिक जन जागरण
14. डॉ. आर.पी. व्यास – आधुनिक राजस्थान का वृहद इतिहास (1, 2)
15. डॉ. मोहन लाल गुप्ता – क्रान्तिकारी बारहठ केसरी सिंह
16. ओंकार सिंह लखावत – स्वातन्त्रय राजसूय यज्ञ में बारहठ परिवार की महान आहूति
17. डॉ. एच.सी. जैन – ऐतिहासिक राजस्थान
18. डॉ. एम.एस. जैन – आधुनिक राजस्थान का इतिहास
19. डॉ. जी.एन. शर्मा – राजस्थान का सांस्कृतिक इतिहास
20. डॉ. राघवेन्द्र सिंह मनोहर – राजस्थान के रजवाड़ों का सांस्कृतिक वैभव
21. डॉ. के. जी. शर्मा – चारण साहित्य परम्परा (सम्पादित)
22. मोहन सिंह – शेखावाटी में स्वतंत्रता आंदोलन का इतिहास
23. डॉ. आर. एल. शुक्ल – आधुनिक भारत का इतिहास राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर (राजस्थान)

शहरों में बढ़ रहा बाल–अपराध

डॉ. रितिका सिंह
नैनीताल (उत्तराखंड)

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

बाल–अपराध एक ऐसी विश्वव्यापी समस्या बन चुकी है जिसके लिए सभी राष्ट्र अलग–अलग कानून व्यवस्था बनाए हुए है। जब किसी बच्चे द्वारा कोई कानून विरोधी या समाज विरोधी कार्य किया जाता है तो उसे किशोर अपराध या बाल अपराध कहा जाता है। कानूनी दृष्टिकोण से बाल अपराध 8 से 18 वर्ष के बालक द्वारा किया गया कानून विरोधी कार्य है जिसे कानूनी कार्यवाही के लिए बाल न्यायालय के समक्ष उपस्थित किया जाता है। भारत में यह बाल न्याय अधिनियम 1986 (संशोधित 2015) लागू है। इस अधिनियम में संशोधन बालक द्वारा किए गए अपराधिक प्रकृति के कारण किया जाता है। सरकार द्वारा किया गया संशोधन समाज के लिए हितकर होता है वो संशोधन समाज के वातावरण और अपराधिक प्रकृति के कारण करती है। जब भी कोई संशोधन किया जाता है उस पर पूर्ण रूप से विचार–विमर्श किया जाता है ताकि उस संशोधन का पूर्ण लाभ प्राप्त हो सके। वर्तमान सामाजिक परिवेश में बाल–अपराध की दर दिनों–दिन बढ़ती जा रही है। बाल अपराध की दर जिस प्रकार से बढ़ रही है वो बहुत ही भयानक है क्योंकि इसमें जघन्य अपराधों की संख्या में भी बढ़ोतरी हो रही है जो समाज के लिए बहुत ही अहितकर है। बाल अपराध को कम करने के लिए सभी को अपनी जिम्मेदारी समझना अति आवश्यक होता जा रहा है। शहरों में जिस प्रकार से बाल अपराध बढ़ रहा है उसके लिए मुख्य रूप से नगरीकरण जिम्मेदार है। आज की वर्तमान स्थिति में लोगों को सिर्फ आगे बढ़ना है जिस कारण वो अपना नैतिक पतन भी कर रहे हैं और उसी का अनुसरण आज के युवा हो रहे बच्चे भी कर रहे हैं।

संकेताक्षर : *शहर, बाल अपराध, कारण, हिंसा, अपराधशास्त्र।*

अपराध वह दर्पण है जिसमें लोगों का चरित्र प्रतिबिम्बित होता है। यह वह दुःखद वास्तविकता है जिसका हम सामना नहीं करना चाहते हैं। जीवन की अन्य वास्तविकताएँ सरलता से स्वीकार की जा सकती हैं, क्योंकि उनका नियन्त्रण सरलता से हो सकता है, किन्तु दुष्चरित्रता के सुधार की सरल विधि मानव को आज तक उपलब्ध नहीं है। मानव चरित्र का यह आयाम उतना ही टेढ़ा और उतना ही सुदृढ़ है जितना कि हम सब लोग। जीवन के जो गुण हमारे चरित्र का निर्माण करते हैं वे ही हमारे अपराध करने की शक्ति का निर्धारण भी करते हैं। अपराध इस प्रकार एक घृणित घटना मात्र नहीं है – यह मानव व्यवहार है और मानव ही अपराध करता है।[1]

अपराध की समस्या सभी कालों व युगों में रही है और समाज में इससे छुटकारा पाने के उपाय लगातार होते रहे हैं, लेकिन आज के समाज में इसने गम्भीर रूप धारण कर लिया है और इसका प्रभाव बच्चों पर भी पड़ता रहा है जिस कारण बच्चे भी अपराधी होते जा रहे हैं।

बाल–अपराध

बाल–अपराध वर्तमान आधुनिक संसार की एक गम्भीर समस्या है। आज की यह गम्भीर समस्या विश्वव्यापी समस्या बन चुकी है। जिस तरह अपराध सार्वभौमिक है उसी तरह बाल–अपराध भी सार्वभौमिक है। यह एक ऐसी समस्या है जो मूलतः पारिवारिक एवं सामुदायिक विघटन की देन है। वर्तमान समय में विषम व जटिल सामाजिक– आर्थिक व्यवस्था से सम्बद्ध आधुनिक नगरीय तथा औद्योगिक परिवेश में बाल–अपराध की समस्या उग्र रूप धारण करती जा

रही है। औद्योगीकरण तथा नगरीकरण ने परम्परागत भारतीय सामाजिक परिवेश को परिवर्तित कर डाला है जिस कारण अधिकांश परिवार बच्चों पर नियन्त्रण रखने में असफल सिद्ध हो रहे हैं। बाल–अपराध का अत्यन्त भयानक पक्ष यह है कि बाल–अपराध किशोर तथा वयस्क अपराध का प्रशस्त प्रवेश द्वार है। यही वह आपराधिक सोपान है जहाँ बालक अपराधिता का प्रथम पाठ पढ़ता है। अपराध करना सीखता है तथा अपराधिक कृत्य करने में दक्षता प्राप्त करता है।

सामाजिक मानदण्डों के आधार पर आयु तथा व्यवहार क्षेत्र की दृष्टि से बाल–अपराध की व्याख्या करते हुए शेल्डन तथा ग्लूक ने बताया है कि "बाल–अपराध में हम यद्यपि ऐसे कार्यों को अन्तर्निहित कर सकते हैं जो बार–बार उन बालकों द्वारा सम्पादित किये जाते हैं जिनकी आयु 16 वर्ष तक ही हो। यद्यपि इस श्रेणी में हम उन बालकों को नहीं समाविष्ट करेंगे जिन्होंने विकास काल में किसी अत्यन्त ही उत्तेजक परिस्थिति में एक खिलौना चुरा लिया। किसी थियेटर में घुस गये, चाहे ऐसा करने में उन्होंने किसी कानून का ही उल्लंघन ही क्यों न किया हो।"[2] न्यूमेयर के अनुसार, "बाल–अपराध के अन्तर्गत समाज विरोधी व्यवहार के ऐसे स्वरूप अन्तर्निहित हैं जिसमें वैयक्तिक तथा सामाजिक विघटन समाविष्ट होते हैं। समाज के आदर्शों तथा कानूनों के अनुरूप आचरण स्वरूप के मूल्य निर्णयन प्रयुक्त होते हैं एवं कार्य का लोगों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।"[3]

कुछ विद्वानों ने वयस्क अपराध एवं बाल–अपराध की परिभाषा में आयु की दृष्टि से कोई भेद नहीं किया जिसमें गिलिन तथा गिलिन का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इन दोनों लेखकों ने बाल–अपराध को परिभाषित करते हुए लिखा है कि "समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से एक अपराधी अथवा बाल–अपराधी वह व्यक्ति है जो एक ऐसे कार्य के लिए दोषी है जिसे एक समूह द्वारा समाज के लिए हानिकारक माना जाता है। जिसके पास अपने विश्वास को लागू करने की शक्ति होती है तथा इसलिए ऐसे कार्य उन समूह द्वारा निषिद्ध होते हैं।"[4]

वे विद्वान जो बाल–अपराध पद की परिभाषा मनोवैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य में करते हैं वे बालकों के सभी सामाजिक रूप से हानिकर दुराचरणों को अपराधिक कृत्य के रूप में नहीं मानते हैं और न ही वे उन बालकों को अपराधियों के रूप में पदनामित करते हैं जिन्हें सरकारी कार्यवाही हेतु अदालत में लाया जाता है। हीली के अनुसार, "एक बाल–अपराधी वह है जिसकी अभिवृत्ति समाज के प्रति ऐसी हो जो अन्ततः कानून का उल्लंघन करने की प्रेरणा देती है।"[5] पुनः वो कहते हैं कि "बाल–अपराध की समस्या वास्तव में एक व्यक्तिगत समस्या है और बाल–अपराधी विशेषताओं को तब तक नहीं समझा जा सकता जब तक हम बाल–अपराधियों का व्यक्तिगत अध्ययन न कर लें।"[6]

वे विद्वान जो बाल–अपराध की परिभाषा आयु तथा व्यवहार की दृष्टि से वैधानिक एवं सामाजिक दोनों उपागमों के आधार पर करते हैं उनमें सेथना, बर्ट, शेल्डन एवं ग्लूक तथा रेकलेस आदि के नाम विशेष रूप से हैं। रेक्लेस के अनुसार, "कानून द्वारा बाल–अपराध आपराधिक संहित के उल्लंघन और इसके अतिरिक्त उल्लंघनों के रूप में परिभाषित है जो एक ऐसे किशोर द्वारा किया जाता है जिसकी आयु 18 वर्ष से कम होती है।"[7]

बाल–अपराध किसी राज्य के कानून द्वारा निर्धारित आयु सीमा से कम आयु वाले बालक द्वारा किया गया ऐसा व्यवहार है जिससे उस राज्य की किसी अपराधिक संहिता तथा साथ ही सामाजिक, सांस्कृतिक संहिताओं एवं मूल्यों का उल्लंघन होता है और जिसके लिए कानूनी कार्यवाही व दण्ड व्यवस्था वयस्कों से भिन्न होती है।[8]

बाल–अपराध की परिभाषा भारतीय सन्दर्भ में

भारतीय परिस्थिति में बाल अधिनियम 1986 की धारा 2(ङ) के अनुसार उस बालक को अपराधी बालक माना गया है जिसने कोई आपराधिक कार्य किया है। इस अधिनियम के अनुसार "बालक" का तात्पर्य 16 वर्ष से कम आयु का बालक और 18 वर्ष से कम आयु की बालिका है एवं अपराध शब्द का अभिप्राय किसी प्रवृत्त विधि द्वारा दण्डनीय कोई कार्य है। इस अधिनियम के बाद बाल–न्याय (बालकों की देखरेख और संरक्षण) अधिनियम 2000 आया जिसमें संख्याक 56 में पूर्ववर्ती बाल–न्याय अधिनियम 1986 में प्रमुख शब्दावली "अपराधी बालक" के स्थान पर "विधि विवादित बालक" पर प्रतिस्थापित किया गया है। अतः यह स्पष्ट है कि ऐसा प्रत्येक कृत्य जो विधि द्वारा निषिद्ध है, अपराधिक कृत्य नहीं माना जाना चाहिए। ऐसा आचरण जो न केवल विधिक दृष्टि

से अपराध है बल्कि जो वर्तमान सामाजिक मान्यताओं के विपरीत है अपराधिक कृत्य माना जाएगा। इसी प्रकार बाल–न्याय अधिनियम 1986 में प्रयुक्त शब्द "उपेक्षित बालक" के स्थान पर नये बाल–न्याय अधिनियम 2000 में "विधि की देखरेख एवं संरक्षण की आवश्यकता वाला बालक" कहा गया है।

बाल–न्याय प्रणाली की एक उपलब्धि यह है कि इसके अन्तर्गत उपेक्षित बालकों की देखरेख के लिए बाल गृह एवं सम्प्रेक्षण गृहों की व्यवस्था है।[9]

बाल–न्याय प्रणाली को बालकों द्वारा किये जा रहे कृत्यों के कारण समय–समय पर संशोधित किया जाता रहा है। वर्तमान समय में यह किशोर–न्याय (बालकों की देखरेख और संरक्षण) अधिनियम 2015 के नाम से जाना जाता है। इस अधिनियम में बाल–अपराध की अधिकतम आयु 18 वर्ष है। इस अधिनियम में दो ऐसे संस्थान पर जोर दिया गया है जो इन बच्चों से जुड़े मामले देखेंगे। ये दोनों संस्था हर जिले में स्थापित किए जाएंगे और ये संस्था है जुवेनाइल जस्टिस बोर्ड (जे.जे.बी.) और चाइल्ड वेलफेयर कमेटी (सी.डब्ल्यू. सी.)। इस अधिनियम के अनुसार जघन्य अपराधों में शामिल 16–18 वर्ष के बच्चों पर वयस्कों की तरह मुकदमा चलाया जाएगा। इस अधिनियम में तीन तरह के अपराधों का जिक्र भी किया गया है वे हैं –

(1) एक जघन्य अपराध वह है जिसमें मौजूदा कानून के मुताबिक कम से कम सात साल की कैद की सजा होती है।

(2) एक गम्भीर अपराध वह है जिसमें तीन से सात साल तक की कैद की सजा होती है।

(3) एक छोटा अपराध वह है जिसमें तीन साल तक की कैद की सजा होती है।

किशोरों द्वारा किए गए जघन्य अपराधों की जाँच के लिए बोर्ड ऐसा अपराध करने वाले बालकों की मानसिक और शारीरिक क्षमता, अपराध के परिणामों को समझने की योग्यता और उन परिस्थितियों को जिनमें उसने अपराध किया था, के बारे में प्रारम्भिक निर्धारण करेगा और धारा 16 के उपधारा (3) के उपबन्धों के अनुसार आदेश पारित कर सकेगा। परन्तु ऐसे निर्धारण के लिए बोर्ड अनुभवी मनोवैज्ञानिकों, मनोसामाजिक कार्यकर्त्ताओं और अन्य विशेषज्ञों की सहायता लेगा। जब बोर्ड को जाँच करने पर यह पता हो जाता है कि बालक की सोच वयस्क की तरह है तो उस पर वयस्क की तरह मुकदमा चलाया जाएगा।

किशोर–न्याय (बालकों की देखरेख और संरक्षण) अधिनियम 2015 को पेश करने का सबसे बड़ा कारण जुवेनाइल क्राइम में हो रही वृद्धि है।

बाल–अपराध की परिभाषाएँ

विभिन्न विद्वानों ने बाल–अपराध की परिभाषाएँ निम्न प्रकार से दी हैं –

रॉबिंसन के अनुसार, "बाल–अपराधी प्रवृत्ति के अन्तर्गत आवारागर्दी और भीख माँगना, दुर्व्यवहार, बुरे इरादे से शैतानी करना और उदण्डता आदि विशेषताओं को सम्मिलित किया जाता है।"[10]

फ्रेडलेडर ने बाल–अपराध को परिभाषित करते हुए लिखा है, "एक बाल–अपराध ऐसा किशोर दुराचार है जिसके सम्बन्ध में कार्यवाही कानून के अन्तर्गत की जा सकती है।"[11]

मवरर ने बाल–अपराध को परिभाषित करते हुए लिखा है, "बाल–अपराधी वह व्यक्ति है जो जान–बूझकर, इरादे के साथ तथा समझते हुए समाज की रूढ़ियों की उपेक्षा करता है जिससे उसका सम्बन्ध है।"[12]

विलिमय एच. शेल्डन, "उचित अपेक्षाओं को निराश करने वाले व्यवहार को बाल–अपराध मानते हैं।"

यहाँ पर यह बताना अति आवश्यक है कि बाल–अपराध की प्रमुख रूप से दो विशेषताएं हैं – प्रथम यह अपराध निश्चित आयु से कम के बच्चों के द्वारा किया जाता है और द्वितीय बच्चों के वे व्यवहार जो कि लोक कल्याण के लिए अहितकर सिद्ध होते हैं, बाल–अपराध कहलाते हैं। साधारणतः बाल–अपराध की परिभाषा देते समय आवारा, आदतन, आज्ञा का उल्लंघन करने वाला या सुधार से परे शब्दों का प्रयोग किया जाता है।[13]

बाल–अपराधियों के प्रकार

अलग–अलग सामाजिक वैज्ञानिकों ने भिन्न–भिन्न प्रकार से बाल–अपराधियों को वर्गीकृत किया है परन्तु हम विवेचनागत अध्ययन की सुगमता हेतु यहाँ केवल व्यवहार के आधार पर बाल–अपराधियों के प्रकारों को सुस्पष्ट करना चाहेंगे क्योंकि आधुनिक समय में सम्पूर्ण जगत में व्यवहार के आधार पर ही बाल–अपराधियों के वर्गों का निर्धारण करने पर बल

दिया जा रहा है। व्यवहार के आधार पर टप्पन जैसे समाजशास्त्री ने बाल–अपराधियों के पाँच प्रकारों की चर्चा की है, जो इस प्रकार है –

(1) **पारिवारिक एवं सामुदायिक सन्दर्भात्मक बाल–अपराधी –** इस श्रेणी में वे बालक आएंगे जो पारिवारिक अनुशासन भंग होने पर और परिवार के विघटित होने पर अनैतिक आचरण करने लगते हैं।

(2) **व्यावहारिक समस्यामूलक बाल–अपराधी –** इस श्रेणी में वे बालक आते हैं जो बात–बात पर क्रोधित होकर लड़ने झगड़ने लगते हैं और कृत्रिम लैंगिक सन्तुष्टि की खोज में इधर–उधर भटकते रहते हैं तथा अनावश्यक शारीरिक गतिविधियों की समस्या उत्पन्न कर देते हैं।

(3) **सुधार के लिए असाध्य बाल–अपराधी –** इस श्रेणी में वे बालक आते हैं जो घर से भागकर कहीं चले जाते हैं, आलस्य करते हैं, लोगों का सम्मान नहीं करते और बड़ों की अवज्ञा करते हैं, किसी का कोई अनुशासन नहीं मानते।

(4) **समाज विरोधी बाल–अपराध –** समाज विरोधी बाल–अपराधी वे हैं जो आपसी शत्रुता, आक्रमण, नीति, तनाव, पृथक्ता, चिन्ता तथा आपराधिक प्रवृत्ति से सम्बन्धित व्यवहार करते हैं।

(5) **गम्भीर असंवैधानिक बाल–अपराधी –** इस श्रेणी में वे बालक आते हैं जो चोरी, डकैती, मारपीट, हत्या, बलात्कार जैसे अपराधिक कृत्यों में संलग्न रहते हैं।[14]

बाल–अपराध की मात्रा

भारत ही नहीं आज सम्पूर्ण विश्व बाल–अपराधों की संख्या में हो रही वृद्धि के कारण परेशान है। भारतीय समाज में बाल–अपराध की दर तो बढ़ ही रही है साथ में इसकी प्रकृति भी जटिल होती जा रही है जिसका प्रमुख कारण नगरीकरण तथा औद्योगीकरण है। नगरीकरण तथा औद्योगीकरण ने ऐसा वातावरण सृजन किया है जिसमें अधिकांश परिवार बच्चों पर अपना नियन्त्रण रखने में असफल सिद्ध हो रहे हैं। सन् 2000 के आंकड़ों के अनुसार भारतीय दण्ड संहिता के अन्तर्गत कुल 9,267 मामले पंजीकृत किये गये तथा स्थानीय एवं विशेष कानून के अन्तर्गत 5,154 मामले पंजीकृत किये गये। बाल–अपराध की दर में विभिन्न वर्षों में उतार–चढ़ाव देखने को मिलता है। 1997 में बालकों में अपराध की दर 08 प्रतिशत थी, वही बढ़कर 1998 में 10 प्रतिशत रही।

बालकों द्वारा किए गये अपराधों में से भारतीय दण्ड संहिता के अन्तर्गत सबसे अधिक सम्पत्ति सम्बन्धी थे। 2000 में दण्ड संहिता के अन्तर्गत कुल संज्ञेय अपराधों में से चोरी (2,385), लूटमार (1,497) तथा सेंधमारी (1,241) के मामले पाये गये। इसके अलावा लैंगिक उत्पीड़न के (51.9 प्रतिशत), डकैती के (32 प्रतिशत), हत्या के (28.6 प्रतिशत), बलात्कार के (24. 5 प्रतिशत) मामले पाये गये। इसी प्रकार से ये संख्या लगातार बढ़ती जा रही है, सरकार द्वारा किए जा रहे प्रयास विफल होते जा रहे हैं।

आई.पी.सी. के तहत सन् 2013 में हमें जो आंकड़े प्राप्त हुए वो 2012 की तुलना में 43.6 प्रतिशत बढ़ी हुई थी। 2012 में बाल–अपराधों की कुल संख्या 27,936 थी जो 2013 में बढ़कर 31,625 हो गयी।[15] इसी तरह विशेष एवं स्थानीय कानून (एस.एल. एल.) के अन्तर्गत बाल–अपराधों की संख्या में 2.5 प्रतिशत की बढ़ोत्तरी हुई। लिंग के आधार पर देखने पर 2013 के दौरान कुल 43,506 बाल–अपराधियों में 41,639 बालक थे एवं 1867 बालिकाएं थीं।[16]

पिछले दस वर्षों (2003 से 2013) तक बाल–अपराधियों की गिरफ्तारी अधिक हुई है जिसमें 16 से 18 वर्ष के बाल–अपराधी मामलों में 60.00 प्रतिशत की वृद्धि पायी गयी है। ये आंकड़े भारत के गृह मंत्रालय के अधीन कार्यरत राष्ट्रीय अपराध ब्यूरो (एन. सी.आर.बी.) से संकलित है। किशोर अपराधियों की संख्या में अप्रत्याशित 288 प्रतिशत की वृद्धि बलात्कार आरोपियों की हुई और चोरी करने के अपराध में 68 प्रतिशत की वृद्धि पायी गयी है। एन.सी.आर.बी. की रिपोर्ट के अनुसार 2003–2013 के बीच कुल 3,79,283 किशोर उम्र के बच्चों को गिरफ्तार किया गया। 2013 में 16 से 18 वर्ष के कुल 28,860 बाल–अपराधियों को गिरफ्तार किया गया था। भारतीय दण्ड संहिता (आई.पी.सी.) के और स्थानीय विशेष अधिनियमों के तहत गिरफ्तार किए गए थे वो कुल भारत में किशोर दण्ड अधिनियम संहिता के अन्तर्गत गिरफ्तार हुए का 66 प्रतिशत है। 2003–2013 तक बाल दण्ड अधिनियम के अन्तर्गत गिरफ्तार हुए बच्चों की संख्या 43,506 थी जिसमें 22,158 लड़के और 21,348 लड़कियों को गिरफ्तार किया गया था।

एन.सी.आर.बी. से प्राप्त आंकड़ों के अनुसार 2003 से 2013 तक सबसे अधिक किशोर अपराधियों की संख्या मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र में है। इस रिपोर्ट में एक बात हैरान कर देने वाली है क्योंकि साल 2003 में दुष्कर्म के आरोप में गिरफ्तार होने वाले नाबालिग अपराधियों की संख्या 535 थी जबकि 2013 में यह संख्या बढ़कर 10,683 तक जा पहुँची थी। इस रिपोर्ट से यह भी पता चला कि देशभर में महिलाओं के प्रति यौन उत्पीड़न या अन्य अपराधों में वृद्धि दर्ज हुई है।

अकेले दिल्ली महानगर में 35 फीसदी बाल-अपराधी बढ़े जिसमें नाबालिग दुष्कर्म, यौन शोषण, हत्या, छेड़छाड़, डकैती और चोरी में वयस्क अपराधियों से पीछे नहीं है। राष्ट्रीय अपराध रिकार्ड ब्यूरो के आंकड़ों के मुताबिक 2016 में दिल्ली, मुम्बई सहित देश के 19 प्रमुख महानगरों में बाल-अपराध के कुल 6,645 मामले दर्ज हुए। दिल्ली में 51 नाबालिगों पर हत्या और 81 पर हत्या के प्रयास के आरोप लगे जबकि 143 नाबालिगों पर दुष्कर्म और 35 नाबालिगों के खिलाफ अप्राकृतिक यौनाचार के मामले दर्ज हुए। सामूहिक दुष्कर्म के दो मामले में बाल-अपराधियों की संलिप्तता सामने आई। इसके अलावा छेड़छाड़ के 138 और यौन शोषण के 66 मामले भी नाबालिगों पर दर्ज किए गए। डकैती की 370 और चोरी की 766 वारदात को नाबालिगों ने अंजाम दिए। एस.एल.एल. की रिपोर्ट में सर्वाधिक बाल-अपराधी वाला शहर दिल्ली रहा है जो बाल-अपराध किशोर न्याय अधिनियम 2000 के तहत पकड़े गये थे। दूसरे स्थान पर चेन्नई शहर रहा जहाँ पर बाल-अपराधियों की संख्या आई.पी.सी. के अनुसार 40 और एस.एल.एल. के अनुसार 391 है। ये आंकड़े एन.सी.आर.बी. की रिपोर्ट 2016 के अनुसार प्रस्तुत किए गये।

शहरों में बढ़ते बाल-अपराध के कारण

जैसा कि हमें ज्ञात है कि किसी बालक को अपराध की ओर प्रवृत्त करने के लिए बहुत कारण होते हैं परन्तु हमने यहाँ पर उन्हीं महत्वपूर्ण कारकों के बारे में अध्ययन किया है जिसका प्रभाव बच्चों पर अधिक पड़ा है।

(1) सामाजिक कारण – बाल-अपराध का सर्वप्रमुख एवं व्यापक कारक सामाजिक कारण है। समाज की कुछ परिस्थितियाँ बालक को अपराधी बनने के लिए मजबूर कर देते हैं जैसे –

- **परिवार –** अगर परिवार की परिस्थितियाँ सही नहीं होती तो उसका परिणाम परिवार के सभी सदस्यों को भोगना पड़ता है परन्तु परिवार के बच्चे उस परिस्थिति को समझ नहीं पाते हैं और वो गलत कार्य करने की कोशिश करने लगते हैं।
- **बच्चों की अधिक संख्या –** अगर किसी परिवार में बच्चों की संख्या अधिक हो जाती है तो परिवार के सदस्य बच्चों को उचित संस्कार देने में असमर्थ हो जाते हैं और उन पर पूरा ध्यान भी नहीं दे पाते जिस कारण बच्चों को सही और गलत कार्य का अन्तर नहीं हो पाता और जब तक माता-पिता का ध्यान उस ओर जाता है तब तक बहुत देर हो चुकी होती है।
- **परिवार के सदस्यों द्वारा समान व्यवहार न होना –** बालक अधिकांशतः बातें अनुकरण करके सीखते हैं अगर परिवार में ही वो व्यवहार में अन्तर पाते हैं तो वो भी वैसा ही करने की कोशिश करते हैं। प्रायः अपराधी प्रवृत्ति के बड़े भाई-बहन का आचरण छोटे बालक को अपराधी की दिशा में मोड़ देता है। मिस इलियट ने अपराधी बालिकाओं से सम्बन्धित एक अध्ययन में पाया कि 67 प्रतिशत अपराधी लड़कियाँ अनैतिक परिवारों की थीं।

(2) आर्थिक कारण – आर्थिक विषमता तथा अपराधशास्त्र का अत्यन्त निकट का और गहरा सम्बन्ध है। बौंगर एवं फोर्नासिरी विर्सी के शोध कार्य का निष्कर्ष है कि निर्धनता अपराध की प्रवृत्तियों को बढ़ावा देती है जिसके फलस्वरूप उनके बच्चों की अधिकांश इच्छाएँ अतृप्त रह जाती हैं, इन इच्छाओं को तृप्त करने के लिए निर्धन घर के बच्चे अपराधों का सहारा लेते हैं। इसके अतिरिक्त निर्धनता के कारण उत्पन्न हीनमान्यता एवं विद्रोह की भावना के कारण भी किशोर अपराध की ओर उन्मुख होते हैं। आर्थिक कारण में निम्नलिखित कारण महत्वपूर्ण हैं जैसे – निर्धनता, भूखमरी, छोटे बालकों का नौकरी करना, बेकारी, अरूचिकर व्यवहार आदि।

(3) औद्योगिक कारण – शहरों में बढ़ते बाल-अपराध के लिए औद्योगीकरण एवं नगरीकरण प्रमुख रूप से

जिम्मेदार हैं क्योंकि नगरीकरण के कारण शहरों में नौकरी एवं व्यवसाय दोनों बढ़ते हैं और किसी व्यवसाय को चलाने के लिए बहुत से लोगों की आवश्यकता पड़ती है जिस कारण किसी का ध्यान बच्चों की आयु पर नहीं जाता। बच्चे भी छोटा-मोटा काम करने लग जाते हैं। उस कार्य से मिलने वाले धन को वो गलत काम में लगाने लग जाते हैं जैसे - जुआ खेलना, नशा करना आदि। जहाँ एक तरफ औद्योगीकरण से रोजगार पैदा हुआ वहीं दूसरी तरफ बाल-अपराध जैसी समस्या को भी बढ़ा दिया।

बाल-अपराध एक ऐसी समस्या है जो राष्ट्र के लिए हितकर नहीं है क्योंकि यही बालक आगे चलकर वयस्क अपराधी बन जाते हैं। इस समस्या के समाधान के लिए सभी को कार्य करना होगा। जब तक सभी लोग अपनी जिम्मेदारी नहीं समझेंगे तब तक इस समस्या से छुटकारा पाना सम्भव नहीं है। यह समस्या विश्वव्यापी समस्या बन चुकी है। बच्चों को अपनी जिम्मेदारी समझना आवश्यक है क्योंकि किसी भी राष्ट्र का निर्माण वहाँ के व्यक्तियों से होता है। अगर किसी भी राष्ट्र का आने वाला कल एक अपराधी प्रवृत्ति का होगा तो राष्ट्र का कल्याण सम्भव नहीं।

सुझाव

- आज के परिवेश में बच्चे अपने माता-पिता से दूर होते जा रहे हैं क्योंकि दोनों नौकरी पेशा वाले होते हैं जिससे वो उन पर ध्यान नहीं दे पाते। माता-पिता को अपने नौकरी से समय निकाल कर बच्चों से बातें करनी चाहिए और दिनभर के किए गए कार्यों का अवलोकन भी करना चाहिए।
- समाज के सभी व्यक्तियों को अपनी जिम्मेदारी समझनी जरूरी है। सभी को चाहिए कि वो गलत कार्य कर रहे बच्चों को समझाये और गलत कार्य करने की वजह जानने की कोशिश करे।
- बच्चों को स्कूल में किसी भी प्रकार का हिंसात्मक दण्ड नहीं देना चाहिए।
- समाज के व्यक्तियों को बच्चों से कभी भी कोई गलत कार्य करने के लिए नहीं बोलना चाहिए।
- माता-पिता को चाहिए कि वो बच्चों से समय-समय पर बातचीत करें और आने वाले कल के लिए सही दिशा निर्देशित करें।

सारांश

बाल-अपराध एक ऐसी विश्वव्यापी समस्या बन चुकी है जिसके लिए सभी राष्ट्र अलग-अलग कानून व्यवस्था बनाए हुए है। जब किसी बच्चे द्वारा कोई कानून विरोधी या समाज विरोधी कार्य किया जाता है तो उसे किशोर अपराध या बाल-अपराध कहा जाता है। कानूनी दृष्टिकोण से बाल अपराध 8 से 18 वर्ष के बालक द्वारा किया गया कानून विरोधी कार्य है जिसे कानूनी कार्यवाही के लिए बाल न्यायालय के समक्ष उपस्थित किया जाता है। भारत में यह बाल न्याय अधिनियम 1986 (संशोधित 2015) लागू है। इस अधिनियम में संशोधन बालक द्वारा किए गए अपराधिक प्रकृति के कारण किया जाता है। सरकार द्वारा किया गया संशोधन समाज के लिए हितकर होता है वो संशोधन समाज के वातावरण और अपराधिक प्रकृति के कारण करती है। जब भी कोई संशोधन किया जाता है उस पर पूर्ण रूप से विचार-विमर्श किया जाता है ताकि उस संशोधन का पूर्ण लाभ प्राप्त हो सके। वर्तमान सामाजिक परिवेश में बाल-अपराध की दर दिनों-दिन बढ़ती जा रही है। बाल-अपराध की दर जिस प्रकार से बढ़ रही है वो बहुत ही भयानक है क्योंकि इसमें जघन्य अपराधों की संख्या में भी बढ़ोत्तरी हो रही है जो समाज के लिए बहुत ही अहितकर है। बाल-अपराध को कम करने के लिए सभी को अपनी जिम्मेदारी समझना अति आवश्यक होता जा रहा है। शहरों में जिस प्रकार से बाल-अपराध बढ़ रहा है उसके लिए मुख्य रूप से नगरीकरण जिम्मेदार है। आज की वर्तमान स्थिति में लोगों को सिर्फ आगे बढ़ना है जिस कारण वो अपना नैतिक पतन भी कर रहे हैं और उसी का अनुसरण आज के युवा हो रहे बच्चे भी कर रहे हैं।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. *सिंह, श्यामधर, 2015. अपराध के सिद्धान्त, सपना अशोक प्रकाशन।*
2. *आहूजा, राम, 1996. सोशियोलॉजिकल क्रिमिनोलॉजी, रावत पब्लिकेशन, जयपुर।*
3. *आहूजा, राम, 2000. अपराधशास्त्र, रावत पब्लिकेशन, जयपुर।*
4. *गिलिन, जे.पी. एण्ड गिलिन, जे. एल., कल्चलर सोशियोलॉजी।*
5. *फ्रिडलेन्डर, के., 1947. द साइको एनेलिटिकल एप्रोच टू जुवेनाइल डेलिक्वेन्सी, न्यूयार्क।*

6. हेली, विलियम, 1915. द इडिविजिवल डेलिक्वेन्ट, बोस्टन।
7. रेकलेस, वाल्टर सी., 1971. द क्राइम प्राब्लम, एप्पलिटन, सेन्चुरी क्राफ्ट इंक, फस्ट इण्डियन रिप्रिन्ट, बाम्बे।
8. वही, पृ. 286.
9. वही, पृ. 287.
10. शर्मा, विरेन्द्र प्रकाश, 2006. सोशल प्राब्लम इन कानटेम्परी इण्डिया, पंचशील प्रकाशन, जयपुर।
11. फैडलेडर, डब्लू. ए., 1957. इन्ट्रोडक्शन टू सोशल वेलफेयर।
12. मावरर, 1969. डिशआर्गनाइजेशन : सोशल एण्ड पर्सनल।
13. सिंह, रितिका, 2019. बाल-अपराध : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन।
14. वही, पृ. 290.
15. क्राइम इन इण्डिया, 2013, पृ. 131.
16. वही, पृ. 132.
17. वही, पृ. 333.

भारतीय उदारवाद और भारतीय पुनर्जागरणः विवेचना और विश्लेषण

डॉ. अनुज कुमार मिश्रा
सहायक आचार्य, पी.पी.एन.पी.जी. कालेज, कानपुर (उत्तर प्रदेश)

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

भारतीय उदारवाद और भारतीय पुनर्जागरण की वैचारिकी का प्रारंभ एक ही साथ होता है। दोनों के मूल में ब्रिटिश साम्राज्यवाद के साथ हुए संपर्क को देखा जा सकता हैं। भारतीय उदारवाद मूलतः ब्रिटिश उदारवादी चिंतन के आधार पर भारतीय जीवन, उसके सिद्धांत, और सामाजिक व्यवहार के परीक्षण का एक नजरिया प्रस्तुत करता है। भारतीय पुनर्जागरण की उदारवादी अभिव्यक्ति लॉक, रूसो, वाल्टेयर, बेन्थम, कांट, डार्विन, के विचारों के आधार पर भारतीय मनीषा की पुनर्समीक्षा तथा भारतीय सामाजिक और राजनीतिक और सांस्कृतिक जीवन के परिशोधन का विकल्प उपस्थित करता है। यहाँ यह विचारणीय है कि भारतीय पुनर्जागरण यूरोप के 16 वीं सदी के पुनर्जागरण से मूलतः भिन्न है। यूरोप में पुनर्जागरण की इहलौकिकीकरण की प्रक्रिया यूरोप की स्वतः स्फूर्त मांग थी, जबकि भारत में ब्रिटिश साम्राज्य की निष्कर्षात्मक आवश्यकता। भारतीय पुनर्जागरण की मूल अभिव्यक्ति भारतीय समाज और संस्कृति को यूरोपीय मानकों के आधार पर प्रतिस्थापित करने की रहीं जबकि यूरोपीय पुनर्जागरण प्रयोगवाद की सतत प्रक्रिया का परिणाम रहा। उदारवादी चिंतन ने निराशा के क्षणों में भारतीय समाज और राजनीतिक मानस में गतिशीलता का संचार किया इससे कोई इनकार नहीं कर सकता, परन्तु पश्चिम आधारित बौद्धिक वैचारिकी पर निर्भरता ने इसे भारत परावलंबन का भयंकर रोग भी लगा दिया, जिससे आज तक भारतीय समाज उबार नहीं पाया। इसी दृष्टिकोण से उदारवादी चिंतन के अवदान और उसकी परिणतियों की समीक्षा मैंने इस शोध आलेख में की है।

संकेताक्षर : *भारतीय उदारवाद, भारतीय पुनर्जागरण, इह्लौकिकीकरण, पाश्चात्य सभ्यता, साम्राज्यवाद।*

आधुनिक भारत के विकासक्रम की आधाररेखा सामान्य रूप से पुनर्जागरण के प्रारम्भ को माना जाता है। पुनर्जागरण के पश्चात का भारत अपनी वस्तुस्थिति, अपने उपादानात्मक कारकों अपने उद्देश्यों में अपने से पूर्वकालीन भारत से भिन्न था। पुनर्जागरण के अभियान के परिणाम कुछ इसी तरह के माने जा सकते थे, जैसा कि इमैनुअल वालरस्टीन ने इक्कीसवीं सदी के लिए समाज विज्ञान का एजेण्डा बनाने की कोशिश में कहा ''बतौर ऐतिहासिक व्यवस्था के आधुनिक विश्व व्यवस्था का अंत निकट है। यह पचास वर्ष से अधिक नहीं चलने वाली। लेकिन पता नहीं कि जो व्यवस्था वर्तमान की जगह लेगी वह इससे बेहतर होगी या बदतर। इतना सच है कि संक्रमण काल बेइंतहा तकलीफों से भरा होगा क्योंकि इतना कुछ दांव पर है नतीजे बिल्कुल अनिश्चित हैं, और छोटी–छोटी चीजें भी उन नतीजों पर गहरा असर डाल सकती हैं[1]। परन्तु यहां यह अन्तर है कि वालरस्टीन आधुनिकता के परिणामों को देखने के बाद उत्तरआधुनिक युग के विषय में द्वन्द में है जबकि भारतीय पुनर्जागरण के उन्नायक नई व्यवस्था के प्रति पूर्ण आश्वश्त थे कि यह अच्छी ही होगी और इसी पूर्ण आश्वस्तता की प्रामाणिक पुनरूक्तियाँ 21वीं सदी के बौद्धिक वातावरण में शब्द प्रमाण के रूप में प्रस्तुत की जाती है। परन्तु यह पूर्ण आश्वस्तता अनेकांतवाद के स्यात् अस्ति तक ही मानी जा सकती हैं। इसके अन्य अनेक गंभीर विपरिणाम भी निकले उनका भी विवेचन अपरिहार्य है। प्रो. पुरुषोत्तम अग्रवाल लिखते है लेकिन चाहे 'देहली रेनेसां'' की बात करने वाले उर्दूदां हो, चाहे हिंदी नवजागरण की चर्चा करने वाले हिंदी प्रेमी दोनों अभिषप्त हैं उन्नीसवीं सदी की विरासत को एक आंख बंद करके देखने के लिए। इरादे कितने भी नेक क्यों न हो, मुहावरे जातीय परम्परा या गंगा जमुनी कल्चर के

कितने ही मनोहर क्यों न हों, यह सच्चाई अपनी जगह अटल है कि उन्नीसवीं सदी के नवजागरण के विविध रूपों में जो आत्मबोध व्यक्त होता है, वह विकराल रूप से विभाजित है। सामान्य जनता की एकता की बात करते हुए जो सांस्कृतिक आत्मबोध और साहित्यिक विमर्श विकसित होता है वह उस जनता की परम्परा को बांटते हुए बल्कि इस बांट को आत्मपरिभाषा का आधार बनाते हुए और हम अभिषप्त है अपनी शैक्षिक ट्रेनिंग, बौद्धिक परिवेष और संस्थाओं के वातावरण के चलते कि इस विभाजन और अपवर्जन से जन्मे आत्मबोध को अपना संस्कार मान ले[2]। इस प्रकार से स्पष्ट है कि भारतीय पुनर्जागरण को समझाने के लिए साथ ही इसे समग्रता में समझने का प्रयास भी करना होगा, साथ ही भारतीय परिवेष में इसके औपनिवेशिक पक्षों को भी उजागर करना होगा।

पुनर्जागरण शब्द का प्रयोग आधुनिक भारत के लिए उन व्यापक परिवर्तनों के संदर्भ में किया गया जो 19वीं सदी के दौरान घटित हुए। इस शीर्षक से सैकड़ों पुस्तकें प्रकाशित हुई। परन्तु यदि हम गहराई से देखें और यह सोचें कि इस शब्द के प्रयोग द्वारा उनके लेखक क्या बात अभिव्यक्त करना चाहते है तो हमें दो अर्थ मिलते है जो एक दूसरे से भिन्न ही नहीं विपरीत भी हैं। एक ओर तो लेखकों का वह समुदाय है जो भारतीय चिन्तन के पुनरूत्थानवादी स्वरूप को अभिव्यक्त करने के लिए पुनर्जागरण शब्द का प्रयोग करता है। उनका विश्वास है कि जिस तरह इटली के पंडितों और कलाकारों ने यूनान और रोम के विस्मृत महान सांस्कृतिक दाय की खोज की थी उसी प्रकार भारत में उन्नीसवी सदी के चिन्तकों ने अध्यात्म के उस रत्नकोष की खोज की जो शताब्दियों से विस्मृत था। उनके लिये यह रत्नभण्डार लगभग प्राचीन भारतीय दर्शन, हिन्दू धर्मशास्त्र और प्राचीन संस्कृत साहित्य का ही पर्याय है। वे मानकर चलते हैं कि राममोहन राय से प्रारम्भ होने वाले समस्त बौद्धिक आन्दोलन का केवल एक ही लक्ष्य था–प्राचीन भारतीय संस्कृति के गौरव की पुनर्स्थापना। उनके लिए पुनर्जागरण से अभिप्राय है शाब्दिक और संकुचित अर्थ में उस वस्तु का पुनर्जन्म जो कभी निर्दोष और सम्पूर्ण रूप में विद्यमान थी। दूसरे छोर पर ऐसे लेखक हैं जिनके लिए पुनर्स्थापना का अर्थ है कि नया आलोक, भविष्य की ओर बढ़ने की एक क्रांतिकारी प्रेरणा घिसे हुए रीति रिवाजों की जंजीरों से मुक्ति। इसमें भी यूरोपीय इतिहास से सादृश्य विचारणीय है। यूरोपीय नवजागरण के विषय में लिखने वाले बहुत से लेखक इस शब्द के अभिधार्थ की एकदम उपेक्षा करते जान पड़ते हैं। उनके लिए पुनर्जागरण क्रांति से कम नहीं अतीत के पुनरूत्थान के बजाए अतीत से सम्बन्ध विच्छेद है। इसी प्रकार आधुनिक भारत के विषय में लिखने वाले पिछली डेढ़ शताब्दी की जाग्रति को उस सबका प्रख्यानमात्र मानते हैं जिसने भारत को बाकी दुनिया से विच्छिन्न कर रखा था। उनके लिए पिछले डेढ़ सौ वर्षो का भारतीय चिन्तन मूलतः भारतीय मनसा को दर्शन, विज्ञान और संस्कृति की आधुनिक धाराओं के अनुरूप बनाने का प्रयास है और आज के युग में आधुनिक का अर्थ है पश्चिमी[3]। इस प्रकार उदारवादी जिस प्रकार के सुधारों की बात करते हैं वह यूरोपीय समाज के तर्कवादी अनुभव तथा उसके उदात्त मूल्यों पर आधारित थे इसलिए भारतीय समाज को उन आदर्शों के संन्दर्भ में देखने से एक निराशावादी तस्वीर सामने आती है। अन्ततोगत्वा यह प्राच्य समाज हर दृष्टि से पिछड़ा प्रतीत होने लगता है[4]। वहीं आदर्शवादी विचारदृष्टि बिल्कुल भिन्न दृष्टि प्रतिपादित करती है वह भारतीय परम्परा, उसकी धार्मिक मान्यताओं, उसकी जीवन दृष्टि के पुनरूत्थान पर बल देती ताकि आत्मगौरव के भाव से राष्ट्रीय पुनर्निर्माण की प्रक्रिया को आगे बढ़ाया जा सकें। उसके भविष्य के मार्ग निर्देशन हेतु भूतकाल के प्राचीन आदर्शों को अपनाने का आग्रह किया[5]। इस प्रकार भारतीय पुनर्जागरण की यह दोनों दृष्टियाँ एक दूसरे से भिन्न ही नहीं विपरीत भी हैं।

अर्थान्वयन के आलोक में पुनर्जागरण सम्बन्धी विचारदृष्टि को समझने के लिए उस महत्वपूर्ण अन्तर का स्मरण रखना समीचीन होगा जो भारतीय पुनर्जागरण और यूरोपीय पुनर्जागरण की कालिक परिस्थितियों का निर्माण करते है। 16वीं सदी के यूरोप के राष्ट्र राज्य स्वतंत्र थे और वे स्वेच्छा से इहलोकवादी व्यक्तिवादी जीवन दृष्टि का वरण कर रहे थे। ईसाई जीवन दृष्टि से विलग होने की उनकी इच्छा आत्मप्रसूत थी। 19वीं सदी का भारत पराधीन राष्ट्र था जिस पर आधुनिक यूरोपीय सभ्यता के जीवनादर्श आरोपित किए जा रहे थे। यह आरोपण उसे प्रायः कसमाहट और पीड़ा से भर देता है तथा अनेक अर्न्तद्वन्द विरोधाभासों को जन्म देता है। पुनर्जागरण काल एक क्लान्त–भ्रान्त प्राचीन देष में आधुनिकता के बीजारोपण का काल है और दिशाबोध का भी। यह संविभ्रम का काल भी है

और सम्यक दृष्टि का भीद्य एक प्राचीन राष्ट्र अपने नए संरक्षक के प्रति कभी विश्वास कभी अविश्वास को लेकर गतिमान है परन्तु गतंव्य को लेकर दुविधाग्रस्त हैं[6]

इस प्रकार यदि समग्रता में भारतीय पुनर्जागरण की विचारदृष्टि की समीक्षा की जाए तो भारतीय पुनर्जागरण की विवेचना करने वाली उदारवादी चिंतनधारा भारतीय समाज के विविध पक्षों की किस तरह समीक्षा करती है, इसे जानने की पूर्वपीठिका में अंग्रेजी शिक्षा के प्रारम्भिक प्रभावों की विवेचना आवश्यक लगती है। यह आवश्यक इसलिए है क्योंकि एक नयी शिक्षा पद्धति, एक नए भाषायी माध्यम द्वारा औपनिवेशिक संरक्षकों द्वारा, उपनिवेशित प्रजा को सभ्य बनाने के लिए दी जा रही थी। 21वीं सदी के आज के समय में जब हम औपनिवेशिक राज्य के अमानवीय चेहरे तथा इसकी कुत्सित चालों पर बहस करते हैं तथा फिर भी नव–उपनिवेशवादी भोगवादी कुसंस्कृति से अपने को आजाद कराने में लाचार पाते है तो तब के राजनीतिक रूप से पराजित, आर्थिक रूप से पंगु तथा सांस्कृतिक रूप से निकृष्ट सिद्ध करने वाली साम्राज्यवादी शक्ति के अधीन दिए जा रहे विभिन्न प्रकार के गुलामी के प्रलोभनों ने भारतीय जनमानस की निष्ठाजन्य व्यवस्थाओं में कैसी दरार डाली होगी, इसका सहज अनुमान लगाया जा सकता है।

अंग्रेजी शिक्षा के प्रारम्भिक प्रभाव ने तो भारतीय नौजवानों में एक उथल पुथल पैदा कर दी थी। इसने उनमें सम्पूर्ण व्यवस्था के प्रति वितृष्णा का भाव पैदा कर दिया जिसने पाश्चात्य ज्ञान विज्ञान की सतही जानकारी के आधार पर सम्पूर्ण सामाजिक मान्यताओं को, उसके तात्विक आधारों को संशयवादी दृष्टि से परिभाषित करने लगे। डेकार्ट्स की तरह वह पद्धति में ही संशयवादी न होकर कांट और तार्किक प्रत्यक्षवादियों की तरह निष्कर्ष में भी वह तात्विक प्रश्नों के प्रति संशयवादी बने रहे[7] इस तरह की शिक्षा ने भारतीयों को अन्तर्दृष्टि न प्रदान कर, मात्र अपनी सभ्यता जिसमें शिक्षा को ''प्रज्ञा, शील और समाधि'' जैसे उच्च आदर्शों को ज्ञान देने वाला माना जाता था उसके प्रति आत्मग्लानि ही उत्पन्न की। सारतः कहा जा सकता है कि उसने मात्र जड़ें खोदने का ही काम किया। महात्मा गांधी द्वारा सन 1931 में लन्दन की एक विशिष्ट सभा में कहा गया यह कथन पूर्णतः प्रामाणिक था कि अंग्रेजी राज्य में भारत में शिक्षितों की संख्या घटी है क्योंकि अंग्रेजों ने स्वदेशी विद्या के 'सुन्दर वृक्ष' की जड़ों को खोदकर देखा और फिर वे खुदी हुई जड़े खुली ही रहने दी[8]। इस प्रकार कहा जा सकता है कि ''अठारहवीं सदी के मध्य के बाद का युग हिन्दू धर्म के लिए लगभग अंधकार का युग कहा जा सकता है। तत्कालीन पढ़े लिखे लोगों के मन में यह भावना घर कर गयी थी कि जो कुछ पश्चिम से आया है वही अच्छा और ग्रहण करने लायक है। अपने देश के रीति रिवाजों और आचार विचारों को वे हीन समझने लगे थे। हिन्दू समाज ने शायद पहली बार अपना विवेक खो दिया था। जो धर्म लगातार बाहरी हमलों और विजयों के बाद भी नष्ट न हो सका, उसके अस्तित्व पर ही संकट आ गया था[9]। संस्कृत, अरबी, फारसी जैसे परम्परानिष्ठ साहित्य को दकियानूसी मानकर सेक्सपियर मिल्टन विशेषकर बेन्थम के वाहवाही के गीत गाए जाने लगे[10] इस तरह विभिन्न प्रकार के आसन्न संकटों की परिधि में भारतीय समाज के लिए यह परीक्षा काल था। इस काल में कई महान समाज सुधारकों, क्षकों, तत्वज्ञानियों का अवतरण हुआ जिन्होंने न केवल भारतीय समाज, उनकी संस्कृति सभ्यता पर किये जाने वाले हमलों का जबाब दिया बल्कि काल क्रम में आयी भारतीय समाज की रूढ़िजन्य विकृतियों को भी सुधारने का श्रमसाध्य वीड़ा उठाया। तत्कालीन समाज जिसे सुधारने का प्रयास इन मनीषियों ने किया वह ऐसा समाज था जैसे अर्थहीन आचार के स्वप्नजाल में भारतवर्ष जकड़ा हुआ हो। उसका आलोक प्रायः बुझ चुका था। ऐसे समय भारत का इतिहास निरादर की कालिमा से आच्छन्न था। भारत अपनी वाणी खो चुका था। पृथ्वी के नवीन युग के लिए उसके पास कोई सन्देश नहीं था। .....हमारी आर्थिक, मानसिक आध्यात्मिक शक्ति क्षीण हो चुकी थी।..... हमारे पास ऐसी वाणी नहीं थी जो वर्तमान युग के प्रश्नों का कोई उत्तर दे सके[11]। सोफिया डाब्सन ने उधृत किया कि 18वीं सदी का भारतीय समाज अपने पूर्ण पतनावस्था का समाज था। जिसमें हमारी कुप्रथाएँ ही प्रभावी थी, ज्ञान विज्ञान के साधनों का अभाव था, अंधविश्वास तथा अमानवीय प्रथाएँ पुरोहित वर्ग के कठोर नियंत्रणवश दर्दनाक बनी हुई थीं, इनका कोई निदानात्मक प्रयास सामाजिक संघर्ष पैदा करने को काफी था[12]। भारतीय पुनर्जागरण इस तरह के वातावरण को सुधारने की एक पहल लिए था। इस महती कार्य के लिए अनेकों मनीषियों ने, विभिन्न

प्रकार की संस्थाओं, पृथक–पृथक विचार दृष्टियां, विभिन्न प्रकार के जन–जाग्रति के अभियानों, सुधार कार्यक्रमों आदि के माध्यम से पूर्ण करने का प्रयास किया। उदारवादी जिनसे भारत में सिद्धान्तः पुनर्जागरण की औपचारिक शुरूआत मानी जाती है। इसके प्रथम प्रतिपादक राजा राम मोहन राय थे इनकी मुख्य मान्यताएं ब्रह्मसमाज की मान्यताएं थीं। राजा के पश्चात इन मान्यताओं को थोड़े बहुत परिमार्जन के साथ महर्षि देवेन्द्रनाथ टैगोर तथा केशव चन्द्र ने बंगाल में, महाराष्ट्र में प्रार्थना समाज के तहत न्यायमूर्ति महादेव गोविन्द रानाडे तथा उनके योग्य शिष्य डी. आर. भण्डारकर ने आगे बढ़ाया। पुनर्जागरण की इस प्रारम्भिक धारा को आदर्शवादी एवं गांधीवादी धारा से मुख्य रूप से जो मान्यताएं अलग करती हैं, उन्हें निम्न प्रकार से देखा जा सकता है। प्रथम ब्रिटिश साम्राज्य को आदर्शवादी तथा गांधीवादी अनिष्टकारी मानते हैं। इनके अनुसार ब्रिटिश शासन के कारण भारत सतत रूप से पतन की ओर जा रहा है। इसलिए यह ब्रिटिश शासन के बजाए स्व–शासन पर बल देते हैं। इसके विपरीत उदारवादी ब्रिटिश साम्राज्य को कल्याणकारी मानते हैं। राममोहन राय ने 'क्रिश्चियन पब्लिक' को लिखी अपनी अन्तिम अपील में कहा ''भगवान का शुक्र है कि पूर्ववर्ती शासकों के लम्बे चले आ रहे निरंकुश शासन से देश को मुक्ति मिली और अब देश अंग्रेजों के शासनाधीन है जो स्वयं नागरिक और राजनीतिक स्वतंत्रता से अभिमंत्रित है और जिन्हें दूसरों की स्वाधीनता और सामाजिक उन्नति अभिप्रेत है[13] इसलिए समस्त उदारावादी मात्रात्मक भिन्नता के रहते हुए भारत के पुर्ननिर्माण के लिए अंग्रेजी शासन को वरदान मानते है[14]।

दूसरा, भारतीय समाज की पुनर्रचना किस आधार हो, इस प्रश्न पर जहाँ गांधीवादी तथा आदर्शवादी इस बात पर एकमत है कि एक आत्मवादी सभ्यता का पुनर्निर्माण उसकी सनातन मान्यताओं के आधार पर होना चाहिए, वहीं उदारवादी इससे असहमत हैं। राम मोहन राय ने पुनर्जागरण के प्रारम्भिक काल में एक ओर जहाँ हिन्दू धर्म के शास्त्रीय स्रोतों का गहन अध्ययन किया वहीं दूसरी ओर इस्लाम व ईसाइयत के सिद्धान्तों एवं व्यवहार जगत की समीक्षा करने के उपरान्त एकेश्वरवाद की मान्यताओं या कह सकते है कि तर्कनावाद एवं वैज्ञानिक चिन्तन के आलोक में 'सार्वभौम मानवतावाद' को स्थापित करने का प्रयास किया। ब्रह्मसमाज के तहत हिन्दू धर्म की मान्यताओं को उसके स्वयं के संदर्भ के बजाए अन्य संदर्भों में अधिक देखा गया। इस तरह कह सकते हैं कि ब्रह्मसमाजी आन्दोलन ने परम्परागत धर्मों के साथ आधुनिक वैज्ञानिक मान्यताओं के सन्दर्भ में हिन्दू धर्म का परिष्कार करने का प्रयास किया जिससे हिन्दू धर्म अपने गौरवशाली अतीत की नैतिक मान्यताओं से तो अर्धवंचित हो ही गया तथा साथ ही तर्कबुद्धि की शुष्क वैज्ञानिक क्रीड़ा ने उससे आध्यात्मिक संतुष्टि को भी पृथक करने का कार्य किया[15]।

तृतीय, प्रमुख सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक संस्थाएं किस प्रकार की हो, इस प्रश्न पर जहाँ आदर्शवादी तथा गांधीवादी प्राचीन भारतीय संस्थाओं पर बल देते हैं वहीं उदारवादी नवजागरण के आलोक में विकसित यूरोपीय संस्थाओं को आदर्श मानते हैं। इसके लिए सामाजिक आन्दोलनों एवं ब्रिटिश शासन के प्रयास के तहत इस प्रकार के सुधार अपेक्षित मानते हैं। सामाजिक संस्थाओं के यूरोपीय आदर्श का उद्देश्य भारतीय समाज में व्याप्त विषमताओं तथा कुरीतियों को दूर करना था वहीं राजनीतिक आदर्श का उद्देश्य प्रजातंत्रात्मक उदार शासन की स्थापना करना था। आर्थिक क्षेत्र में मुक्त व्यापार, मुक्त प्रवासन का सर्मथन किया। जो भी यूरोपियों को इस देश में बिना प्रतिबन्ध के बसने देने का विरोध करता है, वह यहाँ के निवासियों की उन्नति का और भावी पीढ़ियां का शत्रु है परन्तु साथ ही एक शर्त है कि यदि यूरोपियों को यहाँ बसाया जाए तो न्याय प्रशासन विधि में तत्काल कुछ परिवर्तन किया जाए[16]। इस प्रकार यहाँ राम मोहन राय यूरोपीय संस्थाओं के आदर्शों की भारत में भी स्थापना की वकालत कर रहे हैं।

चतुर्थ, जहाँ उदारवादी आधुनिक यूरोपीय शिक्षा पद्धति पर बल देते हैं वहीं आदर्शवादी राष्ट्रीय शिक्षा की वकालत करते हैं। यहाँ पर मतभेद का मुख्य तत्व शिक्षा में विद्यमान विषयगत प्रधानता को लेकर है जहाँ आदर्शवादियों का मुख्य जोर भारतीय मूल्यों पर है वहीं उदारवादियों का उदार मूल्यों पर, इसलिए वह नवजागरण काल में विकसित यूरोपीय ज्ञान विज्ञान की शिक्षा विशेषकर गणित, प्राकृतिक विज्ञान, रसायनशास्त्र, मानवक्रिया विज्ञान तथा अन्य लौकिक विषयों को पढ़ाने की वकालत करते हैं न कि इन विषयों के सिवाए प्राचीन विद्याओं पर जोर दिया जाए[17]।

ये मौलिक भिन्नताएं जो उदारवादी धारा के उत्तरार्ध में मुख्य रूप से सामने आयी। इनकी भी पूर्वपीठिका के रूप में उदारवादी चरण के योगदान को स्वीकार करना होगा। पुनर्जागरण की उदारवादी धारा का आरम्भ रात्रि की उस घनघोर बेला में होता है जब पराजित भारत की मनोदशा अंधकार के गहरे रसातल में धंसती जा रही थी। कालचक्र के इस कठिनतम दौर में भारतीय मनीषा के मूर्धन्य, साहसी महानायकों ने भारतीय जनमानस को, उसके आत्मबल को, कालप्रभाव से आयी बुराइयों का जुआं उतार फेकने को तैयार किया। इन राष्ट्रोद्धारकों ने सभी वांछित प्रयासों के साथ भारतीयों के जनजीवन में व्याप्त कठिनाइयों को उनके कारणों एवं निवारणों के परिप्रेक्ष्य में रखकर उन्हें दूर करने का प्रयास किया।

उदारवादी धारा द्वारा किये गये प्रमुख सुधारात्मक प्रयासों को उस आधुनिक ज्ञानमीमांसीय दृष्टि के सन्दर्भ में समझा जा सकता है। जिसके प्रति उन्होंने पूर्ण निष्ठा व्यक्त की। यह ज्ञानमीमांसा जहाँ इहलौकिक संदर्भ में अनुभववाद पर आधारित है वहीं पारलौकिक या आध्यात्मिक संदर्भ में वह आधुनिक बुद्धिवाद की मान्यताओं का समर्थन करती है। जिस तरह पाश्चात्य दर्शन जगत में इमैन्युअल कांट ने बुद्धिवाद एवं अनुभववाद में समवन्य स्थापित किया उसी तरह भारतीय पुनर्जागरण की उदारवादी धारा के समर्थकों ने इस्लाम, ईसाइयत तथा हिन्दू धर्म के साथ आधुनिक वैज्ञानिक मूल्यों में समन्वय स्थापित करने का प्रयास किया। उदारवादियों में राम मोहन राय, देवेन्द्रनाथ टैगोर तथा केशवचन्द्र सेन क्रमशः मुख्य रूप से इस्लाम, औपनिषदिक सूफिज्म, तथा ईसाइयत से ओतप्रोत रहे वहीं प्रार्थनासमाजी रानाडे पाश्चात्य वैज्ञानिकता से अधिकाधिक प्रभावित रहे। इस तरह इन्होंने जब सार्वभौम मानवीय मूल्यों के आलोक में भारतीयों को पिछड़ा हुआ महसूस किया तो वैज्ञानिक मानववादी दृष्टि से इसके सुधार का प्रयास किया। इनके सुधार के प्रयासों को इस प्रकार देखा जा सकता है।

सर्वप्रथम उदारवादियों ने संस्थाजन्य बुराइयों को नवीन संस्थात्मक प्रयासों द्वारा दूर करने का प्रयास किया जिसकी परिणति ब्रह्मसमाज, तत्वबोधिनीसभा, प्रार्थना समाज आदि में देखी जा सकती है। ब्रह्मसमाज की स्थापना राजा राम मोहन राय द्वारा 20 अगस्त 1828 ई. को की गई। इसका उद्देश्य तत्कालीन हिन्दू समाज की बुराइयों जैसे सती प्रथा, बहुविवाह, बाल विवाह, जाति भेद, अस्पृश्यता को दूर करना था। राजा का मानना था कि हिन्दू समाज में विद्यमान सभी बुराइयों को धर्म की आड़ में संचालित किया जाता है इसलिए 1828 में राम मोहन राय ने लिखा "मुझे बड़े दुख के साथ यह कहना पड़ता है कि हिन्दुओं द्वारा अपनाए गए धर्म की वर्तमान पद्धति से उनके राजनीतिक स्थानों की सम्यक सिद्धि नही हो सकती, जातिगत भेदभाव ने जिसने उन्हें असंख्य वर्गो में विभाजित कर दिया है, मेरे विचार से यह आवश्यक है कि कम से कम उनके राजनीतिक लाभ और समाज सुधारों के लिए उनके धर्म में कुछ परिवर्तन होना चाहिए[18]। इस प्रकार कहा जा सकता है कि ब्रह्मसमाज आन्दोलन का एक व्यापक उद्देश्य था जिसमें सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक सुधार की पूर्वशर्त के रूप में धर्म सुधार शामिल था। धर्मसुधार का उद्देश्य धार्मिक जीवन में व्याप्त अंधविश्वासों कुरीतियों आदि को दूर करना था इसके लिए उन्होंने विभिन्न स्रोतों एवं विचार दृष्टियां के आलोक में धर्मसुधार का प्रयास किया और अन्ततः तार्किक मानवतावाद की स्थापना की[19]। अपनी पुस्तक 'तोहफात' में राजा ने सभी धर्मों में व्याप्त विकृतियों, भ्रष्टाचार, धर्म को कलंकित करने वाले विचार, पाखण्ड, अंधविश्वास, रूढ़ियों पर प्रहार किया। उनका मानना था कि तर्कशक्ति के अभाव में लोग अंधविश्वास को स्वीकार करते हैं उन्होंने लिखा ''आदत और रीति रिवाजों के प्रभाव तथा कार्यकारण भाव सम्बन्ध पर विचार किए बिना वे यह विश्वास करने लगते है कि नदी में नहाने और वृक्ष की पूजा करने अथवा भिक्षु बन जाने और पुरोहितों से क्षमादान खरीद लेने आदि से ही जीवन भर के पाप धुल जाते हैं और मुक्ति मिल जाती हैं और वे समझते है कि इस मुक्ति का कारण इन वस्तुओं की शक्ति और उन पुरोहितों की चमत्कार षक्ति है जिनमें वे विश्वास करते थे और यह उनकी अपनी आस्था और सनक का परिणाम नहीं परन्तु इन्हीं बातों का उन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता जो इनमें विश्वास नहीं करते हैं। यदि इन काल्पनिक बातों में वस्तुतः कोई शक्ति होती तो उसका प्रभाव किसी राष्ट्र विशेष की आदतों और विश्वासों तक सीमित न रहकर विभिन्न विश्वासों वाले सभी राष्ट्रों पर समान रूप से पड़ता क्यांकि यद्यपि प्रभावित होने वाले व्यक्तियों की क्षमताओं के अनुसार मात्रा न्यूनाधिक हो सकती है पर किसी खास विश्वासी के विश्वास पर निर्भर नहीं। यदि कोई विष को मिष्ठान मानकर खा ले

तो वह खाने वाले पर अपना प्रभाव अवश्य डालेगा और उसे मार देगा[20]।

निराकार एकेश्वरवाद का समर्थन करते हुए राजा राम मोहन राय ने मूर्तिपूजा का प्रबल खण्डन किया। यहाँ इन्हें आर्यसमाजियों का पूर्ववर्ती कहा जा सकता है। उन्होनें यथासम्भव मूर्तिपूजा के पक्ष में जितने भी तर्क थे सबका खण्डन किया जैसे, ब्रह्म का प्रत्यक्ष ज्ञान संम्भव नहीं इसलिए मूर्तियां आवश्यक हो जाती है। इसके उत्तर में राजा राम मोहन राय ने उपनिषद प्रमाण प्रस्तुत कर कहा ''केवल आत्मन की पूजा करो'' और पूंछा क्या धर्मग्रन्थ आपसे असम्भव कार्य करने को कहते है? क्या आप धर्मग्रन्थों पर ऐसी असंगति का आरोप लगाना चाहते है? इसके अतिरिक्त ईषोपनिषद ने पुराणों तथा तंत्रषास्त्र की आलोचना कीं[21]। इस प्रकार की दोषजनित मान्यताओं का खण्डन कर राम मोहन राय ने ब्रह्मसमाज के घोषणा पत्र में स्पष्ट किया ''कोई खुदी हुई मूर्ति समाज में नहीं लायी जाएगी। केवल ऐसे ही प्रवचन, प्रार्थना या भजन प्रस्तुत किए जायेंगें जो संसार के सृष्टा एवं रक्षक के ध्यान में प्रवृत्त करते हो। दानशीलता, नैतिकता, पवित्रता, परोपकार, शील के लिए सभी धर्मां के मतां के मनुष्यों के बीच एकता के बंधन सुदृढ़ करने की प्रेरणा देते हों, अन्य नहीं''[22]

इस प्रकार अपना दृष्टिकोण स्पष्ट करने और प्रचलित धार्मिंक चिन्तन और व्यवहार से अपने आपको अलग करने के बाद घोषणा पत्र में आगे कहा गया ''किसी ऐसे जीवित या निर्जीव पदार्थ का जिसकी पूजा होती रही है या होती है, न तो अपमान किया जाएगा न उसके विषय में तिरस्कार या घृणापूर्वक कोई बात कही जाएगी।''[23] राजा राम मोहन राय द्वारा स्थापित ब्रह्म समाज की मान्यताओं को क्रमशः देवेन्द्रनाथ टैगोर और केशवचन्द्र ने आगे बढ़ाया। देवेन्द्रनाथ जिन्होंने स्वयं द्वारा स्थापित तत्वबोधिनी सभा के साथ ब्रह्मसमाज में प्रवेश किया था, इन्होंने राजा की मृत्यु के पश्चात ब्रह्मसमाज की बागडोर सम्भाली। इनके नेतृत्व में समाज ने ''यह माना कि वेद, उपनिषद और दूसरे प्राचीन ग्रन्थ अकाट्य नहीं हैं। सर्वोच्च सत्ता तो तर्क और अन्तरात्मा ही है। प्राचीन ग्रन्थों को उसी हद तक मानना चाहिए, जहाँ तक वे अपनी आत्मा की आवाज से मेल खाते हों।'' ''यह उपनिषद् हमारी आवश्यकताओं को पूरा नहीं कर सकते। हमारे मन को संतोष नहीं दे सकते''। इस तरह महर्षि देवेन्द्रनाथ टैगोर ने ब्रह्मसमाज को वेद के बजाए अन्तःप्रेरणा के सिद्धान्त पर स्थापित किया[24]'' इसके बावजूद वह इस बात के लिए उत्सुक थे कि अधिक से अधिक हिन्दूशास्त्र ग्रन्थों को ब्रह्मसमाज का आधार बनाया जाए।..... इसके लिए उन्होंने उपनिषदों स्मृतियों महाभारत तथा अन्य आर्य ग्रन्थों के अंषों से 'ब्रह्मधर्म' नामक पुस्तक लिखी। यह भी स्पष्ट है कि महर्षि देवेन्द्रनाथ केशव बाबू के ईसाई धर्म के प्रति रूझान को पसंद नहीं करते थे। इनका मानना था कि हिन्दू धर्म में सुधार बहुत धीरे–धीरे तथा सावधानी के साथ किया जाए। इस तरह वह जोर जबरदस्ती से सुधार के पक्ष में नहीं थे, इसलिए उन्होंने अन्तरजातीय विवाह का भी समर्थन नहीं किया''[25] महर्षि के पश्चात ब्रह्मसमाज की बागडोर केशवचन्द्र सेन के हाथों में आयी। रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने लिखा कि राममोहन ने द्वारा उन्मुक्त कर दिया था, केशव आये और बौद्धिक क्षितिज का विस्तार हुआ[26] अन्य लेखक ने लिखा "केशव के प्रयत्नों से ब्रह्मसमाज की यांत्रिक सार संग्रही वृत्ति ने एक रासायनिक प्रक्रिया का रूप धारण कर लिया[27] केशव चन्द्र सेन का कहना था कि ब्रह्मधर्म का सार दो अवधारणाओं में रखा जा सकता है ईश्वर का पितृत्व तथा मानव का भ्रातत्व। वह इसे 'मानवीय कैथोलिकवाद' भी कहते थे। यहां एक बात स्पष्ट है कि केशव के चिन्तन के समस्त पक्षों पर ईसाई धर्म का तीव्र प्रभाव रहा''[28] उन्होंने कहा ''भारत पर किसका शासन है? राजनीति या कूटनीति का नहीं बल्कि क्राइस्ट का है। जीसस के अतिरिक्त कोई अन्य इस चमकीले मूल्यवान रत्न भारत के योग्य नहीं और जीसस को यह अवष्य मिलेगा''[29]। इस प्रकार केशवचन्द्र सेन तर्कनावाद एवं आध्यात्मिकता दोनों को साथ लेकर आते हैं परन्तु उनकी आध्यात्मिकता ईसाइयत के सापेक्ष ही है[30] केशव के समय में ही ब्रह्मसमाज दो धड़ों में बट गया। साधारण ब्रह्म समाज तथा आदि ब्रह्म समाज। केशवचन्द्र सेन के नेतृत्व वाली शाखा आदि ब्रह्म समाज तथा साधारण ब्रह्म समाज का नेतृत्व आनंद मोहन बसु तथा पंडित शिवनाथ शास्त्री ने किया[31] दोनों में भेद का आधार उनकी धार्मिक सिद्धान्तों की स्वीकृति था। ध्यातव्य है कि ''ब्रह्म समाज उस समय भारत में प्रचलित वैष्णव, शैव और शाक्त सम्प्रदायों से निम्न रूप में भिन्न था– (क) वह किसी धर्म ग्रन्थ को अकाट्य नहीं मानता था। (ख) उसका अवतारों में विश्वास नहीं था। (ग) उसमें बहु–सम्प्रदायवाद और मूर्ति पूजा को निदंनीय माना

गया है। (घ) उसमें जाति–पांति के बन्धनों को स्वीकार नहीं किया गया। (ड़) उसमें कर्मवाद तथा पुनर्जन्म के सिद्धान्तों पर विश्वास समाज के सदस्यों की मर्जी पर छोड़ दिया गया। इसने तीन प्रकार से हिन्दू धर्म की सेवा की। (1) उसने समाज सुधार को लोक प्रिय बनाया। (2) बीच का मार्ग तैयार कर हिन्दुओं को ईसाई बनने से रोका। (3) रूढ़िवादी हिन्दुओं में अपना संगठन व अपने धर्म के पुनरूत्थान का प्रयत्न करने की प्रेरणा पैदा की''[32]

केशवचन्द्र सेन की प्रेरणा से प्रार्थना समाज की स्थापना बम्बई में 1867 में डॉ. आत्माराम पाण्डुरंग ने की। महादेव गोविन्द रानाडे तथा भण्डारकर के इसमें प्रवेश से इसे नई शक्ति प्राप्त हुई[33] इसके चार उद्देश्य थेः– (1) जाति भेद का विरोध (2) विधवा विवाह का प्रचलन (3) स्त्री शिक्षा को प्रोत्साहन (4) बाल विवाह का उन्मूलन[34] ''परन्तु इन लोगों ने अपने आपको किसी नवीन धर्म का अथवा हिन्दू धर्म से बाहर अथवा साथ–साथ किसी नवीन मत के अनुयायी के रूप में नहीं माना अपितु केवल इस धर्म के अन्दर ही एक आन्दोलन के रूप में इसे स्वीकार किया[35] एक ईश्वरवाद के अतिरिक्त महाराष्ट्र में समाज सुधार 'कार्य न कि विश्वास' पर ही बल दिया गया। उनका विश्वास था कि ईश्वर का सच्चा प्यार उसके मनुष्यों की सेवा में है। वे हिन्दू धर्म के रूढ़िवादियों से टक्कर नहीं लेना चाहते थे, अपितु शिक्षा तथा समझाने बुझाने पर बल देते थे[36] प्रार्थना समाज ने ब्रह्म समाज द्वारा प्रारम्भ किए गए धर्म सुधार प्रयासों को तार्किकता के ही आलोक में और आगे बढ़ाने का प्रयास किया। कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि उसने धार्मिकता के दायरे को बढ़ाते हुए मानवीय उन्नति की ज्ञान प्रकाशनाओं को प्रतिपादित करने वाले सभी धार्मिक स्रोतों के प्रति ग्रहणीय इच्छा दर्शायी। भण्डारकर के शब्दों में ''प्रश्न यह है कि आप इस नए धर्म को स्वीकार करेगें जो उपनिषदों के, गीता के और मध्ययुगीन सन्तों के उपदेशों के साथ–साथ बौद्ध धर्म और बाइबिल के कुछ विचारों पर आधारित है, या आप उन सब धर्मों का अनुसरण करेंगे जो हिन्दू धर्म के अन्तर्गत आते हैं ? आप केवल उस यांत्रिक कर्मकाण्ड को स्वीकार करेंगे जिसका आपकी नैतिक उन्नति के साथ कोई सम्बन्ध नहीं, अथवा आप प्रार्थना समाज द्वारा प्रतिपादित नैतिक नियमावली का पालन करेंगे, केवल जो हृदय को शुद्ध करने और उदात्त बनाने तथा आपको अपने जीवन के कर्त्तव्यों को पूरा करने के लिए तैयार करने के उद्देश्य से ही बनायी गयी है[37] समन्वय और समाकलन की जिस भावना से रानाडे तथा उनके शिष्यों ने बल प्राप्त किया वह थी कि ''हम तुकाराम की भांति प्राचीन ऋषियों की शिक्षाओं पर चले और देशी तथा विदेशी, इस समय उपलब्ध सभी सूत्रों से सीखें। वैदिक ऋचाओं से हम यह सीखें कि जिस मंदिर में हमें ईश्वर मिलेगा और हम उसकी पूजा कर सकेंगे, वह मनुष्य का हृदय और जगत हैं, बलिमूलक धर्म से हम सीखें कि आध्यात्मिक पूजा के सुकुमार विरवे को नष्ट नहीं करना चाहिए, बौद्ध धर्म से सीखें कि धर्म किसी वर्ग विशेष की बपौती नहीं है और उच्च नैतिक भावना तथा कर्म के बिना निस्तार है तथा शून्य है, बौद्ध धर्म के पतन से सीखें कि निरी नैतिकता से न तो आत्म का उत्थान होगा न हृदय की आकांक्षा पूरी होगी, उपनिषदों से सीखें कि हृदय की निर्मलता से ईश्वर मिलता है और ध्यान द्वारा हमारा उससे साक्षात्कार भी होता है और आत्मा का उन्नयन भी, गीता और भक्ति सम्प्रदायों से सीखें कि मनुष्य की मुक्ति ईश्वर पर –पिता, सखा और भ्राता पर निर्भर है..... इसके अतिरिक्त अन्यत्र सूत्रों से भी सीखें''[38]

यह सब विभिन्न शिक्षाएं एक दूसरे से मेल कैसे खाती है, यह बात न तो प्रार्थना समाज न उसके प्रचारक ही समझा सकें। परन्तु समन्वय की इसी भावना से परिचालित होकर तैलंग, अगरकर, ज्योतिबाफुले तथा गोपाल हरिदेशमुख तथा अन्य तर्कनावादियों ने अपने अपने क्षेत्र में बड़े उत्साह से कार्य किया[39]। द्वितीय संवैधानिक तथा आन्दोलनात्मक प्रयासों के तहत सामाजिक कुरीतियों को दूर करने के प्रयास मुख्यतः शामिल थे। सामाजिक संरचना के तहत यह कुरीतियां समाज के सभी पक्षों से प्रभावित होती तथा प्रभावित करती थी, समग्रतः इनका परिणाम राष्ट्रीय अवनति था। इसमें मुख्यतः महिलाओं की स्थिति से सम्बन्धित तथा समाज की पदसोपानीय संरचना तथा इसके परिणामस्वरूप उत्पन्न हुई अस्पृश्यता की समस्या थी। इन सुधारों के मुद्दों पर 19वीं 20वी सदी के सभी समाज को सुधारकों की राय मूलतः इन कुरीतियों के दूर किए जाने के पक्ष में थी। मतभेद उनके तरीके, उनकी विचारदृष्टि को लेकर था। उदारवादियों से स्त्रियों की स्थिति में सुधार के सम्बन्ध सती प्रथा का अन्त, स्त्री शिक्षा, बाल विवाह पर रोक तथा विधवा विवाह के गंभीर मुद्दों को उठाया। इसके लिए जहां उन्होंने विभिन्न संस्थानात्मक आधारों पर समाज को जाग्रत

करने तथा अपनी कुरीतियों को छोड़ने हेतु राजी करने का प्रयास किया वहीं दूसरी ओर इन्होंने ब्रिटिश शासन से इन समस्याओं से निपटने हेतु कानूनी उपाय करने हेतु अपील की। समाज सुधार सम्बन्धी सभी संस्थानात्मक प्रयासों को ब्रह्म समाज के समाज सुधार सम्मेलन के घोषणा पत्र में देखा जा सकता है। ''जन्म, विवाह, मृत्यु आदि के अवसरों पर किए जाने वाले खर्च में कटौती, विवाह की उम्र की सीमा में वृद्धि, बाल विधवाओं का पुनर्विवाह, अन्य देशों की सामुद्रिक यात्रा से उत्पन्न सामाजिक अपात्रताओं का समापन, अन्तर्जातीय विवाह सम्बन्ध पर बल, बेमेल विवाहों को हतोत्साहित करना, उस कुप्रथा को समाप्त करने पर जिससे लड़की के विवाह पर दहेज देना आवश्यक हो, बहु विवाह का समापन, हिन्दू मुसलमानों के धार्मिक विवादों के हल करने हेतु पंचायतों का गठन तथा पंचायतों को यह सलाह कि वह उनमें सौहार्द्र पैदा करें, महिलाओं में उच्च शिक्षा को बढ़ावा देना, विधवा पुनर्विवाह विधवाओं के पुनर्वास हेतु संरक्षण एवं प्रशिक्षण तथा जाति प्रथा को समाप्त करना[40]। समाज सुधार के यह मुद्दे न केवल ब्रह्म समाज बल्कि प्रार्थना समाज, आर्य समाज, दलित जाति मण्डल, समाज सेवा संघ, दयाल सिंह प्रन्यास आदि द्वारा बड़े पैमाने पर प्रचारित किए गए।

समाज सुधारकों के इन प्रयासों के परिणामस्वरूप ''अंग्रेज कम्पनी जो प्रायः भारत की प्रथाओं के प्रति तटस्थता रखती थी, उसके कार्नवालिस, मिण्टों तथा लार्ड हेस्टिंग्ज जैसे गर्वनर जनरलों ने सती प्रथा को रोकने का प्रयास किया विशेषकर सती होने के समय पुलिस अधिकारियों की उपस्थिति ताकि सती होने वाली स्त्री को विवश न किया जा सके[41]। राजा राम मोहन राय ने 1818 में 1831 तक बंगला में तीन तथा अंग्रेजी में चार कुल सात ग्रन्थ सती प्रथा के विरोध में प्रकाशित किए[42]। राम मोहन राय के इन्हीं प्रयत्नों के चलते विलियम बेंटिक द्वारा 1829 में सती प्रथा को कानून द्वारा समाप्त कर दिया गया। 1829 के 17वें नियम के अनुसार विधवाओं को जीवित जलाना बंद कर दिया गया और न्यायालयों को आज्ञा हुई कि ऐसे मामलों में सदोष मानव हत्या के अनुसार मुकदमा चलाए और दोषियों को दण्ड दें। पहले यह बंगाल के लिए था बाद में इसे सम्पूर्ण ब्रिटिश भारत में लागू कर दिया गया। श्रीमती फ्रांसिस मार्टिन ने 'बंगाल हरकरा' नामक समाचार पत्र में लिखा था ''महान हिन्दू दार्शनिक राजा राम मेहन राय की विशेष सहायता के बिना शायद कभी भी अंग्रेज सरकार के लिए कानूनन सती प्रथा रद्द करना संम्भव न होता परन्तु इनकी यह देन किसी के द्वारा स्वीकृत नहीं की गयी है।''[43] भारतीय महिलाओं के अधिकारों के विषय में दूसरी ठोस विजय ईश्वर चन्द्र विद्यासागर को उस समय प्राप्त हुई जब 1856 में सरकार ने विधवा पुनर्विवाह अधिनियम पास किया इनके साथ ही इस दिशा में विशेष प्रयत्न प्रोफेसर डी के कर्वे तथा वीरे सालिंग पुण्टलू ने भी किया। सिविल मैरेज एक्ट (1872) तथा सम्मति आयु अधिनियम (1891) के द्वारा विवाह की आयु निश्चित कर दी गयी। इस प्रकार के सरकारी प्रयासों के परिणाम स्वरूप हिन्दुओं में सामाजिक सुधार को बढ़ावा दिया गया, जिसके प्रेरणा स्रोत निसन्देह उदारवादी ही थे।

समाज सुधार का दूसरा प्रमुख पहलू जाति व्यवस्था में सुधार से सम्बन्धित था, जिसे उदारवादियों ने प्रमुखता से उठाया। यह जाति व्यवस्था की बुराइयों को मनुष्य के भौतिक एवं आध्यात्मिक पतन की एक निश्चित बुराई मानते थे[44]। राजा राम मोहन राय का मानना था कि जाति प्रथा के कारण भारतीय राजनीतिक जीवन पर घातक प्रभाव पड़ा है तथा देश का नुकसान भी हुआ हैं। अपने मित्र को पत्र में उन्होंने लिखा कि ''जाति प्रथा के कारण (हिन्दू) असंख्य जातियों और उपजातियों के बंट गये और देशभक्ति की भावना से वंचित हो गये हैं''[45] राममोहन राय ने जाति पांति विरोधी संस्कृत ग्रन्थ 'वज्र सूची' का सरल अनुवाद कर जनता में बंटवाया, ... वज्रसूची में ब्राह्मणों के बारे में कहा गया है शास्त्र का कहना है कि ''जन्म से सभी शूद्र होते है, उपनयनादि संस्कार होने पर द्विज कहलाते है। वेदाभ्यास से विप्र और ब्रह्म का ज्ञान प्राप्त होने पर ब्राह्मण बन सकते है अर्थात ब्रह्मनिष्ठ व्यक्ति ही ब्राह्मण है''[46] राजा राम मोहन राय के जाति प्रथा विरोधी अभियान को उनके पश्चात् 19वीं एवं 20वीं सदी में बड़े पैमाना पर चलाने का प्रयास किया गया। इसी महत्वपूर्ण कार्य के परिणामस्वरूप आज जाति प्रथा की बुराईयों जैसे अस्पृश्यता आदि को पूर्ण रूप से भले ही समाप्त न किया जा सका हो परन्तु व्यापक पैमाने पर इस बात को स्वीकृति मिली कि यह समस्या समाज जनित है तथा इसके जो अलौकिक आधार गिनाए जाते थे, वह आज स्वीकृत नहीं किए जा सकते है। इस तरह यह भारतीय सामाजिक मानदण्डों का आधुनिक समाज

की ओर सबसे सशक्त क्रांन्तिकारी विस्थापन माना जा सकता है।

उदारवादी धारा के अन्तर्गत राजनीतिक आर्थिक विचारों की जो तस्वीर उभरती है वह बहुत जटिल है क्योंकि एक ओर उदारवादी यूरोपियन स्वरूप की राजनीतिक आर्थिक संस्थाओं के प्रति विशेष आकर्षण प्रदर्शित करते है तथा ब्रिटिश शासन से भारत में उन राजनीतिक और आर्थिक आदर्शों की स्थापना की अपील करते हैं जिन्हें वह लौकिक जीवन के सर्वश्रेष्ठ जीवनादर्श मान चुके थे, दूसरी ओर वह ऐसे साधन अपनाने का भी आग्रह करते हें, जो पूर्णतः ब्रिटिश शासन पर ही निर्भर है। साथ ही वह ब्रिटिश शासन के उन कृत्यों की आलोचना भी करते है जिनकी वजह से भारतीय एवं यूरोपीय प्रजा के मध्य भेद किया जाता था। इस प्रकार कहा जा सकता है कि राजनीतिक और आर्थिक क्षेत्र में भी उदारवादी संविधानवादी ही है। भारत में उदारवादी राजदृष्टि के प्रथम प्रतिपादक राजा राम मोहन जिन्हें सुरेन्द्र नाथ बनर्जी ने ''भारत में सांविधानिक आन्दोलन का जनक'' कहा उनके द्वारा प्रतिपादित राजनीतिक आदर्श भारतीय उदारवाद के आधार स्तम्भ बन गए। राम मोहन राय ने ''लॉक, ग्रोसियस तथा टामस पेन की भांति प्राकृतिक अधिकारों की पवित्रता को स्वीकार किया। उन्हें जीवन, स्वतन्त्रता तथा सम्पत्ति धारण करने के प्राकृतिक अधिकारों में ही विश्वास नहीं था, अपितु उन्होंने व्यक्ति के नैतिक अधिकारों का भी समर्थन किया, किन्तु उन्होंने अपने प्राकृतिक अधिकारों के सिद्धान्त को प्रचलित भारतीय लोक संग्रह के आदर्श के ढांचों के अन्तर्गत ही रखा अतः अधिकारों और स्वतन्त्रता के समर्थक होते हुए भी उन्होंने आग्रह किया कि राज्य को समाज सुधार तथा शैक्षिक पुनर्निर्माण के लिए कानून बनाना चाहिए। इस प्रकार उन्होने अधिकारों के साथ सामाजिक उपयोगिता तथा मानव कल्याण की धारणाओं का संयोग स्थापित कर दिया''[47] स्वतंत्रता को वह चिरंजीवी आदर्श मानते थे[48]। राम मोहन राय के पश्चात विकसित हुई उदावादी धारा के चिन्तकों विशेषकर केशवचन्द्र सेन, दादा भाई नैरोजी, महादेव गोविन्द रानाडे, फिरोजशाह मेहता, सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, गोखले आदि ने ''अंग्रेजी शासन के प्रति निष्ठा, उनकी न्यायप्रियता में विश्वास, क्रमिक सुधारों में विश्वास''[49] ब्रिटिश शासन से विधान परिषद में सुधार, कार्यपालिका का न्यायपालिका से पृथक्करण, भारतीयों को उच्च पद, भूमि सुधार, उद्योग धन्धों का संरक्षण तथा जूरी प्रथा[50] की स्थापना की मांग की। इनकी यह मांगे इस भावना पर आधारित थीं कि ब्रिटिश शासन भारतीयों की भलाई के लिए शासन कर रहा है। ''केशवचन्द्र सेन के मत में अंग्रेजी शासक ईश्वर के दूतों के समान थे। उन्होंने देश से अज्ञानता और अंधकार को दूर किया। यही कारण था कि केशव चन्द्र सेन ने ब्रिटेन के प्रति भक्ति का समर्थन किया। अपने 'न्यू डिस्पेंशन न्यूज पेपर' के प्रथम अंक में ही केशव चन्द्र सेन ने मनुस्मृति का स्मरण दिलाने वाली भाषा में घोषणा की कि लोकिक प्रभु ईश्वर का प्रतिनिधि होता है इसलिए वह भक्ति तथा श्रद्धा का अधिकार रखता हैं। उनके अनुसार राजद्रोह राजनीतिक अपराध ही नही अपितु ईश्वर के विरूद्ध पाप था। राजद्रोह इतिहास में ईश्वर की सत्ता मना करने के बराबर है। केशवचन्द्र सेन ने भावुकता के साथ कहा कि ''हम अपनी रानी को माता सदृश प्रेम करते है।'' यह धारणा कि ब्रिटिश लोगों के सम्पर्क के मूल में ईश्वरीय प्रयोजन एवं आदेश है, रानाडे को प्रभावित किया तथा उनसे इस विचार को फिरोजशाह मेहता तथा गोखले ने ग्रहण किया''[51]। आर्थिक चिन्तन के क्षेत्र में राम मोहन राय की मुक्त व्यापार की ब्रिटिश सरकार की नीति के समर्थन की अवधारणा को परवर्ती उदारवादी चिन्तकों ने गहन समीक्षा का केन्द्र बनाया तथा विविध प्रकार से इस प्रकार की नीति में दोष दिखाकर ब्रिटिश शासन से भारतीय उद्योगों को संरक्षण देने की मांग की। रानाडे ने एडम स्मिथ एवं रिकार्डो के 'लेसेजफेयर सिद्धान्त' के समक्ष चुनौती प्रस्तुत की उन्होंने कहा यह भारतीय समाज के सन्दर्भ में उपयुक्त नहीं क्योंकि क्लासिकल अर्थशास्त्र के सभी सिद्धान्त उसी समाज के लिए उपयुक्त है जहां व्यक्ति केन्द्र में, उसमें आर्थिक चयन की योग्यता तथा प्रतिस्पर्धा की भावना एवं सामर्थ्य होद्य दादा भाई नैरोजी तथा गोपाल कृष्ण ने भी इसी तरह ब्रिटिश मुक्त व्यापार से उत्पन्न दोषों का खुलासा किया। भारत की आसन्न गरीबी तथा उससे उत्पन्न भारतीय जीवन के दुखों को दूर करने हेतु भारतीय मनीषियों ने ब्रिटिश सरकार से अनेक सुधारों को अपनाने की सलाह दी जैसे सैन्य खर्च में कटौती, भारतीय व्यापार का संरक्षण, आयात शुल्कों पर बढ़ोत्तरी परन्तु एक औपनिवेशिक स्वरूप के राज्य में यह संभव नहीं हो सका[52]।

इस तरह उदारवादी चिंतन धारा के विभिन्न पक्षों के अवलोकन के पश्चात् यह कहा जा सकता है कि यह

धारा अपने स्वरूप में सुधारवादी ही रही जिसका उद्देश्य ब्रिटिश शासन से कुछ रियायतें हासिल करना था। उदारवादियों की कटु आलोचना राष्ट्रवादियों द्वारा की गई तथा उन्होंने राष्ट्रीय स्रोतों के आधार पर उन सभी प्रश्नों का जवाब देने का प्रयास किया, जिन्हें उदारवादियों तथा ईसाई मिशनरी के प्रचारकों ने उठाया परन्तु हम उदारवादियों की राष्ट्रभक्ति पर संदेह नहीं कर सकते परन्तु यह तो मानना ही होगा कि समय काल के उस प्रारम्भिक दौर में वह ब्रिटिश शासन के उन निहितार्थों को समझने में असफल है, जिन्हें आगे की एक सदी तक यातना स्वरूप झेलना पड़ा परन्तु चिन्तन की एक लहर लाने में उदारवादियों ने जो अप्रतिम योगदान दिया उसके लिए वह सदैव आदरणीय रहेंगे तथा राष्ट्र उनका नमन करता रहेगा।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *इमैनुअल वालरस्टीन – 'द एण्ड ऑफ द वर्ल्ड एज़ वी नो इट' मिनिसोटा विश्वविद्यालय लंदन 1991 पृ. 1।*
2. *पुरुषोत्तम अग्रवाल –'विचार का अनंत' राजकमल नई दिल्ली पृ.–21 22।*
3. *वी. एस नरवडे.– आधुनिक भारतीय चिन्तन राजकमल नई दिल्ली 2003 पृ. 8।*
4. *हरिहर दास एवं सश्मिता महापात्रा – 'इण्डियन रेनेसां एण्ड राजा राममोहन राय', पोइन्टर पब्लिशर जयपुर 1996 पृ. 153।*
5. *हरिहर दास एवं सश्मिता महापात्रा पूर्वोक्त पृ. 156।*
6. *राकेश मिश्र – 'भारतीय पुनर्जागरण एवं डा. आनंद कुमारस्वामी'(शब्दयोग दि. 2009) करोलबाग नई दिल्ली पृ. 121–130।*
7. *एम. ए. बूच. – 'राइज एण्ड ग्रोथ ऑफ इण्डियन लिब्रलिज्मः फ्राम राममोहन राय टु गोखले, १९३९ आत्माराम प्रिंटिंग प्रेस बड़ोदा, पृ. 54–55।*
8. *धर्म पाल– 'भारत का स्वधर्म' भारत पीठम, 2002 पृ. 46।*
9. *वियोगी हरि (स.) 'हमारी परम्परा' – सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन 2002 पृ. 522।*
10. *पी. सी. मजूमदार – 'लाइफ एण्ड टीचिगं ऑव केशव चन्द्र सेन' 1937 उधृत एम. ए. वूच द्वारा पूर्वोक्त।*
11. *रवीन्द्रनाथ टैगोर – रवीन्द्र के निबन्ध भाग (1) अनुवादक विश्वनाथ नरवड़े प्रथम संस्करण (नई दिल्ली साहित्य अकादमी 1977) पृ. 36–45।*
12. *सोफिया डाब्सन– राजा राममोहन राय के जीवन एवं पत्रों से ग्रहीत, सम्पादक दिलीप विश्वास एवं प्रभात गंगोपाध्याय (साधारण ब्रह्म समाज द्वारा प्रकाशित 1962) पृ. 61–62।*
13. *अर्जुन मिश्र– 'उपनिवेशवाद साम्राज्यवाद एवं भारतीय पुर्नजागरण' ज्ञानदा प्रकाशन 2006 पृ. 45*
14. *एडमंड बर्क, ऐनीबेसेन्ट, बर्डवुड जैसे प्रख्यात विद्वानों ने अंग्रेजो की यह कहकर जमकर आलोचना की कि अंग्रेजी शासन के दौरान एक प्राच्च सभ्यता अपने पतन की ओर बढ़ती जा रही है।*
15. *एम. ए. बूच पूर्वोक्त पुस्तक पृ. 63।*
16. *अर्जुन मिश्र पूर्वोक्त पुस्तक पृ. 45।*
17. *थॉमस एंड पंथमः पोलिटिकल थॉट इन मॉडर्न इंडिया, सेज प्रकाशन १९८६, पृष्ठ ४२।*
18. *अर्जुन मिश्र, पूर्वोक्त पृ.9।*
19. *एम्. ए. बूचः पूर्वोक्त पुस्तक पृ.–61।*
20. *अर्जुन मिश्रः पूर्वोक्त पुस्तक पृ.–33।*
21. *वी.एस. नरवडेः पूर्वोक्त पुस्तक पृष्ठ 31।*
22. *ब्रह्मसमाज का घोषणा पत्र 20 अगस्त 1828 को प्रकाशित।*
23. *उपर्युक्त घोषणापत्र।*
24. *वियोगी हरिः (सम्पादित) 'हमारी परम्परा' इन्हें भी देखें; एम्. ए, बूच पृ. 66; तथा वी. एस. नरवड़े पृ. 36।*
25. *एम्. ए. बूचः पूर्वोक्त पुस्तक पृ.–61।*
26. *वी.एस. नरवडेः पूर्वोक्त पुस्तक पृ. 40।*
27. *वी. एस. नरवड़ेः पूर्वोक्त पुस्तक पृ. 41।*
28. *वी. एस. नरवड़ेः पूर्वोक्त पुस्तक पृ. 46।*
29. *वी. एस. नरवड़ेः पूर्वोक्त पुस्तक पृ. 46।*
30. *एम. ए. बूचः पूर्वोक्त पुस्तक पृ 64।*
31. *आर. सी. मजूमदारः ब्रिटिश पैरामाउंटेसी एंड इंडियन रेनेशां भारती विद्या भवन बाम्बे १९६५ पृ 105*
32. *वियोगी हरिः पूर्वोक्त पुस्तक पृ. 527।*
33. *आर. सी. मजूमदारः पूर्वोक्त पुस्तक पृ 106।*
34. *वियोगी हरिः पूर्वोक्त पुस्तक पृ. 527।*
35. *एच. सी. ई. जकारियाः रेनेसेंट इंडिया, लन्दन एलन एंड उन्विन, १९३३ पृ. 43।*
36. *बी. एल. ग्रोवरः आधुनिक भारत का इतिहास एक नवीन–मूल्यांकन एस. चंद नई दिल्ली पृ. 273।*
37. *भंड़ारकरः रचनाएं, खण्ड (2) पृ. 623 उधृत किया; बी. एस. नरवड़े पृ. 53–54।*

38. बी. एस. नरवड़ेः पृ. 53 पूर्वोक्त।

39. वी.एस.नरवडेः पृ. 54 एवं 65 द्य के. टी. तैलंग ने हिन्दू कानून की नए उदारपंथी दर्शन के आधार पर व्याख्या की, एक समय तिलक की अपेक्षा अगरकर के अनुयायियों की संख्या अधिक थी, ज्योतिबा फुले सामाजिक चिन्तन के क्षेत्र में नवजागरण की उदारवादी, कुछ हद तक उन्मूलनवादी दृष्टि के प्रतिनिधि थे, गोपाल हरि देशमुख या लोकहितवादी, इन पर वृहत जानकारी निम्न सूत्रों से प्राप्त होती है डा. एन. आर. ईमानदार द्वारा सम्पादित शतपत्रे और मराठी में 1926 में के. एन. अथल्ये द्वारा लिखी गई इनकी जीवनी।

40. के. सी. व्यासः द सोसल रिनेशां इन इण्डिया, वोरा एंड कम्पनी पब्लिशर्स प्राइवेट बाम्बे 1957, पृ. 152–154।

41. बी. एल. ग्रोवरः पूर्वोक्त पुस्तक पृ. 281।

42. कार्तिक चन्द्र दत्तः राजा राममोहन रायः जीवनी एवं दर्शन इलाहाबाद लोक भारती प्रकाशन १९९१, पृ. 266।

43. राम मोहन राय वार्षिक समारोह पुस्तिका, पृ. 70 उधृत किया डॉ अमरेश्वर अवस्थी 'आधुनिक भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक चिन्तन' रिसर्च पब्लिकेशन जयपुर, 2000, पृ. 45।

44. एम. ए. बूचः पूर्वोक्त पुस्तक पृ. 64।

45. अर्जुन मिश्रः पूर्वोक्त पुस्तक पृ. 42।

46. ए.के. मुखोपाध्याम राम मोहन राय और तत्कालीन समाज और साहित्य, पृ. 290 टिप्पणी 33, पृष्ठ 277 में उधृत। ''न जातिर्दृश्यते राजन् गुण कल्याण कारकाः। जीवितं यस्य धर्मार्थे परमार्थे यस्य जीवितम्। अहोरात्रं चरैतयान्ति तं देवाः ब्राह्मण बिदुः।

47. डॉ. विश्वनाथ प्रसाद वर्माः आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तन, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल आगरा, १९८९ पृ. 17।

48. आर. सी. मजूमदारः पूर्वोक्त पुस्तक पृ. 434।

49. डॉ. अमरेश्वर अवस्थी 'आधुनिक भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक चिन्तन' रिसर्च पब्लिकेशन जयपुर, 2000, पृ. २९।

50. डॉ. अमरेश्वर अवस्थीः उपर्युक्त पुस्तक पृ. 28।

51. डॉ. अमरेश्वर अवस्थीः उपर्युक्त पुस्तक पृ. 72 ; यहाँ पर उदारवादी उसी धारणा का परिचय देते है जिसको साधन मानकर भरतीय समाज के जीवनादर्शो को विखण्डित करने का प्रयास किया। यहाँ पर आदर्शवादी दृष्टि एकदम साफ है कि विदेशी शासन पतन का लक्षण है इसलिए सर्वप्रथम उससे मुक्ति पाना चाहिए। स्वामी दयानंद, तिलक, अरविंदो, बंकिम इसी मत का दृढ़ समर्थन करते है।

52. पुरूषोत्तम नागर, आधुनिक भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक चिन्तन (राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी जयपुर) आठवां सं. 2009 पृ. 89।

भूमिदान पत्र ऐतिहासिक लेखन व सामाजिक सांस्कृतिक मूल्यों के संरक्षण में सहायक : आंध्रप्रदेश व कर्नाटक से प्राप्त भूमिदान पत्रों के विशेष संदर्भ में

shodhshree@gmail.com

डॉ. रजनी शर्मा
सह आचार्य, राजकीय महाविद्यालय, किशनगढ़

शोध सारांश

भारत में सामाजिक एवम् सांस्कृतिक परम्पराओं का गौरवशाली इतिहास रहा है। भारतीय जीवन और विकास का रहस्य है जीवन के चार पुरूषार्थ- धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के उद्देश्यों की पूर्ति करना।इसी धर्म की अवधारणा के सांस्कृतिक पक्ष से दान जुड़ा है। दान के विभिन्न रूपों में भूमि के दान का भी बहुत महत्व है, इस भूमिदान ने यज्ञ की दक्षिणा के रूप में प्रचलित होकर एक व्यवस्था का रूप भारतीय इतिहास के विभिन्न कालों में ग्रहण कर लिया। प्रस्तुत शोध पत्र में दक्षिण भारत के चयनित क्षेत्र आंध्रप्रदेश व कर्नाटक से प्राप्त भूमि दान पत्रों का अध्ययन किया गया है तथा इनमे अंतर्निहित मूल्यों को प्रकाश में लाने का प्रयास किया है। पाश्चात्य अध्ययन परंपरा में भूमिदान व्यवस्था को भारतीय सामंतवाद के जन्म का मुख्य कारण माना है जबकि इसी प्रतिक्रिया में प्रस्तुत आलेख में यह सिद्ध करने का प्रयास किया गया है की भूमि जैसे अचल संपत्ति के दान में प्राचीन भारतीय मानव के धार्मिक मूल्य सुरक्षित थे द्य इनमे आर्थिक व्यवस्था के विभिन्न पहलुओ, शेक्षिक मूल्यों के विकास की झांकी, साहित्य के विभिन्न अंगो के विकास, भारतीय संस्कृति की मान्यताओ, विभिन्न कलाएं, राजनीतिक तथ्य आदि को प्रमाणों के साथ प्रस्तुत किया है।

संकेताक्षर : *षट्कर्मनिरताय, निग्रन्थ, अश्वमेघयज्ञयशोभयप्रतिकृतेः, देवदासी, तैत्तिरीय शाखा, घटिकाएं।*

भारत में सामाजिक एवम् सांस्कृतिक परम्पराओं का गौरवशाली इतिहास रहा है। भारतीय जीवन और विकास का रहस्य है जीवन के चार पुरूषार्थ- धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के उद्देश्यों की पूर्ति करना। प्रत्येक व्यक्ति को जीवन की आवश्यकताओं के अनुसार कुछ कर्तव्यों का पालन और समापन करके उनसे परे पहुंच जाना चाहिये। यही धर्म है। धर्म ही सामाजिक जीवन के कार्यों और व्यक्ति के उद्देश्यों का निर्धारण एवं नियंत्रण करता है। धर्म द्वारा ही भारतीय सामाजिक नियमों को सुदृढ़ आधार मिला है। इसी धर्म की अवधारणा से भारतीय समाज का सांस्कृतिक पक्ष जुड़ा है। इसी सांस्कृतिक पक्ष में दान की अवधारणा का अर्थ निहित रहा है। दान प्राचीन भारतीय समाज में पुण्य प्राप्ति हेतु किया जाने वाला धार्मिक कृत्य रहा है। दान के विभिन्न रूपों में भूमि के दान का भी बहुत महत्व है, इस भूमिदान ने यज्ञ की दक्षिणा के रूप में प्रचलित होकर एक व्यवस्था का रूप भारतीय इतिहास के विभिन्न कालों में ग्रहण कर लिया। भूमिदान व्यवस्था का परिदृश्य क्षेत्र विशेष में भिन्न-भिन्न परिलक्षित होता है। प्रस्तुत शोध पत्र में दक्षिण भारत के चयनित क्षेत्र आंध्रप्रदेश व कर्नाटक से प्राप्त भूमि दान पत्रों का अध्ययन किया गया है तथा इनमें अंतर्निहित मूल्यों को प्रकाश में लाने का प्रयास किया है।

यद्यपि यह विषय अछूता नहीं है और अनेक विद्वानों ने इस पर शोध किया है, कार्लमार्क्स से लेकर आर.एस. शर्मा ने पाश्चात्य अध्ययन परम्परा के अनुकरण में भूमि दान को भारतीय सामंतवाद के जन्म का मुख्य कारण माना है जबकि इसी प्रतिक्रिया में डॉ. विभा उपाध्याय के ग्रन्थ प्राचीन भारत में भूमि दान तथा डॉ. सीमा यादव के द मिथ ऑफ इन्डियन फ्युडलिज्म में आर्थिक व्यवस्था के विभिन्न पहलुओं, शैक्षिक मूल्यों के विकास की झांकी, साहित्य के विभिन्न अंगों के विकास, भारतीय संस्कृति की मान्यताओं, विभिन्न कलाएं, राजनीतिक तथ्य आदि को प्रमाणों के साथ प्रस्तुत किया है और यह निष्कर्ष निकाला कि भूमि जैसे अचल सम्पत्ति के दान में प्राचीन भारतीय मानव के धार्मिक मूल्य सुरक्षित थे।

आंध प्रदेश से प्राप्त पल्लव वंश के शासक प्रथम परमेश्वर वर्मा पल्लव (वि.सं. 756–757, 669–700 ई. शती) का वुन्न गुरूवयपलेम–दानपत्र (आन्ध्रप्रदेश के नैलोर जिले में स्थित) में दक्षिणायन के अवसर पर काञ्चीपुर से देवशर्मा को कुवणुरू ग्राम शासक द्वारा दीर्घायु व स्वास्थ्य की कामना से दान में दिया गया। ये ब्राह्मण मोद्गल्यायन गोत्र, आपस्तम्ब वेद, वेदांग, इतिहास, पुराण, तत्व के ज्ञाता थे। यहाँ प्रतिग्रहीता के लिये षट्कर्मनिरताय शब्द का उल्लेख है।[1] जिसका अर्थ है ब्राह्मण के छः कर्म उसकी जीविका हेतु आवश्यक हैं– पढ़ना, पढ़ाना, यज्ञ करना, यज्ञ कराना, दान देना, दान लेना।[2]

वज्रहस्त–तृतीय के अरसावली ताम्रपत्र (वि.सं. 1117, 1060 ई. शती) में ग्राम हरिवेल्ली, महाप्रधान को दान में दिया गया। इसी ताम्रपत्र में लिखित है कि देय ग्राम चार नियोग में विभाजित किया गया, तथा अनेक कायस्थ नायकों को दान में दिया गया। इन प्रतिग्रहीताओं में एक शुद्र वंश का कृषक था।[3] वज्रहस्त–तृतीय के अन्य ताम्रपत्र में वैश्य परिवार को ग्राम दान किये जाने का वर्णन है।[4]

जय का सीब्रोलु अभिलेख (वि.सं. 1270, शक संत् 1135, 1213 ई. शती) में दाता द्वारा मन्दिर को 12 ग्राम दान में दिये जाने का उल्लेख प्राप्त होता है। देय भूमि के साथ अनेक कर्मचारी उदाहरणार्थ कलाकार, सेवक, नृत्यांगनायें, शिल्पी भी मन्दिर की सेवा हेतु समर्पित करे गये।[5]

कर्नाटक से प्राप्त कदम्ब शासक शिवस्कन्दवर्मन का मलावल्ली अभिलेख (शिमोगा जिला, तृतीय–चतुर्थ ई. शती) में भगवान मलापल्लिदेव के मंदिर के उपभोग हेतु सिवस्कन्दवर्मन द्वारा कौन्डिण्य गौत्र के ब्राह्मण कौसिकीपुत्र नागदत्त को अनेक ग्राम दान किये गये, जिनमें– सोमपल्ली, कोगिनगर, मरियसा, करिपेन्दुल, मुकुन्डी, वेलक्की, वेगुरा, कोनतपुका, सहाला आदि ग्राम सम्मिलित थे।[6]

इसी क्रम में मृगेशवर्मन का देवगिरी ताम्रपत्र (धारवाड़ जिला, कर्नाटक, पंचम ई. शती) में चैत्यालय की मरम्मत, मूर्ति पर घी विलेपन तथा फूलों से सजाने के व्ययादि के निमित्त ब्रिहत–पैरालूर में स्थित 40 निवर्त्तन भूमि, धार्मिक प्रयोजन से प्रदान की गयी, उपरोक्त वर्णन निम्नलिखित पंक्तियों से स्पष्ट होता है।

दसवीं पंक्ति– चारूचरणेभ्यः परमार्हद्धेभ्यः संमार्ज्जनोपलेपनाभ्यर्च्चन–भग्नसंस्कार

ग्यारहवीं पंक्ति– महिमात्थेम् ग्रामापरदिग्विभानसीमाभ्यन्तरे राजमानेन चत्वारिंशन्नि– वर्त्तनं कृष्ण भूमि[7]

मृगेशवर्मन के हालसी पत्र (बेलगाम जिला, कर्नाटक राज्य, पंचम ई. शती) में मृगेस द्वारा गंग व पल्लवों पर विजय के उपलक्ष में 33 निवर्तन भूमि जैन निग्रन्थ कूर्च्चका (नग्न धार्मिक भिक्षु) को दान में दिये जाने का उल्लेख है।[8]

विजयशिव मान्धातृवर्मन के कुदगीरी ताम्रपत्र (शिमोगा जिला, कर्नाटक राज्य) में कोलाल ग्राम की 20 निवर्तन मोदकरणी भूमि धार्मिक शिक्षक को दान में दी गई, जो यजुर्वेद की तैत्तरीय शाखा व कौण्डिण्य गौत्र से संबंधित था।[9]

रविवर्मन का देवनागरी पत्र (चित्रदुर्ग जिला, कर्नाटक, 5वीं–6वीं ई. शती) के द्वितीय पत्र के प्रथम पक्ष की 8वीं पंक्ति में कौस्तुभाभारूणच्छायं वक्षो लक्ष्मीहरेरिव अर्थात् लक्ष्मी एवम् हरि वैष्णव देवताओं का नाम है।

बौद्ध संघ की समृद्धि के विस्तार हेतु एवम् सिद्धायतन (बुद्ध मन्दिर) के संरक्षण व पूजा हेतु आसन्दी में स्थित चार भूखण्ड दान में दिये, जो निम्नलिखित पंक्तियों से व्यक्त होता हैः–

16वीं पंक्ति– सिद्धायतन पूजार्त्थ संघस्य परिवृद्धये

17वीं पंक्ति– (सेतो) रूपलकस्यापिकोरवेग्राश्रितां महीम (1) अधिकान्निवर्त्तनान्येन दत्रवास्तामरिन्दमः

इसके तृतीय पत्र में (वर्ण्णा) श्र (मा) शब्द का उल्लेख है, जो रविवर्मन हेतु इसके संरक्षक के रुप में प्रयुक्त हुआ है।[10] रविवर्मन का गुदनापुर अभिलेख (उत्तरी कनाड़ा जिला, कर्नाटक राज्य) (5वीं–6वीं ई. शती) में रविवर्मन द्वारा अन्तःपुर के सामने नृत्य शालायें बनवाये जाने का उल्लेख है। उसने कामामन्दिर की पूजा हेतु विभिन्न गाँवों से भूमि खरीदकर दान में दी। इसके अलावा हाकिनीपल्ली और कल्लिली ग्राम भी कामा व पद्मावती मन्दिर को दान में दिये गये।[11]

हरिवर्मन का हालसी ताम्रपत्र में (बेलगाम जिला,

कर्नाटक राज्य, पंचम षष्ठम् शती) वसन्तवाटक ग्राम को वरिषेण आचार्य कूर्च्चका जैन संघ को दान में दिये जाने का वर्णन है। इसका प्रयोजन महान आठ–दिन का त्यौंहार जो वार्षिक रूप से आयोजित होता था, इसके संचालन एवम् अरहत– मन्दिर में सर्वसंघ को भोजन की व्यवस्था हेतु दान में दिया जाना था। यह जानकारी निम्नलिखित पंक्तियों से स्पष्ट होती हैः–

9वीं पंक्ति– पतिसुतेन मृगेशेन
कारितस्यार्द्धदायतनस्य
प्रतिवर्षमाष्टाह्निक

10वीं पंक्ति– महामहस्ततचरूपलेपनक्रियर्त्थ
तदंवशिष्टं सर्व्वसंघ

11वीं पंक्ति– भोजनायेति सुद्धिकुन्दूरविषये
वसन्तवाटकं सर्व्वपरिहारसंयुतं

12वीं पंक्ति– कूर्च्चकानाम् वारिषेणाचार्यसंगहस्ते
चन्दक्षान्तं प्रमुखम्[12]

इसी क्रम में हरिवर्मन का संगोल्ली ताम्रपत्र (बेलगाम जिला, कर्नाटक, पंचम–षष्ठम् ई. शती) अथर्ववेद के पारंगत 23 ब्राह्मणों को जो आठ विभिन्न गौत्रों जैसे– कैम्बल, कालाश, गर्ग, कोत्स, श्राविष्ठ, चउलियस, वलदन्त और कश्यप गौत्र के थे, उन्हें तेदव ग्राम के दान दिये जाने की जानकारी है।[13]

कदम्ब शासक सिंहवर्मन का मुदगिरी ताम्रपत्र (चिकमगलूर जिला, कर्नाटक, पंचम षष्ठम् ई.शती) में पाँच निवर्तन भूमि, उसे जैन मंदिर को दान में दिये जाने का उल्लेख है। इस पत्र की पांचवीं पंक्ति में अश्वमेघयज्ञयशोभयप्रतिकृतेः का उल्लेख है, जो अश्वमेघयज्ञ से संबंधित है।[14]

चालुक्य वंश के अंतिम शासक द्वितीय कीर्तिवर्मा का वक्कलेरी दानपत्र (वि.सं. 814, शक सं. 679, 757 ई. शती) में कामकायन गोत्र तथा ऋग्वेद, यजुर्वेद के ज्ञाता ब्राह्मण श्री विष्णुशर्मण को सलिलयुन्नामि ग्राम दान में दिया गया।[15] कर्नाटक से ऐसे ताम्रपत्र के विषय में भी जानकारी प्राप्त होती है, जिनमें दहेज के रुप में ग्राम या भूमि दान करी गयी। राष्ट्रकूट शासक कृष्ण–द्वितीय के शासनकाल में हेबल अभिलेख (वि.सं. 1032, 975 ई. शती) में उल्लेख किया गया है कि अमोघवर्ष ने अपनी पुत्री का विवाह गंग राजकुमार के साथ किया। इस विवाह में अमोघवर्ष ने पुलिगीरी 300, बेलवोला 300, किसुकदा 70 एवम् बान्गे 70 आदि जिले दहेज में प्रदान किये।[16]

भूमिदान ना केवल शासकों, अधीनस्थ शासकों द्वारा तथा व्यक्तिगत रूप से जारी करने के अलावा धार्मिक निकायों द्वारा प्रदान किये जाने के भी उदाहरण मिले हैं। इसी श्रेणी का दानपत्र यादव शासक सिम्हाना द्वारा जारी, एकन्ची अभिलेख है जिसका समय (वि.सं. 1281, शंक संवत् 1147, 1225 ई. शती) बताया गया है। इसमें मुख्य पुजारी वीरभद्र द्वारा एकन्ची ग्राम जो देवदान के रूप में कोपनाथ मन्दिर से जुड़ा हुआ था। इस गाँव का एक भूखण्ड तथा एक आवास किसी सेवा हेतु एक काष्ठकार को दान किया गया।[17]

यहाँ से प्राप्त दान साक्ष्यों में ऐसे उदाहरण भी दृष्टव्य है, जिनमें शिक्षण संस्थायें मंदिरों से जुड़ी थी।

तिरूवरैयूर से प्राप्त मन्दिर में व्याकरण कक्ष के रखरखाव हेतु एक भूमि दान किये जाने का उल्लेख प्राप्त होता है। इसे व्याकरण दान व्याख्यान मण्डफिया के नाम से उल्लिखित किया गया है।[18]

शक संवत् 153 (वि.सं. 1125, 1068 ई. शती) के अभिलेखीय साक्ष्य में स्थानीय सिद्धेश्वर मन्दिर के विद्यार्थियों हेतु भोजन व कपड़े की व्यवस्था के लिये शाही दान दिये जाने के उदाहरण प्राप्त होते हैं।[19]

आन्ध्रप्रदेश में पल्लव राजवंश के दानपत्रों में भूमिदान का प्रयोजन दाता की आयु वृद्धि एवम् स्वास्थ्य की कामना के रूप में वर्णित किया गया है। इस क्षेत्र में ब्राह्मणों के अतिरिक्त कायस्थों, वैश्यों, निम्न जाति के शुद्र कृषकों तथा काष्ठकार आदि को भी भूमि दान में दी गयी, अतः यहाँ इस व्यवस्था में लचीलापन था। चूंकि आरम्भिक मध्यकाल तक दक्षिण में भूमि पर विवाद की संभावना बढ़ गयी थी, अतः दाता ने इस समस्या के निदान हेतु देय भूमि का विभाजन किया। इस संदर्भ में जो देय भूमि मंदिर को समर्पित की जाती थी, चूंकि वह देवता के पक्ष में होती थी, परन्तु उसका वास्तविक उपभोग तो पुजारी अथवा पुरोहित वर्ग द्वारा ही किया जाता था। दानपत्रों में उल्लेख मिलता है कि मन्दिर की सांस्कृतिक परम्पराओं को जीवन्त रखने हेतु देय के साथ नर्तकियों, कलाकारों, शिल्पियों आदि का समर्पण भी मन्दिर को होता था। अतः स्पष्ट है कि इस क्षेत्र में देय के उपभोग हेतु उचित व्यवस्था भी दाता ने तय करी, जिसका प्रभाव मन्दिरों के सांस्कृतिक विकास के रूप में परिलक्षित हुआ। नृत्य कला को प्रोत्साहन देने हेतु कदम्ब शासकों ने नृत्य शालाओं का निर्माण कराया, इन नृत्य शालाओं से देवदासियाँ जुड़ी थी। प्राचीन भारत में मंदिर अथवा देवालय ललित कला के

प्रमुख केन्द्र बन गये, जिनमें भजन, संगीत, नृत्य आदि को महत्व दिया जाता था। नर्तकियाँ गंध, धूप, पुष्प और नैवैध के साथ गृह देवता का पूजन कर उनके प्रति श्रद्धा भावना व्यक्त करती थी, इनका मन्दिरों से जुड़ा होना ही इन्हें देवदासी की संज्ञा देता है। देवदासी नृत्य मुख्यतः शिव पूजा से संबंधित थे। आन्ध्र प्रदेश के नृत्य के केन्द्र दोगमस एवम् सनीस, महाराष्ट्र में जोगतीन तथा कर्नाटक में बसावी व जगतीस कहलाते हैं। इन केन्द्रों की नर्तकियाँ मन्दिर की सम्पत्ति मानी जाती थी।[20]

तमिल अभिलेख (तन्जौर के मुख्य मन्दिर 1004 ई. शती) में चार सौ देवदासियों का उल्लेख है। इन देवदासियों को वृत्ति दी जाती थी, जिसमें नृत्य, प्रशिक्षक, गायक, वादक आदि का हिस्सा होता था, जो इन्हें नृत्य प्रशिक्षण देते थे।[21]

दान साक्ष्यों में धार्मिक निकाय से जुड़े पुजारी द्वारा भूमिदान किया गया जो यह पक्ष विचाराधीन करता है कि भूमि प्राप्त कर पुजारी वर्ग भू सम्पन्न हो गया था। अतः उसने भी भूमि का दान करके पुण्य का लाभ उठाया, अर्थात् मंदिर को जो देवदान किये गये, उन्हें पुनः दान किये जाने की संभावना प्रतीत होती है।

दक्षिण भारत के अन्य क्षेत्र कर्नाटक से प्राप्त दान साक्ष्यों में मन्दिरों, मठों तथा जैन संघों को भूमिदान किये जाने का वर्णन है। इस व्यवस्था ने इनके दैनिक व्यय निर्वहन के अलावा भोजन, आवास, श्रम, पूजा, सांस्कृतिक उत्सव आदि कृत्यों के संचालन में सहयोगी कार्य किया, जिससे इन धार्मिक संस्थाओं का सांस्कृतिक विकास सम्भव हो सका। इस क्षेत्र में यजुर्वेद की तैत्तिरीय शाखा का प्रसार हुआ, जिससे जनमानस वेदों के सम्पर्क में आया, तैत्तिरीय शाखा यजुर्वेद के भाग कृष्ण यजुर्वेद का भाग है। इस क्षेत्र में शिक्षकों को भूमिदान किये जाने का उल्लेख है, इन शिक्षित ब्राह्मणों की जीविका की व्यवस्था इसी दक्षिणा पर आधारित थी। यह सम्भवतया गुरू दक्षिणा के रूप में प्रचलित था, भूमि का समर्पण शिष्यों द्वारा गुरु को किया गया था।

दक्षिण भारतीय दान साक्ष्यों में शिक्षकों के निमित्त किये गए भूमिदान के संदर्भ में ''भट्ट-वृत्ति'' शब्द प्रयुक्त हुआ है।[22] राष्ट्रकूटों द्वारा दहेज के रूप में भूमिदान किया जाना स्पष्ट करता है कि सामाजिक रीति-रिवाजों में इस व्यवस्था को स्थान दिया गया था, जो इसके क्रमिक विकास का परिचायक है।

इस प्रकार दक्षिण भारत में एक नई व्यवस्था परिलक्षित होती है, यहाँ शिक्षण संस्थायें मंदिर व मठों से संलग्न होने लगी, जिससे मंदिरों व मठों के साथ विद्यार्थियों, शिक्षकों, शिक्षण संस्थाओं आदि को भी भूमि दान में दी गयी, जिससे इनका सांस्कृतिक व शैक्षिक विकास दृष्टिगत होता है। यही कारण है कि भारत की बौद्धिक निरीक्षण और अन्वेषण की प्रवृत्ति शताब्दियों तक जीवित रह सकी।

दक्षिण भारत में इन शिक्षा केन्द्रों को घटिकाएं कहा गया, ये प्रसिद्ध नगरों के मन्दिरों में थी।[23]

दान साक्ष्यों की रचना में विभिन्न भाषाओं (मुख्यतः संस्कृत), समास, छंद, अलंकार, तथा लिपियों का प्रयोग मिलता है जिससे इनसे प्राप्त सूचनाएं अधिक विश्वसनीय मानी जाती है तथा यह कहा जा सकता है कि यदि आभिलेखिक साक्ष्यों का साहित्य शास्त्र की दृष्टि से अध्ययन किया जावे तो ये साक्ष्य पुरातात्विक दोष से मुक्त होंगे।

इस प्रकार भूमिदान व्यवस्था में धार्मिक व सामाजिक तत्व अंतर्निहित थे। इन तत्वों ने ही इस परम्परा में स्वायत्तता की भावना को सुरक्षित रखा तथा ऐतिहासिक लेखन में उपयोग सम्भव हो सका।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *गोयल, श्रीराम, मौखरि-पुष्यभूति-चालुक्य युगीन अभिलेख व कुसुमांजलि प्रकाशन, मेरठ, 1987, पृष्ठ संख्या 263-264*
2. *नालन्दा अद्यतन कोष, आदर्श बुक डिपो, 1992, पृष्ठ संख्या 900*
3. *एपिग्राफिआ इण्डिका, खण्ड 32, (पूर्वलिखित), पृष्ठ संख्या 310-316*
4. *प्रकाश, ओम, अरली इण्डियन लैण्ड ग्रान्ट्स एण्ड स्टेट इकॉनॉमी, एक्सीलेंस पब्लिशर्स, इलाहाबाद, 1988 (पूर्वलिखित), पृष्ठ संख्या 230*
5. *एपिग्राफिआ इण्डिया, खण्ड 5, (पूर्वलिखित), पृष्ठ संख्या 142-150*
6. *घै.जी.एस., इन्सक्रिप्शन्स ऑफ अरली कदम्बस्, इण्डियन काउन्सिल ऑफ हिस्टोरिकल रिसर्च एण्ड प्रतिभा प्रकाशन, न्यू दिल्ली, 1996, पृष्ठ संख्या 61*
7. *वही, पृष्ठ संख्या 71-72*
8. *वही, पृष्ठ संख्या 84-85*
9. *वही, पृष्ठ संख्या 90-91*
10. *वही, पृष्ठ संख्या 100-102*

11. वही, पृष्ठ संख्या 110
12. वही, पृष्ठ संख्या 121–122
13. वही, पृष्ठ संख्या 125–126
14. वही, पृष्ठ संख्या 139–140
15. गोयल, श्रीराम मौखरि–पुष्यभूति चालुक्य–युगीन अभिलेख व कुसुमांजलि प्रकाशन, मेरठ, 1987, पृष्ठ संख्या 263–264
16. एपिग्राफिआ इण्डिका, खण्ड 4, (1897–97), (पूर्व लिखित), प्रकाशित 1979, पृष्ठ संख्या 350–354
17. एपिग्राफिआ इण्डिका, खण्ड 30, (पूर्व लिखित), पृष्ठ संख्या 67–69
18. मित्रा, डा. संघ, बक्शी, एस.आर., एन्शिएण्ट इण्डिया, कॉमनवेल्थ पब्लिशर्स, न्यू दिल्ली, 2003, पृष्ठ संख्या 100
19. वही, पृष्ठ संख्या 101
20. गोस्वामी, कालिप्रसाद देवदासी डान्सिंग डेमसेल,ए.पी. एच. पब्लिशिंग कॉरपोरेशन, न्यू दिल्ली, 2000 पृष्ठ संख्या 48
21. मित्रा, डॉ. संघ, (पूर्वलिखित), पृष्ठ संख्या 280
22. मुखर्जी, राधाकमल, (पूर्वलिखित), पृष्ठ संख्या 175
23. वही, पृष्ठ संख्या 175

'मन की बात का समाज पर प्रभाव' एक अध्ययन (भीमताल उत्तराखंड के विशेष संदर्भ में)

shodhshree@gmail.com

हर्षवर्धन पाण्डे
शोधार्थी, कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल (उत्तराखण्ड)

शोध सारांश

प्रधानमन्त्री नरेन्द्र दामोदरदास मोदी ने जिस तरीके से 'मन की बात' के लिए रेडियो माध्यम को चुना है उससे रेडियो के अच्छे दिनों की आहट सुनाई देने लगी है। आमतौर पर अभी तक हमारे देश में रेडियो को गए गुजरे माध्यम के रूप में देखा और सुना जाता था लेकिन यह एक ऐसा माध्यम है जो देश की 99.14 फीसदी आबादी को न केवल सीधे जोड़ता है बल्कि सुगम संगीत के साथ देश दुनिया के हालातों से सीधे रूबरू भी करवाता है शायद यही वजह है हमारे प्रधानमंत्री ने सरकार और जनता के बीच ब्रिज के रूप में इस माध्यम को चुना है। कन्वर्जेन्स के इस युग में जब यह माध्यम एफ. एम के रूप में अपनी धूम मचा रहा है तो रेडियो की भी नई वापसी हो रही है। सोशल मीडिया पर भी हैश टैग मन की बात खूब ट्रेंड करती रही है जो रेडियो की ताकत को बताने के लिए काफी है। रेडियो के लिए इससे बड़ी बात क्या हो सकती है गुमनामी के अंधेरों में जो रेडियो कहीं खो गया था, उसी रेडियो पर हर बार प्रसारित होने वाली प्रधानमंत्री की मन की बात को अब खुद खबरिया चैनल ब्रेकिंग न्यूज बना रहे हैं और आकाशवाणी की फीड का लाइव टेलीकास्ट भी कर रहे है। सूचना क्रांति के इस युग में टेलीविजन और इंटरनेट जैसे संचार संसाधनों में वृद्धि के बावजूद रेडियो की महत्ता और प्रासंगिकता आज भी कायम है।

संकेताक्षर : *रेडियो, जनमत, जागरूकता, प्रधानमंत्री, मन की बात, प्रभाव, मीडिया।*

राष्ट्र प्रमुख के द्वारा रेडियो के माध्यम से देश को संबोधित करने का चलन कोई नया नहीं है । अमरीका और ब्रिटेन इस मामले में भारत से कहीं आगे हैं । अमरीका के पूर्व राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने 1933 से 1944 के बीच 30 भाषणों की एक सीरीज दी। यह पहला प्रयोग था जब इस तरह जनता के साथ पहले तरह का एक अनूठा संवाद शुरू किया गया । उस दौर में दुनिया की आर्थिक मंदी से लेकर दूसरे विश्व युद्ध तक से जुड़ी घटनाएँ अमरीकी राष्ट्रपति के केंद्र में रहती थी। रेडियो के माध्यम से रूजवेल्ट जहां देश में फैल रही अफवाहों का खंडन करते थे वहीं सरकारी नीतियों को जनता के बीच सरल ढंग से पहुँचाते थे रूजवेल्ट की फायर साइड चर्चा ने भी उन्हें जन- जन में लोकप्रिय बनाया। इसी तरह चर्चिल के रेडियो संदेश भी बहुत लोकप्रिय रहे। नाजियों ने भी रेडियो की ताकत को समझा और उस दौर में तो हिटलर के प्रचार मंत्री गोयबल्स के हाथों में जर्मनी के सूचना और प्रचार के तमाम सूत्र रहा करते थे।

'मन की बात' कार्यक्रम उत्साह के साथ आज पूरे देशभर में सुना जा रहा है और जनता जिस तरह प्रधानमंत्री को सुन रही है उससे रेडियो की लोकप्रियता के ग्राफ में निश्चित ही इजाफा हो रहा है। इस कार्यक्रम का पहला प्रसारण 3 अक्तूबर 2014 को शुरू हुआ था और वर्तमान आते आते यह 6 बरस को पार कर चुका है। प्रथम प्रसारण से लेकर अब तक प्रधानमंत्री मोदी ने जनता से विभिन्न मसलों पर सीधा संवाद स्थापित किया। उन्होनें इस कार्यक्रम के माध्यम से जनता के दिलों को छुआ है जिसने पूरे देश में नई बहस को जन्म दिया है। बीते कुछ बरसों में प्रधानमंत्री के संबोधन को रेडियो पर सुनने के लिए समाज के हर तबके ने जिस तरह रेडियो का सहारा लिया उसने इस माध्यम में नए प्राण फूंकने का काम किया है। खास बात ये हैं प्रधानमंत्री 'मन की बात' कार्यक्रम में अगर किसी भी विषय पर बोलते हैं तो उनकी अपील का देश की जनता पर बड़ा असर होता है और लोग उनसे सीधे जुड़ाव महसूस करते

ISSN 2277-5587

हैं। 'मन की बात' जैसे कार्यक्रम न्यू इंडिया में सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक बदलाव लाने में सक्षम हैं इससे इंकार नहीं किया जा सकता। जब से प्रधानमंत्री ने 'मन की बात' शुरू की है, आकाशवाणी एक बार फिर घर घर पहुंच गई है। देश का कोई ऐसा कस्बा ऐसा नहीं बचा है जहां से प्रधानमंत्री की 'मन की बात' पर रविवार को चर्चा नहीं होती। दिल्ली स्थित आकाशवाणी भवन में हर दिन 'मन की बात' के लिए पहुंच रहे पत्र इस बात की गवाही दे रहे हैं लोगों को हमारे प्रधानमन्त्री का यह नया तरीका बेहद पसंद आया है। 'मन की बात' प्रधानमंत्री को सुझाव देने का भी एक बेहतर माध्यम भी बना है। देशवासी प्रधानमंत्री की इस पहल से खासे खुश हैं और रविवार की सुबह से गाँवों, कस्बों में सजने वाली महफिलों में चर्चा के केंद्र में 'मन की बात' ही होती है।

अमरीका के पूर्व राष्ट्रपति बराक ओबामा जब भारत आये थे तो प्रधानमंत्री मोदी ने उनके साथ मिलकर खुद को जनता से सीधे जोड़ने का काम किया। यह पहला मौका था जब प्रधान मंत्री ने जनता से सीधे सवाल अपनी साईट पर मंगवाए और चुने हुए सवालों को 'मन की बात' में शामिल किया। साथ ही प्रधानमंत्री के द्वारा यह भी कहा गया है कि जब भी उन्हें मौका मिलेगा वो इस माध्यम से अपने श्रोताओं से हमेशा जुड़े रहने की कोशिश करेंगें। हर एपिसोड में प्रधानमंत्री मोदी 'मन की बात' का लोगों द्वारा अभिग्रहण बहुत ही सराहनीय रूप में किया गया। 'मन की बात' हर महीने रविवार को 11 बजे से मुख्य रूप से हिंदी में और साथ ही अंग्रेजी में भी प्रसारित किया जाता है, लेकिन देश के कई स्थानीय भाषाओं में इसका अनुवाद कर एआईआर के द्वारा प्रसारित किया जाता है। हर महीने के आखिरी रविवार को प्रसारित किए जाने वाले इस कार्यक्रम का हिंदी के अलावा 18 भाषाओं और 33 बोलियों में उसी दिन प्रसारण किया जाता है। इस कार्यक्रम का अंग्रेजी और संस्कृत संस्करण भी लोगों तक पहुंचाया जाता है। इस कार्यक्रम की लोकप्रियता को देखते हुए आकाशवाणी ने इसे विदेशों में भी प्रसारित करने की व्यवस्था भी की है।'मन की बात' में जनता से संपर्क के लिए बहुत तरह की फोन, वेवसाइट, डाक के पते, लाइव ऑडियो पोस्ट जैसी निःशुल्क सेवा शुरू की गयी है जिनमें शामिल है, 'मन की बात' टोल फ्री नम्बर 18003007800। इसके अलावा 1922 पर मिस्ड कॉल करके इसका प्रसारण सुन सकते हैं। इसके लिए आधिकारिक वेवसाइट http://www-pmindia-gov-in को भी लाँच किया गया है।

साहित्य पुनरावलोकन

संपादकीय पेज, अमर उजाला, दिल्ली, 7 जनवरी, 2015, क्या सचमुच बहुरेंगे रेडियो के दिन ? शीर्षक से गोविंद सिंह ने अपने लेख में लिखा है इंदिरा गांधी के बाद शायद मोदी ही ऐसे राजनेता हैं, जिसने रेडियो की ताकत को पहचाना है और उसे अपने संदेशवाहक के रूप में चुना है। वह कहते हैं टीवी और अखबार आज भी गाँव–गाँव नहीं पहुँच पाए हैं जबकि रेडियो की पहुँच देश की 99 प्रतिशत आबादी तक है। गांवों में यह आज भी जनता की पहली पसंद है। मोदी ने यही देखा। वे देश के उन लोगों तक पहुंचना चाहते हैं, जिन तक कोई और शासक नहीं पहुंच पाया था। सचमुच उन्हें इसमें कामयाबी भी मिली।

अनुराग चतुर्वेदी ने नई दुनिया डाट काम पर 27 अक्तूबर 2015 को 'मन की बात' से किसे है ऐतराज से आलेख लिखा है जिसमें वह कहते हैं 'मन की बात' कार्यक्रम कोई राजनीतिक प्रचार का मंच नहीं है। देश में राष्ट्रीय पर्वो पर राष्ट्र के नाम संदेश देने की एक नीरस सी परिपाटी बनी हुई थी जिसमें 'मन की बात' एक ताजा हवा में झौंके की तरह आता है ।

उपकल्पना

- 'मन की बात' जैसे कार्यक्रम ने रेडियो में नई जान फूंकने का काम किया है ।
- 'मन की बात' जैसे कार्यक्रम की लोकप्रियता शहरी इलाकों में है।
- 'मन की बात' ने हाल के वर्षो में लोगों की जीवन शैली को बदला है और समाज के हर तबके के बीच इसे लोकप्रिय बनाया है ।
- जन जागरूकता में 'मन की बात' कार्यक्रम खासा उपयोगी है ।
- प्रधानमंत्री 'मन की बात' कार्यक्रम में अपनी सरकार का गुणगान करते हैं।
- अपने निजी हित साधने के लिए 'मन की बात' से बेहतर कोई बेहतर मंच सरकार के पास इस समय नहीं है।

अध्ययन के उद्देश्य

- 'मन की बात' कार्यक्रम के विषय में

आम जनता के रुझान का अध्ययन करना ।

- 'मन की बात' सुनने के लिए लोगों द्वारा बिताए जाने वाले समय का अध्ययन करना ।
- 'मन की बात' ने लोगों को किस तरह प्रभावित किया है यह जानने की कोशिश करना।
- 'मन की बात' के माध्यम से लोगों के जीवन में आ रहे बदलाव का अध्ययन करना ।
- जनमत निर्माण में 'मन की बात' जैसे कार्यक्रम की भूमिका को समझने का प्रयास करना।

शोध विधि : प्रस्तुत अध्ययन में आंकड़ों के संग्रहण हेतु प्राथमिक स्त्रोत के रूप में प्रश्नावली, सर्वेक्षण, अवलोकन का प्रयोग किया गया है और द्वितीयक स्रोत के रूप में आनलाइन वेबसाइट, पुस्तकों और जर्नल को शामिल किया गया है ।

न्यादर्श का चयन : देवभूमि उत्तराखंड के झीलों के शहर नैनीताल जिले में हल्द्वानी, भीमताल, रामनगर, कोटाबाग, धारी, बेतालघाट, रामगढ़ और ओखलकांडा समेत कुल 8 विकासखंड हैं। प्रस्तुत शोध कार्य के लिए नैनीताल जिले के भीमताल के शहरी इलाके का चयन किया गया है। भीमताल विकास खंड के अंतर्गत तकरीबन 60 ग्राम पंचायतें आती हैं जिनमें तकरीबन 36000 से अधिक मतदाता हैं। भीमताल, नैनीताल जिला मुख्यालय से तकरीबन 22 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है । इस अध्ययन में शामिल किए गए उत्तरदाता 15 से 65 वर्ष के बीच की उम्र के हैं जिसमें (50 पुरुष और 50 महिलाएं) साधारण रेंडम सैंपलिंग के द्वारा शामिल किए गए हैं ।

प्रदत्त का विश्लेषण, व्याख्या और परिणाम

1 क्या आप 'मन की बात' के बारे में जानते हैं ?

उपर्युक्त प्रश्न के उत्तर में 80 फीसदी लोग ऐसे हैं जो 'मन की बात' कार्यक्रम के बारे में जानते हैं वहीं 20 फीसदी ऐसे हैं जिन्हें 'मन की बात' कार्यक्रम के बारे में जानकारी नहीं है ।

2 'मन की बात' कार्यक्रम का पता आपको कैसे चला ?

उपर्युक्त प्रश्न के उत्तर में 31 फीसदी लोगों को 'मन की बात' के विषय में समाचार पत्र के माध्यम से जानकारी हुई वहीं 28 फीसदी लोगों को रेडियो के माध्यम से हुई। 21 फीसदी लोग ऐसे थे हैं जिन्हें 'मन की बात' कार्यक्रम की जानकारी इंटरनेट के माध्यम से हुई वहीं 20 फीसदी लोगों को टेलीविजन के माध्यम से हुई ।

3 आप 'मन की बात' कार्यक्रम क्यों सुनते हैं ?

उपर्युक्त प्रश्न के उत्तर से स्पष्ट है कि सर्वाधिक 35.6 फीसदी लोग 'मन की बात' सूचना हेतु सुनते हैं वहीं 23.6 फीसदी लोग देश और दुनिया के बारे में समझ विकसित करने के लिए सुनते हैं। इसी प्रकार 19.2 फीसदी लोग ज्ञान के लिए और 14.4 फीसदी मनोरंजन के लिए सुनते हैं । 7.2 फीसदी लोग ऐसे हैं जो 'मन की बात' टाइम पास के लिए सुनते हैं। 0 फीसदी लोग इनमें से कोई नहीं का विकल्प सुझाते हैं।

4 आप 'मन की बात' कार्यक्रम किस माध्यम में सुनते हैं ?

उपर्युक्त प्रश्न के उत्तर में सर्वाधिक 26 फीसदी लोग 'मन की बात' बात टी वी पर सुनते हैं वहीं 24 फीसदी लोग मोबाइल पर सुनते हैं। इसी प्रकार 14 फीसदी लोग रेडियो सेट पर और 13 फीसदी इंटरनेट पर सुनते हैं । 11 फीसदी लोग ऐसे हैं जो 'मन की बात' की बात फेसबुक लाइव पर, 5 फीसदी प्रसार भारती के ऐप पर और 7 फीसदी ट्विटर लाइव पर सुनते हैं।

5 आपके परिवार में कितने लोग 'मन की बात' सुनते हैं ?

उपर्युक्त प्रश्न के उत्तर में सर्वाधिक 43 फीसदी लोग मन की बात 'मन की बात' कार्यक्रम अकेले सुनते हैं वहीं 25 फीसदी लोग पूरे परिवार के साथ सुनते हैं। इसी प्रकार 23 फीसदी लोग कुछ लोगों के साथ सुनते हैं और 9 फीसदी इनमें से कोई नहीं का विकल्प सुझाते हैं ।

6 क्या 'मन की बात' के एपिसोड को सुनने के बाद इस पर आप बाहर चर्चा करते हैं ?

उपर्युक्त प्रश्न के उत्तर में सर्वाधिक 36 फीसदी लोग 'मन की बात' के एपिसोड सुनने के बाद उस पर बाहर चर्चा करते हैं वहीं 26 फीसदी लोग कुछ कह नहीं सकते का विकल्प सुझाते हैं । इसी प्रकार 38 फीसदी लोग 'मन की बात' के एपिसोड सुनने के बाद बाहर चर्चा नहीं करते हैं ।

7 चर्चा करते हैं किन से ?

उपर्युक्त प्रश्न के उत्तर में सर्वाधिक 28फीसदी लोग 'मन की बात' सुनने के बाद परिवार से चर्चा करते हैं इसी प्रकार 25 फीसदी लोग रिश्तेदारों से चर्चा करते हैं और 22 फीसदी लोग सभी से चर्चा करते हैं । 18 फीसदी लोग मित्रों से चर्चा करते हैं। 7 फीसदी लोग ऐसे हैं जो किसी से भी चर्चा नहीं करते हैं।

8 आप 'मन की बात' कब सुनते हैं ?

उपर्युक्त प्रश्न के उत्तर में सर्वाधिक 31 फीसदी लोग नियमित 'मन की बात' सुनते हैं। 25 फीसदी कभी कभी सुनते हैं वहीं 26 फीसदी लोग अपनी सुविधा के अनुसार सुनते हैं। इसी प्रकार 18 फीसदी लोग 'मन की बात' कभी नहीं सुनते हैं।

9 'मन की बात' जैसे कार्यक्रमा के माध्यम से सरकार और जनता के बीच दूरी कम हुई है ?

उपर्युक्त प्रश्न के उत्तर में सर्वाधिक 52 फीसदी लोग इस बात से सहमत हैं कि 'मन की बात' जैसे कार्यक्रम के माध्यम से सरकार और जनता के बीच दूरी कम हुई है वहीं 27 फीसदी लोग इससे असहमत दिखते हैं। 21 फीसदी लोग कुछ कह नहीं सकते का विकल्प सुझाते हैं।

10 आपकी नजर में क्या 'मन की बात' का मंच राजनीतिक मंच है ?

उपर्युक्त प्रश्न के उत्तर में सर्वाधिक 37 फीसदी लोग 'मन की बात' के मंच को राजनीतिक नहीं मानते हैं वहीं 33 फीसदी लोग इस पर कुछ कह नहीं सकते का विकल्प सुझाते हैं। वहीं 31 फीसदी लोग मन की बात को राजनीतिक मंच मानते हैं ।

11 क्या 'मन की बात' ने आपको शासन की कार्यप्रणाली को समझने में सहयोग किया है ?

उपर्युक्त प्रश्न के उत्तर में सर्वाधिक40 फीसदी लोग कुछ नहीं कह सकते का विकल्प देते हैं वहीं 31 फीसदी लोग नहीं का विकल्प देते हैं। इसी प्रकार 29 फीसदी लोग हामी भरते हुए हुए कहते हैं 'मन की बात' ने शासन की कार्यप्रणाली को समझने का मौका दिया है ।

12 'मन की बात' में प्रधानमंत्री की संचार शैली आपको कैसी लगती है ?

उपर्युक्त प्रश्न के उत्तर में सर्वाधिक 61 फीसदी लोग मानते हैं 'मन की बात' में प्रधानमंत्री संचार शैली उनको आकर्षक लगती है वहीं 18 फीसदी को प्रधनमंत्री की संचार शैली सामान्य लगती है । 11 फीसदी लोगों को अच्छी लगती है तो वहीं 9 फीसदी को संतोषजनक तो मात्र 1 फीसदी लोगों को यह औसत लगती है।

13 क्या 'मन की बात' में प्रधानमंत्री की संवाद शैली आपको आसानी से समझ में आ जाती है ?

उपर्युक्त प्रश्न के उत्तर में सर्वाधिक 79 फीसदी लोगों को 'मन की बात' में प्रधानमंत्री की संवाद शैली आसानी से समझ आ जाती है वहीं 15 फीसदी लोगों को ये आसानी से समझ नहीं आती है। मात्र 6 फीसदी लोग इस पर कुछ नहीं कहते हैं।

14 जिन मुद्दों का कवरेज मन की बात कार्यक्रम में होता है उसकी प्रस्तुति से आप कितना संतुष्ट हैं ?

उपर्युक्त प्रश्न के उत्तर में सर्वाधिक 66 फीसदी लोग सहमत हैं वहीं 22 फीसदी लोग थोड़ा बहुत सहमत दिखाई देते हैं वहीं 12 फीसदी लोग इस प्रश्न के उत्तर में एकदम नहीं का विकल्प सुझाते हैं।

15 क्या 'मन की बात' जीवन में सामाजिक ,आर्थिक और सांस्कृतिक बदलाव लाने में सक्म है ?

उपर्युक्त प्रश्न के उत्तर में सर्वाधिक 67 फीसदी लोग मानते हैं 'मन की बात' जैसे कार्यक्रम जीवन में सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक बदलाव लाने में सक्षम हैं वहीं 22 फीसदी लोग इसका उत्तर नहीं विकल्प में देते हैं। इसी प्रकार सबसे कम मात्र 11 फीसदी लोग ऐसे हैं जो कुछ कह नहीं सकते का विकल्प सामने रख देते हैं।

16 क्या 'मन की बात' से रेडियो जैसे माध्यम में नई जान आई है ?

उपर्युक्त प्रश्न के उत्तर में सर्वाधिक 63 फीसदी लोग इस बात को मानते हैं 'मन की बात' के आने से रेडियो में नई जान आई है ,वहीं 25 फीसदी लोग ऐसा मानते हैं रेडियो में 'मन की बात' से कोई नई जान नहीं आई है। मात्र 12 फीसदी लोग ऐसे हैं जो कुछ कह नहीं सकते का विकल्प सुझाते हैं।

17 क्या 'मन की बात' प्रधानमंत्री को सुझाव देने का बेहतर माध्यम है ?

उपर्युक्त प्रश्न के उत्तर में सर्वाधिक 69 फीसदी लोग ऐसा मानते हैं 'मन की बात' प्रधानमंत्री को सुझाव देने का बेहतर माध्यम है वहीं 22 फीसदी लोग सुझाव देने

का बेहतर माध्यम नहीं मानते हैं। इसी प्रकार मात्र 9 फीसदी लोग इस पर कुछ भी कहने से बचते हैं ।

18 'मन की बात' में उठे कुछ विषयों में से कौन से विषय ने आपके मन में खास प्रभाव छोड़ा है ?

उपर्युक्त प्रश्न के उत्तर में सर्वाधिक 21 फीसदी लोग ऐसा मानते हैं 'मन की बात' में उठे स्वच्छ भारत अभियान ने उनके मन पर खासा प्रभाव छोड़ा है वहीं 17 फीसदी लोग मानते हैं 'मन की बात' में योग ने उन्हें खासा प्रभावित किया है। 17 फीसदी लोग अन्य मसलों से प्रभावित दिखाई देते हैं वहीं 11 फीसदी लोग मानते हैं ड्रग मुक्त भारत ने उनके मन पर खासा असर छोड़ा है। 10 फीसदी लोग खादी, 10 फीसदी लोग ऐसा मानते हैं जलवायु परिवर्तन विषय ने उनके मन पर बड़ा असर किया है। 8 फीसदी को किसानों ने वहीं 6 फीसदी को परीक्षा तनाव ने प्रभावित किया है।

19 'मन की बात' में चले कौन से अभियान ने आपको सबसे अधिक प्रभावित किया है ?

उपर्युक्त प्रश्न के उत्तर में सर्वाधिक 27 फीसदी लोग ऐसे हैं जो मेक इन इंडिया अभियान से प्रभावित हैं वहीं 16 फीसदी स्किल इंडिया से, 12 फीसदी लोग इनक्रेडिबल इंडिया अभियान से, 11 फीसदी फिट इंडिया अभियान से और इन सभी अभियानों से 14 फीसदी, सेल्फी विद डाटर से 13, मुद्रा लोन से 7 फीसदी प्रभावित हैं ।

20 आपकी नजर में क्या 'मन की बात' कार्यक्रम प्रधानमंत्री को हर सप्ताह रविवार को करना चाहिए ?

उपर्युक्त प्रश्न के उत्तर में सर्वाधिक 49 फीसदी लोग ऐसा मानते हैं 'मन की बात' कार्यक्रम प्रधानमंत्री को हर सप्ताह रविवार करना चाहिए वहीं 29 फीसदी लोग मानते हैं प्रधानमंत्री को हर सप्ताह रविवार को नहीं करना चाहिए । 22 फीसदी लोग इस विषय पर कुछ कहना नहीं चाहते ।

21 आपकी नजर में क्या 'मन की बात' जैसे कार्यक्रम न्यू इंडिया में बदलाव लाने में सक्षम हैं ?

उपर्युक्त प्रश्न के उत्तर में सर्वाधिक 74 फीसदी लोग ऐसा मानते हैं 'मन की बात' जैसे कार्यक्रम न्यू इंडिया में बदलाव लाने में सक्षम हैं वहीं 26 फीसदी लोग ऐसा मानते हैं ऐसे कार्यक्रम न्यू इंडिया में बदलाव लाने में सक्षम नहीं हैं ।

22 क्या आप 'मन की बात' कार्यक्रम के मौजूदा स्वरूप में परिवर्तन चाहते हैं ?

उपर्युक्त प्रश्न के उत्तर में सर्वाधिक 24फीसदी लोग 'मन की बात' जैसे कार्यक्रम के मौजूदा स्वरूप में परिवर्तन चाहते हैं वहीं 55 फीसदी लोग मन की बात के मौजूदा स्वरूप में परिवर्तन नहीं चाहते हैं। 21 फीसदी लोगों ने इस पर कुछ नहीं कह सकते का विकल्प सुझाया।

23 'मन की बात' कार्यक्रम में सुधार लाने के लिए अपने सुझाव दीजिए

इस खुले प्रश्न के उत्तर में 50 फीसदी लोगों ने यह बताया कि 'मन की बात' कार्यक्रम में भविष्य में प्रधानमंत्री देश के अलग अलग हिस्सों के लोगों के साथ संवाद करें जो अपने अपने क्षेत्रों में बेहतर कर रहे हैं तो यह सभी के लिए अत्यधिक लाभप्रद रहेगा उनसे बात के अनुभव पूरा देश सुनना चाहेगा। इससे अन्य लोगों को भी समाज के लिए कार्य करने की नई प्रेरणा मिलेगी वहीं 25 फीसदी लोगों ने कहा भारत आज भी गांवों का देश है ।ग्रामीण इलाकों में आज भी सरकारी योजनाओं की पहुँच नहीं है। अतः प्रधानमंत्री को अपनी तमाम सरकारी योजनाओं के बारे में इस कार्यक्रम के माध्यम से जानकारी देनी चाहिए। शेष 25 फीसदी लोग मन की बात के मौजूदा फार्मेट से सहमत नजर आए। वे सभी कोई सुझाव नहीं देना चाहते हैं।

निष्कर्ष : 'मन की बात' कार्यक्रम जब शुरू हुआ तो कुछ लोगों को ऐसा लगा यह कार्यक्रम राजनीतिक है लेकिन शोध के दौरान यह देखा गया अधिकांश लोग ऐसा मानते हैं यह कोई राजनीतिक कार्यक्रम नहीं हैं । 'मन की बात' ने हाल के वर्षो में शासन की कार्यप्रणाली को समझने में भी सहयोग किया है और इससे सरकार और जनता के बीच की दूरी भी कम हुई है।

यह कहा जा सकता है 'मन की बात' जैसे कार्यक्रम ने रेडियो में नई जान फूंकने का काम किया है। 'मन की बात' ने हाल के वर्षो में लोगों की जीवन शैली को तो नहीं बदला है लेकिन यह समाज के हर तबके के बीच लोकप्रिय है शायद यही वजह है जन जागरूकता में भी 'मन की बात' कार्यक्रम खासा उपयोगी है। हम यह मान चुके थे कि रेडियो खत्म हो गया है लेकिन 'मन की बात' कार्यक्रम का देश की जनता पर अच्छा–खासा असर हुआ है। समय–समय पर प्रधानमंत्री इस कार्यक्रम में लोगों से बातें भी शेयर करते रहते हैं जहां लोग अपने अनुभव भी प्रधानमंत्री के साथ साझा किया करते हैं । 'मन की बात' कार्यक्रम के अपने अब तक हर आयोजन में प्रधानमंत्री ने सरकारी नीति और

उसके विकास के साथ लोगों से भी जुड़ने की अपील की है जिसकी जितनी प्रशंसा की जाए उतनी कम है ।प्रधानमंत्री मोदी ने 'मन की बात' जैसे कार्यक्रम के माध्यम से रेडियो में बेशक नए प्राण फूंके हैं, लेकिन रेडियो में अभी बहुत काम होना बाकी है। बहरहाल हम यह कह सकते हैं 'मन की बात' का जो लक्ष्य रखा गया था कि पूरे देश की जनता से जुड़ने का, वह इस कार्यक्रम के माध्यम से पूरा हुआ है ।

सुझाव

1 'मन की बात' जैसे कार्यक्रम का उपयोग जनसरोकारों से जुड़े हुए विषयों की तरफ करने की आज जरूरत है।

2 भारत गांवों का देश है। आमतौर पर ऐसा देश है जहां बड़ी आबादी आज भी गांवों में रहती है। दूरदराज के इन इलाकों में आज भी सरकार की तमाम योजनाओं की जानकारी नहीं पहुँच पाती है । 'मन की बात' जैसे कार्यक्रम का उपयोग इन योजनाओं के प्रसार में किया जा सकता है साथ ही समाज की तमाम समस्याओं के उन्मूलन में यह कारगर साबित हो सकता है ।

3 'मन की बात' कार्यक्रम के तमाम विज्ञापन विभिन्न माध्यमों में हाल के कई बरसों में आए हैं जिन पर करोड़ों की धनराशि खर्च की जा चुकी है। सरकार को केवल एक कार्यक्रम के प्रचार के लिए भारी धनराशि लुटाने से बचने की आज आवश्यकता है। अपने निजी हित साधने के लिए 'मन की बात' कार्यक्रम का उपयोग सरकार को नहीं करना चाहिए ।

4 आज भी ग्रामीण इलाकों के लोगों में रेडियो सुनने का आकर्षण है और इस माध्यम की व्यापक पहुँच सुदूरवर्ती इलाकों तक है और यह माध्यम विश्वसनीय है। अतः सरकार को 'मन की बात' कार्यक्रम के माध्यम से जनजागरूकता के कई कार्यक्रम चलाने की आज कोशिश करनी चाहिए।

शोध की उपयोगिता

प्रस्तुत शोध अध्ययन'मन की बात' कार्यक्रम की जनता तक पहुँच को समझने में सार्थक साबित होगा ।यह 'मन की बात' कार्यक्रम के माध्यम से जनता की भागीदारी को बढ़ाने का काम करने के साथ ही सरकारी नीतियों की दिशा और दिशा को तय करने का बेहतर माध्यम भी बनेगा। शोध अध्ययन से प्राप्त निष्कर्ष भविष्य में रेडियो की नई संभावनाओं, नीति निर्माण हेतु नई लकीर खींचने का काम करेंगे ।साथ ही इससे प्राप्त सुझावों के माध्यम से 'मन की बात' कार्यक्रम को अधिक बेहतर बनाने में मदद मिलेगी। अध्ययन में अनेक ऐसे निष्कर्ष और सुझाव दिए गए हैं जिनके आधार पर 'मन की बात' कार्यक्रम के भविष्य की दिशा भी तय की जा सकती है।

शोध की सीमाएं

प्रस्तुत शोध कार्य के लिए उत्तराखंड के नैनीताल जिले के भीमताल का चयन किया गया है। प्रस्तुत अध्ययन में शामिल किए गए अधिकांश उत्तरदाता 15 से 65 वर्ष के बीच की उम्र के हैं जिनका चयन सुविधापूर्ण नमूना विधि के अंतर्गत किया गया है। इसके साथ ही प्रश्नावली में रखे गए प्रश्न 2014 से 2017 तक प्रसारित 'मन की बात' कार्यक्रम पर आधारित हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1 *क्या सचमुच बहुरेंगे रेडियो के दिन ?, सिंह, गोविंद, अमर उजाला, 7 जनवरी, 2015*

2 *अनुराग चतुर्वेदी, मन की बात से किसे है ऐतराज, नई दुनिया डाट काम, 27 अक्तूबर 2015*

3 *गौतम, सिद्धार्थ शंकर, सामाजिक चेतना का अग्रदूत मन की बात, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2017*

4 *http://www.jagran.com/news/national-all-india-radio-rakes-in-rs-10-crore-through-pm-modis-mann-ki-baat-55 16401281.html*

5 *https://www.mygov.in/group-issue/give-your-inputs-prime-ministers-mann-ki-baat/6 http://www.pmindia.gov.in/en/news_updates/pm-urges-people-to-record-voice-messages-for-mann-ki-baat/*

7 *https://hindi.news18.com/news/nation/pm-modis-mann-ki-baat-program-earned-more-than-rs-30-crore-in-6-years-3340270.html*

8 *www. prasarbharti.gov.in*

9 *www.newsonair.com*

10 *www.ddnews.gov.in*

11 *Namo App*

12 *www.mygov.in*

13 *www.pmindia.gov.in*

14 *www.narendramodi.com*

मौर्यकाल में स्त्रियों की स्थिति

डॉ. (श्रीमती) प्रेरणा माहेश्वरी
सह-आचार्य, राजकीय डूंगर महाविद्यालय, बीकानेर

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

किसी भी देश की सभ्यता एवं संस्कृति को जानने के लिए उस देश में स्त्री के पद तथा स्थिति को जानना आवश्यक होता है। इसको जाने बिना हम संस्कृति का सही मूल्यांकन नहीं कर सकते।[1] स्त्री की स्थिति में होने वाले परिवर्तन प्रत्येक युग के समाज व्यवस्थाकारों के लिए चिंतन का विषय रहे हैं। भारतीय संस्कृति की निरन्तर प्रवाहित सुदीर्घ परंपरा में स्त्री की स्थिति, प्रतिष्ठा, शक्ति, योग्यता आदि कालक्रम में निरन्तर परिवर्तित होती रही है। एक समय में भारत के पारिवारिक, धार्मिक, सामाजिक आदि सभी क्षेत्रों में स्त्री की सम्माननीय प्रतिष्ठा दृष्टिगोचर होती है तो दूसरे समय में सर्वत्र ही नितान्त दुर्दशा परिलक्षित होती है। भारतीय इतिहास में मौर्य साम्राज्य की स्थापना के साथ ही हम इतिहास की एक सुदृढ़ धारा पर अवतरित होते हैं। मौर्यवंश की स्थापना के साथ ही भारत के राजनीतिक और सांस्कृतिक इतिहास के नवयुग का आरंभ होता है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र एवं अन्य समकालीन स्त्रोतों से मौर्ययुगीन समाज में स्त्रियों की स्थिति को समझा जा सकता है।

संकेताक्षर : *छन्दवासिनी, अनिश्कासिनी, परिव्राजिका, गणिकाध्यक्ष, दायभाग, पण मौर्यकाल, स्त्रियाँ।*

मौर्य समाज में स्त्रियों की स्थिति महत्वपूर्ण थी। पुरुषों के समान उन्हें भी पुनर्विवाह का अधिकार था। प्रशासन कार्यों के संचालन में भी उनका सहयोग रहता था। सम्पति के अधिकारों से भी उनकी आर्थिक स्थिति सुरक्षित हुई। परन्तु अनेक नियम बनाकर उनके अधिकारों को सीमित भी किया गया। कौटिल्य व्यक्तिगत रूप से स्त्रियों के प्रति अत्यन्त सहानुभूति पूर्ण थे परन्तु सामाजिक व्यवस्था के अनिवार्य नियमों को वे नकार नहीं सकते थे।मेगस्थनीज ने लिखा है कि समाज में बहुपत्नी प्रथा का प्रचलन था।[2] कुछ को वे सहधर्मिणी बनाने के लिए विवाह करके लाते थे और कुछ को संतान देने के लिये।[3] कौटिल्य के अर्थशास्त्र से भी मेगस्थनीज के कथन की पुष्टि होती है।

विवाह योग्य आयु : कौटिल्य अर्थशास्त्र में विवाह के समय लड़की की आयु 12 वर्ष और लड़के की 16 वर्ष मानी गयी है। इस नियम का उल्लंघन करने पर लड़की को 12 और लड़के को 24 पण दंड दिया जा सकता था।[4] एरियन और डायोडोरस आदि यूनानी लेखकों के अनुसार लड़की की शादी सयानी होने पर ही की जाती थी।[5]

अर्थशास्त्र में आठ प्रकार के विवाहों का उल्लेख मिलता है[6]-

ब्राह्म विवाह – कन्या को अलंकृत कर जब कन्यादान द्वारा विवाह हो तो ऐसे विवाह को ब्राह्म कहते थे।

प्राजापत्य विवाह – जब पुरुष और स्त्री परस्पर मिलकर धर्मचर्या का पालन करके विवाह सम्बन्ध को स्वीकार करते तो ऐसा विवाह प्राजापत्य कहलाता था।

आर्ष विवाह – कन्या पक्ष द्वारा गौओं का एक जोड़ा वर पक्ष को प्रदान कर जो विवाह किया जाता था, उसे आर्ष विवाह कहते थे।

दैव विवाह – यज्ञवेदी के समक्ष ऋत्विज की स्वीकृति से जो कन्यादान किया जाता था, उसे दैव कहते थे।

गान्धर्व विवाह – कन्या और वर परस्पर प्रेम के कारण स्वयं जो विवाह करते थे वह गंधर्व विवाह कहलाता था।

असुर विवाह – शुल्क देकर जो विवाह किया जाता था, उसे असुर कहते थे।

राक्षस विवाह – कन्या को बलपूर्वक ले जाकर विवाह करने को राक्षस विवाह कहते थे।

पैशाच विवाह – सोयी हुई या बेसुध स्त्री को ले जाकर जो विवाह किया जाता था, उसे पैशाच विवाह कहते थे।

इस संदर्भ मेंनियार्कस का कथन उल्लेखनीय है–"भारतीय लोग दहेज लिये या दिये बिना ही विवाह करते हैं। जब कोई स्त्री विवाह योग्य आयु की हो जाती है, तो उसके पिता उसे सम्मुख ले आते हैं ताकि ऐसे पुरुष उसे अपनी सह–धर्मिणी के रुप में वर सकें जो कि मल्लयुद्ध, मुष्टियुद्ध, दौड़ आदि में विजयी हुए हों या जिन्होंने किसी अन्य पौरुष युक्त साम्मुख्य में अपनी उत्कृष्टता प्रदर्शित की हो।[7]

उपरोक्त कथन से तत्कालीन समाज में स्वयंवर प्रथा के प्रचलन का संकेत मिलता है।

पुनर्विवाह एवं नियोग प्रथा – मौर्यकाल में पुनर्विवाह भी प्रचलित था। पुरुष और स्त्री दोनों को पुनर्विवाह का अधिकार प्राप्त था। पति की मृत्यु हो जाने पर स्त्रियां पुनर्विवाह कर सकती थी। अनेक दशाओं में वे पति के जीवित रहते हुए भी दूसरा विवाह करने का अधिकार रखती थी। कौटिल्य ने ऐसी व्यवस्था भी दी थी कि कुटुम्ब की सम्पत्ति नष्ट हो जाने पर, समृद्ध बन्धु–बान्धवों द्वारा छोड़ दिये जाने तथा जीविका के निर्वाह का साधन न होने पर पत्नी दूसरा विवाह कर लें।[8]

यदि स्त्री के कोई संतान न हो और उसका पति विदेश गया हुआ हो तो उसके लिए कम से कम एक वर्ष तक प्रतीक्षा करना आवश्यक था। पर यदि स्त्री के संतान हो तो उसे अधिक समय तक प्रतीक्षा करनी होती थी। यदि कोई ब्राह्मण विद्या के अध्ययन के लिये अन्यत्र गया हुआ हो तो उसकी पत्नी के लिए यह नियम था कि सन्तान विहीन होने की दशा में दस साल प्रतीक्षा करे और सन्तान होने पर बारह साल। यदि कोई पुरुष राज्य के कार्य से बाहर गया हुआ हो तो उसकी पत्नी को जीवन भर उसके वापस आने की प्रतीक्षा करनी चाहिए। पति के चिरकाल तक प्रवसित रहने की स्थिति में पत्नी को इस बात की अनुमति थी वह अपने पति के समान वर्ण किसी अन्य व्यक्ति से संतान प्राप्त कर सके। ऐसा करना मौर्ययुग में बदनामी की बात नहीं समझी जाती थी।[9]

यदि किसी अपुत्रवती स्त्री का पति लंबे समय के लिये परदेश चला जाए, सन्यास ले ले अथवा मर जाए तो पत्नी सात महीने तक उसकी प्रतीक्षा करें। उसके बाद वह पति के किसी सगे भाई को पुत्रोत्पादन के निमित्त पति बना सकती थी। यदि पति के कई भाई हो तो उनमें से जो भाई पति से कुछ ही छोटा हो, धर्मात्मा हो और पालन–पोषण करने में समर्थ हो, उसके साथ पुनर्विवाह कर सकती थी। पति का सबसे छोटा भाई भार्यारहित हो तो वह उसके साथ विवाह कर सकती थी। यदि पति का सहोदर भाई न हो तो उसके सौतेले भाई के साथ विवाह कर सकती थी। यदि वह भी न हो तो पति के कुल वाले किसी भी पुरुष के साथ विवाह सम्बन्ध कर सकती थी। किन्तु उस पुरुष का पति के निकट सम्बन्धियों में होना आवश्यक था।[10]

तलाक – मौर्ययुग में स्त्रियों को तलाक लेने का भी अधिकार प्राप्त था।कौटिल्य के अनुसार यदि पति का चरित्र अच्छा न हो, यदि वह परदेश चला गया हो, यदि वह राजद्वेषी हो, यदि स्त्री को उससे प्राणों का भय हो, यदि वह पतित हो गया हो और यदि वह नपुसंक हो तो पत्नी उसका परित्याग कर सकती है।[11]

पहले चार प्रकार के धर्म्य विवाहों में तलाक की अनुमति प्राप्त नहीं थी।[12] यद्यपि उनमें भी विशेष अवस्थाओं यथा पति के चिरकाल तक प्रवसित रहने या नपुसंक होने में स्त्री को पुनर्विवाह करने या नियोग द्वारा संतान प्राप्त करने का अधिकार प्राप्त था। मौर्ययुग में ऐसी स्त्रियों का भी उल्लेख मिलता है जो पुनर्विवाह न करके स्वतंत्र रूप से जीवन बिताया करती थी। कौटिल्य ने ऐसी स्त्रियों को छन्दवासिनी (स्वतंत्र रूप से रहने वाली) विधवा कहा है।[13]

पर्दा प्रथा – कौटिलिय अर्थशास्त्र में एक स्थान पर स्त्रियों के लिए अनिष्कासिनीनां[14] (न निकलने वाली) विशेषण का प्रयोग किया गया है। इससे यह ज्ञात होता है कि मौर्य युग में स्त्रियां प्रायः घर के अन्दर ही रहा करती थी। पर वे परदे में भी रहा करती थी, इस विषय में कोई निर्देश नहीं मिलता। अर्थशास्त्र में स्त्री–अंगरक्षकों, स्त्री–परिचारिकाओं, भिक्षुकी एवं स्त्री गुप्तचरों का उल्लेख मिलता है। ये उल्लेख मौर्ययुग में पर्दा प्रथा का प्रचलन न होने का प्रमाण उपस्थित करते हैं।

जौहर और सती प्रथा – यूनानी लेखक कर्टियस ने लिखा है कि अग्रश्रेणियों ने अपने दुर्ग की रक्षा के लिए वीरता से सिकन्दर का प्रतिरोध किया था लेकिन जब

विजय की आशा जाती रही तो उन्होंने अपने घरों में आग लगा दी और सभी पुरूष व स्त्री, बच्चे दहकती आग में कूदकर जल मरे।[15] भारतीय इतिहास में यह जौहर का प्रथम उदाहरण प्रतीत होता है।

ग्रीक विवरणों से इस काल में सती प्रथा की सूचना मिलती है। डायोडोरस के अनुसार 316 ई.पू. में जब ईरान के एक युद्ध में एक भारतीय सेनापति की मृत्यु हो गई तो उसकी दोनों पत्नियों ने सती होने की इच्छा प्रकट की। बड़ी पत्नी के संतान थी अतः उसे अपने पति के शव के साथ सती नही होने दिया गया पर दूसरी पत्नी को सती होने की अनुमति दी। जब वह पति की चिता के समीप पहुंची तो उसने सब आभूषण उतार दिये और अपने परिजनों में बांट दिया। इसके पश्चात् उसने अपने सब सम्बन्धियों और परिजनों से विदा ली, और चिता पर चढ़कर अपने पति की बगल में लेट गई। सारी सेना ने तीन बार चिता की परिक्रमा की और उसके बाद चिता को आग लगा दी गई।[16] इनकी पुष्टि हेतु अन्य प्रमाण नहीं मिलते है।

प्रशासन में स्त्रियों का योगदान

मौर्य शासकों ने प्रशासन को सुव्यवस्थित ढंग से संचालित करने के लिए उचित प्रबन्ध किए थे। स्त्रियों को भी महत्वपूर्ण पद दिए गए।

गुप्तचर स्त्रियां

अनेक गुप्तचर स्त्रियों के उल्लेख मिलते हैं। मंत्री एवं अन्य अधिकारियों के भीतरी समाचार जानने के लिए भिक्षुकी गुप्तचरों को नियुक्त किया जाता था।[17] उन्हें परिव्राजिका कहा जाता था। उन्हें समस्त सूचनाएँ संस्था नामक गुप्तचरों तक पहुंचानी होती थी।[18] यदि अन्तःपुर में भिक्षुकी का प्रवेश निषिद्ध होता था तो स्त्री गुप्तचर अन्तःपुर की स्त्रियों के केश संस्कार आदि शिल्प अथवा गायन-वाद्य आदि सुनाने का बहाना करके भीतर जाती थी और वहां का समाचार बाहर भेजती थी।[19]

राजा की अंगरक्षिकाओं के रूप में भी स्त्रियों को रखा जाता था।[20]

गणिकाएँ

मौर्यकालीन समाज में गणिकाओं का विशेष स्थान था। संतान के जन्म आदि शुभ अवसरों पर इन्हें विशिष्ट रूप से आमंत्रित किया जाता था और इस अवसर पर ये अपनी कला का प्रदर्शन करती थी।[21] गणिकाध्यक्ष नामक अधिकारी गणिकावंश में उत्पन्न अथवा अगणिका वंश में जायमान रूपवती, यौवनवती और गाने-बजाने की कलाओं से सम्पन्न कामिनी को प्रतिवर्ष एक हजार पण के वेतन पर राजकुल की गणिका के रूप में नियुक्त करता था।[22]

राजकीय गणिका के सौंदर्य और अलंकार की अधिकता देखकर गणिकाओं को क्रमशः कनिष्ठ, मध्यम एवं उत्तम श्रेणियों में विभक्त किया जता था। कनिष्ठ श्रेणी की गणिका को एक हजार, मध्यम को दो हजार और उत्तम श्रेणी की गणिका को तीन हजार पण वार्षिक वेतन पर नियुक्ति मिलती थी।[23] गणिका यदि राजसेवा से मुक्त होना चाहती थी तो उसे 24000 पण निष्क्रय अर्थात् मुक्तिमूल्य चुकाना पड़ता था।[24] रूपाजीवा स्त्रियों (व्यभिचार करके जीविका चलाने वाली) का भी उल्लेख मिलता है जिन्हें प्रतिमास महीने भर की आमदनी में से दो दिन की आय सरकार को कर के रूप में देनी होती थी।

स्त्रियों के सांपत्तिक अधिकार

किसी व्यक्ति के पुत्र नहीं होने पर मृत्यु की स्थिति में चार प्रकार के धर्म संगत विवाहों में से किसी विवाह द्वारा उत्पन्न पुत्रियों को सम्पत्ति में अधिकार मिलता था।[25] पति की मृत्यु के पश्चात् उसकी पत्नी तुरन्त निश्चित संख्या में जमा किए हुए आभूषण तथा पति के धन से होने वाली आय की अधिकारिणी हो जाती थी।[26] विन्दमाना (द्वितीय पत्नी) पति को प्राप्त दाय भाग (भाई - चाचा आदि कुटुम्ब से मिलने वाले हिस्से) से वंचित रहती थी। परन्तु पति के मर जाने पर यदि धर्मपूर्वक घर में रहना चाहती थी तो उसे पति का दायभाग पाने और भोगने का अधिकार था।[27]

स्त्रियों पर विविध प्रतिबंध

मौर्य समाज में विवाहित स्त्रियों को घर से बाहर जाने आने की स्वतंत्रता प्राप्त नहीं थी। उन्हें प्रायः घर में ही रहना होता था। कौटिल्य ने लिखा है- यदि कोई स्त्री अपने पति के घर से बाहर जाए तो उसे छः पण दण्ड दिया जाए।[28] यदि पति ने स्त्री को कहीं बाहर जाने में रोका हुआ हो और फिर भी वह घर से बाहर जाए तो उस पर बारह पण का जुर्माना किया जाए। कौटिल्य ने लिखा है कि यदि कोई स्त्री पड़ौसी को अपने घर में आने दे, या किसी भिक्षुक को घर बुलाकर भिक्षा प्रदान करे, या किसी सौदागर से घर के भीतर सौदा ग्रहण करे तो उस पर बारह पण जुर्माना किया जाए।[29] केवल

स्त्री का अपने घर से बाहर जाना ही निषिद्ध नहीं था, अपितु वह किसी स्त्री तक को अपने घर में आने नहीं दे सकती थी। दूसरे की पत्नी को अपने घर में आने देने पर उसके लिए 100 पण दंड का विधान था।[30] स्त्रियों को कहां तक स्वतंत्रता मिलनी चाहिए इस संदर्भ में कौटिल्य का मत था कि अपने बान्धवों के घर यदि अन्य पुरूष भी रहता हो तो पति के द्वारा अपमानित स्त्री जा सकती थी। उस दशा में जा सकती थी जबकि वहां कोई मृत्यु हो गई हो, या कोई रोगी हो, या उस पर कोई विपत्ति आ गई हो या वहां कोई बच्चा होने वाला हो। ऐसे अवसरों पर यदि उसे कोई रोके तो उसे बाहर पण जुर्माने का दण्ड दिया जाता था।[31]

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि मौर्यकाल में स्त्रियों की स्थिति के दो पक्ष थे।प्रशासनिक पदों पर स्त्रियों की नियुक्तियां, पुनर्विवाह का अधिकार एवं प्रदत्त सांपतिक अधिकार समाज में उनकी महत्वपूर्ण स्थिति के परिचायक हैं। वे पुरूषों के साथ धार्मिक व सामाजिक समारोह में भाग लेती थी परन्तु अनेक प्रतिबंधों के कारण वह पुरूष की मातहत भी प्रतीत होती है। वस्तुतः मौर्यकाल सामन्तवाद के अभ्युत्थान का युग था। इसमें स्त्रियों की वह स्वतंत्रता कायम नहीं रह सकती थी जो उन्हें मातृसत्तात्मक युग में या वैदिक काल में प्राप्त थी।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. *अल्तेकर, ए.एस.(1938) दी पोजीशन ऑफ वीमेन इन हिन्दू सिविलाईजेशन, दि कल्चर पब्लिकेशन हाऊस, BHU, पृ.1*
2. *रोमिला थापर (1997) अशोक और मौर्य साम्राज्य का पतन, ग्रंथ शिल्पी, नई दिल्ली, 1997, पृ. 81*
3. *रामचन्द्र शुक्ल–अनुवादक (2018) मेगास्थिनीज का भारत वर्णन, खण्डेलवाल पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, जयपुर,पृ.54*
4. *द्वादशवर्षा स्त्री प्राप्तव्यवहारा भवति। षोडशवर्षः पुमान्। अत उर्ध्वमशुश्रूषायां द्वादशपणः स्त्रिया दण्डः पुंसो द्विगुणः। कौटिलीयं अर्थशास्त्रम्(2017) 3/3 59 प्रकरणे,रामतेज शास्त्री, आर्यावर्त्त संस्कृति संस्थान दिल्ली पृ. 254*
5. *भगवती प्रसाद पांथरी– मौर्य साम्राज्य का सांस्कृतिक इतिहास, हिन्दी समिति, लखनऊ। पृ. 322*
6. *कन्यादानं कन्यामलकृत्य ब्राह्मो विवाहः। सहधर्मचर्या प्राजापत्यः। गौमिथुनदानादार्षः। अन्तर्वेद्यामृत्विजे दानादैवः। मिथःसमवायाद्गान्धर्वः। शुल्कदानादासुरः। प्रसह्यदानाद्राक्षसः। सुप्तदानात्पैशाचः। कौटिलीयं अर्थशास्त्रम् (2017) 3/2, 59 प्रकरणे, पृ 249–250*
7. *सत्यकेतु विद्यालंकार (2000), मौर्य साम्राज्य का इतिहास, श्री सरस्वती सदन, नई दिल्ली, पृ. 389*
8. *कुटुम्बर्धिलोपे वा सुखावस्थैर्विमुक्ता यथेष्टं विन्देन जीवितार्थ मापद्रता वा। कौ. अर्थशास्त्र –3/4– प्रकरणे 59, पृ. 260–261*
9. *ब्राह्मणमधीयानं दशवर्षाण्यप्रजाता द्वादश प्रजाता। राजपुरुषमाआयुःक्षयादाकांक्षेत। सवर्णतश्र्च प्रजातानापवादं लभेत। कौ. अर्थशास्त्र – 3/4, 59 प्रकरणे– पृ. 260–261*
10. *दीर्घप्रवासिनः प्रवजितस्य प्रेतस्य वा भार्या सप्त तीर्थान्याकांक्षेत। संवत्सरं प्रजाता। ततः पतिसोदर्यें गच्छेत्। बहुषु प्रत्यासन्नं धार्मिक भर्मसमर्थ कनिष्ठम भार्य वा। तद्भावेऽप्यसोदर्यें सपिण्डं कुल्यं वा। कौ. अर्थशास्त्र – 3/4,59 प्रकरणे, पृ. 261*
11. *नीचत्वं परदेशं वा प्रस्थितोराजकिल्बिषी। प्राणाभिहन्ता पतितस्त्याज्य; क्लीबोंऽपि वा पतिः। कौ. अर्थशास्त्र 3/2, 59 प्रकरणे, पृ.254*
12. *अमोक्षो धर्म विवाहानामिति। कौ. अर्थ. 3/3, 59 प्रकरणे, पृ. 256*
13. *सत्यकेतु विद्यालंकार (2000) मौर्य साम्राज्य का इतिहास, श्री सरस्वती सदन् नई दिल्ली, पृ. 393.*
14. *सत्यकेतु विद्यालंकार (2000) मौर्य साम्राज्य का इतिहास, श्री सरस्वती सदन् नई दिल्ली, पृ. 395.*
15. *भगवती प्रसाद पांथरी– मौर्य साम्राज्य का सांस्कृतिक इतिहास, हिन्दी समिति, लखनऊ। पृ. 323*
16. *अल्तेकर (1938) दी पोजीशन ऑफ वीमन इन हिन्दु सिविलाईजेशन, दि कल्चर पब्लिकेशन हाऊस, BHU, पृ. 142–143.*
17. *उपधाभिः शुद्धोऽमात्यमार्गो गूढ़ पुरुषनुत्पादयेत। कापटिकोदास्थितगृहपतिक वैदेहकतापसन्यंजनान् सत्रितीक्ष्णरसदभिक्षुकीश्च। कौ. अर्थशास्त्र –1/11,7 प्रकरणे, पृ. 27*
18. *सूदारालिकस्नामकसंवाहकास्तरककल्पप्रसाधाकोदकपरिचारका रसदाः कुब्जवामनकिरातमूकबधिरजडान्धच्छद्मानो*

   नटनर्तकगायनवादकवाग्जीवनकुशीलवाः स्त्रियश्चाभ्यन्तरं चारं विद्युः।

   तं भिक्षुक्यः संस्थास्वर्पयेयुः।कौ. अर्थशास्त्र – 1/12, 8 प्रकरणे, पृ. 31

19. भिक्षुकीप्रतिषेधे द्वाःस्थपरम्परा मातृपितृव्यंजनाः शिल्पकारिकाः कुशीलवा दास्यो वा गीतापाठ्यभाण्डगूढलेख्यसंज्ञाभिर्वा चारं निर्हारयेयुः।कौ. अर्थशास्त्र– 1/12, 8 प्रकरणे, पृ.32

20. शयनादुत्थितः स्त्रीगणैर्धन्विभिः परिगृह्येत। कौ. अर्थशास्त्र – 1/21, 18 प्रकरण, पृ. 63; रामचन्द्र शुक्ल–अनुवादक (2018) मेगास्थिनीज का भारत वर्णन,खण्डेलवाल पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स,जयपुर, पृ.54

21. उर्मिला प्रकाश मिश्र (1987) प्राचीन भारत में नारी, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल, पृ. 18

22. गणिकाध्यक्षों गणिकान्वयामगणिकान्वयां वा रुपयौवनशिल्पसम्पन्नां सहस्त्रेण गणिकां कारयेत्। कौ. अर्थशास्त्र– 2/27, 44 प्रकरणे, पृ. 198

23. सौभाग्यालंकारवृद्धया सहस्त्रेण वारं कनिष्ठं मध्यममुत्तमं वारोपयेत्। कौ. अर्थशास्त्र– 2/27,44 प्रकरणे, पृ. 199

24. निष्क्रयश्चतुर्विंशतिसाहस्त्रों गणिकायाः कौ. अर्थशास्त्र – 2/27,44 प्रकरणे, पृ. 199

25. रिक्थं पुत्रवतः पुत्रा दुहितरों वा धर्मिष्ठेषु विवाहेषु जाताः कौ. अर्थशास्त्र – 3/5, 60 प्रकरणे,पृ. 263

26. मृते भर्तरि धर्मकामा तदानीमेवास्थाप्याभरणं शुल्कशेषं च लभेत। कौ. अर्थशास्त्र – 2/2, 59 प्रकरणे, पृ. 251

27. प्रतिदायं विन्दमाना जीयेत। धर्मकामा भुंजीत। कौ. अर्थशास्त्र – 2/2, 59 प्रकरणे, पृ. 251

28. पतिकुलान्निष्पतितायाः स्त्रियाःषट्पणों दण्डोऽन्यत्र विप्रकारात्। प्रतिषिद्धायां द्वादशपणः। प्रतिवेशगृहातिगाया षट्पणः। कौ. अर्थशास्त्र– 3/4, 59 प्रकरणे, पृ. 258

29. प्रातिवेशिकभिक्षुकवैदेहकानामवकाशभिक्षापण्यादाने द्वादशपणो दण्डः। प्रतिषिद्धानां पूर्वः साहसदण्डः। कौ. अर्थशास्त्र –3/4, 59 प्रकरणे, पृ. 258

30. परभार्यावकाशदाने शत्यो दण्डोऽन्यत्रापद्भ्यः। कौ. अर्थशास्त्र– 3/4, 59 प्रकरणे, पृ. 258.

31. सपुरुषं वा ज्ञातिकुलम्। कुतो हि साधवीजनस्य छलं सुखमेतदवबोद्धुम्। इति कौटिल्यः। प्रेत व्याधिव्यसनगर्भनिमित्तामप्रतिषिद्धमेव ज्ञातिकुलगमनम्। तन्निमित्तं वारयतो द्वादशपणो दण्डः। कौ. अर्थशास्त्र – 3/4,59 प्रकरणे, पृ. 259

राष्ट्र की अवधारणा और भारतीय चिन्तन

डॉ. संजीव कुमार लवानियाँ
असिस्टेंट प्रोफेसर, पं. सुन्दरलाल शर्मा मुक्त विश्वविद्यालय, विलासपुर (छत्तीसगढ़)

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

*भारतीय चिन्तन में राष्ट्र मात्र भूभाग नहीं है, अपितु एक जाग्रत देव है। प्राचीन साहित्य अर्थात् संस्कृत के वैदिक साहित्य से लेकर लौकिक साहित्य में राष्ट्रदेव की आराधना के सुमधुर सुर गुंजायमान हैं। वाल्मीकि जैसे कवियों ने जननी **'जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी'** जैसे भावों से भारतीय राष्ट्रवादी चिन्तन की भावभूमि को सींचा है। स्वामी विवेकानन्द एवं एकात्म मानववाद के प्रणेता पण्डित दीनदयाल उपाध्याय जी जैसे विचारकों ने उसी चिन्तन के समर्थ भाष्यकार की भूमिका निभाई। हमारे महाकाव्यों एवं नाटकों के नायकों के चरित्र में शाश्वत भारत राष्ट्र के मूल्यों के प्रति सदैव समर्पण एवं संरक्षण का भाव रहा है। यह प्रेरणा के अभिनव आयाम स्थापित करता है। आशय यह है कि सभी के चिन्तन एवं शिवसंकल्प में **'राष्ट्र देवो भव'** ही सर्वोपरि रहा है। यही भारतीय चिन्तन में राष्ट्र की मौलिक अवधारणा है और इसी अवधारणा का परिपालन तथा अंगीकार आज सर्वथा अपरिहार्य एंवम् प्रासंगिक है। इतना ही नहीं. हमारे राष्ट्र के सम्मुख उपस्थित सभी समस्याओं, विभीशिकाओं एवं चुनौतियों का सुदृढ़ समाधान उक्त चिन्तन में ही समाहित है।*

संकेताक्षर : *भारतीय साहित्य और राष्ट्र, भारतीय चिन्तन, राष्ट्रीय मूल्य, विवेकानन्द, एकात्म-मानववाद।*

'शाश्वत भारत' की वन्दना के पावन स्वर भारत के प्राचीनतम साहित्य वेद में अनेकत्र विद्यमान हैं। अथर्ववेद में यदि राष्ट्र को देवकोटि में रखकर ऋषि राष्ट्रदेव की उपासना करता हैं,[1] तो यजुर्वेद में **''वयं राष्ट्रे जागृयाम पुरोहिताः''**[2] कहकर अपनी सर्वोत्तम श्रद्धा समर्पित करता है। वह राष्ट्ररक्षा हेतु सर्वत्र सन्नद्ध है।[3] वाल्मीकि रामायण का प्रणेताऋषि तो राष्ट्र-आराधन हेतु चरमोत्कर्ष पर विद्यमान है-

''नेयं स्वर्णमयी लंका, रोचते मम लक्ष्मण।
जननी जन्मभूमिश्च स्वार्गदपि गरीयसी।।''[4]

राष्ट्रीय उपासना के यही स्वर राष्ट्रसन्त स्वामी विवेकानन्द जी के साहित्य में सर्वत्र पिरोये हुए हैं। वे कहते हैं कि यह वही प्राचीन भूमि है, जहाँ दूसरे देशों को जाने से पहले तत्त्वज्ञान ने आकार यहीं अपनी वासभूमि बनायी थी। यह वही भारत है, जहाँ के आध्यात्मिक प्रवाह का स्थूल प्रतिरूप उसके बहने वाले समुद्राकार नद हैं, जहाँ चिरन्तन हिमालय श्रेणीबद्ध उठा हुआ अपने हिमशिखरों द्वारा मानो स्वर्ग राज्य के रहस्यों की ओर निहार रहा है। यह वही भारत है, जिसकी भूमि पर संसार के सर्वश्रेष्ठ ऋषियों की चरणरज पड़ चुकी है। यहीं सब से पहले मनुष्य-प्रकृति तथा अन्तर्जगत् के रहस्योद्घाटन की जिज्ञासाओं के अंकुर उगे थे। आत्मा का अमरत्व, अन्तर्यामी ईश्वर एवं जगत्प्रपंच तथा मनुष्य के भीतर सर्वव्यापी परमात्मा-विषयक मतवादों का पहले यहीं उद्भव हुआ था और वहीं धर्म, दर्शन के आदर्शों ने अपनी चरम उन्नति प्राप्त की थी। यह वहीं भूमि है, जहाँ से उमड़ती हुई बाढ़ की तरह धर्म तथा दार्शनिक तत्वों ने समग्र संसार को बार बार प्लावित कर दिया, और यही भूमि है, जहाँ से पुनः ऐसी ही तरंगे उठकर निस्तेज जातियों में शक्ति और जीवन का संचार कर देंगी। यह वही भारत है जो शताब्दियों के आघात, विदेशियों के शत शत आक्रमण और सैकड़ों आचार-व्यवहारों के विपर्यय सहकर भी अक्षय बना हुआ है। यह वही भारत है जो अपने

अविनाशी वीर्य और जीवन के साथ अब तक पर्वत से भी दृढ़तर भाव से खड़ा है। आत्मा जैसे अनादि, अनन्त और अमृतस्वरूप है, वैसे ही हमारी भारतभूमि का जीवन है। और हम इसी देश की सन्तान है।[5]

स्वामी जी कहते है कि कितनी बार मुझसे कहा गया है कि अतीत की ओर नजर डालने से सिर्फ मन की अवनति ही होती है और इससे कोई फल नहीं होता, अतः हमें भविष्य की ओर दृष्टि रखनी चाहिए। यह सच है परन्तु अतीत से ही भविष्य का निर्माण होता है। अतः जहाँ तक हो सके, अतीत की ओर देखो, पीछे जो चिरन्तन निर्झर बह रहा है, आकण्ठ उसका जल पिओ और उसके बाद सामने देखो और भारत को उज्ज्वलतर, महत्तर और पहले से और भी ऊँचा उठाओ। हमारे पूर्वज महान् थे। पहले यह बात हमें याद करनी होगी। हमें समझना होगा कि हम किन उपादानों से बने हैं, कौनसा खून हमारी नसों में बह रहा है। उस खून पर हमें विश्वास करना होगा। और अतीत के उसके कृतित्व पर भी। इस विश्वास और गौरव के ज्ञान से हम अवश्य एक ऐसे भारत की नींव डालेंगे, जो पहले से श्रेष्ठ होगा। अवश्य ही यहाँ बीच-बीच में दुर्दशा और अवनति के युग भी रहे हैं, पर उनको मैं अधिक महत्व नहीं देता। हम सभी उसके विषय में जानते हैं। ऐसे युगों का होना आवश्यक था।

किसी विशाल वृक्ष से एक सुन्दर पका हुआ फल पैदा हुआ। फल जमीन पर गिरा, मुरझाया और सड़ा। इस विनाश से जो अंकुर उगा, सम्भव है पहले के वृक्ष से बड़ा हो जाए। अवनति के जिन युगों के भीतर से हमें गुजरना पड़ा, वे सभी आवश्यक थे। इसी अवनति के भीरत से भविष्य का भारत आ रहा है। वह अंकुरित हो चुका है, उसके नये पल्लव निकल चुके हैं और उस शक्तिधर विशालकाय ऊर्ध्वमूल वृक्ष का निकलना शुरु हो चुका है।[6]

राष्ट्र की अवधारणा और भारतीय चिन्तन के सर्दभ में पं. दीनदयाल उपाध्याय के विचार भी अपरिहार्य हैं पं. दीनदयाल जी ने श्रीमत् आद्य शंकराचार्य की एक छोटी सी जीवनी लिखी है। उसकी प्रस्तावना को उनके 'राष्ट्रचिंतन' शीर्षक लेख-संग्रह में 'राष्ट्रीयता का पुण्य प्रवाह' अध्याय-शीर्षक में सम्मिलित किया गया है। उस प्रस्तावना में निहित विचारों में दो बहुत ही मननीय बातें हैं। पहला विचार यह है कि ''राष्ट्र का जीवन एकाध दिन अथवा दो-चार वर्ष में बनाया-बिगाड़ा नहीं जा सकता और कोई महापुरुष भी राष्ट्रजीवन के संस्कारों से अलिप्त रहकर अपनी मानसिक, आध्यात्मिक, अथवा शारीरिक शक्तियों का विकास करता हुआ राष्ट्रजीवन का निर्माण नहीं कर सकता। महापुरुष तो सामाजिक साधना के मूर्त रूप होते हैं, वे तो समाज में बरसों तक चली विचारक्रांति के दृश्ट फल होते हैं। उनकी अलौकिक शक्ति एवं ऐश्वर्य, सर्वस्पर्शी प्रतिभा, अखण्ड कर्ममय जीवन और सर्वव्यापी प्रभाव को देखकर हमारी आँखे इतनी चौंधिया जाती हैं कि हम उन महापुरुषों को जन्म देने वाली जीवनधारा को भुला देते है। समाज की इस आन्तरिक जीवन साधना का स्वरूप भिन्न-भिन्न युगों में विशेष महापुरुषों की साधना एवं सिद्धि के द्वारा कालोचित आकार और बाह्य वेशभूषा लिये प्रकट होता रहता है। इसीलिए किसी भी महापुरुष को समझने के लिए पहले सामाजिक जीवन की इस साधना के स्वरूप का आकलन नितांत आवश्यक होता है। युगपुरुष श्रीमत् शंकराचार्य का महत्व भी उस युग की प्रकृत्ति का ज्ञान करा लेने के बाद ही समझ में आ सकेगा।''[7]

एकात्म मानव दर्शन के प्रणेता पं. दीनदयाल उपाध्याय की यह मान्यता भी बड़ी महत्वपूर्ण है कि राष्ट्र का स्वरूप कभी वैसा अस्थिर नहीं हुआ करता। आज हम देखते हैं कि राज्यों की सीमाएँ बदली जा सकती हैं, राज्यकर्ता भी बदल जाते हैं। जहाँ एक राज्य के दो राज्य बनाये जा सकते हैं, वहाँ दो राज्यों को मिलाकर एक राज्य भी बन सकता है। आज उत्तर और दक्षिण वियतनाम के दो स्वतंत्र राज्य रहे ही कहाँ हैं ? क्या हम उस संदर्भ में कह सकते है कि वहाँ दो राष्ट्रों को मिलाकर एक राष्ट्र बन गया? ऐसा कहना तो हास्यास्पद होगा। चीन ने तिब्बत पर अधिकार कर लिया है। इसका अर्थ यह कदापि नहीं होता कि तिब्बत चीनी राष्ट्र का अंग बना गया। भारत में अंग्रेजों का राज्य डेढ़ सौ वर्ष रहा, किन्तु यह राष्ट्र हिन्दू ही था। राष्ट्र एक स्थायी अवधारणा है। विशिष्ट स्वभाव वाले लोकसमूह को प्रदीर्घ ऐतिहासिक प्रक्रिया से विशिष्ट भूप्रदेश पर राष्ट्रत्व प्राप्त होता है। राष्ट्र एक जीवमान वस्तु (living organism) है, तो राज्य सुविधा के लिए निर्मित एक व्यवस्था (मशीनरी)। जैसे शरीर होता है और उस पर वस्त्र-परिधान किया जाता है, तो शरीर के लिए वत्र होता है या वस्त्र के लिए शरीर ? हम देखते है कि शरीर का आकार, उसका डीलडौल, वर्ण, जलवायु, ऋतु और शरीर से अपेक्षित कार्य के स्वरूप के अनुसार हम वस्त्र-परिधान करते हैं बचपन के वस्त्र

बड़े होने पर काम नहीं आते। शीतकाल के लिए बने वस्त्रों का गरमी के दिनों में कोई उपयोग नहीं होता। राज्य और राष्ट्र सम्बन्ध भी कुछ ऐसे ही होते हैं। शरीर पर कोई वस्त्र न हो, तब भी शरीर तो होता ही है। वस्त्रों का उद्देश्य तन को संरक्षण करना, उसे शोभा प्राप्त करा देना और शारीरिक सामाजिक व्यवहारों को को सुविधा पूर्ण बनाना भी होता है। राज्य भी राष्ट्र की सेवा के लिए होता है। जो राज्य राष्ट्र की उचित ढंग से सेवा न करता हो, उसे बदला जा सकता है। राष्ट्र में सत्तान्तरण हुआ, इतना ही उसका अर्थ देता है। विदेशी सत्ता क्यों राष्ट्र के लिए असहनीय हो जाती है? इसलिए कि राष्ट्र के स्वत्व को विदेशी प्रभुता में घुटन अनुभव होती है। विदेशी सत्ता भले ही अच्छी क्यों न हो, विदेशी राज्य एक सुराज्यभेल ही क्यों न हो, स्वराज्य की प्यास उससे नहीं बुझ पाती। केवल स्वराज्य के आने से भी संतोष नहीं मिलता।[8]

इस सारे प्रतिपादन द्वारा पं. दीनदयाल जी ने इस आवश्यकता को ही प्रस्तुत किया है कि क्षेत्र कोई भी हो देश के सभी कार्यों एवं योजनाओं की प्रधान कसौटी राष्ट्रहित ही होना चाहिए। उन्होंने धर्म की सार्वभौमिकता, राष्ट्र की स्वयंभू, स्थायी एवं जीवमान सत्ता, राज्य के कर्तव्य, स्वराज्य और स्वतंत्रता के निश्चित आशय आदि सब बातों को सहजता से स्पष्ट किया है। शासन की अत्यधिक प्रभुता एवं राष्ट्र की दुर्बलता एक आपत्तिजनक विकृति हैं, ऐसी स्पष्ट चेतावनी भी उन्होंने दी है। निःसंदेह उनके इस चिंन्तन ने अनेक प्रचलित परिकल्पनाओं को धक्का दिया है। आगे चलकर जयप्रकाश जी ने भी कहा कि भारत, पाकिस्तान तथा बंगलादेश यद्यपि तीन पृथक राज्य हो गये हैं, फिर भी इस सम्पूर्ण भूभाग का राष्ट्र तो एक ही है। राज्य राष्ट्र नहीं हैं, इसी सिद्धांत के अनुशंग से पं. दीनदयाल जी अखण्ड भारत का विचार दो टूक शब्दों में प्रस्तुत किया करते थे। उनके विवेचन से यह भी ध्यान में आता है कि एक राज्य में अनेक राष्ट्रों को ठूँसने अथवा एक राष्ट्र को कृत्रिमता से अनेक राज्यों में विभाजित करने के कारण ही विश्व के अनेक जनसमाजों एवं भूखण्डों में आंदोलन या उत्पात हो रहे हैं। अतः प्रभुत्वाकांक्षी पराये राष्ट्रों के स्वार्थवश निर्मित देशविभाजनों को नष्ट करने की इच्छा जर्मनी, कोरिया अथवा भारत की जनता में हो तो उसे स्वाभाविक ही मानना पड़ेगा।[9]

विश्व में अन्यत्र व्यवच्छेदक राष्ट्रीय विशेषताएँ, उन राष्ट्रों की अपनी प्रकृति, उनकी जीवनलक्ष्य आदि की परिकल्पनाएँ पर्याप्त मात्रा में स्पष्ट हों या न हों, भारत में वे बिल्कुल स्पष्ट हैं। हो सकता है कि अन्यत्र इन परिकल्पनाओं को और स्पष्ट करने के लिए शायद इतिहास के कुछ और पृष्ठ लग जायें। उदाहरणार्थ कनाडा अनेक जाति-समूहों (एथनिक ग्रुप्स) को मिलाकर अभी कुछ शताब्दियों पूर्व ही बनाया गया एक राज्य है। वह एक राज्य है, एक शासन के अधीन है, किन्तु एकात्म सांस्कृतिक निकाय के नाते आज भी परिपक्व नहीं हो पाया हैं फ्रेंच परंपरा के बारे में आत्मीयता का अनुभव करने वाला एक बडा जनसमूह वहाँ रहता है। कुछ वर्ष पूर्व एक बार द गाल कनाडा गये तो इस अलगाव की भावना को लोगों ने स्पष्ट शब्दों में मुखर किया था। द गाल ने इस भावना की प्रशंसा की थी, जिसके परिणामस्वरूप उत्पन्न तनाव के कारण द गाल को अपनी कनाडा यात्रा बीच में ही छोड़कर लौटना पड़ा था। सोवियत रूस समाजवादी राज्य तो है, किन्तु एकरस राष्ट्र भी था, ऐसा आज भी नहीं कहा जा सकता। वहाँ कम से कम सौ राष्ट्रीयताएँ हैं और उनमें से प्रत्येक में अपनी अलग पहचान की भावना बनी हुई है।[10]

इसकी तुलना में हिन्दू राष्ट्र की प्राचीनता एवं उसकी जीवनधारा की अद्भुत निरंतरता के कारण यहाँ सांस्कृतिक राष्ट्रीयता हमारों वर्ष से परिपक्व है। हिन्दुत्व के सूत्र की उपेक्षा कर हिन्दुस्थान के एक राष्ट्रीयत्व की कल्पना भी नहीं की जा सकती। आजकल की राजनीति भारत के जन संख्यों को जोड़ने के स्थान पर एक दूसरे से तोड़ने को ही काम अधिक कर रही है। इसीलिए राष्ट्र के परिप्रेक्षय में राजनीति और शासनसत्त की परिसीमाओं एवं कर्तव्यों का क्या स्थान है, ठीक से समझने की आवश्यकता है। 'हिन्दू' ईसाई या इस्लामी संप्रदायों की पंक्ति में बिठाया जा सकने वाला एक संप्रदाय नहीं है। वह तो विशिष्ट जीवन-दृष्टि और जीवन-प्रणाली का बोध जगाने वाला और सबको अपने अंदर समा सकने वाला एक अत्यत गौरवशाली शब्द है। हिन्दू अभिधान से पहचाने जाने वाले समाज ने भारत भूमि में इसी एकात्म सांस्कृतिक जीवनप्रवाह (वे ऑफ लाइफ) का विकास किया है और इसीलिए स्वाभाविकतः यह हिन्दू राष्ट्र है। काश्मीर से कन्याकुमारी तक और बंबई से कलकत्ता तक देश को जोड़ने वाला ही शब्द है। क्यों मराठी व्यक्ति असम की घटनाओं से अशांत होता है? उनमें हिन्दुत्व का बंधन

है, यही इसका एकमात्र उत्तर है। अपने इस राष्ट्रीय स्वत्व का पोषण करना स्वरास्वज्य का कार्य है। भारत में राज्यसंस्था का यही लक्ष्य है। इसके विपरीत कुछ होता हो तो उसे निश्चय ही राष्ट्रहित के लिए मारक कहना पड़ेगा। पं. दीनदयाल जी का विचार इतना स्पष्ट, स्वाभाविक और राष्ट्रीय कुम्हलाहट के मूल कारणों पर अचूक अंगुली रखने वाला हैं।[11]

निष्कर्तः स्वामी विवेकानन्द से अमरीका में पूछा गया कि अमरीका भौतिक दृष्टि से समृद्ध है और भारत निर्धन, तो वहाँ सुख-समृद्धि से परिपूर्ण जीवन का निर्माण करने के लिए भारत को अमरीकी जीवनपद्धति क्यों नहीं अंगीकार कर लेनी चाहिए ? इस पर स्वामी जी ने उत्तर दिया था- भारत एक प्राचीन राष्ट्र है। मैं मानता हूँ कि हमारी व्यवस्थाओं में कुछ विकृतियाँ, कुछ भ्रष्टताएँ और कुछ अवनति घुस आयी हैं। किन्तु हमने ऐसी समाज व्यवस्था उत्क्रान्त की, जो हजारों वर्षो से सुस्थिर रही है और जिसने हमारे समाज की उत्कृष्ट धारणा की है। उसको त्याग कर उसके स्थान पर किसी अन्य व्यवस्था को हमने स्वीकार करना हो तो वह दूसरी व्यवस्था भी समय की कसौटी पर उतनी ही खरी सिद्ध हुई होनी चाहिए।

कारण, इसमें राष्ट्र-जीवन का विचार होता है। मानव-जीवन का एक दिन राष्ट्रजीवन में मात्र एक क्षण के समान होता है। इसीलिए यह अपेक्षित है कि आर्थिक व्यवस्था को कम से कम 500 वर्ष उचित परिणाम देना चाहिए। स्पष्ट है कि उपयोगी भौतिक विज्ञान की ग्राहयता और इश्टता को स्वामी जी ने कभी अस्वीकार नहीं किया। टिकाऊपन और अनित्यता में रहने वाले इसके अन्तर को हमें ध्यान में रखना चाहिए। इसे पूरा करने के लिए अपने समाज को प्रेरित करना भी विश्व-कल्याण का ही काम है। मानव-जीवन में श्रेयस् का दिग्दर्शन करने वाले भारतीय साहित्य में कहीं पर भी यह उल्लेख नहीं मिलता कि यह विचार केवल हिंदुओं के लिए है या भारत अथवा भारत की किसी विशिष्ट जाति या सम्प्रदाय तक ही सीमित है। प्रत्येक स्थान में उल्लेख है मानव का, विचार किया गया है मानव का!

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चित् दुःखभाग्भवेत।।

वस्तुतः यही शाश्वत भारत का मूलस्वर है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *अथर्ववेद, 19.24*
2. *यजुर्वेद, 9.40*
3. *अथर्ववेद, 2.16, 19.17*
4. *वाल्मीकि रामायण, कण्ड-6*
5. *स्वामी विवेकानन्द : भारत का भविष्य, पृ. , 3*
6. *वही पृ., 4*
7. *पं. दीनदयाल उपाध्याय : विचार दर्शन, : चन्द्रशेखर परमानंद भिशीकर पृ., 30*
8. *वही पृ., 54*
9. *वही पृ., 53*
10. *वही पृ., 59*
11. *वही पृ., 60*

मध्यकालीन शिकार परम्परा : एक अध्ययन

डॉ. प्रियदर्शी ओझा
उदयपुर

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

प्राचीन काल से ही शिकार मनोरंजन का प्रमुख हिस्सा रहा है। प्रारंभ में मनुष्य उदर पूर्ति हेतु शिकार करता था किंतु कालांतर में यह उसका शौक बन गया था। धीरे-धीरे शिकार के आयोजन बड़े विशाल स्तर पर खर्चीले होने लगे। इस अवसर पर कहीं-कहीं समानता का भाव भी नजर आता है। जहाँ शासक के दस्तरखान से अधिकारियों व सेवकों के लिये भोजन जाता था। शांतिकाल में सुस्त पड़ी सेना व घोड़ों को गतिमान बनाये रखने के लिये मध्यकालीन शासकों के पास यह शारीरिक मनोरंजन के साधनों में से एक था।

संकेताक्षर : *शिकार, बाजमार, पहर, मनोरंजन, जानवर, जंगल।*

मनोविनोद के जितने भी साधन है मोटे तौर पर उन्हें तीन भागों में विभक्त किये जा सकते है – शारीरिक, मानसिक एवं सांस्कृतिक। शरीर को स्वस्थ और सफल बनाए रखने के लिए कालांतर में दौड़-धूप, कुश्ती, शिकार, पोलो आदि की रचना हुई। मानसिक शक्तियों को विकसित करने के लिए नृत्य-गीत, नाटक-अभिनय, कहानी-कथा आदि की प्रथा तथा कुछ दिमागी खेल जैसे शतरंज, चौपड़, प्रभृति का आविष्कार हुआ। मनोरंजन के उपर्युक्त साधनों का यदि विश्लेषण किया जाए तो प्रतीत होगा कि सब का ध्येय थोड़ी देर के लिए मानव के थके हारे मन को वास्तविक संसार के अभाव-अभियोगों उसे हटा कर कल्पना के राज्य की सैर कराने का है जिससे क्षणिक परिवर्तन के द्वारा हरा-भरा मन लेकर वह फिर से संसार के प्रपंचों को सुलझाने में जुट जाए।

मनोविनोद के साधनों में विविधता होते हुए भी सब में एक विशिष्टता यह है कि जिसकी जिस विषय में स्वाभाविक रुचि होती है जाने-अनजाने में वह उसके करीब चला जाता है। उसको करने, बनाने या खेलने में इतना तन्मय में हो जाता है कि उस लगन के आगे उसे समय की सुध नहीं रहती। दूसरों को कष्ट पहुंचा कर अपना मनोरंजन करना मनुष्य की एक स्वाभाविक प्रकृति है। शिकार का खेल भी इस प्रवृत्ति का ही परिणाम प्रतीत होता है। प्राचीनकाल से ही शिकार मनोरंजन का प्रमुख हिस्सा रहा है। प्रारंभ में मनुष्य उदर पूर्ति हेतु शिकार करता था किंतु कालांतर में यह उसका शौक बन गया। मध्यकाल में सभी संप्रदाय के लोग शिकार प्रेमी थे। सुल्तान मसूद (1030-40 ई.) बाघ के शिकार में निपुण था। अपने सेवकों की सहायता के बिना ही किसी भी बाघ का शिकार स्वयं कर सकता था।[1] शिकार दिल्ली के शासकों शिकार के लिए एक अलग से विभाग गठित कर रखा था जिसका प्रमुख 'अमीर-ए-शिकार' होता था। रजिया के समय बलबन इस पद पर नियुक्त था। दिल्ली के करीब लगभग 24 मील का क्षेत्र शाही शिकारगाह के रुप में सुरक्षित था जिसमें विशेषतया हिरण, नीलगाय तथा जंगली सूअरों का शिकार किया जाता था। शेर का शिकार सुल्तान द्वारा ही किया जाता था।[2] अमीर खुसरो 'हश्त बहिश्त' ग्रंथ में बताता है कि सुल्तान बहराम शाह कभी-कभी जंगली गौरो (जंगली गधों) को जिंदा पकड़ लेता था और उन पर अपना नाम खुदवाकर पुनः जंगल में छोड़ देता था।[3] सुल्तान बलबन भी शिकार का बड़ा प्रेमी था। उसके समय सुल्तान के व्यक्तिगत सेवा करने वाले 'खासादारों' और बड़े-बड़े शिकार का प्रबंध करने वाले 'शिकारदारों' को बड़ा सम्मान प्राप्त था। उसने बहुत बड़ी संख्या में शिकार हेतु बाज रखने वालों 'शिकरेदार' और 'चिड़ीमार' नौकर रखे हुए थे। शिकार खेलता व शिकरे (बाजों) को उड़ाता था। उस समय बाज द्वारा शिकार पर विशेष जोर दिया जाता था।[4] वह प्रायः शरद ऋतु में शिकार करना पसंद करता था। वह सवेरे जल्दी ही शिकार हेतु रेवाड़ी की तरफ चल पड़ता था। शिकार से वह अगले दिन आधी रात को निवास पर लौटता

था। उसके लौटने की सूचना नगाड़ों को पीट कर दी जाती थी।[5] उसके साथ 1,000 पुराने सवार जिन्हें व्यक्तिगत तौर पर वह जानता था और वह 1000 प्राचीन दास होते थे जिनमें पायक तथा धनुर्धारी सभी सम्मिलित थे। सभी को पक्का तथा बिना पक्का भोजन सुल्तान के दस्तरखान से मिलता था। बलबन के शिकार प्रवृत्ति के बारे में हलाकू खान ने विचार प्रकट किए थे कि बलबन अनुभवी बादशाह है उसने राज व्यवस्था का गहरा अध्ययन किया है। देखने में तो वह शिकार के लिए जाता है किंतु इस असंख्य सवारी का ध्येय यह है कि खानों, मलिकों, राजधानी की सेना को अधिक से अधिक अभ्यास होता रहे, घोड़े पसीने पसीने होते रहे जिससे घमासान युद्ध तथा सख्त लड़ाई में उन्हें कायरता व आलस महसूस ना हो। जब सेना को दौड़ धूप की आदत रहती है और घोड़े दौड़ने से पसीना पसीना होते रहे तो रण क्षेत्र में शत्रु उन पर विजय प्राप्त नहीं कर सकते। सुल्तान बलबन शिकार नहीं खेलता अपितु अपने राज्य की रक्षा करता रहता है।'' हलाकू की बात जब बलबन तक पहुंची तब उसने प्रसन्न होकर कहा कि राज्य व्यवस्था के भेद वही जान सकता है जिसने स्वयं शासन प्रबंध किया हो अथवा अन्य देशों पर विजय प्राप्त की हो अनुभवहीन लोग अनुभवी लोगों की नीति नहीं समझ सकते।[6]

अलाउद्दीन खिलजी जब शिकार के लिए जाता था तब नगाड़ा बजाने वालों का दल पहले से ही शिकार को घेरे रखता था और फिर शासक शिकार करता था।[7] इसी तरह मोहम्मद तुगलक के शिकारी दल में 10,000 बाजमार थे जो घोड़े पर सवार होकर शिकार किए जाने वाले जानवर या पक्षी के पीछे दौड़ते थे। उसके साथ 3000 नगाड़ा पीटने वाले, 3000 रसद सामग्री साथ ले चलने वाले होते थे। 200 ऊंटों की पीठ पर तम्बू, मण्डप व चार सिमटने वाले दो मंजिले मकान के सामान आदि लदे होते थे।[8] सुल्तान फिरोज शाह के राज्य काल में शिकार राज्य का एक स्तंभ बन गया था और बहुत खेला जाता था। फिरोज तुगलक के पास असंख्य घोड़े थे। शिकरेखाने का प्रत्येक अधिकारी एक बहुत बड़ा अमीर होता था। वह प्रत्येक शिकरों के पालन पोषण का विशेष प्रयत्न किया करता था। वह सेना में शिकार के लिए विशेष प्रकार का घेरा 'पहर' तैयार करवाने का प्रयत्न करता था। सुल्तान फिरोजशाह सात-सात आठ-आठ दिन पहर स्थापित रखता था और नित्य पहर के घेरे में रहकर शिकार किया करता था। जंगली गधे (गौरखर) के शिकार के लिए वह ग्रीष्म ऋतु में बड़े-बड़े सवारों को साथ लेकर तथा अपने व घोड़ों के लिए तीन दिन का जल साथ लेकर निकल पड़ता था। कुछ खान तथा मलिक ऊँटो पर जल लदवा लेते थे। सुल्तान पूरी रात यात्रा करता हुआ दिन में गौरखर के विश्राम स्थली के करीब पहुंचकर 'पहर' तैयार करवाता और पंद्रह कोस का घेरा डलवाता था जो धीरे-धीरे छोटा करते-करते चार कोस का रहने देता था। रात्रि विश्राम वह वही करता और अगले दिन गौरखरो का शिकार करता था।[9]

फिरोज तुगलक के शिकार प्रेम के बारे में जियाउद्दीन बरनी लिखता है कि सुल्तान की शिकार में दिलचस्पी के बारे में वर्णन करने के लिये तो मुझे एक अलग ही किताब 'शिकारनामा फिरोजशाह' लिखनी पड़ेगी। मैंने ऐसे किसी भी सुल्तान को नहीं देखा जिसने उसके जैसे शिकार के तरीके अपनाये हो। कहा जाता है कि सभी सुल्तान अक्सर जाड़ों में ही चिड़ियों के शिकार को निकलते थे। फिरोजशाह इन सब में एक अपवाद स्वरूप था जो सारे वर्ष हर माह शिकार किया करता था। जब वह शिकार अभियान पर निकल पड़ता था तो शायद ही किसी पशु को छोड़ता था चाहे बाघ हो या भेड़िया, नीलगाय हो या हिरण। सुल्तान के शिकारगाह से प्राप्त मारे गए जानवरों व पक्षियों के मांस से उसकी सेना पूरी तरह संतुष्ट रहती थी और कसाईयों को मांस की बिक्री के लिए बकरों को मारना जरूरी नहीं पड़ता था।[10] शम्स सिराज अफीफ भी फिरोज शाह के बारे में लिखता है कि सुल्तान ने अपने जीवनकाल में असंख्य विभिन्न प्रकार के जानवरों का शिकार किया था। शिकार हेतु कई जानवर उसके सेवकों द्वारा सार-संभाल से रखे जाते थे यथा तेंदुआ, बाघ, बाज आदि।[11] जब सुल्तान फिरोजशाह शिकारगाह में शिकार खेलता और शिकार का घेरा डालकर अत्यधिक प्रसन्न रहता तो उस समय जो कोई भी जो भी प्रार्थना करता वह स्वीकार हो जाती थी। उसने असंख्यक चीते, सियागोश, कुत्ते एवं शिकारी शेर भी एकत्रित किए हुए थे। बाज, बहरी, तुरमति, शाहीन, सीमतन (पक्षियों का शिकार करने वाली विभिन्न प्रकार की चिड़ियाएं) तथा अन्य इसी प्रकार के पक्षी इतनी बड़ी संख्या में इकट्ठा किए कि मनुष्य के लिए उनके विषय में सोचना तथा समझना भी सरल न था। इन सब जानवरों के रक्षक घोड़े पर सवार होकर यात्रा करते थे। जब कभी सुल्तान सिंह के शिकार के लिए जंगल में निकलता तो

कभी–कभी वह आदेश दे देता था कि हाथियों को सिंहों से भिड़ा दिया जाए। जब हाथी से सिंह मल्ल युद्ध करने लगते तो सिंह हाथियों पर आक्रमण कर देता था उस अवस्था में शहंशाह बड़ी वीरता से सिंह पर बाण चला देता था। कुछ सिंह उसके दरबार के समक्ष दाएं तथा बाएं और बंधे हुए रहते थे।[12] उसके समय अलग से शिकार विभाग एक 'अमीर ए शिकार' के अधीन संगठित किया जाता था जो सामान्यतः दर्जा प्राप्त अमीर होता था। उसके साथ में उसी दर्जे के अन्य अधिकारी होते थे। इन वरिष्ठ अधिकारियों के अधीन शाही बाजों और अन्य शिकारी पशुओं –पक्षियों की देखरेख और सुरक्षा के लिए क्रमशः 'आरीजा ए शिकार', 'खासमादारान' और 'मिहतरान' नामक गौण अधिकारी होते थे। उनके अधीन शिकारदारों का समूह होता था जो शिकार के दिन पशु और पक्षी ले जाते थे। व्यवहारिक रूप से राज्य के सब कुशल शिकारियों और परिचारिकों की सेवाएं इस विभाग द्वारा प्राप्त की जाती थी।[13]

सल्तनत युग में मछली पकड़ना केवल कुछ ही सुल्तानों को प्रिय था यथा अफीफ ने 'तारीख–ए–फिरोजशाही' में फिरोजशाह तुगलक द्वारा मछलियों के शिकार का उल्लेख किया है। सुल्तानों की तुलना में मुगल बादशाह मछली पकड़ने में विशेष रूचि रखते थे। स्वयं जहांगीर मछली पकड़ने का विशेष शौकीन था। वह 'भंवरजाल' द्वारा मछलियां पकड़ता था। वह विशेषतः 'रोहू' प्रजाति की मछलियों के शिकार को बहुत पसंद करता था। बाबर ने अपनी आत्मकथा 'तुजुके बाबरी' में गोगरा नदी में मोमबत्तियां के प्रकाश में मछलियों के शिकार का उल्लेख किया गया है। पेशेवर शिकारी मछलियों को मनोरंजन के साधन के अतिरिक्त अपनी आजीविका के लिए भी पकड़ते थे।[14] मुगलकाल में हाथी, शेर, चीते और जंगली बकरियों का शिकार किया जाता था। अकबर शिकार की नवीन तकनीकी खोजने का भी शौकीन था। उसने 'कमरगाह' नामक एक नवीन प्रणाली का आविष्कार किया था जो कि मुगल शासकों में अत्यधिक लोकप्रिय हुई।

इस प्रणाली के अंतर्गत शिकार के लिए ऐसे स्थान का चयन किया जाता था जहां जंगली पशु अधिक संख्या में मिलते थे। 30 किलोमीटर क्षेत्र में घेरा डालकर ढ़ोल बजाते हुए मनुष्य उस पशु को निर्दिष्ट स्थान पर घेर लाते थे जहां बादशाह अपने सहयोगियों के साथ घोड़े पर बैठकर उसका शिकार करता था। इस प्रक्रिया में कभी–कभी 5000 ढोल पीटने वाले व्यक्तियों की सेवाएं ली जाती थी। शासक वर्ग शिकार हेतु सस्ते तरीके अपनाना अपने गौरव एवं प्रतिष्ठा के प्रतिकूल समझता था। वहीं आम जन (साधारण व्यक्ति) पक्षियों का शिकार तीर–कमान की सहायता से कर लेते थे।[15]

मुगल कालीन शिकार के दृश्य

अकबर को बिगड़ैल हाथी–घोड़ों को संभालने, उन्हें आज्ञाकारी बनाने एवं पालतू बनाने का बड़ा शौक था। हवाई हाथी एवं रणबाघ हाथी की परस्पर लड़ाई के दौरान स्वयं अकबर हवाई हाथी के ऊपर सवार रहा। दोनों हाथी बड़े क्रूर और दुर्दात थे तथा क्रोध में चिंघाड़

रहे थे। अंत में रणबाघ अपनी जान बचाकर भाग गया।[16] जहांगीर ने सिर्फ नर चीते के शिकार का नियम बनाया था। शेर का शिकार केवल बादशाह ही कर सकता था और हाथियों का शिकार करने के लिए बादशाह से पूर्व अनुमति लेनी पड़ती थी। हाथियों के शिकार की आज्ञा केवल कुशल तथा पेशेवर शिकारियों को ही प्रदान की जाती थी। शिकार हेतु विभिन्न जानवरों को प्रशिक्षण भी दिया जाता था। इनमें कुत्ता, हिरण, हाथी प्रमुख थे। हॉकिन्स के अनुसार बादशाह के शिकार के लिए 3000 हिरण, 400 तेंदुए तथा 4000 बाज रहते थे। कुत्तों की मांग भी अधिक थी। जहांगीर के शासन काल में इनको काबुल व इंग्लैंड से आयात किया जाता था।[17] मध्यकालीन राजस्थान भी आखेटक प्रवृत्ति से अछूता नहीं रहा। शिकार राजस्थान के नरेशों तथा सामंतों का ईष्ट (प्रिय) मनोरंजन था।[18] बाल्यावस्था से ही राज परिवार के सदस्यों को बंदूक, तलवार एवं अन्य अस्त्र-शस्त्र चलाना तथा घुड़सवारी आदि दी जाने वाली क्षत्रियोचित्त शिक्षा में 'शिकार' भी प्रमुख अंग थी।[19]

इस प्रकार विभिन्न मध्यकालीन शासकों द्वारा मनोरंजन के साधनों में शिकार को एक प्रमुख स्थान प्राप्त था। शिकार करना अपनी प्रतिष्ठा का प्रतीक समझते थे। शिकार के बहाने देशाटन या राज्य भ्रमण हो जाया करता था। साथ ही शांति काल में अधिकारियों, सैनिकों व घोड़ो आदि को शिक्षण मिलता था। फलतः जब कभी युद्ध की अवस्था होती तो वे लोग बिना लापरवाही व आलस किये शत्रु सेना पर टूट पड़ते थे लेकिन कालांतर में धीरे-धीरे शिकार का महत्व कम होता चला गया। यदि किसी शासक को शिकार का शौक नहीं भी होता तो भी उसे शिकार के लिए अनेक कर्मचारी रखने पड़ते थे। अब शिकार खेलना उनकी आन, बान, शान का प्रतीक एवं प्रतिष्ठा का विषय हो गया था। देखा गया है कि ज्यादातर शासको ने शिकार पर बहुत सारा धन खर्च किया करते थे जिससे एक और किसी जरूरतमंद को रोजगार मिलता था तो दूसरी तरफ कई निर्दोष बेजुबान जानवर उनके शौक की बलि चढ़ जाते थे।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *के. एम. अशरफ, हिंदुस्तान के निवासियों का जीवन और उनकी परिस्थितियां, पृष्ठ 233, शिक्षा मंत्रालय भारत सरकार, दिल्ली, 1969 पृ. 233*
2. *आर. के. गुप्त, मध्यकालीन समाज, धर्म, कला एवं वास्तुकला, पृ. 33*
3. *अमीर खुसरो 'हश्त बहिश्त' सं. सैयद सुलेमान अशरफ पृ. 35-37 अलीगढ़ 1918 ई.*
4. *अतहर अब्बास रिजवी आदि तुर्क कालीन भारत, तारीख ए फिरोजशाही, पृष्ठ 162-163,ए एम यू अलीगढ़, 1957*
5. *तारीख-ए-फरिश्ता, सं. मोहम्मद कासिम, खंड प्रथम, मुंबई 1832, पृ. 34*
6. *बरनी, तारीख ए फिरोजशाही, सं.अतहर अब्बास रिजवी आदि तुर्क कालीन भारत, पृष्ठ 162-163, ए एम यू अलीगढ़, 1957*
7. *वही, पृ. 186*
8. *इलियट एंड डाउनस, दी हिस्ट्री ऑफ इंडिया ऐज टोल्ड बाई इट्स ऑन हिस्टोरियंस पृ. 578-580, लंदन, 1867*
9. *शम्स सिराज अफीफ, तारीख ए फिरोजशाही, अनु. अतहर अब्बास रिजवी, तुगलुक कालीन भारत भाग-2, पृष्ठ129-130 अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, 1957*
10. *जियाउद्दीन बरनी, तारीख-ए-फिरोजशाही, सं. सैयद अहमद खां, पृ. 599-600, बिबलियाथिक इंडिका, कोलकाता, 1862*
11. *शम्स सिराज अफीफ, तारीख-ए-फिरोजशाही, सं. मौलवी विलायत हुसैन, पृ. 317-319, बिबलियाथिक इंडिका, कोलकाता, 1861*
12. *शम्स सिराज अफीफ ,तारीख ए फिरोजशाही, अनु. अतहर अब्बास रिजवी, तुगलुक कालीन भारत, भाग-2, पृष्ठ131-133 अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय 1957*
13. *के एम अशरफ, हिंदुस्तान के निवासियों का जीवन और उनकी परिस्थितियां, पृष्ठ 235, शिक्षा मंत्रालय भारत सरकार, दिल्ली, 1969*
14. *आर. के. गुप्त, मध्यकालीन समाज, धर्म, कला एवं वास्तुकला, पृ. 34, पोइन्टर पब्लिशर्स, जयपुर, 2007*
15. *वही पृ. 33-34*
16. *शिरी मुसवी, अकबर के जीवन की कुछ घटनाएं, पृ. 25-26, नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया,2011*
17. *आर. के. गुप्त, मध्यकालीन समाज, धर्म, कला एवं वास्तुकला, पृ. 33*
18. *गोपीनाथ शर्मा, सोशल लाइफ इन मिडिवल राजस्थान, पृ. 137, आगरा 1968 ई.*
19. *गौरीशंकर हीराचंद ओझा, उदयपुर राज्य का इतिहास, जि. 2, पृ. 858*

प्राचीन भारत के गृहस्थ जीवन में स्त्री की स्थिति तथा भूमिका – एक विश्लेषण (धर्मसूत्रों के सन्दर्भ में 600–300 ई.पू.)

shodhshree@gmail.com

शबाना
शोधार्थी, दिल्ली

शोध सारांश

अतीत से ही स्त्री का मुद्दा जटिल रहा है, जिसकी स्थिति तथा अधिकार को लेकर विरोधाभास देखने को मिलता है, जिसका उल्लेख धर्मसूत्र में भी मिलता है। धर्मसूत्र के अनुसार गृहस्थाश्रम के अंतर्गत गृहस्थ जीवन की शुरुआत होती है । गृहस्थ जीवन की शुरुआत विवाहोपरांत पति–पत्नी दोनों के द्वारा की जाती है। इसलिए गृह के निमार्ण में दोनों की समान भागीदारी होती है। गृह सामाजिक वर्ग का सबसे महत्वपूर्ण क्षेत्र है, और इसमें व्यक्ति के क्या कार्य हैं इसकी कल्पना की जाती है। स्त्री के बिना गृह की कल्पना नहीं की जा सकती है, इसलिए गृहस्थ के अंदर उसकीं भूमिका को उजागर करना आवश्यक है। अतः इस आर्टिकल में धर्मसूत्रों के आधार पर गृह एवं परिवार के अन्तर्गत स्त्री की विभिन्न रूपों (माता, पत्नी और पुत्री) में उसका स्थान, भूमिका तथा किस हद तक वह पुरुष के अधीन थी, उस स्थिति का विश्लेषण किया जायगा। इसके साथ ही स्त्री के विवाह, संपत्ति अधिकार और परिवार पर पितृसत्ता का प्रभाव आदि विषयों का उल्लेख किया जायगा ।

संकेताक्षर : *गृहस्थ की रुपरेखा, स्त्री की स्थिति, पितृसत्ता, नियोग प्रथा, एकपत्नी, पुनर्विवाह, स्त्री शिक्षा, संपत्ति विभाजन, स्त्रीधन, अपवित्रता।*

धर्मसूत्र वैदिक साहित्य के एक महत्वपूर्ण अंग हैं। धर्मसूत्र कल्प की परम्परा में आते हैं, और कल्प का अर्थ है –''धार्मिक कर्तव्यों का विधि विधान''। अतः इसमें वेद में विहित कर्मों को क्रमपूर्वक व्यवस्थित किया गया है। कल्प के अंतर्गत ही सूत्रों का विशाल भण्डार सुरक्षित है। धर्मसूत्र की संख्या अनेक हैं लेकिन इस शोध पत्र में मुख्य रूप से गौतमब, आपस्तम्ब, बौधायन तथा वसिष्ठ धर्मसूत्र का प्रयोग किया गया है। जो सूत्र शैली में लिखे गए हैं। सूत्र का अर्थ है 'धागा' और सूत्रों में छोटे, चुस्त, अर्थगर्भित, वाक्यों को मानों एक धागे में पिरोकर रखा जाता है और संक्षिप्ता इसकी मुख्य विशेषता होती है। इतिहासकारों द्वारा इन धर्मसूत्रों का काल 600–300 ई.पू. के बीच का माना गया है। धर्मसूत्रों में सामाजिक जीवन का विस्तृत उल्लेख किया गया है।

गृहस्थ की रुपरेखा

आपस्तम्ब धर्मसूत्र (2/9/21/1) में गृहस्थाश्रम को प्रमुख माना है। इसलिए सबसे पहले इसका उल्लेख किया है। इसका कारण यह की गृहस्थाश्रम अन्य आश्रमों को महत्वपूर्ण सहयोग देता है, और सभी व्यक्ति गृहस्थ के पास जाकर संस्थान पाते थे। धर्मसूत्र के अनुसार गृहस्थ के अंतर्गत अनेक दैनिक कर्मो का संपादन किया जाता था, और इनका संपादन पति–पत्नी दोनों के द्वारा किया जाता था।[1] गृह के अन्तर्गत अनेक प्रकार की क्रियाऐं होती हैं। जिसमें उत्पादन, प्रजनन व संसाधन पर नियंत्रण आदि सम्मिलित है। इन सब पर पुरुष का प्रभुत्व था। श्रम के विभाजन ने स्त्री को गृहस्थ के अंतर्गत सीमित कर दिया और कृषि उत्पादन से दूर कर दिया। इसलिए कृषि कार्य में महिला की भूमिका का उल्लेख धर्मसूत्र तथा अन्य ग्रन्थ में नहीं मिलता है। लेकिन वास्तव में देखा जाए तो ऐसा नहीं था। कृषि से जुड़े अन्य कार्यो (कटाई, बुआई, रोपाई व फटकाई आदि) में उनकी भूमिका होती थी।[2] जो वर्तमान में गाँव में देखी जा सकती है।

परिवार समाज की महत्वपूर्ण इकाई है। परिवार रक्त सम्बन्ध या गोद लेने के बंधनो से सम्बद्ध व्यक्तियों का एक ऐसा समूह है जो की एक गृहस्थी का निर्माण करता है जो एक दूसरे के साथ अंतः क्रिया करते हुए पति पत्नी, माता पिता,

लड़के–लड़की और भाई–बहन के रूपों में अपने अपने सामाजिक कार्य को करते हैं और एक सामान्य संस्कृति का निर्माण करते हैं एवं उनकी रक्षा करते हैं।[3] धर्मसूत्र के अनुसार परिवार मे पितृसत्तात्मकता थी, तथा पिता परिवार का मुखिया होता था जिसका परिवार तथा उसके लोगो पर पूर्ण नियंत्रण था। आपस्तम्ब धर्मसूत्र में उल्लेख किया है की जो पुत्र धन को अधर्म में लगाता है, उसे दाय भाग के अधिकार से पिता द्वारा वंचित कर देना चाहिए, चाहे वह जयेष्ठ पुत्र ही क्यों न हो।[4] इस तरह गृह तथा उसके संसाधन पर पुरुष का वर्चस्व था। सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक व सांस्कृतिक कार्यो पर उसी की भूमिका का ज्यादा उल्लेख किया गया है।

स्त्रियों की बदलती स्थिति

प्राचीन समय से ही महिला की स्थिति में अनेक परिवर्तन आते रहे हैं। स्त्री की भूमिका माता, पत्नी और पुत्री के रूप में देखी जा सकती है। स्त्री और पुरुष मानव समाज के दो आवश्यक भाग हैं। इन्हीं के सहयोग से समाज आगे बढ़ता है। इनके सामाजिक महत्त्व को प्राचीन काल से स्वीकार किया जाता रहा है। वैदिक काल में देखे तो स्त्रियों की स्थिति संतोषजनक थी। वह पतियों के साथ धार्मिक कार्यो में भाग लेती थी। यज्ञानुष्ठान की अधिकारिणी थी, वह बहुत से कार्य स्वेच्छा से बिना पति के भी कर सकती थी तथा वेद पढ़ने का भी अधिकार था।

लेकिन कालांतर में स्त्रियों की स्थिति में ह्रास होने लगा था। यह माना जाता है, की स्त्रियां कभी स्वतन्त्र नहीं रहती हैं उन पर पुरुष का अधिपत्य रहता है। बौधायन और वशिष्ठ धर्मसूत्र के अनुसार कुमार्यावस्था में पिता स्त्री की रक्षा करता है, युवावस्था में पति रक्षा करता है और वृद्ध अवस्था में पुत्र रक्षा करता है इस तरह स्त्री स्वतंत्र जीवन नहीं जीती है।[5] वह पिता, पति तथा पुत्र के अधीन अपनी पूरी जिंदगी गुजार देती है। यह दर्शाता है की स्त्री को कमजोर समझा जाता था जो अपनी रक्षा खुद नहीं कर सकती थी। लेकिन सूत्रकाल मे जहाँ एक और इनकी स्थिति कुछ सुधार हुआ तो दूसरी और कुछ अधिकारों से वंचित किया गया।

पत्नी रूप में स्त्री की स्थिति, कर्तव्य तथा अधिकार

विवाहोपरांत पत्नी की स्थिति पति के साथ जुड़ जाने से परिवर्तित हो जाती थी, क्योंकि वह पति के साथ धार्मिक कार्यो का संपादन करती थी जिस कारण पत्नी के रूप में महिला की महत्ता बढ़ जाती थी। पत्नी को 'जानि', 'जाया' और 'भार्या' कहा गया है।[6] पति को 'भर्ता' कहा गया है जिसका अर्थ है 'भरण करने वाला' तथा पत्नी को 'भार्या' कहा गया जिसका शाब्दिक अर्थ है 'भरण किये जाने योग्य' इस तरह पत्नी को पति के अधीन किया गया है। पाणिनी ने पत्नी शब्द की उत्पति के बारे में बताया है की वही स्त्री पत्नी कहलाती है जो यज्ञ की अधिकारिणी एवं यज्ञ के फल की भागी होती है।[7] आपस्तम्ब धर्मसूत्र के अनुसार विवाहोपरांत पति–पत्नी धार्मिक कृत्य साथ करते हैं तथा पुण्य के फल में भी सामान भागीदारी होते हैं और धन के उपार्जन में भी एक साथ होते हैं।[8] इस तरह धर्मसूत्र के काल में पति–पत्नी को एक समान माना गया है। लेकिन पुरुष के समान उसे अधिकार नहीं दिए गए हैं।

प्रारम्भ से ही पत्नी का प्रमुख कर्तव्य अपने पति की आज्ञा मानना एवं उसे देवता की भांति आदर सम्मान देना माना जाता था। पत्नी से अपेक्षा की जाती थी की वह पतिव्रता हो तथा पत्नी धर्म का पालन करे तथा अपने पति के आलावा किसी और के बारे में न सोचे।[9] विवाह को एक धार्मिक संस्कार माना गया है। आपस्तम्ब धर्मसूत्र में विवाह की महत्ता को उजागर किया है। जिसमें उल्लेख किया है की ''धर्मेप्रजा सम्पन्ने दारे नाऽन्यां कुर्वीत''।। (आपस्तम्ब धर्मसूत्र 2/5/11/12) अथार्त अगर पत्नी (श्रोत,स्मार्त) धर्मों में श्रद्धा रखने वाली तथा पुत्र उत्पन्न करने में सक्षम है, तो दूसरा विवाह नहीं करना चाहिए। इससे पता चलता है की विवाह की महत्ता दो कारणों से थी। पहला पत्नी पति को धार्मिक कर्मों के योग्य बनाती है। दूसरा वह पुत्रों की माता होती है। और यदि पत्नी इन दोनों में से किसी एक के संपादन में असमर्थ होती थी तो पति दूसरा विवाह कर सकता था। इस तरह धर्मसूत्र के काल में स्त्री की स्थिति में परिवर्तन देखने को मिलता है।

इसके अतिरिक्त अगर स्त्री अधिकारों की बात करे तो उसे कुछ मामलो में उसे स्वतंत्रता मिली हुयी थी। जहाँ दान दक्षिणा देना का अधिकार मुख्य रूप से पति का होता था। वही दूसरी और इस काल में पत्नी दान दक्षिणा दे सकती थी, जिसमे उसे पति की अनुमति लेने की आवश्यकता नहीं थी। धर्मसूत्र में उल्लेख किया है की अगर पति कहीं बाहर गया हो तो पत्नी उचित दान दे सकती है। इसे चोरी नहीं माना जाएगा।[10] आपस्तम्ब के अनुसार घर के जल के पात्र को भरने का

दायित्व गृहस्थ तथा उसकी पत्नी दोनों का है।[11] जहाँ व्रत मुख्य रूप से महिला रखती वही धर्मसूत्र[12] में देखे तो पति–पत्नी दोनों के उपवास रखने का उल्लेख मिलता है। और दोनों मिलकर ही उपवास पर खाना खाते थे। इस प्रकार देखे तो जहाँ पत्नी पति के खाने के बाद ही भोजन करती थी। वही वह अब पति के साथ तथा उससे पहले भी कर सकती थी इस प्रकार स्त्री को कुछ स्वतंत्रता मिल रही थी। अतः इस तरह गृहस्थ जीवन के अंतर्गत पति–पत्नी दोनों मिलकर जिम्मेदारी निभाते थे।

माता के रूप में स्त्री का स्थान

प्रारंभ से ही माता का गृहस्थ तथा समाज में आदर किया जाता था। दुनिया में माँ से बढ़कर कोई चीज नहीं है। माता देहदात्री होने के साथ ज्ञानदात्री भी है। संतान पर बचपन में माता के अच्छे या बुरे प्रभाव अमित रूप से अंकित होते हैं, तथा वह बच्चों की सबसे पहली गुरु होती है। इस प्रकार माता का काम निर्माण करना है।[13] धर्मसूत्र में माता के प्रति विशेष आदर प्रकट किया गया है।

धर्मसूत्र के अनुसार माता पुत्र के लिए अनेक कर्म करती है इसलिए उसकी सेवा सदैव करनी चाहिए, भले ही वह पतिता हो गयी हो।[14] किंतु पतिता होने पर धर्म के कर्म में उसे सम्मिलित ना करें।[15] गौतम धर्मसूत्र के अनुसार अगर माता किसी कारणवश पतिता अथवा कलंकनी घोषित करके समाज से बहिष्कृत भी कर दी गयी हो, उस अवस्था में भी पुत्र द्वारा माता के प्रति अनुचित व्यवहार करना निषिद्ध माना गया है।[16] उसके प्रति समस्त कर्तव्यों का पालन करना चाहिए। माता का गौरव सबसे ऊंचा माना है। आचार्यो का गौरव दस उपाध्यायों से अधिक होता है, पिता सौ आचार्यो से भी अधिक महत्त्व रखता है और माता का गौरव एक हजार पिताओं से भी अधिक है। अतः इस प्रकार धर्मसूत्र के अनुसार गृहस्थ जीवन में माता का स्थान सबसे ऊँचा है। तथा माता की सेवा और भरण पोषण करना पुत्र का परम कर्तव्य है। माता का आश्रय पाकर ही समस्त प्राणधारी जीवित रहते हैं।[17]

कन्या की स्थिति

गृह के अन्दर कन्या का स्तर पुत्र की अपेक्षा कम ही आंका जाता है। तथा पुत्र को ज्यादा महत्व दिया जाता है कालांतर में कन्या की स्थिति में परिवर्तन आते रहें है। लेकिन इसके बावजूद भी कन्या की अपेक्षा पुत्र को ही श्रेष्ठ माना जाता है। इसका मुख्य कारण यह की विवाह के पश्चात् कन्या तो दुसरे घर चली जाती है, जबकि पुत्र पिता के वंश को आगे बढ़ाता है।

धर्मसूत्र मे पुत्री(कन्या) को 'दुहिता'[18] कहा गया है। पुत्री के जन्म की निंदा तो नहीं की है। लेकिन ज्यादा महत्व पुत्र के जन्म को दिया गया है। पुत्र की महत्ता इस बात से ही पता चलती है की अगर पत्नी पुत्र को उत्पन्न करने में असमर्थ होती थी तो पुत्र की प्राप्ति के लिए दूसरा विवाह किया जा सकता था।[19] क्योंकि ऐसा माना जाता है की पुत्रोत्पत्ति के फल लौकिक दृष्टि से नहीं अपितु पारलोकिक दृष्टि से पुत्र का अधिक महत्त्व है। सुयोग्य पुत्र को वंश की कई पीढ़ियों को पाप मुक्त करने तथा पूर्वजों को भी स्वर्ग प्रदान करने वाला कहा गया है।[20] इसक पीछे पुरुष केंद्रित विचारधारा प्रतीत होती है।

एक पत्नीत्व तथा पुनर्विवाह की विचारधारा

पुनर्विवाह का अर्थ है दुबारा विवाह करना। इतिहासकार काणे के अनुसार 'पुनर्भु' शब्द उस विधवा के लिए प्रयुक्त किया जाता है जिसने पुनर्विवाह किया हो।[21] धर्मसूत्र में पुनर्विवाह की विभिन्न अवस्थाओं का उल्लेख किया है जिसमे पुनर्विवाह किया जा सकता था। इसमें सम्मिलित है की अगर पति की मृत्यु हो गयी हो, अधिक दिनों तक बाहर प्रवास में रहना, संतान (पुत्र) उत्पन्न करने तथा धार्मिक कार्य में असमर्थ होना।[22] इसके अतिरिक्त अगर वह बिना कारण पुनर्विवाह करता है तो धर्मसूत्र में उसकी निंदा की गयी है तथा एक पत्नीत्व पर बल दिया गया है। यदि कोई पुरुष उस स्त्री से जिसका कोई पति रह चुका हो या जिसका संस्कार न हुआ हो या दूसरे वर्ण की हो सम्भोग करता है तो वह पाप का भागी होता है।[23] और उसका पुत्र भी पाप का भागी होता है। बिना कारण पत्नी त्यागने पर दंड भी दिया जाता था इस तरह आपस्तम्ब धर्मसूत्र में पुनर्विवाह को निषेद माना है। लेकिन अन्य धर्मसूत्रों के अनुसार वर्ण के अनुसार पत्नी की संख्या बताई है।[24]

लेकिन वर्तमान स्थिति की बात करे तो आज भी एक पत्नित्व पर बल दिया जाता है। तथा स्त्री विधवा होने पर दुबारा विवाह कर सकती है। यह प्रावधान समाज में महिला के विकास के लिए किए गयें हैं।

नियोग प्रथा

नियोग का अर्थ है किसी नियुक्त पुरुष को सम्भोग

द्वारा पुत्रोत्पत्ति के लिए पत्नी या विधवा की नियुक्ति।[25] अतः नियोग प्रथा के द्वारा पति की मृत्यु होने पर संतान प्राप्ति देवर के द्वारा की जाती थी। वेस्टरमार्क के अनुसार प्राचीन काल में पति के भाई (देवर) के साथ नियोग की प्रथा न केवल हिन्दू समाज में अपितु विश्व की अन्य जातियों में भी प्रचलित थी।[26] धर्मसूत्र मे इसका विस्तार से उल्लेख मिलता है। अपस्तम्ब धर्मसूत्र मे नियोग प्रथा का उल्लेख किया है। आपस्तम्ब के अनुसार कन्या कुल को दी जाती है, इस कारण पति के आभाव में अथवा संतान उत्पत्ति में सक्षम न होने पर उस गौत्र से भिन्न गौत्र वाले पुरुष के साथ विवाहित स्त्री नियोग द्वारा पुत्र उत्पन्न करे। हरदत्त का मत है की पति के गौत्र के पुरुष से ही नियोग द्वारा पुत्र उत्पन्न करना चाहिए।उसमे भी देवर से नियोग होना चाहिए।[27] अन्य धर्मसूत्र के अनुसार अगर पतिविहीन नारी पुत्र की अभिलाषा रखे तो अपने द्वारा प्राप्त कर सकती है, किन्तु उसे इसके लिए सबसे पहले गुरुजनों से आज्ञा ले लेनी चाहिए।[28] इतिहासकार अल्तेकर के अनुसार नियोग की प्रथा हिन्दू समाज में 300 ई.पू.तक प्रचलित थी।[29]

वर्तमान परिस्थिति में इस प्रथा को वर्जित कर दिया गया है, क्योंकि इस प्रथा से महिला का शोषण होता है। तथा उसके आत्म सम्मान को ठेस पहुँचती है।

स्त्री शिक्षा

प्राचीन समय से शिक्षा का स्वरूप एक जैसा नहीं रहा है इसमें परिवर्तन होते रहें हैं। समाज में वर्ण विभाजन तथा पितृसत्तात्मकता के कारण लिंग विभेदिकरण देखने को मिलता है। जिसमे पुत्र की शिक्षा पर ही बल दिया जाता है और स्त्री शिक्षा की अवहेलना की जाती रही है। अगर स्त्री शिक्षा के इतिहास को देखे तो वैदिक काल में स्त्रियों को वेद का पाठ करने तथा मन्त्र पढ़ने का अधिकार था। तथा उनका उपनयन[30] संस्कार भी किया जाता था। लेकिन कालान्तर में स्त्री शिक्षा के स्वरूप में परिवर्तन आया तथा उन्हें शिक्षा से दूर किया जाने लगा। आपस्तम्ब धर्मसूत्र के काल में स्त्री शिक्षा को देखे तो उसमे स्त्रियों के उपनयन संस्कार का उल्लेख नहीं किया गया है। जो दर्शाता है की स्त्री को पुरुष के समान औपचारिक शिक्षा नहीं दी जाती थी।

बाल विवाह के कारण स्त्रियों का विवाह जल्दी कर दिया जाता था। रजोदर्शन से पहले ही कन्या का विवाह कर दिया जाता था।[31] जिस कारण वह शिक्षा से वंचित रह जाती थीं। स्त्रियों को थोड़ी बहुत शिक्षा दी जाती थी। आपस्तम्ब के अनुसार जो विद्या स्त्रियों और शूद्रों में होती है वही विद्या की अंतिम सीमा है।[32] इस तरह स्त्री की शिक्षा को शुद्र की शिक्षा के समान माना गया है। धर्मज्ञों का कथन है की स्त्रियों और शूद्रों की विधाएँ अथर्ववेद के ज्ञान का परिशिष्ट अंश होती हैं।[33] इस तरह स्त्री और शूद्र को अथर्ववेद का उपदेश पाने का अधिकार था। इसका कारण यह था की अथर्ववेद में अवैदिकों की परम्परा रहने के कारण आरम्भ में इसकी गणना वेदों में नहीं थी और समाज में दूषित समझे जाने वाले व्यक्ति भी इसका ज्ञान प्राप्त कर सकते थे।[34] इस तरह स्त्रियों को उच्च स्तर की शिक्षा नहीं दी जाती थी। लेकिन वह पूरी तरह से शिक्षा से अनभिज्ञ नहीं थी।

स्त्री का संपत्ति(दायभाग) पर अधिकार

संपत्ति पर अधिकार के प्रश्न को देखे तो इसको लेकर अनेक प्रश्न उठते है की संपत्ति पर किस का अधिकार होता है ? संपत्ति का विभाजन कैसे तथा किस के बीच में होना चाहिए। प्ररम्भिक काल से ही संपत्ति पर पुरुष का वर्चस्व स्थापित था। जो कुटुंब का मुखिया होता था। महिला को संपत्ति का अधिकार नहीं दिया गया था। ऋग्वेद[35] में दाय शब्द का प्रयोग 'पुरस्कार' तथा भाग के अर्थ में प्रयोग किया गया है। आपस्तम्ब में 'दाय' शब्द का प्रयोग किया गया है। दाय भाग का वास्तविक अर्थ है संबंधियों (पिता, पितामह आदि) के धन का संबंधियों (पुत्रो, पौत्रों) में विभाजित होना और इसका कारण मृत स्वामी से उसका सम्बन्ध है।

सम्पत्ति के विभाजन के काल के प्रश्न को देखे तो आपस्तम्ब धर्मसूत्र[36] के अनुसार पिता को अपने जीवन काल में ही दाय का विभाजन कर देना चाहिए। दाय का विभाजन देखे तो इसका बंटवारा पुत्रों के बीच समान रूप से किया जाता था। लेकिन नपुंसक, पागल, पातकी पुत्रों का दाय पर कोई अधिकार नहीं था, तथा ज्येष्ठ पुत्र को विशेष धन भी दिया जाता था।[37] क्योंकि कुछ आचार्यों का मत है की ज्येष्ठ पुत्र ही दाय का अधिकारी होता है।[38] दुसरे पुत्र ज्येष्ठ पुत्र के अधीन होकर जीवन निर्वाह करते हैं।

अब प्रश्न उठता है की अगर पुत्र न हो तो सम्पति पर किस का अधिकार हो ? इस को लेकर आपस्तम्ब में दाय के अधिकारी के लिए अनेक विकल्प का उल्लेख किया है जिसके अनुसार पुत्र के न होने पर निकटतम सपिंड संबंधी दाय का अधिकारी होता है, सपिंड का अभाव होने पर दाय का अधिकारी आचार्य होता है,

आचार्य के भी न होने पर उसका शिष्य उस दाय को ग्रहण कर मृत व्यक्ति के नाम से धार्मिक कर्मों में उस धन को लगावे अथवा स्वयं ही उस धन का उपयोग करे अथवा (पुत्र न होने पर) पुत्री दाय को ग्रहण कर सकती है।[39] इस तरह दाय के अधिकारी की श्रृंखला में स्त्री का स्थान सबसे अंत में दिया गया है जिसकी सम्भावना बहुत कम होती है की उसे दाय पर अधिकार मिल पाए। इस तरह अधिकार होते हुए भी उसे इसका अधिकार नहीं मिल पाता है। इस तरह दाय पर उसका स्वामित्व नाममात्र का ही प्रतीत होता हैं इसका मुख्य कारण पितृ सकात्मक सोच है जो स्त्री के अधिकार को सीमित कर देती है।

प्रारम्भ से स्त्रीधन को ही स्त्री की सम्पत्ति माना जाता था। जो स्त्री को विवाह के अवसर पर उसके माता पिता तथा सगे-सम्बंधओं द्वारा दिया जाता था। जिस कारण उसे पिता व पति की संपत्ति पर कोई अधिकार नहीं दिया गया था। उसका स्त्रीधन पर ही स्वामित्व होता था। आपस्तम्ब के अनुसार आभूषण तथा अपने बंधु-बांधवों से प्राप्त धन पत्नी का अपना अंश होता है।[40]

अब प्रश्न उठता है की जिस तरह से पिता अपनी संपत्ति का बंटवारा अपने पुत्रों के बीच करता था क्या स्त्री भी अपने स्त्री धन का विभाजन करती थी? स्त्री धन का उत्तराधिकारी कौन होता था तथा उसके धन पर किसका स्वामित्व होता था? स्त्रीधन के स्वामित्व एवं उत्तराधिकार में पुत्रियों को ही ज्यादा प्राथमिकता दी गयी है।[41] तथा पुत्रों को कन्या की अपेक्षा कम महत्त्व दिया गया है, क्योंकि पुत्र तो पिता से संपत्ती ग्रहण कर सकते हैं लेकिन कन्या को कम ही अधिकार दिया जाता था। लेकिन आगे चलकर पुत्र भी माता के स्त्रीधन का उत्तराधिकारी हो सकता था। काणे के अनुसार इसका कारण यह था की आगे चलकर स्त्री धन का विस्तार हो गया और लोगों को यह बात नहीं रूचि की स्त्रियों को लम्बी संपत्ति मिले।[42]

लेकिन वर्तमान में देखा जो तो स्त्री का सिर्फ स्त्रीधन पर ही अधिकार नहीं है बल्कि पैतृक सम्पत्ति पर माता, पत्नि, पुत्री का सम्पत्ति पर अधिकार पुत्र के समान ही है। तथा विधवा का अपने मृत पति की संपत्ति में अधिकार होता है।

पवित्रता एवं अपवित्रता की अवधारणा

पवित्रता एवं अपवित्रता की अवधारणा को मुख्य रुप से स्त्री तथा निम्न वर्ण (शूद्र, चंडाल आदि) से जोड़कर देखा जाता था। जिसके कारण उनसे भेद-भाव किया जा जाता था। प्राचीन समय से महिला को विविध कारणों से अपवित्र माना जाता था। जिस कारण उसे सभी धार्मिक कार्यो के संपादन करने से रोका जाता था। जिसका उनकी स्थिति पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा पितृसत्तात्मक और वर्ग विभाजित समाज रहने के कारण भारत में स्त्री और शूद्र को एक ही कोटि में रखा जाता था।[43] तथा ऊपरी तीन वर्णो (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) को ही श्रेष्ठ माना जाता था। जिनका सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक व धार्मिक व्यवस्था पर नियंत्रण था।

आपस्तम्ब धर्मसूत्र में जहाँ एक महिला को धार्मिक कार्यो के संपादन का अधिकार पति के साथ दिया गया है, तो दूसरी ओर उसे अशुद्ध व दूषित कहकर उससे दूर कर दिया गया है। स्त्री को मासिक धर्म तथा बच्चे के जन्म के बाद दूषित माना जाता था। तथा उसे छूना और बात करना भी मना था, क्योंकि जो ऐसा करता था वह भी दूषित व अपवित्र हो जाता था। धर्मसूत्र के अनुसार शूद्र और स्त्री को अध्ययन के समय नहीं देखना चाहिए तथा वेद का अध्ययन करने का व्रत लेने वाला विद्यार्थी यदि किसी रजस्वला स्त्री से बोलना चाहे तो उससे पहले किसी ब्राह्मण से भाषण करे, फिर रजस्वला से बात करें उसके बाद ब्राह्मण से सम्वाद करे।[44] उसके बाद ही वह अध्ययन कर सकता है। क्योंकि वेद का अध्ययन एक पवित्र कार्य है और अगर वह दूषित लोगों को देखता है तो वह भी अपवित्र हो जायगा। इस तरह इस अवस्था में स्त्री और शूद्र को एक ही श्रेणी में रखा गया है। यह एक तरह से वर्ण व्यवस्था तथा पितृ सत्तात्मकता के प्रभाव को दिखता है जिसमें शूद्र और स्त्री को सबसे निचला स्थान दिया गया है। जहाँ वर्ण व्यवस्था में शूद्र का कर्तव्य ऊपरी वर्ण की सेवा करना है। उसी प्रकार स्त्री भी गृह के अंदर सभी की सेवा करती है तथा गृह की सारी जिम्मेदारी निभाती है।

अतः इस प्रकार धर्मसूत्रों के अनुसार प्राचीन भारत में गृहस्थ जीवन के अंदर स्त्री की भूमिका तथा स्थिति माता, पत्नी और पुत्री के रूप में अलग-अलग थी। प्रारंभ से ही महिला की स्थिति गृहस्थ के अन्दर तथा बाहर कभी भी स्थिर नहीं रही है। पत्नी की जहाँ धार्मिक कार्यो के संपादन के कारण महत्वपूर्ण भूमिका थी, तो दूसरी और अगर वह संतान (पुत्र) उत्पन्न करने

में सक्षम नहीं होती थी, तो पति दूसरा विवाह कर सकता था। इस प्रकार एक तरह का विरोधाभास देखने को मिलता है। एक ओर उसकी तरफ उदारवादी दृष्टिकोण दिखाई देता है जहाँ उसे कुछ स्वतंत्रता दी गयी, तो दूसरी ओर उसे अन्य अधिकारों से वंचित कर दिया गया। और सावर्जनिक क्षेत्र में उसकी भूमिका को नजर अंदाज किया गया। जिसका मुख्य कारण गृहस्थ जीवन तथा समाज पर पितृसत्ता का प्रभाव था जिसने स्त्री को पति व पुत्र के अधीन कर दिया।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *आपस्तम्ब धर्मसूत्र 2/1/1/1*
2. *जया त्यागी, एंजेंडरिंग दि अर्ली हाउसहोल्डः ब्रह्ममिनिकल पैट्रिआर्की इन अर्ली गृह्यसूत्र, मिडिल ऑफ दि फर्स्ट मिल्लेनियम बी.सी.ई., (दिल्लीः ओरिएण्टल लोंग्मन, 2008), पृ.8, 45.*
3. *इ. बर्गेस एवं जे लॉक हार्वे, दि फैमिली फ्रॉम इंस्टीट्यूसन टू कम्पेरिसंशिप, (न्यूयॉर्क :अमेरिकन बुक कंपनी 1953),पृ.8*
4. *आपस्तम्ब धर्मसूत्र 2/6/14/15*
5. *''पता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने । पुत्रस्तु स्थाविरे भावे न स्त्री स्वातंत्र्यर्हतिति''।। (बौधायन धर्मसूत्र 2/2/3/46 ; वसिष्ठ धर्मसूत्र 5/1*
6. *आपस्तम्ब धर्मसूत्र 2/6/14/16 ; 2/6/15/5*
7. *अष्टाध्यायी, 4/1/33, (उद्धत, पी.वी.काणे, धर्मशास्त्रका इतिहास, भाग–1, अनु. अर्जुन कश्यप, (लखनऊ : हिंदी समिति प्रभाग, 1980) पृ.316*
8. *आपस्तम्ब धर्मसूत्र 2/6/14/17–19*
9. *गौतम धर्मसूत्र 2/9/2 ; बौधायन धर्मसूत्र 2/2/3/48*
10. *आपस्तम्ब धर्मसूत्र 2/6/14/20*
11. *वही 2/1/1/15*
12. *वही 2/1/1/4*
13. *हरिदत्त, वेदालंकार,"हिन्दू–परिवार मीमांसा'', (कलकत्ता : बंगाल हिंदी मंडल, 2011), पृ.203*
14. *आपस्तम्ब धर्मसूत्र 1/10/28/9*
15. *वही 1/10/8/10*
16. *गौतम धर्मसूत्र 3/3*
17. *वसिष्ठ धर्मसूत्र 13/48/8/6.*
18. *आपस्तम्ब धर्मसूत्र 2/6/14/4*
19. *वही 2/5/11/12*
20. *गौतम धर्मसूत्र 1/4/24–27.*
21. *काणे, धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग–1, पृ.342*
22. *बौधायन धर्मसूत्र 2/4/6, 4/1/1/18 ; वसिष्ठ धर्मसूत्र 17/3, 75–78 ; आपस्तम्ब धर्मसूत्र 2/5/11/12*
23. *''पूर्ववत्यामसंस्कृतायां वर्णान्तरे च मैथुनेदोषः।। तत्रापि दोषवान पुत्र एव"।। आपस्तम्ब धर्मसूत्र 2/6/13/3–4*
24. *बौधायन धर्मसूत्र 1/16/1–5,*
25. *काणे, धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग–1,पृ.338,*
26. *वेस्टरमार्क,हिस्ट्री ऑफ ह्यूमन मैरिज, खण्ड–3, (लंदनःमैकमिलन,1921), पृ.207–20पृ.207–20*
27. *आपस्तम्ब धर्मसूत्र .2/10/27/2–3, पर आपस्तम्ब धर्मसूत्रम उज्जवलावृत्ति में हरदत्त की टीका*
28. *गौतम धर्मसूत्र 28/4–7 ; बौधायन धर्मसूत्र 2/2/4*
29. *ए.एस. अल्तेकर, दा पोजीशन ऑफ वीमेन इन हिन्दू सिविलाइजेशन. (दिल्लीः मोतीलाल बनारसीदास, 1987), पृ.146*
30. *शिक्षा प्राणाली से संबंधित संस्कार है । आपस्तम्ब धर्मसूत्र(1/1/1/9) में सबसे पहले इसी संस्कार का विस्तार पूर्वक उल्लेख किया गया है। जिसके अनुसार उपनयन संस्कार विद्या ग्रहण करने के प्रयोजन वाले का वेद के नियम के अनुसार किया जाने वाला संस्कार है जिसकी शुरूआत गायत्री मंत्र के उच्चारण से की जाती थी।*
31. *गौतम धर्मसूत्र 18/22,*
32. *सा निष्ठा या विद्या स्त्रीषु शुद्रेषु च।। आपस्तम्ब धर्मसूत्र 2/11/29/11.*
33. *''आथर्वणस्य वेदस्य शेष इत्युपदिशन्ति''।। वही, 2/11/29/12.*
34. *आर.एस.शर्मा, "प्रारम्भिक भारत का आर्थिक और सामाजिक इतिहास'', (दिल्लीः हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, डि.यू., 1996), पृ.68,*
35. *ऋग्वेद, 2/32/4 ; 10/114/10,*
36. *आपस्तम धर्मसूत्र 2/6/14/1.*
37. *वही, 2/6/13/12*
38. *''ज्येष्ठो दाया दइत्येके''।। वही, 2/6/14/6*
39. *वही', 2/6/14/2–4.*
40. *''अलड्कारो भार्यायाः ज्ञातिधनं चेत्येके'' वही, 2/6/14/9.*
41. *गौतम धर्मसूत्र 28/22*
42. *काणे, "धर्मशास्त्र का इतिहास'', भाग–2, पृ. 943.*
43. *शर्मा, "प्रारम्भिक भारत का आर्थिक और सामाजिक इतिहास'', पृ.68,*
44. *आपस्तम्ब धर्मसूत्र 1/3/9/11,13.*

भारतीय राजनीति में नैतिक संकट एक मूल्याकंन

डॉ. सोमवती शर्मा
सह आचार्य, राजकीय कला कन्या महाविद्यालय, कोटा

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

आध्यात्म के आकाश में नये शिखर छूने वाले भारत की राजनीतिक संस्कृति विश्व में बेजोड़ रही है। इस देश ने गाँधी, नेहरू, पटेल, राजाराम मोहन राय, गोखले, लाजपतराय, जयप्रकाश नारायण, विनोबा भावे, नरेन्द्र देव, राममनोहर लोहिया जैसे आदर्श एवं उत्कृष्ट राजनीतिज्ञ दिए। इनका राजनीतिक दर्शन मूल्यों पर आधारित रहा उनकी राजनीतिक दृष्टि मानवीयता से ओत-प्रोत रही है। देश की राजनीति राष्ट्रीय जीवन को सीधे प्रभावित करती है। दूसरे शब्दों में राजनीति समाज को बदलने की लोकहित पर आधारित कार्यवाही का नाम है। राजनीति के पतन के साथ ही आम व्यक्ति की आशाएँ कुंठित हो जाती है तथा राष्ट्र पंगु हो जाता है। यह प्रश्न विचारणीय है कि आजादी के 73 वर्ष पूरे कर लेने के बाद भी आहत विश्वास लिए देश का नागरिक आज हताश निराश क्यों है ? भूख, बेकारी, गरीबी, युवा नीति, कृषि नीति, विकास शिक्षा, न्याय, पूँजी सृजन आर्थिक नियोजन, समाज कल्याण जैसे राष्ट्रीय प्रश्न आज राजनीति का मुद्दा एवं चिन्तन क्यों नहीं है ? राजनीति में मूल्य कहाँ तिरोहित हो गए है ? राज नेताओं का लक्ष्य केवल कुर्सी ही क्यों है ? नेताओं का चरित्र हनन क्यों हो रहा है ? राजनीति की दिशा क्या है ? देश की ज्वलन्त समस्याएँ समाधान की राह देख रही है और राजनीतिज्ञ अपनी चरित्रहीन कुर्सी पर सोए पड़े है। राजनीति का सम्पूर्ण परिदृश्य विकृत, भ्रष्ट होता जा रहा है। राजनीति में मूल्यहीनता के कारण अनेक अन्तर्विरोध, विद्रुपताएँ एवं विसंगतियाँ तेजी से बढ़ रही है।

संकेताक्षर : *भारतीय राजनीति, नैतिक संकट, मूल्याकंन, महात्मा गांधी, लोकतन्त्र।*

महात्मा गाँधी ने अपनी पुस्तक 'हिन्द स्वराज' में राजनीति में बहु प्रचलित लोकतंत्रीय पद्धति की कटु आलोचना की है। उनके अनुसार सांसारिक प्रजातंत्र में दलगत राजनीति कार्य करती है जिसकी कर्त्तव्यनिष्ठा अपनी पार्टी तक ही सीमित होती है जनता के कल्याण के लिए राजनीति दल कुछ नहीं करता। लोकतंत्र में बहुसंख्यक वर्ग अल्पसंख्यकों की भावनाओं का दमन करके अपने हितों को सुरक्षित करता है।

भारतीय राजनीति के नैतिक अवमूल्यन से जुड़ी कुछ ज्वलन्त समस्याऐं एवं प्रश्न आज देश राजनीति संकट से घिरा है राजनेताओं ने देश की समस्याओं को एक ऐसे चौराहे पर लाकर खड़ा कर दिया है जहाँ से किधर जाया जाए, यह रास्ता तय नहीं है। सत्ता पक्ष एवं विपक्ष दोनों दिशा भ्रमित है। देश में सुरसा की तरह मुँह फैलाएँ रोजमर्रा उपयोग की वस्तुओं की कीमत तेजी से बढ़ रही है। दूसरे तरफ कालेधन की समानान्तर अर्थ व्यवस्था विकसित हो रही है। घोटालों का जाल निरन्तर फैलता जा रहा है। निरन्तर बढ़ते राजनीति घोटालों से देश का सम्पूर्ण आर्थिक तंत्र हिल गया है। कुल मिलाकर राजनीतिक संकट एवं राजनैतिक दलों की दुर्दशा के कारण देश का भविष्य उलझ गया देश की राजनीतिक कुव्यवस्था से जुड़ी कुछ ज्वलन्त समस्याएँ निम्न प्रकार है।

लोकतंत्र आजादी और संवैधानिक प्रावधान

आज की लोकशाही मतदाताओं की सामान्य इच्छा की अवहेलना कर रही है। 'राजनीति', शब्द में 'नीति' शब्द अवश्य है लेकिन राज नेताओं में नैतिकता लेशमात्र भी नहीं बची है। राजनीतिक दल अपने हितों की पूर्ति के लिए संवैधानिक प्रावधानों की अवमानना कर रहे है। आज देशवासियों ने आतंकवाद अलगाववाद, हिंसा, हत्या, लूट, विश्वासघात,

अनैतिकता और भ्रष्टाचार के साथ जीना सीख लिया है।

संसद का गिरता स्तर लोकसभा देश की सर्वोच्य लोकतांत्रिक संस्था है। यहाँ बैठकर सांसदों को विभिन्न विषयों पर गहराई से सोच–विचार करना चाहिए तथा अपने विधायी दायित्व निभाने चाहिए। आज लोकसभा विचार–विमर्श के केन्द्र नहीं वरन् सांसदों के अभद्र एवं अशलील व्यवहार के कारण 'हाट बाजार' का रूप लेती जा रही है। आज जन प्रतिनिधियों में हाथापाई, एक–दूसरे के कॉलर पकड़ना, अध्यक्ष के आसन के सामने धरना, शोरगुल कर सदन की कार्यवाही न चलने देना, धक्का–मुक्की मारपीट, नारेबाजी, अभद्र भाषा का प्रयोग करना जैसी अनैतिक घटनाएँ आम हो गई है।

राजनीति का अपराधीकरण

भारतीय राजनीति अपराधीकरण की ओर मुड़ गई। आज देश में राजनीति का अपराधीकरण हुआ है और अपराध का राजनीतिकरण। फलस्वरूप राजनीति मैं नैतिक आधार क्षीण हो जाने से राजनीति न केवल सिद्धान्तहीन हो गई है वरन् बहुत खतरनाक भी हो गई है। आज भारतीय राजनीति माफिया तत्वों, बड़े अपराधियों, तस्करों तथा सामाजिक हिंसा फैलाने वाले लोगों का आश्रय स्थल बन गई है।

सुविधा, भोग और बदखर्चियों पर पलते सफेद हाथी–नीरद सी, चौधरी ने अपनी एक बहुचर्चित पुस्तक हासोन्मुख भारत के तीन प्रमुख कारण बताए है। अनैतिकतापूर्ण धनोपार्जन, विलासी जीवन और तड़क–भड़क पूर्ण रहन सहन आज देश के सादगी की संस्कृति लुप्त होती जा रही है तथा विलासिता व श्रमरहित मौज मनाने की आदत बढ़ती जा रही है।

शीर्षविहीन राजनीति

व्यक्ति हो या राष्ट्र उसकी दुर्बलता का सबसे बड़ा कारण उसकी स्वयं की नैतिक कमजोरी होती है आज की राजनीति रीढ़विहीन हो गई है। राजनीति में रीढ होती है नैतिकता और आज की राजनीति के नैतिकता के लिए कोई जगह नहीं है यह अवसरवाद पर आधारित है किन्तु अवसरवादी राजनीति में नैतिकता के लिए कोई जगह नही है। यह अवसरवादिता पर आधारित है किन्तु अवसरवादी राजनीति भारतीय परम्परा के विपरीत है।

गठजोड़ एवं दलबदल की राजनीति

आज गठजोड़ की राजनीति तेजी से पनप रही है। चाहे यह गठजोड़ राजनीतिक नौकरशाही–पूँजीपति का हो, चाहे राजनेता व अपराधी अथवा चाहे विभिन्न राजनीति दलों का प्रत्येक गठजोड़ के पीछे सत्ता–लोलुपता व धन पिपासा की कामना ही विद्यमान रहती है सत्ता पर काबिज पाटियों के घटकों में लगातार 'आमदनी वाले' मंत्रालयों को हासिल करने के लिए अंदरूनी मारकाट चलती रहती है।

चुनावों में बढ़ती हिंसा, भ्रष्टाचार एवं अपव्यय

दुनिया के इस बेहद गरीब देश में अरबों–खरबों रूपये चुनावी महापर्व में होम कर दिए जाते है। साथ चुनावों में बढ़ने वाली हिंसक घटनाओं ने चुनावों को रक्त रंजित कर दिया व चुनाव किसी सोची समझी राजनीति से प्रेरित होते है इसका एक मात्र उद्देश्य सत्ता हथियाना होता है। राजनीतिक नेता चुनावी चन्दे के लिए ही भ्रष्टाचार करते है।

सत्ता की शतरंज

सभी नेताओं का चरित्र एक जैसा है और वे सत्ता पाने के लिए कुछ भी कर सकते है। सत्ता की चाह में राजनेता देश–हित व अपने नैतिक कर्तव्यों को भूलते जा रहे है। जोड़–तोड़ भी राजनीति का एकमात्र उद्देश्य सत्ता प्राप्त करना है।

प्रतिशोध की राजनीति और बदले की सियासत

भारतीय राजनीति में प्रतिशोध की जड़े गहरी रही है। महाभारत काल में कौरवों पांडवों को लाक्षागृह में भस्म करने की साजिश, अजातशत्रु, अशोक व औरगंजेब तक सत्ता पाने के लिए अपने ही स्वजनों को रास्ते से हटाने की कुटिल योजना को यद्यपि षड्यन्त्रकारी राजनीति की श्रेणी में रखा जा सकता है किन्तु आजादी के 73 वर्षो के बाद भी राजनेताओं द्वारा बदले की भावना से काम करना लोकतंत्र को जड़ों की काटकर आम व्यक्ति के हितों पर गहरी चोट करना है।

राजनीतिक नेतृत्व का अभाव

आजादी के बाद देश में राष्ट्र निर्माण की एक कड़ी चुनौती आ गई किन्तु हमारी राजनीतिक नेतृत्व शक्तिहीन, अयोग्य, एवं दिशा भ्रमित है वास्तविक बात यह है कि इस समय देश में नेता तो बहुत है किन्तु कहीं नेतृत्व दिखाई नहीं पड़ता। नेतृत्व की शून्यता हमारे जनतांत्रिक समाज की मूलभूत समस्या है।

लक्ष्यविहीन एवं अवसरवादी राजनीति

भारतीय राजनीति में दूरदर्शीनीतियों एवं दूरगामी लक्ष्यों का अभाव राजनेता तात्कालिक लाभ लेने के लिए निजी लक्ष्यों की पूर्ति में लगे रहते है। यही कारण है कि राजनेताओं के पास आर्थिक विकास जनसंख्या विस्फोट, पर्यावरण प्रदूषण, ऋण ग्रस्तता, ऊर्जा, खाद्य, सुरक्षा, स्वदेशी उद्योगों का विकास उद्यमशीलता जैसे गंभीर प्रश्नों के समाधान हेतु कोई सार्थक कार्यक्रम नहीं है। इसका ही परिणाम देश में 'दिशाविहीन राजनीति' का विस्तार है।

साधनों की अपवित्रता

गाँधी जी साधन और साध्य दोनों की पवित्रता पर बल देते है बुरे एवं अनैतिक साधनों का नतीजा कभी भी अच्छा नहीं हो सकता किन्तु भारतीय राजनेता अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए, अनैतिक भ्रष्ट व हिसंक सभी प्रकार के साधनों को अपनाकर अपनी झोली भरने लगे है। साधनों की अपवित्रता देश को कहाँ ले जाएगी इसका पूर्वानुमान कठिन है।

साम्प्रदायिकता एवं जातिवाद की राजनीति

भारत में आज राजनेताओं ने जाति व साम्प्रदायों के नाम पर देश को नफरत फूट, वैमनस्य व साम्प्रदायिक उन्माद की आग में झोंक दिया है जाति, क्षेत्र व प्रदेशों के नाम पर आपसी टकराव उत्पन्न हुआ है। जातिगत राजनीति से समाज में तनाव, संकुचित हितपूर्ति, आपसी प्रहार एवं घृणा की कुत्सित प्रवृत्ति बढ़ी है।

कालेधन के साये में पलती राजनीति

माफिया तंत्र के अतिरिक्त भारतीय राजनीति मुनाफाखोर व शोषक पूँजीपतियों के चंगुल मे फंसी हुई व देश की मौजूदा राजनीति कालेधन के साये में पल रही। पंचसितारा संस्कृति के आदी अनेक राजनेता काले धन से ही अपना जीवन चलाते हैं।

विचाराधार रहित राजनीति एवं सिद्धान्त ही नवविचारधारा रहित राजनीति देश में विकृत रूप लेती जा रही है। बढ़ती हुई सिद्धान्तहीनता के कारण राजनीति सत्ता संघर्ष बन कर रह गई है। विचारधारा रहित राजनीति के खिलाड़ी जनहित से कोसो दूर अप्रासंगिक सवालों पर लोगों का ध्यान बँटाने का प्रयास करते रहे है। इसके कारण शीर्ष राजनीति नेतृत्व ने समानता, आत्मनिर्भर, राजनीतिक विकास एवं सामाजिक प्रगति की प्रक्रिया को पीछे धकेल दिया है। आज देश में राजनीतिक दलों द्वारा नैतिक मूल्यों एवं संवैधानिक प्रावधानों का तेजी से उल्लघंन हो रहा है।

राष्ट्रीय राजनीति का अभाव

आज देश में राष्ट्रीय राजनीति मौजूद नहीं है। आज देश में अनेक ऐसी राजनीति विकृतियाँ मौजूद है जिसके कारण भारतीय राजनीति में आदर्शों एवं नैतिक मूल्यों का तुषार लग गया है। देश में राजनीतिक सौदेबाजी की प्रवृत्ति तेजी से बढ़ रही है। आरोप–प्रत्यारोप की राजनीतिक सिर उठा रही है।

निष्कर्ष

उपर्युक्त तथ्यों से स्पष्ट है कि भारतीय राजनीति का सम्बन्ध समाज की कड़वी सच्चाईयों से नहीं रहा है। यह राजनीति स्वार्थ एवं सत्ता पर आधारित हो गई है। पुराने मूल्यों का अवमूलयन हो गया है और आज मूल्यहीनता ही मूल्य है। हमारी जनतांत्रिक व्यवस्था में जंग लग रही है और हमारा सम्पूर्ण राजनीति ढाँचा प्रदूषित हो चुका है। परजीवी तत्व, राजनीति के बिजौलिये एवं राजनीति पाखण्ड इसके जरूरी हिस्से बन गए है। राजनीति में दलों और दिलों के बीच का अपनापन और सामंजस्य विलुप्त होता जा रहा है। आशाओं की अपेक्षा आशंकाओं से घिरी इस राजनीति में सुधार लाने के लिए एक अनुशासित जनांदोलन जरूरी हो गया है। राजनीतिज्ञों की काली करतूतों से देश की राजनीति बदरंग और अस्पष्ट पड़ती जा रही है। कोलाहल और कलह से भरी इस राजनीति में परिवर्तन जरूरी हो गया है। भारतीय राजनीति के सामने मुँह बाये खड़ी चुनौतियों का सामना उत्कृष्ट नीति, नेतृत्व और नैतिकता के आधार पर ही किया जा सकता है। सार्थक सामाजिक परिवर्तन के लिए राजनीतिक परिवर्तन आवश्यक है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. *डॉ. महावीर प्रसाद मोदी एवं सरोज मोदी, भारतीय राजनीति की प्रवृत्तियाँ, पृ.सं. 33*
2. *निर्मल कुमार सिंह, अपराध एवं भ्रष्टाचार की राजनीति, पृ.सं. 57*
3. *बलराम मेहता, विचारधारा रहित राजनीति सत्ता का द्वन्द्व राजस्थान पत्रिका, 30 मार्च, 2001*
4. *राजकिशोर, भारत का राजनीतिक संकट, पृ.सं. 6*
5. *योगेश चन्द्र शर्मा, 'चुनावों का आर्थिक पक्ष इतवारी पत्रिका 11 अक्टूबर, 2001*
6. *कमलेश्वर, 'बंधक लोकतंत्र' पृ.सं. 192*
7. *राजकिशोर, भ्रष्टाचार की चुनौती पृ.सं. 6*

स्वराज दल एवं सतपुड़ांचल

डॉ. संकेत कुमार चौकसे
सहायक प्राध्यापक, राजमाता सिंधिया शासकीय स्नातकोत्तर कन्या महाविद्यालय
छिन्दवाड़ा (मध्यप्रदेश)

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

असहयोग आंदोलन की आकस्मिक समाप्ति एवं महात्मा गांधी की गिरफ्तारी के पश्चात में चितरंजन दास एवं मोतीलाल नेहरू ने सुझाव दिया कि विधानपरिषदों का बहिष्कार करने के बदले उनमें प्रवेश कर असहयोग आंदोलन चलाया जाये तथा सरकार के प्रत्येक कार्य का विरोध कर 1919 के भारत सरकार अधिनियम को असफल किया जाए। इस सुझाव को राजगोपालाचारी, राजेंद्र प्रसाद, डॉ. अंसारी, सरदार पटेल इत्यादि नेताओं ने स्वीकार नहीं किया। 1922 में चितरंजनदास की अध्यक्षता में कांग्रेस के गया अधिवेशन में चितरंजनदास ने कांग्रेस के अध्यक्ष एवं मोतीलाल नेहरू ने महामंत्री पद से इस्तीफा दे दिया। 1923 को चितरंजन दास ने मोतीलाल नेहरू के साथ मिलकर इलाहाबाद में कांग्रेस खिलाफत स्वराज दल की स्थापना की। प्रस्तुत शोधपत्र में स्वराज दल की उपलब्धियां, सतपुड़ांचल में स्वराज दल की गतिविधियों तथा सतपुड़ांचल में स्वराज दल के प्रभाव पर प्रकाश डाला गया है।

संकेताक्षर : *स्वराज दल, सतपुड़ांचल, महात्मा गांधी, कांग्रेस, चितरंजन दास, मोतीलाल नेहरू, विधानपरिषद।*

असहयोग आंदोलन की अकस्मात समाप्ति से संपूर्ण देश स्तब्ध रह गया। असहयोग काल की हिन्दू–मुस्लिम एकता का स्थान साम्प्रदायिक तनाव ने ले लिया और भारतीय जनमानस में निराशा का वातावरण निर्मित हो गया। इस परिवर्तित स्थिति के मूल्यांकन और भविष्य में मार्गदर्शन के लिए असहयोग समिति ने एक अखिल भारतीय जाँच समिति की स्थापना की जो 'सत्यागह जाँच समिति' कहलाई। इस नवगठित जाँच समिति के सदस्यों में कौंसिल प्रवेश के प्रश्न को लेकर तीव्र मतभेद हो गये। चितरंजन दास एवं मोतीलाल नेहरू ने सुझाव दिया कि विधानपरिषदों का बहिष्कार करने के स्थान पर उनमें प्रवेश कर असहयोग आंदोलन संचालित किया जाए। इस सुझाव को राजगोपालाचारी, राजेन्द्र प्रसाद, वल्लभ भाई पटेल जैसे नेताओं ने स्वीकार नहीं किया। अतः उन्हें अपरिवर्तनकारी (नो–चेंजर) कहा गया जबकि विधानपरिषदों में भाग लेने का समर्थन करने वालों को परिवर्तनकारी (प्रो–चेंजर) कहा गया।[1]

चितरंजनदास की अध्यक्षता में दिसंबर 1922 के गया कांग्रेस अधिवेशन में कौंसिल प्रवेश को लेकर काफी विवाद हुआ और अंत में निर्णय लिया गया कि जो नेता केन्द्रीय या प्रांतीय कौंसिल में प्रवेश के पक्षपाती है वे कांग्रेस से अलग होकर एक नया दल गठित कर सकते है।अतः मोतीलाल नेहरू एवं चितरंजन दास ने मिलकर स्वराज दल का गठन किया।[2] जेल से मुक्त होने के तुरंत बाद लाला लालजपतराय भी इस नवगठित दल में सम्मिलित हो गये। इसके अध्यक्ष चितरंजनदास तथा सचिव मोतीलाल नेहरू बनाये गये। इसे कांग्रेस खिलाफत स्वराज पार्टी भी कहते है। इसके अन्य समर्थक विट्ठल भाई पटेल, मदनमोहन मालवीय तथा जयकर इत्यादि थे। स्वराज पार्टी के प्रमुख उद्देश्य शीघ्र–अतिशीघ्र औपनिवेशिक स्वराज प्राप्त करना, पूर्ण प्रांतीय स्वायत्ता प्राप्त करना तथा विधानसभाओं में प्रवेश कर जनविरोधी नीतियों में बाधा डालना था। 1924 में कांग्रेस के बेलगाम सत्र में महात्मा गांधी एवं चितरंजन दास के मध्य हुए समझौते के तहत स्वराज दल को कांग्रेस के कार्यक्रमों का आधिकारिक भाग स्वीकार कर लिया गया।

इन घटनाओं का प्रभाव मध्यप्रांत और बरार की राजनीति पर भी दृष्टिगत हुआ। पं. रविशंकर शुक्ल, डॉ. ई. राघवेन्द्रराव, माधवराव सप्रे, सेठ गोविंददास, एम. व्ही. अभ्यंकर, एम.आर. जयकर, डॉ. बी.एस. मुंजे, एस. व्ही. तांबे, बी.जी. खापर्डे इत्यादि भी कौंसिल प्रवेश के समर्थक हो गये।[3] उल्लेखनीय है कि बरार के राष्ट्रवादियों का एक वर्ग 1922 से ही कौंसिल प्रवेश का समर्थन कर रहा था। अगस्त के मध्य में दादासाहेब खापर्डे ने एक वक्तव्य जारी कर महात्मा गांधी के असहयोग आंदोलन के प्रति असहमति व्यक्त करते हुए विधानसभा में जाकर स्वराज के उद्देश्य को प्राप्त करने की आवश्यकता प्रतिपादित की थी। नवंबर में डॉ. बी.एस. मुंजे, दादा साहेब खापर्डे तथा एन.सी. केलकर की एक बैठक अमरावती में आयोजित की गई जिसमें कौंसिल प्रवेश के संबंध में एक प्रस्ताव दिसंबर में नागपुर में होने वाले कांग्रेस अधिवेशन में प्रस्तुत करने का निर्णय लिया गया था।[4] अखिल भारतीय स्वराज दल के निर्माण के बाद मध्यप्रांत एवं बरार में भी स्वराज दल का गठन किया गया। इस प्रांत में स्वराज दल के नेता ई. राघवेन्द्रराव एवं डॉ. बी.एस. मुंजे थे। महाकौशल में स्वराज दल का गठन सेठ गोविंददास तथा बरार में एम.एस. अणे के नेतृत्व में हुआ।

स्वराज दल की स्थापना के बाद चितरंजनदास एवं मोतीलाल नेहरू ने प्रचार-प्रसार हेतु देशव्यापी दौरा किया। नये दल द्वारा मध्यप्रांत के विभिन्न केन्द्रों से कोष एकत्र करने हेतु हिन्दुस्तानी मध्यप्रांत से सेठ गोविंददास, डॉ. ई. राघवेन्द्रराव तथा अब्दुल कादिर बुरहानपुरी, मराठी मध्यप्रांत से बी.एस. मुंजे और एम. व्ही. अभ्यंकर को सदस्य चुना गया ताकि प्रांत में स्वराज कार्य को लोकप्रिय बनाने हेतु एक प्रभावशाली आंदोलन चलाया जा सके।[5] इन्हीं परिस्थितियों में दिसंबर 1923 में विधायिका के लिए नवीन निर्वाचन हुए, जिसमें स्वराज दल को आशातीत सफलता प्राप्त हुई। मध्यप्रांत इस दृष्टि से देश के अन्य प्रांतों से आगे था क्योंकि वह एक ऐसा प्रांत था जहाँ स्वराज दल को अन्य दलों के ऊपर स्पष्ट बहुमत प्राप्त था। निर्वाचन में विजयी स्वराज दल के नेताओं में बी.जी. खापर्डे, डॉ. बी.एस. मुंजे, डॉ. ई. राघवेन्द्रराव, पं. रविशंकर शुक्ल, एम. व्ही. अभ्यंकर, डॉ. हरीसिंह गौर, शंभूदयाल शर्मा इत्यादि प्रमुख थे।[6]

विध्यांचल पर्वत श्रृंखला के समानान्तर दक्षिण में नर्मदा व ताप्ती नदियों के मध्य स्थित पर्वत श्रेणी सतपुड़ा के नाम से विख्यात है। इसके अंतर्गत मुख्यतः दक्षिणी मध्यप्रदेश के बालाघाट, सिवनी, छिन्दवाड़ा, बैतूल, पश्चिमी निमाड़ (खरगोन), पूर्वी निमाड़ (खण्डवा) तथा बड़वानी जिलों का समावेश है। यद्यपि बीसवी सदी के प्रारंभिक वर्षों में यहाँ कोई विशेष उल्लेखनीय राजनैतिक घटना नहीं हुई किन्तु शिक्षा, साहित्य, आवागमन के साधनों के विकास के साथ-साथ प्रांतीय तथा राष्ट्रीय नेताओं के लगातार परिभ्रमण के फलस्वरूप 1920 तक राष्ट्रीय आंदोलन के लिये आवश्यक पृष्ठभूमि का निर्माण हो गया जिससे गांधीवादी आंदोलनों में इस क्षेत्र ने महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया तथा यहाँ के निवासियों ने स्वाधीनता आंदोलन में अमूल्य योगदान दिया।

1920 का नागपुर कांग्रेस अधिवेशन एक युग प्रवर्तक घटना थी। इसी अधिवेशन से गांधीयुग का विधिवत सूत्रपात माना जाता है। इसमें असहयोग आंदोलन के प्रस्ताव को पारित किया गया तथा कांग्रेस के संविधान एवं संरचना में भारी परिवर्तन किये गये। इसकी समाप्ति के पश्चात् गाँधीजी ने मध्यप्रांत का व्यापक भ्रमण किया और जनता को कांग्रेस के निर्णयों से अवगत कराया। इससे मध्यप्रांत में राष्ट्रीय आंदोलन को प्रबल प्रोत्साहन मिला। सतपुड़ांचल स्थित सभी जिले तो इससे विशेष रुप से प्रभावित हुये। क्षेत्र के सभी जिलों में कांग्रेस कमेटियों का औपचारिक गठन कर असहयोग आंदोलन के विभिन्न कार्यक्रमों को सक्रिय रूप से संचालित किया गया। स्वराज दल की स्थापना के पश्चात सतपुड़ांचल के अधिकांश जिले उससे प्रभावित हुए तथा वहां के अधिकांश क्षेत्रों जैसे- छिंदवाड़ा, सिवनी, बालाघाट, निमाड़ इत्यादि में स्वराज दल की विजय हुई। छिंदवाड़ा से स्वराज दल की ओर से विश्वनाथ दामोदर साल्पेकर विधानपरिषद के सदस्य निर्वाचित किये गये।[7]

स्वराज दल की बहुमत वाली नवीन विधायिका की प्रथम बैठक नागपुर में आयोजित की गई। स्वराज दल के सदस्यों ने अध्यक्ष पद के लिये डॉ. बी.एस. मुंजे का निर्वाचन किया। डॉ. मुंजे ने डॉ. राघवेन्द्रराव तथा अन्य सहयोगियों के साथ मिलकर विधायिका में उनकी नीति के संबंध में निर्णय लिया जिसके अनुसार शासन के

कार्यों में बाधा डालने के कार्यक्रम को ही अपनाया गया। 15 जनवरी 1924 को उत्तेजनापूर्ण वातावरण में इस नवीन विधायिका का सत्रारंभ हुआ।[8] गवर्नर सर फ्रैंकस्ली ने स्वराज दल के नेता डॉ. मुंजे को सरकार बनाने तथा हस्तांतरित विभागों के कार्यों को संभालने हेतु आमंत्रित किया परंतु उन्होंने इस उत्तरदायित्व को संभालने से इंकार कर दिया। साथ ही यह भी स्पष्ट कर दिया कि स्वराज दल का कोई भी सदस्य मंत्री पद स्वीकार नहीं करेगा क्योंकि यह स्वराज दल की नीति व कार्यक्रमों के विरूद्ध है। उनके द्वारा अस्वीकृति मिलने पर गवर्नर ने उदारवादी दल के नेता एस.एम. चिटनवीस तथा समस्त मुस्लिम सदस्य सैय्यद हिफाजत अली को मंत्री नियुक्त किया।[9]

अपने पूर्व निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार स्वराज दल ने प्रांत में द्वैधशासन को भंग करने के उद्देश्य से विधायिका सत्र प्रारंभ होने के तीन दिन बाद ही विधायिका में मंत्रीपरिषद के विरूद्ध अविश्वास प्रस्ताव प्रस्तुत किया जो काफी वाद-विवाद के बाद सरकार के विपक्ष में रहा। इस प्रकार विधायिका में संघर्ष निरंतर चलता रहा तथा सरकार की ओर से जो भी प्रस्ताव प्रस्तुत किए गये उसे स्वराज दल द्वारा बहुमत से अस्वीकृत कर दिया गया। स्वराजदल की इस प्रकार की नीतियों के कारण ही बाद में दोनों मंत्रियों को त्यागपत्र देने पर विवश होना पड़ा तथा हस्तांतरित विषयों का प्रशासन भी गवर्नर को अस्थायी रूप से संभालना पड़ा। इस प्रकार मध्यप्रांत में द्वैधशासन का अंत हो गया।[10] इस प्रकार स्वराजवादियों को उनके उद्देश्यों में सफलता प्राप्त हुई लेकिन शीघ्र ही वे यह अनुभव करने लगे कि उनके पूर्ण असहयोगात्मक नीति के कारण क्षेत्रीय हितों पर विपरीत प्रभाव पड़ रहा है तथा विभिन्न वर्ग विशेषकर कृषक वर्ग उनसे असंतुष्ट होने लगा है।

1925 में चितरंजनदास की मृत्यु के बाद स्वराज पार्टी की प्रतिष्ठा में कमी आई। इसके अतिरिक्त इस दल में आपसी फूट तथा इसके कुछ नेताओं के द्वारा सरकारी पदों को स्वीकार किए जाने के बाद इसकी स्थिति और अधिक कमजोर हो गई, यही कारण था कि कांग्रेस का पूर्ण समर्थन मिलने के बाद भी 1926 में स्वराज दल को अपेक्षाकृत अधिक सफलता नहीं मिल सकी। दिसम्बर 1929 में लाहौर में सम्पन्न हुए कांग्रेस अधिवेशन में पूर्ण स्वराज का प्रस्ताव पारित किया गया तथा इसके बाद ब्रिटिश सरकार के विरूद्ध सविनय अवज्ञा आंदोलन आरंभ करने की घोषणा की गई। इसी के साथ कांग्रेस दल के विधायकों ने विधानसभा की सदस्यता से त्यागपत्र दे दिया। कांग्रेस का अनुसरण करते हुए उसके सहयोगी दल के विधायकों ने भी त्यागपत्र दे दिए। फलस्वरूप स्वराज दल द्वारा कौंसिल प्रवेश की अवधारणा भंग हो गई और इसका अस्तित्व समाप्त हो गया।[11]

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि फरवरी 1922 में चौरी चौरा की हिंसक घटना को आधार बनाकर असहयोग आंदोलन को अकस्मात वापस लेने के गांधीजी के निर्णय ने उपर्युक्त वातावरण को पूर्णतः बदल दिया। सर्वस्व त्याग की भावना के साथ संघर्ष में उतरने वाली तथा ब्रिट्रिश दमनचक्र का बहादुरी से सामना कर रही जनता के लिए यह बहुत बड़ा धक्का था। इससे उसमें असंतोष और अवसाद दोनों का ही जन्म हुआ। स्वयं कांग्रेस के अंदर फूट पड़ गई तथा स्वराज पार्टी का जन्म हुआ। स्वराज दल ने अपने असहयोग नीति के द्वारा प्रांत में व्याप्त द्वैध शासन प्रणाली को ध्वस्त करने तथा उसके खोखलेपन को स्पष्ट करने का पूर्ण प्रयास किया तथा असहयोग आंदोलन के स्थगन से निराश जनता में पुनः उत्साह का संचार किया। इसके अतिरिक्त स्वराज दल ने राष्ट्रीय आंदोलन के क्षेत्र का विस्तार विधायी राजनीति और संवैधानिक क्षेत्र के मुख्य केन्द्र तक कर दिया। इससे मध्यप्रांत में स्थित सतपुड़ांचल भी प्रभावित हुआ तथा वहां की जनता ने भी सविनय अवज्ञा आंदोलन सहित आगामी अन्य आंदोलनों में उल्लेखनीय भूमिका का निर्वाह किया।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *चन्द्र, विपिन एवं अन्य; भारत का स्वतंत्रता संघर्ष, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय दिल्ली विश्वविद्यालय, 2003, पृ.179*
2. *ठाकुर, डॉ. (श्रीमती) एग्नेश; मध्यप्रांत एवं बरार में दलीय राजनीति तथा स्वाधीनता आंदोलन, शारदा पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1998 पृ. 38*
3. *गुरु.एस.डी.; मध्यप्रदेश में स्वाधीनता आंदोलन, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल, 2008 पृ. 177*

4. खान, एम.ए.; मध्यप्रदेश में स्वाधीनता आंदोलन (1920–1930), मिश्र, जयप्रकाश (सं.), मध्यप्रदेश का इतिहास, खण्ड–3, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, 2014 पृ. 165
5. ठाकुर, डॉ.(श्रीमती) एग्नेश; वही, पृ. 39
6. मिश्रा, डी.पी.(सं.), मध्यप्रदेश में स्वाधीनता आंदोलन का इतिहास, स्वराज संस्थान संचालनालय, भोपाल, 2002, पृ. 347
7. शुक्ल, भगवत प्रसाद; भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में सन 1818 से 1947 तक छिंदवाड़ा जिले का इतिहास, हस्तलिखित ग्रंथ, पृ. 71
8. द हितवाद 9 जनवरी 1924, पृ. 4
9. मिश्रा, डी.पी.; लिविंग एन एरा, विकास पब्लिशिंग, नई दिल्ली, पृ. 77
10. गुरु एस.डी.; वही, पृ. 178
11. खान, एम.ए.; वही, पृ. 169

मालाणी के सांस्कृतिक वैभव में लोकगीतों का योगदान

डॉ. संतोष कुमार गढ़वीर
सहायक आचार्य, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बाड़मेर

तारा चौधरी
शोधार्थी, जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

किसी राग में गाये जाने वाले पद्य गीत कहे जाते है। लोग लम्बे समय से अपनी भावनाओं और स्थिति-परिस्थिति को गीतों के माध्यम से प्रकट करता आया है। लोकगीत का अर्थ लोक यानि समाज की सामूहिक चेतना की रागात्मक अभिव्यक्ति है।लोकगीत, लोक के मनोभावों को प्रकट करने का सरलतम साधन है। इनमें मानव समाज की आदि मनोवृतियों और भावनाएं, उसके हर्ष, उल्लास, शोक-विषाद, प्रेम-ईर्ष्या, आशंका, ग्लानि, आश्चर्य, विस्मय, भक्ति, निवृति आदि भाव अपने सरल से सरल एवं विशुद्ध रागात्मक रूप से प्रकाशित होते है। लोकगीतों की सादगी और स्पष्टता अत्यन्त प्रभावशाली है। जनमानस ने आंकाक्षाओं, कोमल भावनाओं और वीर-भावों को लोकगीतों में सजीव रूप दे दिया। रस का प्रत्यक्ष रूप इनमें देखने को मिलता है। नारी के पास तो अपने-आप को खुलकर अभिव्यक्त करने का साध नहीं लोकगीत है। राजस्थानी लोकगीतों में कई विधायें है, जिनमें देवी-देवताओं के गीत, रातीजगा के गीत, विवाह के गीत, जापा के गीत, ऋतुओं के गीत, त्योहारों के गीत, संबंधियों के गीत, प्रेम के गीत, विरह के गीत, श्रृंगार के गीत, बधावा के गीत, काम-धंधा के गीत प्रमुख है।

संकेताक्षर : *मालाणी, सांस्कृतिक, वैभव, लोकगीत, राजस्थानी, मांगलिक अवसर, मनोभाव, मनोवृति।*

मालाणी में लोकगीतों का सदियों से महत्व रहा है। लोकगीत यहां के लोगों के रग-रग में समाये हुए है। लोकगीतों में यहां के लोगों की आत्मा बसती है। यहां पर अलग-अलग अवसरों पर उसी के अनुरूप लोकगीत गाये जाते है। यहां के लोकगीतों में देवी-देवताओं के लोकगीत, विवाह, प्रेम-विरह के लोकगीत, विदाई के लोकगीत, त्यौहारों के लोकगीत, काम-धंधे के लोकगीत, ऋतुओं के लोकगीत आदि मुख्य है। यहां के लोकगीतों में कुरजां, हिचकी, मूमल, डोरो, पूनमल, गोरबंद, लहरियो, नीम्बूड़ा, पणिहारी, बधावो, सूवटियो, मेहन्दी, चिरमी, सावंण, पणिहारी, राजा काछबो, सूवटियो, मोरियो, बिच्छूड़ो, बालम छोटो सो, केसरियो बालम, ओलू, झेडर, गोरबंद, रिड़मल, लहरियो, रतन राजा, जलो, विलाला, कलेवो, बन्ना-बन्नी, घोड़ो आदि प्रमुख है।

मालाणी क्षेत्र के लोकगीतों में शब्द एवं स्वर के संयोजन से मांड की धुन का गहरा प्रभाव रहता था। इन लोक गीतों में विवाह, विदाई-विच्छोह, वर्षा के गीत, पनघट के गीत, भाई को याद करने के गीत, बेटी विदाई, उसकी ससुराल की पीड़ायें तथा स्त्री-पुरुष सम्बन्धों की मनोभावनाओं के भिन्न-भिन्न दर्शन होते है। इन लोक गीतों में वात्सल्य एवं श्रृंगार का वर्णन प्रमुखता से हुआ है। यहां के कुछेक लोकगीतों में ऐतिहासिकता भी है।

देवी-देवताओं के लोक-गीत

देवी-देवता के भजनों में गणेशजी, जोगमाया, रामदेवजी, गोगाजी, तेजाजी, खेमा बाबा, माताजी, जसनाथजी, भोमियाजी, भभूता सिद्ध, केसरिया कंवर, पाबूजी, जूंझारजी, भैंरूजी, राणीजी, सीतला माता, के भजन मुख्य है। जागरण के प्रारम्भ में गणपति देव का भजन गाया जाता है। गणेश जी को रिद्धि-सिद्धि का दाता माना जाता है। किसी भी शुभ मांगलिक कार्य के लिये प्रारम्भ गणेश वंदना से किया जाता है-

मनाया देवा क्यों नी मनौ,
मोटा थारा पांव रे गणेश,
मंदिरिये में थांभे रे चढै, मोटा थारा कान रे
गणेश, मंदिरिये में साजा चढै।

गणपति वंदना के बाद जागरण में संबंधित देवता के भजन गाये जाते है। लोक–भजन वीणा, हारमोनियम, ढोलक, मजीरा आदि वाद्ययंत्रों की ताल के साथ गाये जाते है। महिलाओं द्वारा किया जाने वाले हरजस में किसी भी वाद्ययंत्र का प्रयोग नहीं किया जाता है। महिलायें सावणी तीज, महाशिवरात्रि, आंवली ग्यारस, गणगौर आदि अवसरों पर हरजस गाती है।

वीर तेजाजी को हलसोतिये (हल चलाना प्रारम्भ करना) का देवता माना जाता है। किसान हलसोतिया करने पर सबसे पहले सावड़ माता को मनाता है और उसके बाद किसान देवता तेजाजी का आह्वान करता है–

गाज्यो–गाज्यो जेठ असाढ कवंर तेजा रे,
लगतो ई गाज्यो रे सावण भादवो।

रामदेवजी को समाज सुधारक, समानता और पर्चा धारी देवता माना जाता है। रामदेवजी का जम्मा रिखों द्वारा दिया जाता है–

बाबा नीची थलवट में ऊंचों देवरो।
बाबा बांझिया आवे थारे जातरी,
बाबा बांझियों रे पालणियां मंडाय,
सवायो लागे देवरो।

जोगमाया के भजन भी यहां के लोग बहुत ही चाव और उल्लास के साथ करते है। जोगमाया को जग–जननी माना जाता है–

ले हाथों तलवार भवानी म्हारी जगदम्बा,
पैरण लीलो कांचवों,
ओढण डिकणी रो चीर, भवानी म्हारी जगदम्बा।

विवाह के लोक–गीत

विवाह मानव जीवन का एक महत्वपूर्ण संस्कार है। इस अवसर बहुत सारे लाड–कोड किये जाते है। विवाह की अलग–अलग रस्मों के अवसर पर उन रस्मों संबंधित गीत गाये जाते है। नारियल आने (लग्न) से लेकर बधावे तक अलग–अलग लोकगीत गाये जाते है। ये गीत महिलायें समूह बनाकर बिना किसी वाद्ययंत्र की सहायता से गाती है। पेशेवर गायक जातियां ढोली, मांगणियार आदि जातियां वाद्ययंत्रों के साथ लोकगीत गाते हैं।

विवाह में पाट बिठाना या घृतपान की रस्म पर इस प्रकार गीत गाया जाता है–

जैड़ा थारे माता ओ लाडेलड़ा थांनै बाजोटे बिठाओं।
बाजेटे बिठाओं थांनै घिरत पिलाओं।।

उसके बाद बनोले के गीत गाये जाते है। बारात प्रस्थान से एक दिन पहले रातीजगा होता है। इस रात्रि को महिलायें रात भर घूमर खेलती हैं और गीत गाती है–

बन्ना रे बांगा में झूला घाल्या,
थारी बन्नी रे थारी नाजू रे झूलण देज्यो,
बन्ना गेंद गजरो।

बारात की प्रस्थानगी सहित फेरों के समय भी गीत गाते है। इनमें एक गीत मेहन्दी गाया जाता है–

मेहन्दी तो वाई ढोला माळवे,
ज्यांरा तांता गया गुजरात, म्हारी मेहन्दी रंग रातो
रे जोड़ी रा ढोला।

बारात वधू पक्ष के वहां पहुंचने पर गाया जाने वाला गीत इस प्रकार है–

बन्ना थांनै वेगेरा बुलाया, मोड़ा किण विध
आया,बन्नी थारे धूंधलिये धोरो में,
म्हारा रेंवत घुड़ला थाका, बन्ना थारे घोड़लियों ने
दांणो, करसलियो ने फलागट पालो।

फेरों के समय गाया जाने वाला गीत भी द्रष्टव्य है–

लाडलड़ा ऊंचो झाक थारै भाभो लटके रे, लटके तो
लटकण दे, फेरा खांवण दे।

वधू अपने होने वाले भरतार से विभिन्न प्रकार नशों से दूर रहने की सलाह देती हुई कहती है–

बन्ना दूध पीयो ने दारू छोड़ो,
अमलों सूं अळगा रहजो रे,
बन्ना रिमो–झिमों होय आज्यो।

प्रेम–विरह के लोक–गीत

प्रेम और विरह के सैकड़ों गीत जनमानस में गाये जाते है। इनमें कुरजां, हिचकी, मूमल, डोरो, पूनमल, लहरियो, नीम्बूड़ा, चिरमी, सावंण, पणिहारी, राजा काछबो, सूवटियो, मोरियो, बिच्छूड़ो, बालम छोटो सो, केसरियो बालम, ओलू, झेडर, रिड़मल, जलो, विलाला आदि मुख्य है। कुरजां नामक गीत में प्रेमिका कुरजां से कहती है कि वह उसके प्रेमी से मिला दे। हिचकी में प्रेयसी को अपने प्रेमी की याद आ रही है–

आवे हिचकी रे बैरण आवे हिचकी, जलाल री आवे डोढी हिचकी।

मूमल एक ऐतिहासिक प्रेम कथा की महिला पात्र है। जैसलमेर में आज भी मूमल की मेड़ी विद्यमान है। यह लोकगीत मूमल और उसके प्रेमी राणा महेन्द्रा की प्रेम कथा पर आधारित है। राणा महेन्द्रा अमरकोट का राजा था, जो हमेशा मिलने के लिये चिखली नामक ऊंटनी पर चढ़कर आता था और रातोरात वापस सूर्योदय से पहले अमरकोट चला जाता था। वह हमेशा एक रात्रि में अस्सी कोस (240 किमी) की दूरी तय करता था।

लहरियो मालाणी में महिलाओं द्वारा ओढ़ा जाने वाला वस्त्र हैं। यह रंगीन चूनरी होता है। इसमें नायिका अपने पति से लहरियो लाने की फरमाईश करती है–

लायदे नी वादेला ढोला लहरियो सा।

एक गर्भवती स्त्री निम्बू नामक खट्टे फल की इच्छा करती है। उसी को केन्द्र में रखकर इस गीत की रचना की गई है। चिरमी नामक लोकगीत इस प्रकार गाया जाता है–

चिरमी बाबोसा री लाडली, चिरमी रा डाळा च्यार,
वारी जाउं चिरमी ने।

कुएँ से पानी लाने के लिये घड़े के नीचे इंडूणी का उपयोग किया जाता है। इंडूणी पर विभिन्न प्रकार का श्रृंगार किया जाता है। इंडूणी नायिका को बहुत प्यारी है, उसके खो जाने पर प्रलाप करती हुई कहती है–

म्हारा सवा सवा लाख री लूंम गमगी इंडूणी,
इंडूणी रे कारणे मैं छोड़या मायर बाप, गमगी इंडूणी।

एक नायिका कौए नामक पक्षी से कहती है कि वह शगुन बता कि मेरे पति घर कब आयेंगे ? कौए नामक पक्षी का घर में आकर बोलना किसी मेहमान के आने का संकेत माना जाता है। नायिका सगुन बताने के लिये कौए से कहती है कि यदि वह बता दे कि उसके पति कब आयेंगे तो वह तुझे घी–खांड का भोजन करवायेगी और उसकी चोंच सोने से मंढा दूंगी–

उड़–उड़ रे म्हारा काळा रे कागला,
जद म्हारा पिवजी घर आवे,
घीरत खांड रो जीमण जीमाउं सोने में चोंच मंढाउ
कागा, जद म्हारा पिवजी घर आवै

गोरबंद ऊंट के गले को सजाने का आभूषण होता है। ग्वालिन ने अपने धर्म भाई के विवाह के अवसर पर उसके भूरिये नामक ऊंट को सजाने के लिये गोरबंद को गूंथना प्रारम्भ किया। वह उसे जंगल में गायें, भैंसे चराते हुए बनाती थी लेकिन जब गोरबंद पूरा हो गया तो उसे उसकी जेठानी ने चुरा लिया जिससे ग्वालिन अत्यन्त परेशान रहने लगी तथा इसी चिन्ता में जंगल में भटकती फिरती थी कि मेरे भाई का भूरिया ऊंट बिना गोरबंद की बरात में जायेगा। इस तरह घूमते–घूमते उसके मनोद्गारों से यह गीत स्वतः ही प्रस्फुटित हुआ–'म्हारो गोरबंद नखराळो।''

इसी तरह 'रतन राणा' अमरकोट के राणा रतनसिंह पर आधारित है जिनकी याद में –''म्हारा रतन राणा, एकर तो अमराणे घोड़ो फेर।''यह गीत मरसिया है जिसको मांड गायकी में गाया जाता है।

इन लोक गीतों को गाने का समय एवं इनकी अपनी राग होती थी, जैसे ''बाघा'' गीत ब्रहम तथा धनाश्री लाखा फूलाणी गीत ब्रहम एवं राग विमास में तथा रिड़मल गीत सामेरी में गाया जाता था। लाखा एवं रिड़मल मालानी क्षेत्र के प्रसिद्ध दानी, वीर एवं प्रेमी पुरुष हुए है।

काम–धंधे के लोक–गीत

मालाणी में कोई भी काम सदियों से सहकारिता के आधार पर होता आया है। खेती का काम हो या घर का अन्य काम, गांव या अड़ौस–पड़ौस के लोग एक–दूसरे की मदद करते है जिससे सभी का काम आसानी से हो जाता है। सामूहिक तौर पर काम करने को स्थानीय बोली में ''लाह'' या ''ल्हास'' कहा जाता है। लाह में लोग मनोरंजन के लिये गीत गाते है जिनमें भणत, रामईयों, अमलीड़ो आदि प्रमुख है। इनमें एक व्यक्ति आगे गाता है तथा अन्य लोग उसी को दोहराते हैं। इनमें किसी भी प्रकार के वाद्ययंत्रों का उपयोग नहीं किया जाता है। भणत पुरुष गाते है जबकि रामईयो, अमलीड़ो महिला–पुरुष दोनों गाते है। भणत इस प्रकार गाया जाता है–

थोड़ोक मीठो बोले औ भाई।
मीठो–मधरो बोले औ भाई।
गहरो–गरवो बोले औ भाई।
थोड़ों मिळतो बोले औ भाई।

इसी प्रकार रामईया नामक गीत गाया जाता है जिसमें राम का भजन करने का आह्वान किया गया है। इससे दो उद्देश्य सिद्ध होते है। एक तो भगवान का भजन हो जाता है जिससे भगवान के प्रति आस्था बढती है और दूसरा खेत आदि में सामूहिक काम हो जाता हैं।

इसी प्रकार अमलीड़ा नामक सामूहिक गीत भी गाया जाता है, इसमें अफीम नामक नशे के अवगुण को बताया गया है। यह गीत अफीम नशा नहीं करने की सीख देता है–

अमलीड़ो बूढो डेण रे अमली।
अमलीड़ो झेरो खावै रे अमली।
नैना–नैना टाबरिया रुळ जासी रे अमली।

इसी प्रकार पाला काटने का काम कठिन होता है, एक नायिका कहती है उसके हाथों मं छाले हो गये है, मैं पाला कैसे काटूं–

म्हारी हथेल्यां रे बीच छाल्या पड़गया म्हारा मारुजी,
पड़ग्या म्हारा मारुजी मैं पालो कींया काटूंली।

त्योहार के लोक–गीत

यहां पर मनाये जाने वाले तीज–त्योहारों पर लोक गीत गाये जाते है। गणगौर, होली, कानूड़े री आठम (कृष्णाष्टमी), महाशिवरात्रि, तीज, आखातीज आदि त्यौहारों पर लोक गीत गाये जाते है। होली के अवसर पर तो एक माह तक फाग गाये जाते हैं। फाग प्रेम, वीरता, श्रृंगार आदि सभी रसों में गाये जाते है। वीर रस के फागण की एक बानगी–

आउवो ने आसोप धणियां मोतियों री माळा ओ,
बारै नांखो कूंचियां तोड़ाओ ताळा आ, कै जूंझे आउवो।

इसी प्रकार प्रेम रस का फागण–

साथणियां में लूर लेती पारख कींकर पाड़ी ओ,
रातो थारो घाघरो आसमानी साड़ी ओ,
पारख पाड़ी ओ रातिये रुमाल वाळै ओ क पारख पाड़ी ओ।

अन्य प्रकीर्णक लोक–गीत

मायेरा के गीत– भाई द्वारा अपने बहिन के लिये भात भरने के लिये बुलाने पर इस प्रकार का गीत गाया जाता है–

बीरा रमा–झमां होय आयज्यो,
बीरा रखड़ी बैठ घड़ाईज्यो जी,
रखड़ी में हीरा जड़ाईज्यो जी

इसी प्रकार बच्चे के जन्मोत्सव पर अजमो गीत गाया जाता हैं। किसी के निधन पर ''चलावे'' के भजन गाये जाते है।

लोकगीतों को पेशेवर जातियों के साथ–साथ घरों में गृहणियों भी गाती है। हांलाकि गाते समय साथ में किसी ताल या वाद्य यंत्र का प्रयोग नहीं किया जाता है। इनमें विवाह एवं अन्य मांगलिक अवसरों पर सांझी, सोहळा, डोरा, झेडर, बन्ना–बन्नी, सूवा, लाडलड़ा आदि मुख्य है। इसी तरह घर में बच्चे का जन्म होने पर अजमी, पालणो, गूगरी जैसे गीत गाये जाते है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *शर्मा, बाबूलाल, राजस्थानी लोकगीत, राजस्थानी साहित्य एवं संस्कृति जनहित प्रन्यास, बीकानेर, प्रकाशन, 2007*
2. *चूंडावत, रानी लक्ष्मीकुमारी, सांस्कृतिक राजस्थान, राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर, 1998*
3. *जैन, भुवनेश, रेगिस्तान का लोक विज्ञान,भयोर संस्थान, बाड़मेर, 2007*
4. *सांदू,नारायणसिंह, मारवाड़ के ग्राम गीत, जगदीशसिंह गहलोत शोध संस्थान, जोधपुर, 1999*
5. *विश्नोई, सोनाराम, बाबा रामदेव की प्रामाणिक जीवनी, राजस्थानी ग्रंथागार जोधपुर, 1995*
6. *राठौड़, महीपालसिंह, लूर विशेषांक, चौपासनी शोध संस्थान, जोधपुर, 2000*
7. *सारण, जोगाराम, साक्षात्कार, 26.12.2020*
8. *सारण, जोगाराम, बाड़मेर के जाट गौरव, खेमा बाबा प्रकाशन, बाड़मेर, 2008*
9. *गढ़वीर, मेघाराम, जैसलमेर राज्य का सामाजिक इतिहास, राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर, 2012*
10. *पारीक, सुधाकर, राजस्थानी लोकगीत, धीरेन्द्र पुस्तक भंडार, किशनगढ, 2005*

वंशीधर शुक्ल के काव्य में व्यवस्था–विद्रोह

डॉ. आभा शुक्ला
सह–आचार्य, एस. डी. एस. एन. डिग्री कॉलेज, लखनऊ (उत्तरप्रदेश)

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

व्यवस्था–विद्रोह से आशय किसी व्यवस्था में छिद्रान्वेषण करके उसका विरोध करने से है। व्यवस्था–विद्रोह वंशीधर शुक्ल के काव्य में प्रमुखता से दृष्टिगोचर होता है। इस चराचर जगत में जो कुछ भी उनकी दृष्टि में उचित नहीं होता है उसके प्रति आक्रोश व्यक्त करने में वे रंच मात्र भी संशय नहीं करते हैं। यहाँ तक कि वे ईश्वरीय व्यवस्था से भी असंतुष्टि की स्थिति में ईश्वर के प्रति अपनी नाराजगी साहित्य–सर्जना के माध्यम से व्यक्त करते हैं। उन्होंने व्यवस्था–विद्रोह से संबंधित विभिन्न रचनाएँ लिखीं। वे भूखे रहकर सरकारी टुकड़ो को ठोकर मारने वाले कवि थे। वे आजीवन आकाशवाणी का बहिष्कार किये रहे। स्वतंत्रता संग्राम के साथी होने के कारण वे पंडित जवाहर लाल नेहरु का सम्मान तो करते थे, परन्तु एक शासक के रुप में उनके विरुद्ध लिखने में उन्होंने कभी संकोच नहीं किया। वस्तुतः व्यवस्था–विद्रोह शुक्ल जी के समस्त काव्य में व्याप्त है।

संकेताक्षर : *व्यवस्था–विद्रोह, राष्ट्रोत्थान, स्वस्थ सामाजिक वातावरण, वंशीधर शुक्ल, काव्य।*

व्यवस्था–विद्रोह वंशीधर शुक्ल के काव्य की एक महत्त्वपूर्ण प्रवृत्ति है। व्यवस्था के प्रति विद्रोह शुक्ल जी के काव्य में सर्वत्र दिखाई देता है। वस्तुतः वंशीधर शुक्ल पराधीन भारत में अंग्रजों के भेदभावपरक अनुशासन, अत्याचार तथा उनकी स्वार्थपूर्ण व्यवस्था से अत्यन्त क्षुब्ध थे। साथ ही उस समय राष्ट्र के कर्णधार कहे जाने वाले कांग्रेस के नेताओं की सामन्तवादिता भी उन्हें कष्ट देती थी। सन् 1940 के पहले जब महात्मा गाँधी तथा पं. जवाहर लाल नेहरु का लोग अत्यन्त सम्मान करते थे तब वंशीधर शुक्ल ने पं. जवाहर लाल नेहरु को फटकार लगायी थी जो उनकी रचना 'ओ शासक नेहरु!' की इन पंक्तियों में स्पष्ट है –

"ओ शासक नेहरु! सावधान,
पलटो नौकरशाही–विधान,
अन्यथा पलट देगा तुमको
मजदूर वीर योद्धा किसान।
जिसने तुमको सम्मान दिया,
जिसने तुमको पद दान दिया;
अपनी गर्दन पर छुरी चलाने
का अधिकार प्रदान किया।
तुम बेशक कर्मठ धीर वीर
मोती के लाल जवाहर हो,
वाणी से क्रांति मचाने वाले
तुम्ही एक नर–नाहर हो।
जगती ने तुम्हें प्रणाम किया
भारत ने भारत दान दिया;

भूखे–प्यासे–कंगालों ने
जीवन–धन प्राण इमान दिया।''[1]

'लीडरावाद' शीर्षक रचना में शुक्ल जी ने बड़े नेताओं की सामन्तवादिता की धज्जियाँ उड़ा दी थीं। शुक्ल जी अपनी यह रचना उस समय के कवि सम्मेलनों में अक्सर पढ़ा करते थे। 'लीडरावाद' की इन पंक्तियों में शुक्ल जी का आक्रोश व्यक्त है–

''हम याक नुची कमरी ओढ़े रातिउ दिन पहरा लगवाई
नखरा लीडर लिडरानी के देखी तौ औरु, झुरसि कै जाई।
हम अपने हाकिम ते पूँछेन–'भाई यहु कैस मामिला है।
लेक्चर माँ कहईं बराबरि सब मुल इउ कुछु औरु चोंचला है।।'
तब उइ हमका यहु समुझाहनि, ई त्यागी है; ई लीडर है।
तुम हौ बिन पढ़े, स्वयं सेवक, ई सब कौंसिल के मेम्बर हैं।।
तुम माँ इन माँ है बड़ा फर्कु भत्ता औ फीस मिलइ इनका।
है तुम्हरे तीर फटी कमरी, चलि रहा आजु सासनु इनका।।''[2]

वंशीधर शुक्ल जी ने 'शंकर वन्दना' शीर्षक कविता में पं. जवाहर लाल नेहरु तथा महात्मा गाँधी पर तीखे व्यंग्य किये हैं। उन्होंने अपनी रचना में कांग्रेस के नेता मौलाना अबुल कलाम आजाद एवं राजर्षि पुरुषोत्तम दास टण्डन पर भी कटाक्ष किया है तथा तुष्टीकरण की नीति पर भी करारा व्यंग्य किया है। शुक्ल जी 'शंकर वन्दना' शीर्षक रचना में भगवान शिव जी को सम्बोधित करते हुये कहते हैं–

''रचतिउ क्वई समाज, ऋषी की पदवी पउतिउ,
होतिउ शिखा विहीन, अली–आलिम कहवउतिउ।
गोरा होति सरूप लाटि की पदवी देत्यन,
होतिउ डिगरीदार चट्ट बापू कहि देत्यन।
सब गुन दै, फैसन तजै, घूमि रहयौ फट्टा बने
को मानई नेता तुमहि, नेहरू जी के सामने।''[3]

शुक्ल जी ने अपने काव्य में डिग्री वाली उच्च अंग्रेजी शिक्षा, फैशन तथा अंग्रेज जाति पर भी कटाक्ष किया है।

यहाँ पर वंशीधर शुक्ल जी की समानता उपन्यास सम्राट मुंशी प्रेमचन्द्र जी से की जा सकती है। उन्होंने अपने प्रसिद्ध उपन्यास 'गोदान' में राय साहब के माध्यम से तत्कालीन नेताओं पर व्यंग्य किया था। वास्तव में कवि और साहित्यकार की दृष्टि से समाज का कोई भी पहलू अछूता नहीं रह पाता है। वह अपनी लेखनी के माध्यम से समाज की वास्तविक स्थिति को उजागर करता है।

15 अगस्त सन् 1947 को जब भारत स्वतंत्र हो गया तब भी शुक्ल जी की चिन्ता कम न हुई, क्योंकि कोई भी नेता अपने कर्त्तव्यों का निर्वहन गम्भीरतापूर्वक नहीं कर रहा था। कवि की यह चिन्ता 'देश का को है जिम्मेदार' रचना की अग्रिम पंक्तियों में झलकती है–

''देश का को है जिम्मेदार,
चौराहे पर ठढ़ किसनऊ, ताकैं चारिउवार।
कहूँ न जोति दिया न बाती, कोई हितू न सखा सँघाती,
चलै बिकटै बौझरा पछहिंया, उड़ै रथी जस तिनका पाती,
उड़िलै अन्धकार चौगिरदा, सुझि न परै अगार।।
नौकर कहैं कि हम चाकर हैं, अफसर कहैं कि हम नौकर हैं,
मेम्बर कहैं कि हम रहबर हैं, मंत्री कहैं कि खिदमतगार हैं,
कहैं गवरनर पद जरूर है, मुला न कुछु अधिकार।।
जिलाधीश, परननाधीश, क्वै न्यायधीश, क्वै प्रान्तपती हैं,
राज्यपाल क्वै, नगर पाल, क्वै लेखपाल, क्वै राष्ट्रपती हैं,
मुल देखित तौ राँड़ लगि रही, भारत की सरकार।।''[4]

शुक्ल जी सरकार की अस्थिरता तथा लापरवाही से रुष्ट थे। अतः वे अपनी रचना 'अब सरकार न ढ़ोई जाई' के माध्यम से विद्रोहात्मक स्वर में कह उठे–

''अब सरकार न ढ़ोई जाई,
ढ़ोवति ढ़ोवति रीढ़ टूटि गै पावन फटी बेवाई,
गला सूख, आँखी भरि आई चांदि सफा भैं भाई।
अब सरकार न ढ़ोई जाई।
टिकस एक ते बढ़े हजारन लाखन केरि अवाई,

ऐसी सरकारन ते सुख की अब का आस लगाई।
अब सरकार न ढ़ोई जाई।।
नोचिं दबोचि खरोंचि कोचि दुख बिल्लो गई बिलाई,
अब बिल्लो के सुर माँ बोलै ई बिल्लो की दाई।
अब सरकार न ढ़ोई जाई।।
रेलै घटी, किरावा बढ़िगा पोतौ रहे बढ़ाई,
अब मुर्दन पर टिकस लगावै हाय मौत के भाई।
अब सरकार न ढ़ोई जाई।।''[5]

स्वातंत्र्योपरांत वंशीधर शुक्ल ने समाजवादी दल का आलिंगन किया। वे साम्यवाद तथा समाजवाद से पूर्णतः प्रभावित हैं। शुक्ल जी अपनी रचना 'धरती के भुइँहार!' के माध्यम से किसानों को जाग्रत करते हुए कहते हैं–

''चेतु रे धरती के भुइँहार!
गांधीवाद न घरु हुइ पाइसि साम्यवाद घर घूसा;
सत्य अहिंसा रटि हिंसक में घर के ईसा मूसा।
बल्लभ बनि बल्लभा गुजरिगे गइ सरदारी भूलि;
नौकरसाही के झुलुआ पर रहे जवाहर झूलि।
चारि दौस की यहउ चाँदनी दुइ छिन का उजियार।
चेतु रे धरती के भुइँहार!
तोरिब धरती तोरइ अम्बर तुइ हुइहइ रखवार;
राजा–प्रजा नाउ ना रहिहइ तुइ हुइहइ सरकार।
राह कठिन चहुँदिसि अँधियारा, जीव–जन्तु गिरदावइँ;
जिनका तुइ मूड़े ते फेंकिहइ उइ फिरि–फिरि घतियावइँ।
सत्य–दिया लइ सकति न्याय की खेये चलु संसार।
चेतु रे धरती के भुइँहार''[6]

वंशीधर शुक्ल ने अपनी रचना 'राजा की कोठी' में किसानों के शोषण का वर्णन किया है। शुक्ल जी की रग–रग में व्यवस्था–विद्रोह व्याप्त था, उनका समस्त जीवन एवं काव्य इसका उदाहरण है। 'राजा की कोठी' की निम्न पंक्तियाँ शुक्ल जी का आक्रोश व्यक्त करती हैं–

''ईंट किसानन के हाड़ की, लगा खून का गारा,
पत्थर अस जियरा मँजूर का, चमक आँखि का तारा।
लगी देस भगतन की चरबी, चिकनाई जुलमन की,
घंटा ठनकइ अन्यायन का, कथा होइ पापन की।
जहाँ बसइ ऊ जम का भइया, खाय खून की रोटी,
हुँवइ बनी बूचड़खान असि, यह राजा की कोठी।।
दफतरु बना, रजट्टर गाँजे, लिखइँ सफेद कसाई,
काटइँ प्याट किसान देव के लूटइँ लाज कमाई।
पूजा होइ अफसरन की चलि रही छुरी सुधुवन पर,
बनइ लुटि का जालु राति दिन, नाँउ चलइ तिगड़म पर।
जहाँ सतीत्व लुटइ अबलन का, छीनी जाय लँगोटी,
हुँवइ बनी बइतरनी तट पर, महाराजा की कोठी।।''[7]

'हाय कन्ट्रउल' शीर्षक रचना में शुक्ल जी ने व्यंग्यात्मक शैली का प्रयोग किया है, इस रचना के माध्यम से शुक्ल जी यह व्यक्त करना चाहते हैं कि समाज में जो भ्रष्टाचार, बुराइयाँ आदि हैं उस पर कन्ट्रोल अर्थात नियंत्रण नहीं हो रहा है बल्कि अधिकारों पर, सत्य पर, श्रमिकों पर, योग्यता पर, बुद्धि पर नियंत्रण किया जा रहा है जैसा कि 'हाय कन्ट्रउल' की निम्न पंक्तियों से स्पष्ट है –

''आज की दुनियाँ बे कन्ट्रउल,
लाल लल मुनियाँ बे कन्ट्रउल,
आजु है राशन पर कन्ट्रउल,
सत्य की बातन पर कन्ट्रउल,
बुद्धि औ बानी पर कन्ट्रउल,
चाल मनमानी पर कन्ट्रउल,
जिन्दगी–ज्वानी पर कन्ट्रउल,
आगि औ पानी पर कन्ट्रउल,
सबइ व्यापारन पर कन्ट्रउल,
सबइ अधिकारन पर कन्ट्रउल,
नहीं है नंगन पर कन्ट्रउल,
नहीं भिखमंगन पर कन्ट्रउल,
नहीं बेइमानन पर कन्ट्रउल,
नहीं मक्कारन पर कन्ट्रउल।''[8]

शुक्ल जी ने अपनी रचना 'सूरपद (पैरोडी) 2' में व्यंग्यात्मक शैली के साथ–साथ हास्य रस की छटा बिखेरने का प्रयास किया है। शुक्ल जी ने इस रचना में सूरदास जी की रचना 'मैया मोरी मैं नहीं माखन खायो' को आधार बनाकर रिश्वत लेने वालों पर करारा प्रहार किया है। रिश्वत लेने वालों पर व्यंग्य करते हुए वे कहते हैं कि समाज में अव्यवस्था करने वाले ये भ्रष्टाचारी कहते हैं कि, मुझे लोग अपनी इच्छा से रिश्वत देते हैं जैसा कि निम्न पंक्तियों से स्पष्ट है–

"मैया मोरी मैं नहीं रिश्वति खायेउ,
शोरु होति मेरे बँगला पर, डाली लाइ लगायेउ।
नाँही नाँही करति रहेउँ, बरबस हाथ गहायेउ,
सबै बिरोधी झगरि परे है, झूँठइ दोखु लगायेउ।
मैया मोरी मैं नहीं रिश्वति खायेउ।।"[9]

शुक्ल जी की रचना 'सूरपद (पैरोडी) 2' में विरोधाभास भी देखने को मिलता है, कि एक ओर तो ये भ्रष्टाचारी अपनी सफाई देते हुए कहते हैं कि, मैं खद्दर धारी हूँ एवं प्रातः काल नित्य रघुपति राघव राजाराम का भजन करता हूँ और दूसरी ओर कहते हैं कि मैं प्रातः अण्डा एवं मदिरा का सेवन करके कार्यालय जाता हूँ–

"मैं तो भैया खद्दरधारी दगा सीखि पद पायेउ,
नित प्रति उठि कै रघुपति राघव राजा राम मनायेउ।
प्रात समय अण्डा बोतल भखि मैं आफिस माँ आयेउ,
पाँच बजे लगि कलम चलायेउ, सांझ भये कर पायेउ।
मैया मोरी मैं नहीं रिश्वति खायेउ।।"[10]

शुक्ल जी ने अपनी रचना के माध्यम से समाज के भ्रष्टाचारियों पर कटाक्ष किया है जो कि उनके साहसी एवं निर्भीक व्यक्तित्व का परिचायक है। शुक्ल जी ने अपनी निर्भीकता का परिचय 'अवसरवादी नेता' रचना में दिया है। उक्त रचना के माध्यम से इन्होंने नेताओं के चरित्र को संसार के समक्ष उजागर करने का प्रयास किया है। नेता लोगों के दुष्कर्मो का वर्णन निम्न पंक्तियों में प्रस्तुत है–

"जेलो में सच्चे भक्तों की
यह रोटी दाल चुराते थे,
कम्मल लँगोट तसला फट्टा,
यह चट्ट हजम कर जाते थे,
दुखिया मजदूर किसानों को,
जेलों में भी कटवाते थे,
अपने को बता क्रांतिकारी दलिया
दो हिस्से खाते थे,
सब कुछ लानत पड़ती थी
पर लानत सहने के आदी हैं,
अब मत समाजवादी समझो,
ये पक्के अवसरवादी हैं।
जेलों में रह वेतन लेते,
बाहर सब चन्दा खाते थे,
आफिस में घुस सब पद
लेकर सच्चों पर दोष लगाते थे,
जब बढ़ने लगती बदनामी
तो पुनः जेल में जाते थे,
काला कौवा बनकर जाते
फिर बगुला बनकर आते थे,
पार्टी के बल हैं देशभक्त जनता में धूर्त फसादी हैं,
अब मत समाजवादी समझो,
ये पक्के अवसरवादी हैं।"[11]

वस्तुतः व्यक्ति की पहचान उसके पद और प्रतिष्ठा से नहीं बल्कि उसके कर्मो से होती है। कर्मो से व्यक्ति महान बनता है और कर्म ही उसके पतन का कारण बनता है।

परन्तु यह बात अगर हमारे नेता समझ पाते तो हमारे देश का भविष्य सँवर जाता। दुर्भाग्य की बात है कि हमारे नेता लोगों से कोई दुष्कर्म बचा ही नहीं है, जो इन्होंने न किया हो; यह बात वंशीधर शुक्ल की रचना 'अवसरवादी नेता' की निम्नलिखित पंक्तियों से स्पष्ट है–

"कोई ऐसा बदकर्म नहीं,
जिसको है इनने किया नहीं,
कोई भी ऐसा पुरुष नहीं,
जिससे इनने कुछ लिया नहीं।
अब होना है लैसंस जब्त,
कुछ दिनों में दौड़ न पायेंगे।
जिन जिन को अब तक दगा दिया,
उनको क्या मुँह दिखलायेंगे।
तुम उल्लू के पट्ठे समझो,
पर यह उल्लू बुनियादी है,
अब मत समाजवादी समझो,
ये पक्के अवसरवादी हैं।"[12]

इस प्रकार शुक्ल जी की कविता 'अवसरवादी नेता' नेताओं के चरित्र एवं कर्मो को समाज के समक्ष उजागर करने में समर्थ है।

शुक्ल जी अपनी रचना 'स्वाहा' में पूरे आवेश एवं क्रोधावस्था में हैं। ऐसा प्रतीत होता है मानो वह समाज की अव्यवस्था को जड़ से समाप्त कर देना चाहते हैं। 'स्वाहा' की निम्नलिखित पंक्तियों से शुक्ल जी के आक्रोश का अनुमान किया जा सकता है–

"चलौ भैरव योगिनी,
चर्वण करो मद निशिचरों का,
लीजिए स्वाहा स्वधा घृत रक्त कपटी लीडरों का।
आज की सरकार स्वाहा, लीडरी दरबार स्वाहा,
धूर्त कायर खल ठगों का काँग्रसी व्यभिचार स्वाहा।
काँगरस पर देश के अनगिनत मस्तक दान स्वाहा,
यातनायें देश की निर्दोष अल्हड़ प्राण स्वाहा।
आज गृह सम्पति लुटी, लाखों हुए घर द्वार स्वाहा,
दाह उर की, आह स्वर की, अश्रुशोणित धार स्वाहा।"[13]

इसी प्रकार शुक्ल जी 'स्वाहा' रचना में सामाजिक अव्यवस्था पर व्यंग्य करते हुए कहते हैं कि आज भारतीय शिष्टाचार स्वाहा हो गया है, राष्ट्र का उत्थान स्वाहा हो गया है, सत्पुरुषों का सम्मान स्वाहा हो गया है। इसे 'स्वाहा' रचना की निम्न पंक्तियों से स्पष्ट किया जा सकता है–

"पूज्य गाँधी की चिता में सत् अहिंसा त्याग स्वाहा,
लौह पुरुष पटेल का पार्टी प्रपंची राग स्वाहा।
असहयोग प्रलाप स्वाहा, भूख की हड़ताल स्वाहा,
मूर्ख सत्याग्रही रोते व्यर्थ सब धन माल स्वाहा।
धूर्त स्वार्थी बने शासक त्याग पद मर्याद स्वाहा,
राज्य कुनबा परस्ती का जेल यात्री वाद स्वाहा।।
शासकों की मूर्खता पर देश गौरव मान स्वाहा,
कायरों की लचरता से वीर रण आह्वान स्वाहा।।"[14]

व्यवस्था में व्याप्त भ्रष्टाचार का अन्त करने हेतु नौजवानों का आह्वान करते हुये वे कहते हैं कि –

"नौजवानों! उठो कर दो सकल भ्रष्टाचार स्वाहा,
नौकरों का दुर्ग माँ कंट्रोल का आधार स्वाहा।
काँग्रस का तख्त स्वाहा, देह का आलस्य स्वाहा,
छीन लो शासन स्वयं कर दो जगत के दस्यु स्वाहा।।"[15]

अतः स्पष्ट है कि शुक्ल जी की हार्दिक इच्छा थी, कि सामाजिक अव्यवस्था पूर्णतः समाप्त हो जाय तथा एक ऐसे स्वस्थ सामाजिक वातावरण का निर्माण हो जिसमें प्रत्येक व्यक्ति पुष्पित–पल्लवित हो सके तथा राष्ट्रोत्थान में अपना सर्वोत्तम योगदान सुनिश्चित कर सके जिससे एक सुंदर समाज की सर्जना की जा सके।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *डॉ. श्याम सुन्दर मिश्र 'मधुप' – वंशीधर शुक्ल रचनावली, पृष्ठ 596*
2. *डॉ. श्याम सुन्दर मिश्र 'मधुप' – वंशीधर शुक्ल रचनावली, पृष्ठ 153*
3. *डॉ. श्याम सुन्दर मिश्र 'मधुप' – वंशीधर शुक्ल रचनावली, पृष्ठ 38*
4. *डॉ. श्याम सुन्दर मिश्र 'मधुप' – वंशीधर शुक्ल रचनावली, पृष्ठ 39*
5. *डॉ. श्याम सुन्दर मिश्र 'मधुप' – वंशीधर शुक्ल रचनावली, पृष्ठ 388*
6. *डॉ. श्याम सुन्दर मिश्र 'मधुप' – वंशीधर शुक्ल रचनावली, पृष्ठ 26*
7. *डॉ. श्याम सुन्दर मिश्र 'मधुप' – वंशीधर शुक्ल रचनावली, पृष्ठ 116*
8. *डॉ. श्याम सुन्दर मिश्र 'मधुप' – वंशीधर शुक्ल रचनावली, पृष्ठ 236*
9. *डॉ. श्याम सुन्दर मिश्र 'मधुप' – वंशीधर शुक्ल रचनावली, पृष्ठ 313*
10. *डॉ. श्याम सुन्दर मिश्र 'मधुप' – वंशीधर शुक्ल रचनावली, पृष्ठ 313*
11. *डॉ. श्याम सुन्दर मिश्र 'मधुप' – वंशीधर शुक्ल रचनावली, पृष्ठ 564, 565*
12. *डॉ. श्याम सुन्दर मिश्र 'मधुप' – वंशीधर शुक्ल रचनावली, पृष्ठ 565*
13. *डॉ. श्याम सुन्दर मिश्र 'मधुप' – वंशीधर शुक्ल रचनावली, पृष्ठ 569*
14. *डॉ. श्याम सुन्दर मिश्र 'मधुप' – वंशीधर शुक्ल रचनावली, पृष्ठ 57*
15. *डॉ. श्याम सुन्दर मिश्र 'मधुप' – वंशीधर शुक्ल रचनावली, पृष्ठ 571*

ज्योतिषशास्त्र में जातक के तिथि निर्णय की अवधारणा

डॉ. हरकेश बैरवा
एसोसिएट प्रोफेसर, राजकीय कला महाविद्यालय, कोटा

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

प्राचीन भारतीय विद्वान् ज्योतिष और नक्षत्र विद्या आदि से पूर्णतया परिचित थे। जब वे सूर्य–चन्द्रमा के मार्ग निश्चित कर सकते थे तो उन्हें यह भी ज्ञात रहा होगा कि विविध तिथियों पर उत्पन्न जातक का विहितकर्म एवं जन्मफल कैसा होगा। ज्योतिष विज्ञान एक सांख्यिकीय अध्ययन है। प्रस्तुत अध्ययन सांख्यिकी के सिद्धान्तों की प्रक्रिया में लागू होगा अर्थात् निष्कर्ष सदैव प्रायिकता के शब्दों में दिया जायेगा। अतः अपवाद होना भी असंभव नहीं होगा। अध्ययन का अनुसरण किया जाये तो उचित तिथियों पर उत्पन्न जातक का विहितकर्म एवं जन्मफल अपेक्षित परिणाम दे सकते हैं। विज्ञान भी सदैव प्रायोगिक परिणामों की व्याख्या करता है।

संकेताक्षर : *ज्योतिष, शास्त्र, तिथि, जातक, विहितकर्म, जन्मफल ।*

ज्योतिष शब्द की व्युत्पत्ति 'द्युतेरिसिन्नादेश्च जः' कहकर की गयी है अर्थात् 'द्युत दीप्तौ' धातु से 'इसिन्' प्रत्यय तथा दकार को जकारादेश करने पर ज्योतिष् या ज्योतिः शब्द बना है। 'तदधिकृत्य कृतो ग्रन्थः' इस पाणिनीय सूत्र से 'अण्' प्रत्यय करने पर 'ज्योतिष' शब्द निष्पन्न होता है, जिसका अर्थ हुआ– ज्योतिष सम्बन्धी सिद्धान्त या ग्रन्थ।[1]

शास्त्र का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ– 'शास्त्र' शब्द की व्युत्पत्ति दो प्रकार से की जाती है– 1. करणीय–अकरणीय कर्त्तव्याकर्त्तव्य के विषय में जो आज्ञा दे, वह शास्त्र है– शासनात् शास्त्रम्। 2. किसी उद्‌देश्य विशेष से जो सम्पूर्ण अर्थो का ज्ञान करा दे वही शास्त्र है– शास्त्रत्वं शंसनादपि। दोनों व्युत्पत्तियों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि जो किसी वस्तु के स्वरुप को ठीक–ठीक समझा दे अर्थात् जो सत्य का ज्ञान करा दे, उसे शास्त्र कहते हैं। अतएंव ज्योतिष शास्त्र का अर्थ हुआ कि ग्रह–नक्षत्रादि प्रकाश पिण्डों के माध्यम से सत्य का ज्ञान तथा अज्ञानादि की निवृत्ति।

ज्योतिष का विस्तृत अर्थ – 'ज्योतिषः अस्ति अस्य' (ज्योतिस्+अच्) ग्रह नक्षत्रों की स्थिति, गति आदि का विचार करने वाला शास्त्र या ग्रह–नक्षत्रादि के शुभाशुभ फल बताने वाला ज्योतिष शास्त्र है। ज्योतिष वेद का एक अंग है। अंग शब्द का अर्थ सहायक होता है अर्थात् वेदों के वास्तविक अर्थ का बोध करने वाला। जिन उपकरणों की सहायता से किसी तत्त्व विशेष का परिज्ञान हो, उसे अंग कहते हैं– **अंगयन्ते ज्ञायन्ते अमीभिरिति अंगानि।** पाणिनीय शिक्षा ग्रन्थ में लिखा है कि वेदरुप पुरुष के दोनों पैर छन्द हैं, दोनों हाथ कल्प हैं, आँखें ज्योतिष हैं, कान निरुक्त हैं, नाक शिक्षा है और मुख व्याकरण है– छन्दः पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते। ज्योतिषामयनं चक्षुर्निरुक्ते श्रोत्रमुचयते। शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम्। जिस प्रकार व्याकरण वेदपुरुष का मुख है, उसी प्रकार ज्योतिष को उसका नेत्र कहा गया है– ज्योतिषामयनं चक्षुः। वेदार्थ के सम्यक् अवबोध के लिये ही वेदांगशास्त्र अद्‌बुद्ध हुआ। वेदांग में से ज्योतिषरूप वेदपुरुष का प्रकाशमय नेत्र ज्योतिष शास्त्र ही है– 'वेदस्य निर्मलं चक्षुः।' जैसे नेत्रहीन के लिए सब कुछ अन्धकारमय है, वैसे ही ज्योतिष रुपी नेत्र के बिना वेद का सम्यक् दर्शन सम्भव नहीं। वेदांग ज्योतिष के रचयिता महर्षि लगध ने ज्योतिष को सर्वोत्कृष्ट मानते हुए लिखा है कि जिस प्रकार मयूर की शिखा उसके सिर पर

रहती है, सर्पो की मणि उनके मस्तक पर ही निवास करती है, उसी प्रकार गणित रूप ज्योतिष आदि वेदांग शास्त्रों के मूर्धा में स्थित होता है–

यथा शिखा मयूराणां नागानां मणयो यथा।
तद्वद्वेदांगशास्त्राणां गणितं मूर्धनि स्थितम्।

ज्योतिष के जो मूलतत्त्व वेदों में समाहित है, उनका विस्तार पुराणों में हुआ है, उनमें भी नारद, गरुण, अग्नि, विष्णु एवं विष्णुधर्मोत्तरपुराण में ज्योतिष का विशेष वर्णन हुआ है। नारदपुराण का त्रिस्कन्धज्योतिष तो प्रसिद्ध ही है। गरुणपुराण में सामुद्रिकशास्त्र, स्वरोदय शास्त्र एवं शकुनशास्त्र का निरुपण है। अग्निपुराण तो ज्योतिष का विश्वकोष ही है। भागवद्, विष्णु आदि पुराणों में भूगोल एवं खगोल, सूर्यादि ग्रहों की गति शिशुभारचक्र आदि का विस्तार से वर्णन हुआ है। इस प्रकार ज्योतिष का प्राचीन इतिहास अत्यन्त समृद्ध तथा गौरवशाली रहा है। ज्योतिषशास्त्र के संहिता, होरा तथा सिद्धान्त– इन तीन स्कन्धों से सम्बद्ध अत्यन्त महत्त्व के ग्रन्थों की रचना होती रही है।

तिथियों की अवधारणा– चन्द्रमा की एक कला को तिथि कहते हैं, एक मास में 30 तिथियाँ होती हैं ये पक्षों में विभाजित हैं, प्रत्येक पक्ष में 15–15 तिथियाँ होती हैं। सूर्य–चन्द्र के बीच की 12 डिग्री दूरी को एक तिथि माना जाता है। अमावस्या को सूर्य और चन्द्र एक राशि के समान अंश पर होते हैं। 0° से 12° तक की दूरी प्रतिपदा, 12° से 24° तक द्वितीया, 24° से 36° तक तृतीया– इसी क्रम से पूर्णिमा को सूर्य परस्पर 180° तक (अन्तर) शुक्लपक्ष तथा 180° से (उलटे) 0° तक कृष्णपक्ष होता है, जैसे– 180° से 168° तक कृष्णपक्ष की प्रतिपदा 168° से 156° तक द्वितीया– इसी क्रम से अमावस्या को 180° बनता है।

दूसरे रूप में इस क्रम की प्रस्तुति इस प्रकार भी हो सकती है। कान्तिवृत्त में कुल 360° ही हो सकते हैं तथा पूर्णिमा को चन्द्र सूर्य से 180° पर होता है। अतः 180° से 192° तक प्रतिपदा, 192° से 204° तक द्वितीया, इस प्रकार 180° से 360° तक कृष्णपक्ष की क्रमशः प्रतिपदा से अमावस्या तक की 15 तिथियाँ। जिस दिन सूर्य और चन्द्र एक ही राशि पर होते हैं, तब वह तिथि अमावस्या और उस दिन सूर्य और चन्द्र का गति अन्तर शून्य अक्षांश होता है। जिस दिन सूर्य और चन्द्र आमने–सामने अर्थात् 6 राशि या 180° अंश के अन्तर पर होते हैं, तब वह तिथि पूर्णिमा कहलाती है। चन्द्रमा की गति सूर्य से प्रायः तेरह गुना अधिक होती है। जब इन दोनों की गति में 12 अंश का अन्तर आ जाता है, तब एक तिथि बनती है। इस प्रकार 360° अंशवाले भचक्र (आकाश मण्डल) में $360^{\circ} \div 2 = 30$ तिथियों का निर्माण होता है, जो नैसर्गिक क्रम से निरन्तर चालू है।

तिथियों की क्रम संख्या– (1) प्रतिपदा (2) द्वितीया (3) तृतीया (4) चतुर्थी (5) पंचमी (6) शष्ठी (7) सप्तमी (8) अष्टमी (9) नवमी (10) दशमी (11) एकादशी (12) द्वादशी (13) त्रयोदशी (14) चतुर्दशी (15) पूर्णिमा या अमावस्या। शुक्लपक्ष की अन्तिम तिथि 15वीं पूर्णिमा और कृष्णपक्ष की अन्तिम तिथि 30वीं अमावस्या होती है– प्रतिपच्च द्वितीया च तृतीया तदनन्तरम्। चतुर्थी पंचमी शष्ठी सप्तमी चाष्टमी ततः। नवमी दशमी चैकादशी द्वादशी ततः। त्रयोदशी ततो ज्ञयो ततः प्रोक्ता चतुर्दशी। पौर्णिमा शुक्लपक्षे सा कृष्णपक्षे त्वमा स्मृता।[2]

तिथियों के स्वामी– प्रतिपदा के स्वामी अग्नि, द्वितीया के ब्रह्मा, तृतीया की गौरी, चतुर्थी के गणेश, पंचमी के नाग, शष्ठी के कार्तिकेय, सप्तमी के सूर्य, अष्टमी के शिव, नवमी की दुर्गा, दशमी के यमराज, एकादशी के विश्वदेवा, द्वादशी के विष्णु, त्रयोदशी के कामदेव, चतुर्दशी के शिव, पूर्णिमा के चन्द्रमा तथा अमावस्या के पितर माने जाते हैं– तिथीशा वह्निधात्रम्बा हेरम्बोरगशण्मुखाः।

रविशाम्बा यमो विश्वहरिस्मरशिवेन्दवः।
अमावस्यातिथेरीशाः पितरः संप्रकीर्तिताः।[3]
तिथिशा वह्निकी गौरी गणेशोऽहिर्गुहो रविः।
शिवो दुर्गातको विश्वे हरिः कामः शिवः शशी।[4]

नन्दा–भद्रादि तिथियाँ – इन तिथियों की पांच संज्ञा होती है– नन्दा, भद्रा, जया, रिक्ता एवं पूर्णा। कृष्ण एवं शुक्ल दोनों पक्षों की पन्द्रह–पन्द्रह तिथियों में प्रतिपदा, शष्ठी, एकादशी (1,6,11) इन तीन तिथियों का एक नाम नन्दा है। द्वितीय, सप्तमी, द्वादशी (2,7,12) का नाम भद्रा, तृतीय, अष्टमी, त्रयोदशी (3.8.13) का नाम जया, चतुर्थी, नवमी, चतुर्दशी (4,9,14) का नाम रिक्ता तथा पंचमी, दशमी, पूर्णिमा या अमावस्या (5,10,15 या 30) का नाम पूर्णा है। प्रतिपदा से पंचमी तक, शष्ठी से दशमी पर्यन्त और एकादशी से पूर्णिमा पर्यन्त तिथियों की नन्दा, भद्रा, जयादि संज्ञा

होती है अर्थात् प्रतिपदा की नन्दा, द्वितीया की भद्रा, तृतीया की जया, चतुर्थी की रिक्ता, पंचमी की पूर्णा, इसी प्रकार शष्ठी एवं एकादशी से जानना चाहिए–

नन्दा भद्रा जया रिक्ता पूर्णाश्च प्रतिपन्मुखाः।
शष्ठ्याद्याश्च क्रमाज्ज्ञेया तथैवेकादशीमुखाः।।[5]

नन्दा–भद्रादि तिथियों में करणीयकार्य – नन्दा तिथि में गीत–वाद्य, नृत्य, कृषि, धार्मिक कार्य, उत्सव, वस्त्र एवं अलंकार धारण, शिल्पकारी, गृहसंबंधी कार्य करना शुभ होता है। व्रत, उपवास, विवाह, यात्रा, अभ्यंग, पितृकर्म, दन्त काष्ठादि का संचय, प्रतिष्ठा, वास्तुकर्म, गृहप्रवेशादि, उपनयन, सीमन्त एवं चौल संस्कार आदि कार्य नन्दा तिथि में नहीं करने चाहिए। भद्रा तिथि में विवाह, यज्ञोपवीत, यात्रा, आभूषण निर्माण व उपयोग, कारीगरी, कला सीखना, हाथी–घोड़ा सम्बन्धी कार्य सिद्ध होता है। जया तिथि में सैन्य संगठन, युद्ध शिक्षा, शस्त्रादि कार्य, यात्रा, उत्सव, गृहारम्भ एवं प्रवेश, औषध कर्म और व्यापार कार्य सफल होते हैं। रिक्ता तिथि में शत्रुओं का वध एवं कैद करना, विश देना, शस्त्रप्रयोग, शल्य क्रिया, क्रूरकर्म करना चाहिए तथा इसमें शुभ मांगलिक कार्य नहीं करना चाहिए। पूर्णा तिथि में विवाह, यज्ञोपवीत, आवागमन, राज्याभिषेक, शान्ति एवं पौष्टिक कार्य सिद्ध होते हैं।[6]

नन्दा–भद्रादि तिथियों का जन्मफल – नन्दा तिथि में जन्म लेने वाला जातक महामानी, पण्डित, देवताओं का भक्त, ज्ञानी, स्नेह रखने वाला होता है। भद्रा तिथि में जन्म लेने वाला भाई–बन्धुओं में मान्य, राज सेवक, धनवान्, संसार के भय से भीत और परमार्थ बुद्धि वाला होता है। जया तिथि में जन्म लेने वाला राजा से मान्य, पुत्र–पौत्रादि से युक्त, शूरवीर, शान्त प्रकृति, दीर्घायु और दूसरे के मन की बात को जानने वाला होता है। रिक्ता तिथि में जन्म लेने वाला जातक अनेक तर्कों का ज्ञाता, प्रमादी, गुरुजनों का निन्दक, शास्त्र का ज्ञाता, शत्रु का नाश करने वाला और कामी होता है। पूर्णा तिथि में जन्म लेने वाला जातक अनेक प्रकार के धनों से पूर्ण, वेदशास्त्रार्थ का ज्ञाता, सत्यवक्ता, शुद्धचित्त और पण्डित होता है।[7]

तिथियों में विहितकर्म – कृष्णपक्ष की प्रतिपदा में विवाहोत्सव, यात्रा, प्रतिष्ठा, वास्तु कार्य, उपनयन, सीमन्त, चौलकर्म, गृहारम्भ–प्रवेश तथा शान्तिक–पौष्टिक आदि समस्त मांगलिक कर्म करना चाहिए तथा ये कार्य शुक्लपक्ष की प्रतिपदा में नहीं करने चाहिए। द्वितीया तिथि में राजकीय कार्य, विवाहादि मांगलिक कार्य, वास्तुकर्म, यात्रा, आभूषण निर्माण एवं धारण, यज्ञोपवीत और प्रतिष्ठा संबंधी कार्य करना चाहिए। तृतीया तिथि में संगीत विद्या, शिल्पकारी, गृहप्रवेश, सीमन्त, चूडाकरण, अन्नप्राशन तथा द्वितीय में कहे हुए कार्य करने चाहिए। चतुर्थी तिथि में शत्रुओं का वध एवं कैद करना, विश देना, शस्त्र से प्रहार, अग्नि लगाना, क्रूरकर्म, बिजली के कार्य करने चाहिए तथा शुभ मांगलिक कार्य नहीं करने चाहिए। पंचमी तिथि में चर व स्थिरादि समस्त शुभ कार्य करने चाहिए, किन्तु इस दिन ऋण–प्रदान नहीं करना चाहिए। शष्ठी तिथि में शिल्पकर्म, युद्ध करना, गृहारम्भ, वस्त्रालंकार एवं अखिल काम्य कर्म करना चाहिए, परन्तु इस दिन काठ की दातुन, आवागमन, तैलाभ्यंजन, शिल्पकारी एवं पितृकार्य सर्वथा वर्जित है। सप्तमी तिथि में हस्ति कर्म, विवाहोत्सव, संगीतकर्म, वस्त्राभूषण निर्माण एवं धारण करना, यात्रा, गृह प्रवेश, वधू प्रवेश, संग्राम के कार्य करने चाहिए। अष्टमी तिथि में नृत्य, स्त्रीकर्म, रत्नपरीक्षा, आभूषण धारण, युद्ध करना, शस्त्रधारण, वास्तुकर्म, चित्रकारी, लेखन आदि कार्य करने चाहिए। नवमी तिथि में विग्रह, कलह, जुआ खेलना, मद्यपान करना, आखेट करना, विश देना, अग्नि एवं शस्त्र सम्बन्धी कार्य करने चाहिए। दशमी तिथि में विवाहादि मांगलिक कार्य, अलंकार, यात्रा, गृहप्रवेश, हाथी–घोड़ें एवं राजकीय कार्य करने चाहिए। एकादशी तिथि में यज्ञोपवीत, पाणिग्रहण, युद्ध, चित्रकारी, देव–महोत्सवादि, आवागमन, गृहारम्भ, वस्त्रालंकार, अखिल धर्म कर्म करने चाहिए। द्वादश तिथि में चर व स्थिर कार्य, पाणिग्रहण, उपनयनादि मांगलिक कार्य करना चाहिए, परन्तु तैलमर्दन, नृतन, गृहारम्भ व प्रवेश एवं यात्रा नहीं करना चाहिए। त्रयोदशी तिथि में यात्रा, प्रवेश, युद्ध, वस्त्रालंकार, मांगलिक कार्य में यज्ञोपवीत को छोड़कर शुक्ल त्रयोदशी शुभावह होती है। चतुर्दशी तिथि में विशदान, बन्धन, अग्नि, शस्त्र धारण, दूशित कार्य शुभ होते हैं तथा क्षौरकर्म व यात्रा का त्याग करना चाहिए। पूर्णिमा तिथि में विवाहादि मांगलिक, देव, जलाशय, वाटिका की प्रतिष्ठा, शिल्पाभूषणादि कर्म, संग्राम, याज्ञिक–शान्तिक–पौष्टिक एवं वास्तुकर्म करना चाहिए। अमावस्या तिथि में अग्न्याधान, महादान, पितृकर्म एवं यज्ञादि कर्म प्रशस्त है, परन्तु इस दिन शुभ कर्म एवं स्त्री संग–रमण नहीं करना चाहिए।[8]

तिथियों का विहित जन्मफल – प्रतिपदा में जन्मा जातक दुर्जनों के संग रहने वाला, कुल में कलंकी तथा सदैव व्यसन में आसक्त रहता है। द्वितीया में उत्पन्न जातक परस्त्रीगामी, सत्य व शौच से रहित, चोर एवं स्नेहहीन होता है। तृतीया में जन्मा बालक चेष्टाहीन, विकल, धनहीन एवं दूसरों से द्वेश रखने वाला होता है। चतुर्थी में उत्पन्न बालक भोगी, दाता, पण्डित, मित्रों से प्रेम करने वाला, धन एवं सन्तान से युक्त होता है। पंचमी में उत्पन्न बालक व्यवहार ज्ञाता, गुणग्राही, माता–पिता का भक्त, दानी, भोगी एवं अल्प प्रेम करने वाला होता है। शष्ठी में जन्म जातक देश–विदेश में भ्रमण करने वाला, झगडालू और उदररोग से पीड़ित होता है। सप्तमी में उत्पन्न बालक थोड़े से सन्तुष्ट होने वाला, तेजस्वी, सौभाग्यशाली, गुणों से युक्त सन्तान वाला और धन से सम्पन्न होता है। अष्टमी में जन्म लेने वाला धर्मात्मा, सत्यवक्ता, भोगी, दयावान, गुणी और सब कार्यों में कुशल होता है। नवमी में जन्म लेने वाला देवों का भक्त, पुत्रवान्, धनवान्, स्त्री में आसक्त एवं शास्त्राभ्यासी होता है। दशमी में जन्म लेने वाला, धर्माधर्म का ज्ञाता, देश भक्त, यज्ञ करने वाला, तेजस्वी एवं सुखी होता है। एकादशी में जन्म लेने वाला स्वल्प में सन्तुष्ट, राजा से मान्य, पवित्र, धनवान्, पुत्रवान् और बुद्धिमान होता है। द्वादशी में जन्म लेने वाला चंचल, अस्थिर बुद्धि वाला, कृश शरीर वाला, परदेश भ्रमण करने वाला होता है। त्रयोदशी में उत्पन्न महासिद्ध पुरुष, बड़ा पण्डित, शास्त्राभ्यासी, जितेन्द्रिय एवं परोपकारी होता है। चतुर्दशी में जन्म लेने वाला धनवान्, धर्मात्मा, वीर, अच्छे लोगों के वचन को पालन करने वाला, राजमान्य एवं यशस्वी होता है। पूर्णिमा में उत्पन्न जातक सम्पत्तिमान, मतिमान, भोजन प्रिय, उद्योगी और परस्त्री में आसक्त रहने वाला होता है। अमावस्या में जन्म लेने वाला दीर्घसूत्री, परद्वेशी कुटिल, मूर्ख, पराक्रमी, मूर्ख को मन्तव्य देने वाला तथा ज्ञानी होता है।[9]

जिस शास्त्र के द्वारा सूर्य आदि ग्रह और काल का सम्यक् ज्ञान होता है वह ज्योतिष शास्त्र कहलाता है– ज्योतिषां सूर्यादिग्रहणां बोधकं शास्त्रं ज्योतिः शास्त्रम्। शाब्दिक अर्थ में ज्योतिषशास्त्र प्रकाश देने वाला या प्रकाश के संबंध में बतलाने वाला शास्त्र होता है इसी कारण इसको ज्योतिर्विद्या के नाम से जाना जाता है। अर्थात् निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि ज्योतिषशास्त्र के द्वारा आकाश में स्थित ग्रह, नक्षत्रादि की गति, स्थिति, परिणाम आदि का निश्चय किया जाता है और उसमें ग्रह, नक्षत्रादि की गतिविधियों का अध्ययन मानवीय प्रभाव के संदर्भ में वैज्ञानिक पद्धति से किया जाता है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. *संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ (पृष्ठ 477), द्वारका प्रसाद शर्मा एवं पं. तारिणीश झा, प्रकाशक– रामनारायण लाल बेनीप्रसाद, इलाहाबाद 2004*
2. *मुहूर्तगणपति (2.1–3), मुरलीधर चतुर्वेदी, प्रकाशक– मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली 1988*
3. *मुहूर्तगणपति (2.4),*
4. *मुहूर्तचिन्तामणि (शुभाशुभप्रकरण.3), केदारदत्त जोशी, प्रकाशक– मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली 1972*
5. *मुहूर्तगणपति (2.5)*
6. *मुहूर्तगणपति (2.7–11)*
7. *मानसागरी (1.129–133), रामचन्द्र पाठक, प्रकाशक– चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी 2007*
8. *मुहूर्तगणपति (2.20–35)*
9. *मानसागरी (1.112–127)*

वर्त्तमान समय में पुलिस व्यवस्था की स्थिति : एक अध्ययन

shodhshree@gmail.com

अंकित पाण्डेय
शोधार्थी, सिद्धार्थ विश्वविद्यालय, सिद्धार्थनगर (उत्तरप्रदेश)

शोध सारांश

पुलिस बलों का मुख्य कार्य कानूनों को बरकरार रखना एवं उनका प्रवर्तन करना, अपराधों की जाँच करना और देश के लोगों की सुरक्षा सुनिश्चित करना हैं। सरकारें पुलिस व्यवस्था पर बजट का तीन प्रतिशत ही व्यय करती हैं। जिसके कारण पुलिस बलों को पर्याप्त सुविधाओं के अभाव में ही कार्य करना पड़ता है तथा जो उनके शारीरिक और मानसिक स्थिति को प्रभावित करता हैं। सुप्रीम कोर्ट द्वारा 2006 में पुलिस सुधारों से संबंधित निर्देशों का सरकारों द्वारा अनुपालन नहीं करना, पुलिस व्यवस्था के प्रति सरकार का नकारात्मक रवैया प्रस्तुत करता है। पुलिस स्थिति से संबंधित रिपोर्ट में पुलिस बलों की स्थिति आशाजनक नहीं हैं। इन्हीं सब कारणों से रूल ऑफ लॉ इंडेक्स में भारत की 69वीं रैंक हैं। पुलिस व्यवस्था को अधिक पेशवर और जवाबदेह बनाने के लिए सरकार को उन सभी निर्देशों का पालन करना होगा जो पुलिस सुधारों के लिए अपेक्षित हैं।

संकेताक्षर : *पुलिस, प्रवर्तन, सुप्रीम कोर्ट, नकारात्मक, पेशेवर, रूल ऑफ लॉ इंडेक्स, अपेक्षित।*

भारत एक घनी आबादी वाला देश है, जहाँ पर कानून व्यवस्था को बनाये रखना एक चुनौतिपूर्ण कार्य है। भारत में संविधान के तहत, पुलिस राज्य द्वारा अभिशासित विषय हैं। इसलिए 28 राज्यों में से प्रत्येक के अपने पुलिस बल हैं। राज्यों की सहायता के लिए केन्द्र को भी पुलिस बलों के रखरखाव की अनुमति दी गई है ताकि कानून और व्यवस्था की स्थिति सुनिश्चित की जा सके। इसलिए केंद्र विशेष कार्यों, जैसे खुफिया सूचनाएँ एकत्र करना, जाँच, अनुसंधान एवं रिकार्ड कीपिंग, और प्रशिक्षण के लिए सात केंद्रीय पुलिस बलों और कुछ अन्य पुलिस संगठनों का रखरखाव करता हैं। भारत जैसे विशाल और बड़ी जनसंख्या वाले देशों में पुलिसकर्मियों, हथियारों, फोरेंसिक, संचार और परिवहनों के साधनों से अच्छी तरह से लैंस होना चाहिए ताकि वे अपनी भूमिका कुशलतापूर्वक निभा सके। इसके अतिरिक्त उन्हें पेशेवर तरीके से जिम्मेदारियों को निभाने के लिए कार्य संबंधी स्वतंत्रता और कार्य की संतोषजनक स्थितियों (जैसे–कार्य के नियमित घंटे और पदोन्नति के अवसर) प्राप्त होने चाहिए, जबकि खराब प्रदर्शन या शक्ति के दुरुपयोग के लिए उन्हें जवाबदेह माना जाना चाहिए।

1996 में सुप्रीम कोर्ट में एक याचिका दायर की गयी थी जिनमें पुलिस द्वारा अपने अधिकारों के दुरूपयोग के अनेक मामले सामने आए थे और यह आरोप लगाया गया था कि पुलिसकर्मी राजनैतिक रूप से पक्षपातपूर्ण तरीके से अपने कर्तव्यों का निर्वाह करते हैं। 2006 में सुप्रीम कोर्ट के एक निर्णय में केंद्र एवं राज्य को पुलिस कामकाज के लिए दिशानिर्देश तय करने, पुलिस के प्रदर्शन का मूल्यांकन करने, और तबादलों का फैसला लेने और पुलिस के दुर्व्यवहार की शिकायतों दर्ज करने के लिए प्राधिकरणों के गठन का आदेश दिया। न्यायालय ने यह भी अनिवार्य किया कि मुख्य पुलिस अधिकारीयों को मनमाने तबादलों और तैनातियों का शिकार न होना पड़े, इसलिए उनकी सेवा की न्यूनतम अवधि तय की जाए।

सर्वोच्च न्यायालय द्वारा प्रकाश सिंह बनाम भारत संघ (2006) के मामलें में देश के सभी राज्यों तथा केन्द्रशासितप्रदेश को पुलिस व्यवस्था में सुधारों से संबंधित जारी किए गए निर्देश निम्नांकित है –

- पुलिस के कामकाज से संबंधित नीति निर्धारित करने, पुलिस प्रदर्शन का मूल्यांकन करने और यह सुनिश्चित करने के लिए की राज्य सरकार पुलिस को अनुचित तरीके से प्रभावित नहीं कर रहीं, प्रत्येक

राज्य में राज्य सुरक्षा आयोग का गठन किया जाए।

- प्रत्येक राज्य में एक पुलिस स्थापना बोर्ड का गठन किया जाए जो कि उप–पुलिस अधीक्षक (डी.एस.पी.) से नीचे के पद के अधिकारियों की तैनातियों, स्थानांतरण और पदोन्नति का निर्धारण करें और उच्च पद के अधिकारियों के लिए राज्य सरकार को सुझाव दे।
- पुलिस कर्मियों द्वारा गंभीर दुर्व्यवहार और शक्ति के दुरपयोग के आरोपों की जाँच के लिए राज्य और जिला स्तरों पर पुलिस शिकायत प्राधिकरण का गठन किया जाए।
- कानून और व्यवस्था बहाल रखने वाली पुलिस से जाँच करने वाली पुलिस को अलग किया जाए जिससे त्वरित जाँच, बेहतर विशेषज्ञता और जनता के साथ अच्छे संबंध सुनिश्चित किए जा सके।
- यह सुनिश्चित किया जाए की पुलिस महानिदेशक की नियुक्ति तीन वरिष्ठतम अधिकारियों में से की जाए जिन्हें संघीय लोक सेवा आयोग द्वारा सेवा अवधि, अच्छे रिकॉर्ड और अनुभव के आधार पर पदोन्नति के लिए चुना जाए।
- पुलिस महानिदेशक तथा दुसरे मुख्य अधिकारियों के लिए कम से कम दो वर्षो की न्यूनतम कार्य अवधि निर्धारित करना, ताकि उन्हें मनमाने स्थानांतरण और तैनातियों से बचाया जा सके।

सितम्बर, 2020 में कॉमनवेल्थ ह्यूमन राइट्स इनिशिएटिव नामक गैर सरकारी संगठन ने ''पुलिस सुधार पर सुप्रीम कोर्ट के निर्देशों पर सरकार की अनुपालना : एक आकलन'' नामक शीर्षक से एक रिपोर्ट जारी किया हैं। इस रिपोर्ट में विभिन्न राज्यों तथा केन्द्रशासित प्रदेशों में पुलिस सुधारों पर प्रकाश सिंह बनाम भारतीय संघ मामले में सुप्रीम कोर्ट के निर्देशों के अनुपालनों का आकलन प्रस्तुत किया गया हैं।

रिपोर्ट के अनुसार

- 28 में से 26 राज्यों ने पुलिस अधिनियम या सरकारी आदेशों के माध्यम से राज्य सुरक्षा आयोग गठित की है। तेलंगाना और ओडिशा दो ऐसे राज्य है जिन्होंने कागज पर भी राज्य सुरक्षा आयोग स्थापित नहीं किया हैं।
- 27 में से केवल दो राज्य–अरुणांचल प्रदेश और कर्नाटक, पुलिस स्थापना बोर्ड की संरचना, कार्य और निर्देशों को पूरी तरह अनुपालन करते है। ध्यान देने योग्य है कि तेलंगाना के अलावा सभी राज्यों ने कागज पर पुलिस स्थापना बोर्ड का गठन कर लिया है।
- 22 राज्यों ने कागज पर राज्य पुलिस शिकायत प्राधिकरण गठित किया है और इनमें से केवल आठ राज्य–आंध्र प्रदेश, अरुणांचल प्रदेश, हरियाणा, कर्नाटक, केरल, नागालैण्ड, सिक्किम और उत्तराखण्ड–राज्य पुलिस शिकायत प्राधिकरण के स्वतंत्र सदस्यों के चयन के लिए चुनाव पैनल का विवरण देते है। अन्य राज्यों में, या तो पदेन सदस्य है या सीधे राज्य सरकार द्वारा नियुक्त किये गये है।
- 17 राज्यों ने कागज पर जिला पुलिस शिकायत प्राधिकरण गठित किया हैं और इनमें से केवल पांच राज्य–आंध्र प्रदेश, हरियाणा, मणिपुर, कर्नाटक और उत्तराखण्ड–स्वतंत्र सदस्यों के चयन के लिए पैनल का प्रावधान करते हैं।
- 16 राज्य–अरुणांचल प्रदेश, असम, बिहार, छत्तीसगढ़, हिमाचल प्रदेश, कर्नाटक, केरल, महाराष्ट्र, मेघालय, मिजोरम, पंजाब, राजस्थान, सिक्किम, तमिलनाडु, त्रिपुरा, उत्तराखण्ड और दिल्ली–ने विवेचना को कानून व्यवस्था के कर्त्तव्यों से पृथक करने के कुछ उपाय किये थे। मिजोरम इकलौता राज्य है जिसने अपने पुलिस अधिनियम में जाँच ईकाइयों को सुरक्षित कार्यकाल और विशेषज्ञता प्राप्त करने की अनुमति प्रदान किया है।
- केवल अरुणांचल प्रदेश और नागालैण्ड ऐसे दो राज्य है जो पुलिस महानिदेशक के नियुक्ति, पदोन्नति एवं कार्यकाल संबंधित

कोर्ट के आदेशों का पूरी तरह अनुपालन करते है। तमिलनाडु और आंध्र प्रदेश आंशिक रुप से निर्देशों का अनुपालन करते हैं।

- केवल सात राज्य–आंध्र प्रदेश, अरुणाचल प्रदेश, गुजरात, केरल, मध्य प्रदेश, मणिपुर और नागालैण्ड ही प्रमुख पुलिस अधिकारियों को न्यूनतम दो वर्ष का कार्यकाल प्रदान करते हैं।

उपरोक्त तथ्यों से स्पष्ट है कि एक भी राज्य या केन्द्रशासित प्रदेश ऐसे नही हैं, जो सभी निर्देशों का पूर्ण रुप से अनुपालन करते हो। दो राज्य–आंध्र प्रदेश एवं अरुणांचल प्रदेश आंशिक रुप से अनुपालक है। इसके अलावा सेवारत पुलिस और सरकारी अधिकारी, पुलिस शिकायत प्राधिकरणों में न्याय निर्णय करने वाले सदस्य है, जबकि यह प्राधिकरण की सदस्यता जनता के लिए होनी चाहिए।

हाल ही में पुलिस व्यवस्था की स्थिति से संबंधित कॉमन कॉज एवं सेंटर फॉर द स्टडी डेवलपिंग सोसाइटीज द्वारा ''भारत में पुलिस की स्थिति रिपोर्ट 2019 : पुलिस की पर्याप्तता और कार्य करने की स्थिति'' (Status of Policing in India Report-SPIR 2019) शीर्षक से एक रिपोर्ट जारी किया गया है। इस रिपोर्ट में पुलिस और आम जनता के बीच संबंध, पुलिस और हाशिये के समुदायों के बीच संबंध एवं पुलिस द्वारा हिंसा के प्रयोग के बारे में भी बताया गया है तथा भारत के 20 राज्यों और केंद्रशासित प्रदेश दिल्ली के पुलिस स्टेशनों में कार्यरत 11,834 पुलिसकर्मियों के अलावा 10,535 पुलिसकर्मियों के परिवार के सदस्यों का साक्षात्कार शामिल है। पहली बार कई मापदंडों पर पुलिस बलों के प्रदर्शन के संकेतकों में सुधार या गिरावट की दर दिखाने के लिए आधिकारिक आँकड़ों का विश्लेषण किया गया है। सर्वेक्षण में पुलिस पदानुक्रम के सबसे निचले पायदान पर स्थित पुलिसकर्मी और विभिन्न सामाजिक पृष्ठभूमि से पुरुषों और महिलाओं को शामिल किया गया हैं।

प्रस्तुत रिपोर्ट के अनुसार, एक–तिहाई पुलिस अफसरों ने यह माना है कि यदि उन्हें समान वेतन और सुविधाओं वाली कोई अन्य नौकरी दी जाए तो वे अपनी पुलिस की नौकरी छोड़ देंगे। चार में से तीन पुलिसकर्मियों ने कहा कि कार्यभार के कारण उनके लिये अपने काम को अच्छी तरह से करना मुश्किल हो जाता है और इससे उनके शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य पर भी असर पड़ता है।

रिपोर्ट के अनुसार, एक औसत पुलिस अधिकारी एक दिन में लगभग 14 घंटे कार्य करता है, जबकि मॉडल पुलिस अधिनियम, 2006 सिर्फ 8 घंटों की ड्यूटी की सिफारिश करता है तथा हर दूसरे पुलिसकर्मी ने सप्ताह में एक भी अवकाश न मिलने की बात कही है। कार्य तथा निजी जीवन के बीच असंतुलन के अतिरिक्त पुलिसकर्मियों को संसाधनों की कमी समस्या से भी जूझना पड़ता हैं। कुछ पुलिस स्टेशनों में पीने का पानी, स्वच्छ शौचालय, परिवहन, पर्याप्त कर्मचारियों और नियमित खरीद के लिये धन जैसी बुनियादी सुविधाओं का अभाव है। पुलिसकर्मियों ने बुनियादी तकनीकी सुविधाओं जैसे–कंप्यूटर और भंडारण सुविधा न होने की भी बात कही है। सर्वेक्षण में शामिल हर तीसरे पुलिसकर्मी ने सहमति व्यक्त की है कि मामूली अपराधों के लिये पुलिस द्वारा अभियुक्तों को दी मामूली सजा कानूनी परीक्षण से बेहतर है। सर्वेक्षण में भाग लेने वाले तीन–चौथाई लोगों का मानना है कि पुलिस का अपराधियों के प्रति हिंसक रवैया अपनाना ठीक है। सर्वेक्षण में यह भी पाया गया कि पुलिसकर्मियों को शारीरिक मापदंडों, हथियारों और भीड़ नियंत्रण के लिए पर्याप्त रूप से प्रशिक्षित किया गया है, तथापि अभी तक उन्हें साइबर अपराध या फोरेंसिक तकनीक के मॉड्यूल का प्रशिक्षण नहीं दिया गया है।

उपरोक्त तथ्यों से स्पष्ट है कि वर्तमान समय में पुलिस व्यवस्था की स्थिति उत्साहजनक नहीं हैं। भारत में समयानुकूल पुलिस सुधार होने चाहिए। इस संदर्भ में कॉमनवेल्थ ह्यूमन राइट्स इनिशिएटिव का दृढ़ मत है कि ''पुलिस सुधारों की न तो उपेक्षा की जा सकती है और न ही देरी।'' पुलिस व्यवस्था में बदलाव से संबंधित मांगों को दशको से मीडिया, आमजन, बुद्धिजीवी तथा दवाब समूह उठाते रहें है किन्तु राजनीतिक स्तर पर पुलिस सुधार कभी भी किसी भी राजनीतिक दल की प्राथमिकताओं में सम्मिलित नहीं रहें हैं। कारण स्पष्ट है देश की भ्रष्ट, स्वार्थी तथा सत्ता लोलुप राजनीतिक पार्टियों को ऐसी व्यवस्था सुहाती है जो भारत में प्रवर्तित हैं। दूरदर्शन के लोकप्रिय कार्यक्रम 'चर्चा में' में 4 फरवरी, 2007 को पुलिस सुधारों पर गंभीर बहस हुई थी। इस कार्यक्रम में भाग लेते हुए उत्तर प्रदेश पुलिस के पूर्व महानिदेशक प्रकाश सिंह का कहना था ''भारत में पुलिस सुधार एक कठिन लक्ष्य है क्योंकि जो लोग सत्ता में आते हैं उन्हें अकर्मण्य

व्यवस्था ही अनुकूल लगती है। संपूर्ण भर्ती प्रक्रिया भ्रष्ट है। थानों में एफ.आई.आर दर्ज करें तो अपराधों की संख्या बड़ी हुई मानी जाती है।''

दरअसल पुलिस सुधारों की मुख्य समस्या राजनीतिक इच्छा शक्ति की कमी है। दूसरी समस्या जवाबदेयता के निर्धारण की है। पुलिस कार्यो के प्रति जवाबदेयता एवं पारदर्शिता नहीं अपनाना चाहती हैं।सोली सोराबजी समिति (2005) ने पुलिस शिकायतों के विरुद्ध सुनवाई हेतु एक पृथक से स्वतंत्र निकाय बनाने का सुझाव दिया था। समस्या यह है कि पुलिस के विरुद्ध शिकायत भी पुलिस में ही करनी पड़ती है। जिस प्रकार मीडिया के विरुद्ध या न्यायालय के विरुद्ध शिकायत करने की प्रभावी व्यवस्था नहीं होने के कारण दोनों अंग प्रायः रौब-दाब रखते है, ऐसी ही स्थिति पुलिस तंत्र की बनी हुई हैं।

पुलिस व्यवस्था में सुधार हेतु द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग ने अपने पांचवे प्रतिवेदन में पुलिस सुधारों के प्रमुख सिद्धान्तों, पुलिस सुधारों की स्थिति, लोक व्यवस्था संधारण, अपराधिक न्याय प्रणाली, संवैधानिक मुद्दे एवं विशेष कानूनों और लोक व्यवस्था के संदर्भ में नागरिक समाज, मीडिया तथा राजनीतिक दलों की भूमिका की विवेचना की है। द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग के अनुसार, ''कार्यकुशल, प्रभावी, अनुक्रियाशील एवं जवाबदेय पुलिस प्रदान करना राज्य सरकार का दायित्व होगा, यह प्रावधान राज्य पुलिस कानून में किया जाना चाहिये।''

निष्कर्षतः वर्तमान समय में पुलिस व्यवस्था उन निर्देशों तथा सिफारिशों के अनुकूल नहीं है जो न्यायालय तथा विभिन्न समितियों द्वारा समय समय पर दिए थे। निर्देशों के अनुपालन में विफलता जाहिर करते हैं की किस हद तक चुनी हुई सरकारें पूरे देश में पुलिस सुधार में बाधा बन रही हैं। सरकारों ने औपचारिक रूप से तो पुलिस सुधारों को अपनाया है लेकिन व्यवहार में कोई परिवर्तन नहीं किया है। पुलिस व्यवस्था के प्रति सरकार के दृष्टिकोण का अंदाजा इससे लगाया जा सकता है कि सरकारें पुलिस पर बजट का मात्र तीन प्रतिशत ही खर्च करती है। इन्हीं कारणों की वजह से वर्ल्ड जस्टिस प्रोजेक्ट द्वारा जारी रूल ऑफ लॉ इंडेक्स में भारत की रैंकिंग126देशों में से 69वीं है। चूँकि भारत को विकसित देश बनाने के लिए पुलिस व्यवस्था अहम् भूमिका निभा सकती है इसलिए पुलिस व्यवस्था में सुधार करने हेतु दृढ़ राजनीतिक इच्छाशक्ति के साथ समग्र दृष्टिकोण अपनाते हुए निम्न कदम उठाने चाहिए-

- सरकारों को पुलिस व्यवस्था पर व्यय तीन प्रतिशत से ज्यादा करना चाहिये।
- वर्तमान सरकारों को पुलिस सुधारों से संबंधित निर्देशों तथा सिफारिशों को धरातल पर लागू करना चाहिये न की सिर्फ कागज पर।
- जनता तथा पुलिस संबंध सहभागिता पर आधारित होने चाहिये।
- पुलिस बलों को आधुनिक तथा तकनीकी हथियारों से लेंस होना चाहिये।
- संपूर्ण पुलिस तंत्र को व्यावहारिक और चुस्त-दुरुस्त बनाने के लिए जरूरी है कि नियमित अंतराल पर विभिन्न स्तर के अधिकारीयों को प्रशिक्षण दिया जाए। इससे उनकी चेतना और व्यवहार कुशलता में वृद्धि होंगी।
- पुलिस में सभी स्तरों पर 33 प्रतिशत महिलाएं होनी चाहिए।
- पुलिस अनुसंधान एवं विकास ब्यूरो को सशक्त बनाए जाने की आवश्यकता है ताकि यह आंकड़ों का विश्लेषण कर पुलिस गुणवत्ता में सुधार हेतु मानक निर्धारित का सके।
- राज्य के गृहमंत्री की अध्यक्षता में राज्य पुलिस निष्पादन एवं जवाबदेयता आयोग बनाना चाहिए, जिसमें विपक्ष का नेता, मुख्य सचिव, गृह विभाग का प्रभावी सचिव, पुलिस महानिदेशक (सदस्य-सचिव) तथा पांच निष्पक्ष प्रसिद्ध नागरिक सदस्य हों।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *चतुर्वेदी, ए.. (जून, 2017). ''भारत में पुलिस सुधार'' Retrieved from https://www.prsindia.org/hi/policy/discussion-papers/*
2. *कॉमनवेल्थ ह्यूमन राइट्स इनिशिएटिव. (सितम्बर, 2020) ''पुलिस सुधार पर सुप्रीम कोर्ट के निर्देशों पर सरकार की अनुपालनाः एक आकलन'', Retrieved from-*

https://www.humanrightsinitiative.org/publication

3. *कॉमन कॉज एवं सेंटर फॉर द स्टडी डेवलपिंग सोसाइटीज. (2019). "Status of Policing in India Report- SPIR 2019" -Retrieved from- https://www.commoncause.in/uploadimage/page/Status_of_Policing_in_India_Report_2019_by_Common_Cause_and_CSDS.pdf*
4. *भारतमें पुलिस की स्थिति रिपोर्ट 2019. Retrieved from https://www.drishtiias.com/hindi/daily-updates/daily-news-analysis/status-of-policing-in-india-report-2019*
5. *कटारिया, एस के (अप्रैल–जून, 2009). "भारत में पुलिस सुधार", पुलिस विज्ञान (त्रैमासिक पत्रिका), अंक–107, पृष्ठ संख्या 7–31.*
6. *श्रीवास्तव, डी (अप्रैल–जून, 2009), "पुलिस सुधार में नई दिशा दृष्टि की आवश्यकता", पुलिस विज्ञान (त्रैमासिक पत्रिका), अंक–107, पृष्ट संख्या 56–59.*
7. *चौबे, पी (जुलाई–सितम्बर, 2019), "पुलिस प्रशिक्षण एवं नेतृत्व", पुलिस विज्ञान (त्रैमासिक पत्रिका), अंक–141, पृष्ठ संख्या1–8.*
8. *कॉमनवेल्थ ह्यूमन राइट्स इनिशिएटिव. (2008), "भारत में पुलिस सुधार पर चर्चा", Retrieved from & https://www.humanrightsinitiative.org/publication*

गांधी और वैश्वीकरण के दौर में उनकी प्रासंगिकता : हिंद स्वराज के विशेष संदर्भ में

डॉ. नरेन्द्र नाथ
सह–आचार्य, डूंगर महाविद्यालय, बीकानेर

जगदीश प्रसाद
शोधार्थी, डूंगर महाविद्यालय, बीकानेर

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

गांधी के विचारों को हिन्द स्वराज के विशेष सन्दर्भ में रख कर, पुस्तक के प्रकाशन के 100 वर्षों के उपरान्त आज के वैश्वीकरण के दौर में परखने की आवश्यकता है क्योंकि उनके विचार आज कहीं अधिक तीक्ष्णता से प्रासंगिक जान पड़ते हैं। हिन्द स्वराज का साधारण दर्शन, अहिंसा एवं सत्याग्रह, लक्ष्य एवं साधन का सातत्व जैसे सिद्धांतों के माध्यम से आज के दौर के वैश्वीकरण के अमानवीय चेहरे को उजागर करते हुए इसकी उपादेयता पर बड़े सवाल खड़े करता है। उपभोक्तावाद पर आधारित वैश्वीकरण अमीर को अधिक अमीर एवं गरीब को अधिक गरीब बनाता है। उपभोग पर निर्भरता स्वराज की आत्मा के विरुद्ध है। गांधीजी ऐसे भारत में रहना पसंद करते जहां सर्वाधिक गरीब व्यक्ति भी इसे अपना देश समझता जिसके निर्माण में वह अपनी आवाज को प्रभावी मानता 'जिस भारत में वर्गवार भेद न होता' जहां आपसी सद्भाव उपस्थित रहता। गांधीजी की प्राथमिकता इस तरह भी उजागर होती है कि आज जिन सामाजिक आंदोलनों की आवश्यकता हम महसूस कर रहे हैं व जो प्रासंगिक भी होते जा रहे हैं, उन्हें गांधीजी ने स्वतंत्रता पश्चात ही आवश्यक माना था। प्रथम स्वतंत्रता संग्राम यदि राजनीतिक स्वतंत्रता दिला सका था तो संभवत गांधीजी के अनुसार दूसरा संग्राम सामाजिक स्वतंत्रता के लिए अति आवश्यक था।

संकेताक्षर : *गांधी, हिन्द स्वराज, लक्ष्य एवं साधन का सातत्व, शक्ति अहिंसा, सत्याग्रह, वैश्वीकरण।*

इस पत्र को मूलतः तीन भागों में बांटा गया है जो इस प्रकार हैः पहला भाग, गांधीजी के उन प्रमुख विचारों का संक्षिप्त में प्रस्तुत करने का प्रयास करता है जो हिंद स्वराज की कृति को एक पृष्ठभूमि प्रदान करते हैं। दूसरा भाग, हिंद स्वराज में गांधी जी द्वारा प्रस्तुत बिंदुओं एवं तर्कों के आलोक में उनके विशिष्ट विचारों की संक्षिप्त प्रस्तुति करता है तथा अंत में तीसरा भाग, गांधी जी के प्रमुख विचारों व विशेषतः हिंद स्वराज के संदर्भ में उनके आज के वैश्वीकरण के युग में प्रासंगिकता की विवेचना करने को समर्पित है।

गांधीजी के प्रमुख विचार

अहिंसा

''जो व्यक्ति को नष्ट करना चाहते हैं उसके दुर्व्यवहारों को नहीं वे स्वयं उन दुर्व्यवहारों को अपनाने लगते हैं और फिर इस प्रक्रिया में जिन्हें, वे इस गलत विश्वास में कि उनके नष्ट हो जाने के साथ उनके दुर्व्यवहारों भी नष्ट हो जाएंगे, मिटा देने का प्रयास करते हैं, उनसे भी बुरे बन जाते हैं। वे नहीं जानते कि बुराई की वास्तविक जड़े कहां हैं ?[1] इससे यह स्पष्ट होता है कि गांधीजी की यह अगाध आस्था थी कि हिंसा अन्याय के विभिन्न स्वरूपों की अस्वीकृति नहीं स्वीकृति और पूरक है। उनका हिंसा का सिद्धांत सत्य से जुड़ा हुआ था। सत्य लक्ष्य था और अहिंसा साधन।

गांधी की अहिंसा नकारात्मक नहीं थी। अहिंसा का अर्थ केवल ''किसी को हानि न पहुंचाना ही नहीं था'' बल्कि बुरे व्यक्ति के साथ भी भलाई करना था। इसका अर्थ यह नहीं था कि बुरे व्यक्ति को बुरा काम करने में सहायता दी जाए अथवा बुराई को सह लिया जाए। इसके विपरीत प्रेम जो अहिंसा का सक्रिय रुप है, ''तुम्हें इस बात के लिए बाध्य करता है कि बुरा काम करने वाले से तुम अपना संबंध तोड़ लो और उसका प्रतिरोध करो। चाहे उसके परिणाम स्वरूप

उसे हानि अथवा शारीरिक कष्ट पहुंचे। ''गांधी की दृष्टि में अहिंसा का प्रेम के साथ चोली दामन का साथ है, जिस प्रकार प्रेम का सत्य के साथ''[2]

लक्ष्य और साधनों का सातत्व

जॉन बोंदुरां के शब्दों में– ''गांधी का सबसे बड़ा आग्रह लक्ष्यों और साधनों में उचित संबंध की स्थापना करने पर है।[3] गांधी से पूर्व किसी ने भी लक्ष्य और साधनों पर इतना स्पष्ट शब्दों में नहीं कहा था। 'साधनों और लक्ष्यों में कोई संबंध नहीं है' इस विचार की आलोचना करते हुए 1960 में गांधी ने हिंद स्वराज में लिखा ''आपका तर्क ऐसा है जैसे एक जहरीला पौधा लगाने के बाद गुलाब का फूल निकल आने की आशा करें'' साधनों की तुलना बीज से की जा सकती है, लक्ष्य की पेड़ से। हम ठीक वही काटते हैं जो बोलते हैं''[4]

गांधीजी ने सभी रचनाओं के सूत्र के रूप में ''साधन और लक्ष्य पर्यायवाची शब्द है'' को अपनाया है। असत्य और अहिंसात्मक साधनों के द्वारा सच्चा लोकतंत्र अथवा जनता का स्वराज कभी भी प्राप्त नहीं किया जा सकता। सत्य को लक्ष्य तथा अहिंसा को साधन इन दोनों के आपसी संबंध को दृढ़ बनाने हेतु गांधी ने कष्ट सहने के सिद्धांत का विकास किया है।

शक्ति के संबंध में गांधीजी का दृष्टिकोण

गांधीजी सामाजिक संबंधों में परिवर्तन लाना चाहते थे न कि मार्क्सवादी माओवादियों की तरह एक समूह का दूसरे समूह पर आधिपत्य स्थापित करना। इसलिए उन्होंने अहिंसा का मार्ग अपनाया। गांधीजी व्यक्ति की जगह व्यवस्था को दोषी मानते थे और अहिंसात्मक साधनों के माध्यम से उसके स्थान पर दूसरी व्यवस्था स्थापित करना चाहते थे। गांधी जी का असहयोग आंदोलन न तो अंग्रेजों के विरुद्ध था और न ही पश्चिमी देशों के विरुद्ध, वह तो उस व्यवस्था के विरुद्ध जो कि अंग्रेजों ने स्थापित की थी वर्ग विरोध के संबंध में भी उनका चिंतन इसी प्रकार का था उन्होंने लिखा यह आवश्यक नहीं कि जमींदारों और पूंजीपतियों का अंत कर दिया जाए आवश्यकता इस बात की है कि उनके और जनसाधारण के बीच का संबंध एक अधिक स्वस्थ और शुद्ध स्थल पर रखा जा सके गांधीजी शक्ति के प्रयोग को सर्वथा निषिद्ध नहीं मानते थे वास्तव में वे जीवन भर शक्ति के ऐसे केंद्रों की खोज में रहे जिनका अहिंसा के साथ सामंजस्य बिठाया जा सके।

उनका जीवन भर अंग्रेजों के साथ राजनीतिक संघर्ष चलता रहा। परंतु राजनीतिक परिवर्तन अथवा राष्ट्रीय विकास के लिए बल प्रयोग से सदा इंकार किया। गांधीजी ने अहिंसा को शक्ति का पर्यायवाची माना राज्य की अपेक्षा समाज पर अधिक जोर देने वाले गांधी मनुष्यों के राजनीतिक अधिकारों को नकारते नहीं थे किंतु वे यह मानते थे कि कुछ व्यक्तियों के लिए जिन्होंने सत्याग्रह की तकनीक में प्रशिक्षण प्राप्त कर लिया है वह अपने को राजनीतिक शक्ति से दूर रखें और सदा इस प्रयत्न में लगे रहे कि राज्य सत्ता को समाज के प्रति उत्तरदायी बनाया जा सके। वे स्वयं सदैव राजनीतिक पदों से दूर रहे। डी.जी. तेंदुलकर ने लिखा है ''गांधी ने रचनात्मक कार्यकर्ताओं से कहा कि वे सत्ता की राजनीति और उसकी छूत से अपने को अलग रखें। जितने भी क्रियाशील संगठन है उन्हें अपने साथ ले लो। अपने में से सारी गंदगी दूर कर दो। सत्ता प्राप्ति करने के विचार को मन में आने भी न दो। इसी में मुक्ति है। तुम्हारे लिए कोई दूसरा मार्ग नहीं है।[5]

सत्याग्रह का सिद्धांत

दक्षिण अफ्रीका के संघर्ष में सत्य और अहिंसा की खोज करते हुए गांधी जी ने सत्याग्रह का हथियार प्राप्त किया, और वह उनके जीवन में संघर्ष का प्रमुख हथियार बना। गांधी जी ने उसका प्रयोग अहमदाबाद के मिल मजदूरों के झगड़े सुलझाने, बारदोली और अन्य स्थानों पर किसानों की शिकायतों को दूर करने, रोलेट एक्ट के विरुद्ध राष्ट्रव्यापी संघर्ष में सफलतापूर्वक किया। परंतु सत्याग्रह ऐसी तकनीक नहीं थी जिसका प्रयोग किसानों तक, गांव में चलाए जाने वाले आंदोलनों तक अथवा एक विदेशी ताकत के विरुद्ध किए जाने वाले संघर्ष तक ही सीमित था। इस तकनीक का उतना ही प्रभावशाली प्रयोग उद्योगपतियों और मजदूरों के अथवा सवर्ण हिंदुओं और हरिजनों के अथवा विभिन्न राष्ट्रों के बीच संघर्षों में भी किया जा सकता था। गांधी जी के काल में आणविक अस्त्रों का आविष्कार हो चुका था और जापान में मानवता के विरुद्ध प्रयोग में लाए जाते हुए भी उन्होंने देखा था। अब उनकी सत्याग्रह में आस्था और भी दृढ़ हो गई। उन्हें विश्वास हो गया कि जहां आणविक अस्त्रों के सामने हिंसात्मक प्रतिरोध असंभव हो गया और अहिंसात्मक साधनों की श्रेष्ठता स्पष्ट रूप से स्थापित हो गई। ''आणविक हथियारों की महान शक्ति को देखते हुए यह निष्कर्ष सहज ही निकाला जा सकता है कि उनका विनाश दूसरी ओर से काम में लाए गए

आणविक वस्तुओं से संभव नहीं है, जैसे हिंसा का विनाश प्रतिरोध में अपनाई गई हिंसा से संभव नहीं है। मानवता को हिंसा से ऊपर उठने के लिए अहिंसा का मार्ग ही अपनाना होगा''।[6] सत्याग्रह की तकनीक को केवल अहिंसा के संदर्भ में ही प्रयोग में लाया जा सकता है।

भारत में अंग्रेजी राज्य कितना ही बुरा क्यों न हो भारतीयों के सहयोग से चलाया जा रहा था इसलिए उन्होंने अपना सहयोग वापस लेने को कहा। यदि हम उन्हें मनुष्य और धन देने से इंकार कर दें तो हम अपने लक्ष्य को अर्थात स्वराज्य, समानता और पुरुषत्व को प्राप्त कर सकते हैं।[7]

1930 और 1932 में उनके द्वारा चलाए गए सविनय अवज्ञा आंदोलन असहयोग के ही अधिक परिष्कृत रूप थे। ''प्रशासन की आज्ञा और आदेशों का पालन करते रहने से आप उसे सबसे अधिक प्रभावशाली ढंग से सहायता पहुंचाते हैं। इस कारण पूरे राज्य के कानून की अवज्ञा करना आपका कर्तव्य हो जाता है।''[8] गांधीजी का सत्याग्रह केवल राजनीतिक संघर्ष अथवा राष्ट्रीय स्वाधीनता के संग्राम तक सीमित नहीं था। जर्मनी और जापान के साम्राज्यवादियों के विरुद्ध भी राष्ट्रीय सत्याग्रह का प्रयोग करने का सुझाव उन्होंने दिया, जिससे उनका अर्थ था कि जिन देशों पर आक्रमण किया जाए उन्हें अपनी सीमाओं पर लाखों करोड़ों मनुष्य को एक दीवार की तरह खड़ा कर देना चाहिए और आक्रमणकारी सेनाओं को निमंत्रण देना चाहिए कि वे अपनी तोपों और अन्य हथियारों को लेकर उनको रौंदते हुए आगे बढ़ें।''[9] ''पुरुष स्त्रियों और बच्चों की एक मानव दीवार को शत्रु के सामने खड़ी कर देने का विचार गांधीजी ने स्विट्जरलैंड में 1931 में वहां के शांतिवादियों से बातचीत करते हुए सुझाया था।''[10]

हिंद स्वराज

हिंद स्वराज गांधीजी के अपेक्षाकृत कम लोकप्रिय किंतु सर्वाधिक चर्चित पुस्तक है। इसमें उनके जीवन दृष्टि की परिपक्व अभिव्यक्ति है। गांधीजी के सारे जीवन-काल के मूल में जो श्रद्धा काम करती रही, वह सारी 'हिंद स्वराज' में पाई जाती है। 1909 में प्रकाशित यह पुस्तक गांधी जी ने लंदन से दक्षिण अफ्रीका लौटते हुए समुद्री जहाज 'किल्डानन कैसल' पर 13 नवंबर, 1909 से 22 नवंबर, 1909 के बीच लिखी थी। भारत में प्रकाशित होते ही अंग्रेजी शासन ने इसे प्रतिबंधित कर दिया। गांधीजी ने इसे मूलतः गुजराती में लिखा था। उन्होंने इसका अनुवाद अंग्रेजी में यह सोचते हुए किया कि संभवतः अंग्रेजी सरकार इसे समझेगी परंतु वह भी प्रतिबंधित हुआ। 1915 में जब गांधीजी दक्षिण अफ्रीका का अपना काम पूरा करके भारत आए और उन्हें जब सत्याग्रह करने का पहला मौका मिला तब उन्होंने मुंबई सरकार के खिलाफ हिंद स्वराज का फिर से प्रकाशित करवाया। इस बार प्रतिबंधित नहीं होने से यह पुस्तक सर्वत्र प्राप्य हुई व चर्चा में फैल गई।

इस पुस्तक में संवाद शैली भारत में लोकप्रिय होने के कारण इसे आम भारतीय की सुविधा हेतु गांधी जी द्वारा चुना गया। इस शैली का दूसरा लाभ गांधीजी को स्वयं को था क्योंकि इसके माध्यम से वे अपने मन की समस्त शंकाओं को दूर कर पा रहे थे। इस पुस्तक का तत्काल उद्देश्य बीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक में भारत के हिंसावादी पंथ को और उसी विचारधारा वाले दक्षिण अफ्रीका के एक वर्ग को सही दिशा दिखाना था। गांधीजी लिखते हैं कि ''मुझे लगा कि हिंसा हिंदुस्तान के दुखों का इलाज नहीं है, और उसकी संस्कृति को देखते हुए उसे आत्मरक्षा के लिए कोई अलग और ऊंचे प्रकार का शस्त्र काम में लेना चाहिए।

गांधीजी के मन में यह धारणा थी कि स्वराज के लिए भारतीय जनमानस पूर्ण रूप से तैयार नहीं था। उनके विचार में राष्ट्रीय चेतना का जागृत होना स्वराज्य की एक अनिवार्य शर्त था। भारतीयों में ब्रिटिश राज्य के प्रति गहरा असंतोष व आक्रोश था परंतु वे अपने राष्ट्रीय उद्देश्य के प्रति किंचित भी सजग व आगाह नहीं थे। वे अंग्रेजों से घृणा करते थे परंतु उनकी सभ्यता को गले लगा चुके थे और उसे छोड़ना नहीं चाहते थे। वे अपने हित को साधने में हिंसा के प्रयोग को भी उचित मानते थे या अनुचित नहीं मानते थे। कुछ थे जो हिंसा के खिलाफ तो थे पर तात्कालिक रूप से ही ऐसा कर रहे थे -- वह सैद्धांतिक रूप से इसके विरुद्ध नहीं थे। वे आगे लिखते हैं कि-- ''दक्षिण अफ्रीका का सत्याग्रह उस वक्त मुश्किल से दो साल का बच्चा था लेकिन उसका विकास इतना हो चुका था कि इसके बारे में कुछ हद तक आत्मविश्वास से लिखने की मैंने हिम्मत की थी''।

गांधीजी के अनुसार हिंद स्वराज इतनी सरल थी कि किसी बालक को भी पढ़ने हेतु दी जा सकती है। ''यह देश धर्म की जगह प्रेम धर्म सिखाती है, हिंसा की जगह आत्म बलिदान को रखती है। पशुबल से टक्कर

लेने के लिए आत्मबल को खड़ा करती है। इस पुस्तक का मुख्य उद्देश्य दो प्रश्नों के उत्तर देना हैः 1. स्वराज्य क्या है ? 2. इसे कैसे प्राप्त किया जा सकता है ? इस क्रम में इस पुस्तक में आधुनिक सभ्यता की कड़ी आलोचना की गई है।

हिंद स्वराज में गांधी जी ने भारत वर्ष से जुड़े अहम मुद्दों की चर्चा की है। इंग्लैंड की संसद पर विचार करते हुए वे लिखते हैं कि वह 'बाँझ' और वेश्या है। इसके सदस्य दिखावटी और स्वार्थी पाए जाते हैं। सब अपना मतलब साधने की सोचते हैं। जो आज काम होता है उसे कल रद्द करना पड़ता है। इंग्लैंड की सभ्यता के दोष के कारण मूलतः कई खामियां दिखाई पड़ती ।है वे मानते हैं कि अंग्रेजों से तो सहानुभूति होनी चाहिए क्योंकि वे अपनी सभ्यता के शिकार हो चुके हैं। वे साहसी और मेहनती हैं। मूल में उनके विचार अनीति भरे नहीं है। ये सभ्यता उनके लिए अमिट रोग नहीं है परंतु अभी वे इस रोग में फंसे हुए हैं।

इसी कारण हिंदुस्तान भी धर्म भ्रष्ट होता जा रहा है यहां धर्म से अर्थ उस धर्म से है जो हिंदू इस्लाम सिख ईसाई व अन्य धर्मों के अंदर का धर्म है। वे आगे लिखते हैं कि हिंदुस्तान की गरीबी के मुख्य कारणों में रेलगाड़ियां, वकील, डॉक्टर इत्यादि हैं। हिंदुस्तान में सांप्रदायिक असहिष्णुता अंग्रेजों की देन है। हम आपसी भाईचारे से सुखी जीवन यापन करने में सक्षम है पर अपने धर्म से ही पथभ्रष्ट होने के फलस्वरुप दूसरे के दुश्मन बन बैठे हैं। वे मानते हैं कि हिंदुस्तान की आजादी का अर्थ अंग्रेजों से आजादी नहीं बल्कि उनकी सभ्यता से आजादी है। पश्चिमी सभ्यता मनुष्य की आत्मा की महाशत्रु है।

गांधीजी के 'हिंद स्वराज' में व्यक्त विचारों की तीखी आलोचना भी हुई। गोखले ने इसे 'कच्चा' कहकर नापसंद किया व माना कि गांधी स्वयं इसे रद्द कर देंगे (जो वास्तव में हुआ नहीं)। गांधी ने स्वयं लिखा है कि उनके एक मित्र ने उसे मूर्ख की कृति माना। पश्चिमी लेखकों व विचारकों यथा जी.दी.एच.कोल, मिडल्टन मरी, रैन्बोन इत्यादि ने इसकी भर्त्सना की।

गांधी जी ने अपना स्पष्टीकरण स्वयं ही हिंद स्वराज के बाद वाले संस्करण में इस प्रकार दिया है –

''यह 1909 में लिखी गई थी। इसमें मैंने जो मान्यता प्रकट की है, वह आज पहले से ज्यादा मजबूत बनी है। लेकिन मैं पाठकों को एक चेतावनी देना चाहता हूं। वे ऐसा न मान लें कि जिस स्वराज्य की तस्वीर मैंने खड़ी की है, वैसा स्वराज्य कायम करने के लिए मेरी कोशिश चल रही है, मैं जानता हूँ कि अभी हिंदुस्तान उसके लिए तैयार नहीं है।लेकिन इसमें कोई शक नहीं कि आज की मेरी सामूहिक प्रवृत्ति का ध्येय तो हिंदुस्तान की प्रजा की इच्छा के मुताबिक पार्लियामेंट्री ढंग का स्वराज पाना है।'' इस प्रकार गांधीजी पर जितने आरोप लगाए गए हुए वे अपनी जमीन नहीं देख पाए।

निष्कर्षात्मक रूप से स्वराज्य का अर्थ गांधीजी के लिए सिर्फ अपने लोगों द्वारा चुनी गई अपनी सरकार मात्र नहीं था। स्वराज्य का अर्थ शरीर एवं आत्मा की स्वतंत्रता हर भारतीय को प्राप्त हो यही है। स्वराज्य का अर्थ हमें सभी बनाना और हमारी सभ्यता को शुद्ध तथा मजबूत बनाना है।

गांधी जी ने 'हिंद स्वराज' के अंतिम पृष्ठों में स्वराज को इन शब्दों में बांधने का प्रयास किया है :–

- अपने मन का राज्य स्वराज्य है।
- उसकी कुंजी सत्याग्रह आत्मबल या करुणाबल है।
- इस बल को आजमाने के लिए स्वदेशी को पूरी तरह अपनाने की जरूरत है।
- हम जो करना चाहते हैं वह अंग्रेजों के लिए (हमारे मन में) द्वेष है इसलिए या उन्हें सजा देने के लिए नहीं करें, बल्कि इसलिए करें कि ऐसा करना हमारा कर्तव्य है।

गांधी की प्रासंगिकता एवं वैश्वीकरण

आज यह माने जाने में कतई अतिश्योक्ति नहीं है की बढ़ती उपभोक्तावादी संस्कृति, विकास की गलत नीतियों, राज्य की पहल न करने व समाज की ज्वलंत समस्याओं के प्रति उदासीनता की स्थिति व वर्तमान शिक्षा पद्धति के कारण समाज गर्त में जा रहा है और नई पीढ़ियों को नकारात्मक दिशा व संकेत मिल रहे हैं। आज स्वतंत्रता के सात दशक बीतने के बाद जो आजादी का जश्न हम मना रहे हैं, वह झूठे तरह का हो सकता है। गांधी जी का यह कहना सच साबित हुआ कि स्वतंत्रता पश्चात संभवतया शोषण सफेद हाथों से पूरे हाथों में स्थानांतरित हो जाएगा और आजादी का यही अर्थ होगा।

जब गांधी जी हिंद स्वराज का लेखन कर रहे थे, उस

समय भी वैश्वीकरण का दौर चल रहा था। उनके समय के वैश्वीकरण का नेतृत्व यूरोपीय देशों के हाथों में था जो विश्व के विभिन्न हिस्सों में उपनिवेश स्थापित कर रहे थे और अपने यहां की औद्योगिक क्रांति को बनाए रखने के लिए उनके संसाधनों का दोहन कर रहे थे। उस दौर का वैश्वीकरण राज्य द्वारा संचालित हो रहा था। आज भी वैश्वीकरण का दौर चल रहा है। आज का वैश्वीकरण बाजार व्यवस्था द्वारा संचालित है। ये बाजार के प्रसार एवं स्थापना से फैलता है। आज उपनिवेश के संसाधनों को नियंत्रित करने हेतु भौतिक रूप से वहां आने रहने की आवश्यकता नहीं होती। ये कार्य स्थानीय बाजार में पूंजी उत्पाद व सेवाओं के निवेश से संपन्न हो जाता है। वैश्वीकरण का उद्देश्य एक उत्पादक समाज का निर्माण न होकर उपभोक्तावादी समाज होता है। विकासशील राज्यों के बाजार, विकसित राष्ट्रों के उत्पाद के लिए प्रयुक्त होते हैं। उन्नत कृषि और उत्पाद हमारी कृषि प्रणाली को बेकार साबित करती है। उनकी विकसित उद्यमिता हमारे उद्यमियों को नाकारा घोषित करती है। हमारा 'स्वराज्य' उनके सुशासन के आगे नतमस्तक हो जाता है।

ऐसे में हिंदू स्वराज, एक विकल्प के रूप में अपने आप को हमारे समक्ष प्रस्तुत करने की दावेदारी रख सकता है। गांधी के विचारों की प्रासंगिकता इसमें निहित है कि यह हर समय एक विकल्प के रूप में उपस्थित है और रहे। हमने अपने दूसरे कारणों से उनकी अवहेलना की, ये अलग बात है ।

गांधी जी अगर आज जीवित होते तो क्या करते ? वैसे तो यह एक काल्पनिक सवाल है परंतु उसका अगर कोई उत्तर देना चाहे तो गांधीजी के जीवन में ही इस प्रश्न का उत्तर मिलता है। गांधीजी उपभोक्तावादी संस्कृति के विरुद्ध थे। वे स्वराज की स्थापना हेतु उक्त आवाज को सबसे बड़ा शत्रु मानते थे। उपभोक्तावाद पर आधारित वैश्वीकरण अमीर को अधिक अमीर एवं गरीब को अधिक गरीब बनाता है। उपभोग पर निर्भरता स्वराज की आत्मा के विरुद्ध है। गांधीजी ऐसे भारत में रहना पसंद करते जहां सर्वाधिक गरीब व्यक्ति भी इसे अपना देश समझता जिसके निर्माण में वह अपनी आवाज को प्रभावी मानता, जिस भारत में वर्गवार भेद न होता, जहां आपसी सद्भाव उपस्थित रहता।

गांधीजी की प्राथमिकता इस तरह भी उजागर होती है कि आज जिन सामाजिक आंदोलनों की आवश्यकता हम महसूस कर रहे हैं व जो प्रासंगिक भी होते जा रहे हैं, उन्हें गांधीजी ने स्वतंत्रता पश्चात ही आवश्यक माना था। प्रथम स्वतंत्रता संग्राम यदि राजनीतिक स्वतंत्रता दिला सका था तो संभवतः गांधीजी के अनुसार दूसरा संग्राम सामाजिक स्वतंत्रता के लिए अति आवश्यक था। वैश्वीकरण की चुनौती के इस दौर में कृषि–आधारित ग्रामीण भारत की गांधीजी की परिकल्पना सार्थक बनी हुई है व नवभारत की आधारशिला बन सकती है। बस हमें यह देखना है कि हम अपने अंदर के साहस को इस कार्य के लिए कितना जुटा पाते हैं

संदर्भ ग्रंथ सूची

1 *डी.जी. तेंदुलकर महात्मा– लाइफ ऑफ मोहनदास करमचंद गांधी प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, दिल्ली 11960 खंड–2 पृ.– 255*

2 *'यंग इंडिया' 19 जनवरी 1921*

3 *जॉन बोंदुरां, कॉन्क्वेस्ट ऑफ वायलेंसः गांधी एंड फिलोसोफी ऑफ कौन्फ्लिक्टर, बर्कले और लॉस एंजिल्स, कैलीफोर्निया विश्वविद्यालय प्रेस, 1965.*

4. *कलेक्टेड वर्क्स ऑफ महात्मा गांधी, 'प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, दिल्ली 1963 खंड–10, पृ–4*

5. *डी. जी. तेंदुलकर, ''महात्मा लाइफ ऑफ मोहनदास करमचंद गांधी,'' प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, दिल्ली, 1960, पृ– 234*

6. *झावेरी और तेंदुलकर–– ''महात्मा'' खंड–7, 1953, पृ–248*

7. *यंग इंडिया 22 सितंबर 1920*

8 *यंग इंडिया 27 मार्च 1930*

9. *के. श्रीधरानी द्वारा 'वार विदाउट वायलेंस' भारतीय विद्या भवन, बम्बई 1962 पृ.– 49–50*

10. *एम. के. गांधी ''नॉन–वायलेंट रेजिस्टेंस'' 1961 पृ. – 360–361*

11. *हिंद स्वराज नवजीवन प्रकाशन मंदिर 2004 पृ.–संख्या 25*

12. *हिंद स्वराज नवजीवन प्रकाशन मंदिर 2020 पृ.– सं. 25*

13. *हिंद स्वराज नवजीवन प्रकाशन मंदिर 1938 संस्करण पृ. सं.– 22*

14. *हिंद स्वराज नवजीवन प्रकाशन मंदिर 1938 संस्करण पृ. संख्या 87*

साहित्य सृजन में पंच तत्व और पर्यावरण

डॉ. रंजन शर्मा
सहायक प्राध्यापक, मालवा कॉलेज ऑफ एजुकेशन, बीनागंज, गुना (मध्यप्रदेश)

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

सम्पूर्ण संसार प्रकृति का योग है इसलिए मनुष्य हो या फिर अन्य जीव, सभी प्रकृति का ही महत्वपूर्ण भाग हैं। प्राकृतिक प्राणी को जीने के लिए प्रकृति का ही सानिध्य चाहिए। हमारे ऋषि–मुनियों ने अपने जीवन और अपनी लेखनी से इसको चरितार्थ किया है। प्रस्तुत शोध–पत्र में वैदिक जीवन और साहित्य में पर्यावरण के प्रति दिखाई गई आत्मीयता और सह–अस्तित्व को समझने का प्रयास किया गया है। इससे यह भी प्रतीत होता है कि पर्यावरण चेतना केवल आधुनिक समाज की आवश्यकता नहीं है अपितु यह जीवन के प्रारम्भ का हेतु भी है और उतना ही प्राचीन विषय है जितना मानव और अन्य जीवों का अस्तित्व है।

संकेताक्षर : *प्रकृति, साहित्य, पंच तत्व, पर्यावरण, सृजन, संसार।*

समस्त संसार पाँच तत्वों से सृजित है और इनके द्वारा पाँच तत्वों का ही सृजन होता रहता है। चाहे मनुष्य का शरीर हो या अन्य किसी प्राणी का या फिर चारों ओर व्याप्त यह वनस्पति जगत, लेकिन पाँच तत्वों से बाहर कुछ भी नहीं।

छाया ठकुर के अनुसार– ''पर्यावरण शब्द की उत्पत्ति परि+आवरण से मिलकर हुई है जिसका अर्थ है वह वातावरण जो मानव को चारों ओर से व्याप्त कर उससे प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से जुड़ा है।''[1] यानि पर्यावरण हमारे चहुं ओर व्याप्त या फैला वह आवरण है जो हम सभी को सब तरफ से घेरे हुए है और जिसका सीधा प्रभाव हमारे दैनिक जीवन पर पड़ता है।

साक्षी अग्रवाल के अनुसार– ''पर्यावरण शब्द एवं उसका अर्थ बहुत व्यापक है जिसमें सारा ब्रह्मांड ही समा जाता है।''[2]

इस परिभाषा के अनुसार यह समस्त जगत और इसमें निवास करने वाले समस्त प्राणी तथा उनके व्यवहार में आने वाले सभी प्रकार के पदार्थ पर्यावरण की श्रेणी में ही आते हैं। उनके द्वारा ही हमारे शरीर का निर्माण हुआ है और उन्हीं को ग्रहण करके या फिर उनके सहयोग से ही शरीर, मन तथा आत्मा जीवित रहते हैं।

गोस्वामी तुलसीदास लिखते हैं–

''छिति जल पावक गगन समीरा, पंच रचित अति अधम सरीरा।''[3]

यद्यपि इसमें शरीर के नाशवान होने तथा जीवन के क्षणभंगुर होने का दार्शनिक ज्ञान प्रतीत होता है तथापि पंच तत्वों से उत्पन्न मानव सृष्टि का बोध है। पर्यावरण भी पंच तत्वों का ऐसा एकल या मिश्रित रूप है जिससे पूरी सृष्टि बनी हुई है और इसके द्वारा ही सभी का भरण–पोषण होता है। पाँच तत्वों में प्रत्येक तत्व का हमारे जीवन में विशेष महत्व है। एक तत्व की कमी से भी अन्य तत्व प्रभावित होते हैं और जीवन संकट में पड़ जाता है। इनमें से प्रत्येक तत्व के महत्व को अलग–अलग समझने की आवश्यकता है।

प्रमुख पारिस्थितिकीविद ए.जी. टांसले के अनुसार–

''प्रभावकारी दशाओं का वह सम्पूर्ण योग जिसमें जीव रहते हैं, पर्यावरण कहलाता है।''[4]

पाँच तत्व

पूरा जीवन केवल पाँच तत्वों के इर्द-गिर्द है। हमारे होने से पाँच तत्व नहीं हैं। वो पाँच हैं तो ये सब हैं और हम हैं। हम नहीं होंगे तब भी यह सब रहता और होता आया है, रहेगा भी। ये समस्त तत्व जो हम ही हैं, हम स्वयं हैं । अद्वैत की भाषा में सोचिए। ये सभी पाँच अलग-अलग नहीं है अपितु परस्पर एक-दूसरे का भाग हैं। सहयोगी हैं। इन सभी से मिलकर जीवन बना हैं।

मनुष्य जिन चीजों के सर्वाधिक प्रभाव में है वे प्रकृति के पाँच तत्व ही हैं। जो कुछ भी दिखलाई पड़ता है वह सब प्रकृति है और जो कुछ प्रकृति से बना है वह सबको प्रभावित करता है। मनुष्य स्वयं प्रकृति है अतः हम सभी और हमें दिखने वाला समस्त वातावरण एक ही हैं। एक-दूसरे को प्रभावित करते हैं और एक के बिना दूसरे का अस्तित्व नहीं हो सकता। प्रकृति के पाँच तत्वों के अस्तित्व को अलग-अलग करते हुए इस प्रकार समझा जा सकता है-

वायु

संसार का कौन-सा ऐसा कार्य है जो बिना अन्य के हो सकता है ? बहुत सोचने के बाद कुछ भी समझ नहीं आता। यहाँ तक कि हम स्वांस भी नहीं ले सकते। लेकिन क्या मैं वायु हूँ? नहीं हूँ। वह भी बाहर से ही आती है और भेजने वाला भेजता है, जब तक वो चाहे तब तक। तो वायु प्राण है, जीवन है । यहाँ यह भी ध्यान में लेते चलें कि भेजने वाला 'भेजता' है तो इससे यह भी सिद्ध होता है कि आने वाला और अगले ही पल फिर बाहर हो जाने वाला स्वांस भी मेरी मर्जी का नहीं है, कोई है जो ऐसा करता है या होने देता है जिस पल, जिस दिन उसकी मर्जी नहीं होगी जीवन समाप्त हो जाएगा।

पृथ्वी

अथर्ववेद का वाक्य है कि-

''माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्या''[5]

अर्थात पृथ्वी मेरी माता है और मैं उसका पुत्र हूँ। ऐसे वाक्यों को और विचारों को साहित्य में स्थान इसलिए दिया गया ताकि मानव उस विचार को कालांतर में अनुसरण कर सके। यह एक मानव का ही मन है जो पृथ्वी को अपनी माँ मानता है और यह समझकर ही उसके साथ व्यवहार करता है जो एक पुत्र को शोभा देता है। माँ का आदर देकर वह पृथ्वी को न केवल मान देता है अपितु प्रातः अपना प्रथम चरण रखने से पूर्व वह क्षमा याचना करता है यथा-

समुद्रवसने देवि पर्वतस्तन मण्डले।
विष्णुपत्नि! नमस्तुभ्यं पादस्पर्श क्षमस्य मे।

वह विनती करता है कि माता पृथ्वी उसे क्षमा करे क्योकि वह उस पर कदम रखकर अपने दैनिक जीवन का प्रारम्भ करेगा। ऐसा सम्मान हमारे साहित्य में उल्लेखित है और इससे यह भी संदर्भित होता है कि हमारे पूर्वजों के विचार और जीवनशैली किस स्तर को प्राप्त थे अर्थात कितने उच्च स्तर को वे जीते थे। इसलिए पर्यावरण को कोई संकट नहीं था। उनके जीवन में पर्यावरण मात्र शिक्षा नहीं थी अपितु वह उनका जीवन दर्शन था। उनका जीवन आदर्श को प्राप्त था।

जीवन के लिए अगली आवश्यकता है - भोजन। जीवन के लिए भोजन चाहिए। कतिपय साधक ऐसे भी हुए हैं जो बिना भोजन के जीने का प्रयास करते थे। उन्हें पवनहारी कहा जाता था। कतिपय महात्मा ऐसे भी हुए हैं और होंगे भी जिन्हें फलाहारी कहकर बुलाते हैं। वो केवल फल खाकर जीवन को चलाते हैं। फल आएगा पेड़ से, वृक्ष से, लता से या वनस्पति से। या तो वायु चाहिए या फिर फल चाहिए। यदि दोनों ही नहीं मिले तो जीवन समाप्त।

फल आएगा पेड़ से और अगला कदम फल के अतिरिक्त अन्न का है। अन्न भी जंगल की देन है। अन्न, दालें, सूखे मेवा इन्हें पाने के लिए, उगाने के लिए मिट्टी चाहिए। मिट्टी पृथ्वी की परत है तो पृथ्वी चाहिए । पृथ्वी होगी तो जीवन होगा क्योंकि पेड़ों को जीवन देने के कार्य पृथ्वी का है तो पृथ्वी होगी तो पेड़ होंगे, पेड़ होंगे तो वायु होगी, वायु होगी तो जीवन होगा। साहित्य में पर्यावरण के प्रति इस प्रकार की रचनाएँ, कहानियाँ, नाटक तथा अन्य भक्ति साहित्य एवं प्रकृति-चित्रण प्रचुर मात्रा में लिखा गया है। इस लेखन कार्य से पृथ्वी का महत्व भी प्रतिपादित हुआ और पर्यावरण संरक्षण भी होता रहा।

यत्ते भूमे विखनामि क्षिप्रं तदपि रोहतु।
मां ते मर्म विमृग्वरी या ते हृदयमर्पितम ।।

अर्थात, हे भूमि माता! मैं जो तुम्हें हानि पहुंचाता हूं, शीघ्र ही उसकी क्षतिपूर्ति हो जावे। हम अत्यधिक गहराई तक खोदने में (स्वर्ण-कोयला आदि) में

सावधानी रखें। उसे व्यर्थ खोदकर उसकी शक्ति को नष्ट न करें।

अग्नि

पकाकर खाने के लिए, स्वादिष्ट भोजन के लिए अग्नि चाहिए। जब तक मानव ने अपने को ''आदि मानव'' कहा तब तक तो कह लीजिये कि कच्चा खाता था। फिर आग समझ में आई तो कहा गया कि भूनकर खाने लगा। जीभ ने स्वाद को समझ लिया तो पकाने का मन हुआ। पकाने के लिए तीसरा तत्व अग्नि चाहिए। तो वायु पहले चाहिए और बाद में पृथ्वी चाहिए ताकि अस्तित्व बना रहे और फिर अग्नि चाहिए ताकि जीने में सुविधा हो, जीवन की रक्षा हो क्योंकि अग्नि एक शस्त्र भी है। अग्नि से शस्त्र भी बने और आग स्वयं में भी एक अस्त्र है। हथियार है अग्नि। अग्नि का प्रत्यक्ष रूप है– सूर्य । सूर्य है तो सब है। अग्नि वह तत्व भी है जिसके द्वारा शरीर को पोषण मिलता है। ऊष्मा इस शरीर की आवश्यकता है और पेट में भोजन को पचाने का कार्य भी अग्नि का है। भोजन पचता है तो रक्त बनता है और शरीर के अस्तित्व को बनाए रखने के लिए रक्त आवश्यक है।

जल

गंगे च यमुने चौव गोदावरि सरस्वति।
नर्मदे सिंधु कावेरी जलेस्मिन सन्निधिम कुरु।[6]

उपरोक्त श्लोक में न केवल जल को महत्व दिया गया है अपितु जल को सँजोकर रखने वाली नदियों को भी जनमानस के द्वारा अत्यंत महत्व प्रदान किया गया है। आमतौर पर स्नान करते समय लोग इस प्रकार के मंत्रों या श्लोकों का उच्चारण किया करते थे। उनकी इस प्रकार की जीवन–शैली के कारण ही नदियां और जल सब सुरक्षित रहा करते थे। कालांतर में ऋषियों ने तथा रचनाकारों ने इसे अपनी लेखनी से भी आगे बढ़ाया और साहित्य भी ऐसे विचारों से समृद्ध होता चला गया। आज यदि हमें कुछ भी प्राचीन संदर्भ प्राप्त होता है तो उसका कारण लेखकों द्वारा उस विशिष्ट जीवन–शैली को लिपिबद्ध करना है।

पृथ्वी की तो उत्पत्ति की कल्पना ही जल में की गई है। जल के बिना पृथ्वी नहीं दे सकती कुछ भी। वनस्पति का आधार पृथ्वी है किन्तु कारण है जल। जल आपको जीवन देगा या नहीं इसका नहीं पता किन्तु पेड़ जो वायु का कारण हैं और पेड़ जो फल और अन्न का कारण हैं, आधार हैं वो सभी जल पर टिके हैं। पृथ्वी उनको बिना जल के ज्यादा समय तक नहीं रोक सकती। जल नहीं हुआ तो वृक्ष नहीं, वनस्पति नहीं और वनस्पति नहीं, वन नहीं तो ऑक्सीजन नहीं और ऑक्सीजन नहीं तो जीवन नहीं। जल से सब चलता है। जल के बिना पृथ्वी शून्य है। जहां जल नहीं वहाँ जीवन नहीं हो सकता। आजकल जल का न होना या स्वच्छ जल न मिल पाना भी एक समस्या है।

आकाश

सूर्य एक ऐसा आधार है जो सबके आसपास है। जिसके बिना कुछ भी नहीं चलेगा। सभी जानते हैं कि सूर्य की तपस से अग्नि निकलती है और उससे समुद्र का जल वाष्प बनकर आकाश में चला जाता है और आकाश में जाकर बादल का रूप धारण कर पुनः समय आने पर वर्षा के रूप में पृथ्वी पर बरसता है। यह पूरी प्रक्रिया केवल आकाश में सूर्य के होने के कारण होती है। सूर्य पृथ्वी पर नहीं टिका है, वह आकाश में केन्द्रित है। आकाश है जो सूर्य का आधार है, आकाश है जो सूर्य को संभाले हुए है। इन बातों को समझने के लिए ग्रंथ की आवश्यकता नहीं है यह हमें सभी को, चाहे कोई पढ़ा–लिखा हो या अनपढ़ हो या ज्ञानी न भी हो, तो भी समझ आती है। सूर्य का और आकाश का आपस में समन्वय न हो तो सूर्य नीचे गिर पड़े और बादल भी बूंद दृबूंद न बरसें वो भी एकसाथ गिर जाएँ तो प्रलय आ जाए।

सूर्य का प्रकाश पड़े बिना कोई पेड़ पनप नहीं पाता। जिस व्यक्ति को सूर्य की रोशनी नहीं मिलती उसका शरीर बीमार पड़ जाता है। तो अग्नि भी खाने के लिए चाहिए और अग्नि हमें सूर्य की किरण से मिलती है। जैसे हम स्वांस ले रहे हैं और पानी पी रहे हैं तथा भोजन कर रहे हैं ठीक उसी प्रकार हम सूर्य से धूप ले रहे हैं भोजन की तरह। इस प्रकार आकाश के संबंध पर इस समस्त जगत की कल्पना चल रही है। सभी रहस्य आकाश में है, सृष्टि का समस्त ''रिमोट सिस्टम'' आकाश को समझिए। अन्य सभी चार तत्वों को फलने–फूलने का अवसर और उनकी पुष्टि का कार्य आकाश संभालता है। रात में दिखने वाले तारों को देखकर हम समझ सकते हैं कि अन्तरिक्ष में क्या–क्या है और क्या हो सकता है।

पानी में भी आग है अन्यथा पानी गर्म क्यों होता। लकड़ी क्यों जलती वह आग क्यों पकड़ लेती है यानि उसमें भी आग है। फलों के रस को जल समझें। पूरे शरीर में पाँच तत्व बिना हमारी स्वीकृति के अपना कार्य

कर रहे हैं। तो हमारा अस्तित्व क्या है। हम अद्वैत को सोचते हैं कि सभी जाति एक मानो या सभी धर्मों को एक मानो तो अद्वैत है। हम सभी देवताओं को एक समझकर अद्वैत समझना चाहते हैं। लेकिन सोचकर देखें तो किसी एक पूरे ''भौगोलिक सिस्टम'' की एकरुपता ही अद्वैत है। एक- दूसरे में इतना घुला-मिला होना कि एक के बिना दूसरा नहीं, ऐसी संरचना अद्वैत है। तो इस जगत की समस्त संरचना अद्वैत है । दो नहीं हैं कुछ भी। दूसरा नहीं है कोई भी। अंतर व्यवहार और स्वभाव का रहेगा। तत्त्व एक है।

जब हम पेड़ को काटते हैं तो सोचते हैं कि पेड़ है। जबकि वो हम ही हैं। हम खुद को काटते हैं। जल के साथ संबंध बनाते हैं हैं तो हम सफाई के लिए नहीं नहाते अपितु शरीर को जल चाहिए किसी भी रूप में इसलिए। पेट में निरंतर हार्ट अग्नि पैदा करता है और उस आग को पुष्टि देता है भोजन।

इसी तरह शरीर की आग को पुष्टि देता है सूर्य । आग को आग चाहिए। तत्व अपने तत्व से ही जीवित रहता है तो जितना शरीर में चाहिए उतना बाहर होना चाहिए। ठीक घर की रसोई की तरह। सब सामान कल के लिए। ऐसे ही बाहर से शरीर में जाने के लिए साधन चाहिए। वायु के लिए, जल के लिए, अग्नि के लिए। पृथ्वी को जीवित रखने के लिए। और वो सब जो इसे जीवित रखे उसके उपाय सजीवता से करते रहना, निरंतर भोजन कमाने की तरह, ऐसा प्रयास पर्यावरण का संरक्षण है।

नदी को सिर्फ नदी समझना, सूर्य को केवल आग का ग्रह समझना, पेड़ों को केवल पेड़ समझना ये अपने साथ ही अन्याय है। वो हम ही है। हम ही पेड़ हैं, हम ही सूर्य हैं, हम ही समुद्र है, हम अन्तरिक्ष हैं। हमारी वैदिक संस्कृति का जो कुछ हमने पढ़ा या सुना है वो सब हमारे ऋषियों का जीने का ढंग था। जीवन विधि थी उनकी। केवल संरक्षण नहीं था। कर्तव्य बोध नहीं था। कर्तव्य से तो व्यक्ति विमुख हो जाता है। वो उनका सम्पूर्ण अस्तित्व था। इसलिए उन्होने प्रतिकात्मक भाषा में स्वयं के अद्वैत भरे जीवन को उच्चारित किया।

वनस्पति की पुजा, नदियों को माता, पृथ्वी को माता, वृक्षों में देवता, पशुओं में माता और देवता, इंद्र की आराधना, अग्नि की पूजा और समस्त जगत को एक कुटुंब की तरह देखा उन्होने तो यह उनका जीवन था। यह अद्वैत चिंतन भारतीय चिंतन का प्राण है। जब हम इस चिंतन को सामने रखकर चलेंगे और उसी में जिएंगे तो पर्यावरण संरक्षण के लिए नहीं अपने जीवन के, खुद के लिए अपने परिवार के लिए वो सब कुछ करेंगे जो अस्पतालों में जाकर करते हैं। आवश्यकता प्रामाणिक जीवन की है । हम केवल औपचारिकता के लिए ज्यादा जीते हैं।

वर्तमान में सबसे अधिक प्रदूषण जल और वायु का है। कारण साफ है, अधिक संख्या में वाहन और वाहनों का प्रयोग तथा जल स्रोतों में, विशेषकर नदियों में गंदे नालों का पानी और विसर्जित की जाने वाली सामग्री। इनका समाधान खोजना आवश्यक है। समाधान हमें पता होता है। हम जानते हैं कि हमारे जीवन में हर वस्तु हमारी आवश्यकता से अधिक होती है। हम उसे एकत्र करते हैं। हम नियमों से नहीं अपनी स्वयं की बनाई हुई नैतिकता से और संकल्प से ही खुद को चलाते हैं। पर्यावरण की अवधारणा पूर्ण रूप से आध्यात्मिक अवधारणा है। आध्यात्मिक पर्यावरण में जिएगा और जो पर्यावरण में जिये वह आध्यात्मिक है। ध्यान और पर्यावरण, प्रेम और पर्यावरण, लेखक और पर्यावरण, ज्ञान और पर्यावरण सभी का गहरा रिश्ता है।

साहित्य और पर्यावरण

साहित्यकार और पर्यावरण का घनिष्ठ संबंध है। या ऐसा कहें कि लेखक का और हरे-भरे जंगल का गहरा संबंध है। क्या लिखेगा कोई भी इसके बिना। जीवन का पूरा सौन्दर्य वनों में रहता है। सुगंधित पुष्प, लंबे, घने और सघन वृक्ष तथा इठ्लाती लताएँ सब वन में रहते हैं। तरह-तरह के मधुर गाँ करते पक्षी और अटखेलियां करते पशु सब जंगल के प्राणी हैं। मौन धारण किए विशाल पर्वत मालाएँ किसी साधक की तरह लगते हैं। इस सब को हटा दें, क्या बचेगा ? पूरा जीवन पंच तत्वों का आवरण है।

हिन्दी साहित्य में तो छायावाद ही प्रकृतिवाद है। हिन्दी साहित्य के आदिकाल से लेकर रीतिकाल तक तो सम्पूर्ण साहित्य ही प्रकृति को साथ लेकर चला है। इसके बिना कुछ भी लिख पाना वैसे भी संभव नहीं था और न ही है। छायावादी कवियों ने अपनी रचनाओं में प्रचुर मात्रा में और अधिकतर प्रकृति का ही वर्णन किया है। जहां प्रकृति का वर्णन है वहाँ स्वयमेव ही पर्यावरण है। छायावादी कवियों में सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, महादेवी वर्मा, नन्ददुलारे वाजपेयी, सुमित्रानंदन पंत, हरिवंश राय बच्चन, अज्ञेय जी, जयशंकर प्रसाद, मैथिलीशरण गुप्त, द्विवेदी बंधु आदि अन्य कवियों ने अपनी लेखनी से वृहद एवं सूक्ष्म वर्णन किया है और

यह सब पर्यावरण के आस-पास ही घूमता है। कामायनी में तो प्रसाद जी ने चहुं ओर पर्यावरण का ही शुद्ध वर्णन किया है। केवल प्रसाद जी ही नहीं, किसी भी साहित्यकार के लेखन का कार्य प्रकृति पर आधारित होता है। इसके बिना लिखना संभव ही नहीं है।

प्रसिद्ध रचनाकार श्री नरेश अग्रवाल ने एक सुंदर रचना लिखी है-

''मैं गुजर रहा था
अपने चिरपरिचित मैदान से
एकाएक चीख सुनी
जो मेरे प्रिय पेड़ की थी
कुछ लोग खड़े थे
बड़ी-बड़ी कुल्हाड़ियाँ लिए
वे काट चुके थे इसके हाथ
अब पाँव भी काटने वाले थे।
हम लोग लाश उठा रहे हैं
अंतिम संस्कार भी करा देंगे
तुम रख ले जाना।''[7]

कवि ने पेड़ की पीड़ा के माध्यम से आज के मानव के विचार को अभिव्यक्त कर दिया और यह हमें सोचने को विवश करता है कि हम जो सोचते हैं और चाहते हैं, क्या हम अपने कर्मो में उसका समावेश करके चलते हैं। प्रसिद्ध साहित्यकार भारतेन्दु हरिश्चंद्र ने अपने प्रसिद्ध नाटक ''भारत दुर्दशा'' में लिखा है -

तुम में जल नहिं जमुना गंगा।
बढ़हूँ वेग करि तरल तरंगा।।
धोवहु यह कलंक की रासी।
बोरहु किन झट मथुरा काशी।।[8]

पर्यावरण की चिंता हमारे मूर्धन्य साहित्यकार बहुत पहले से करते आ रहे हैं। जैसे-जैसे विकास की बात होती रही और मानव अपने नैतिक मूल्यों से दूर होता गया, वैसे-वैसे ही संतुलन बिगड़ता गया। असल बात संतुलन की ही है। विकास करना कोई बुरी बात नहीं है लेकिन विकास संतुलन के साथ होना चाहिए। आजकल सड़क और पुल बनाए जा रहे हैं और पहाड़ों को तथा जंगलों को काटकर।

हजारी प्रसाद द्विवेदी जी ने ''कुटज'' में लिखा है कि-

''यह धरती मेरी माता है और मैं इसका पुत्र हूँ। इसलिए मैं सदैव इसका सम्मान करता हूं और मेरी धरती माता के प्रति नतमस्तक हूं।''[9]

साहित्य में पर्यावरण के प्रति इस प्रकार की रचनाएँ, कहानियाँ, नाटक तथा अन्य भक्ति साहित्य एवं प्रकृति-चित्रण प्रचुर मात्रा में लिखा गया है। कामायनी के कर्म सर्ग में श्रद्धा, मनु को समझते हुए कहती है कि-

''अपने में सब कुछ भर कैसे व्यक्ति विकास करेगा ?
यह एकांत स्वार्थ भीषण है अपना नाश करेगा।
ओरों को हँसते देखो मनु हँसो और सुख पाओ,
अपने सुख को विस्तृत कर लो सबको सुखी बनाओ।''[10]

श्रद्धा की यह योजना और दृष्टि पर्यावरण और जीवन दोनों के लिए उपयोगी है। ''और'' में सब आ जाते हैं। समस्त दृष्टिगोचर जगत के समस्त घटक। पांचों तत्व और उन तत्वों से बने समस्त प्राणी, सजीव और निर्जीव। सभी से प्रेम करने की आवश्यकता है।

महाकवि कालिदास के प्रसिद्ध ''रघुवंश'' नामक नाटक में वर्णन है कि-

निवर्त्यते यैनिर्यमाभिषेकों येभ्यो निवापाजलयः पितृणाम।

तान्युर्त्छषष्ठंकित सैकतानि शिवानि बस्तीर्थजलानि कश्चित।।[11]

अर्थात जिन जलाशयों या जलों से आप स्नान, संध्या कर्म एवं यज्ञ इत्यादि करते हो तथा जिनसे पितरों को अंजलि दी जाती है और जिन नदी के किनारे बालू रेत पर राजा के लिए भाग निकालकर रखते हो कहीं वे स्थान प्रदूषित तो नहीं।

निष्कर्ष

पर्यावरण को केवल पेड़-पौधों या वनस्पति तक ही सीमित नहीं रखा जा सकता। पर्यावरण जैसा कि अनेक बार इसका अर्थ परिभाषित होता रहता है, सही अर्थों में हमारे दैनिक जीवन को, हमारे मन और आत्मा को प्रभावित करने वाला हमारे जीवन का वह आधार है जिसके अस्तित्व के साथ ही हमारा अस्तित्व जुड़ा हुआ है। पर्यावरण ही हमारा अस्तित्व इस प्रकार शासक और शासित के मध्य भी यह अनुबंध होना चाहिए कि प्रजा या जनता इसे अपने नैतिक कर्त्तव्य के रूप मे या फिर ऐसा कानून भी होना चाहिए कि राज्य या शासक के भय से व्यक्ति इन स्थानों को दूषित करने से गुरेज करे। पर्यावरण को भी व्यक्ति एक अन्य कार्य की तरह देखने लगा है। जबसे मानव ने प्रकृति और वनस्पति

को स्वयं से अलग किया है और तथाकथित विकास तथा विज्ञान की ओर उन्मुख हुआ है तभी से प्रकृति का नाश हुआ है। मनुष्य को प्रकृति से नहीं टकराना चाहिए। जयशंकर प्रसाद जैसे साहित्यिक मनीषियों ने अपने साहित्य में श्रद्धा के मुख से जो कहलवाया वह यहाँ अत्यंत प्रासंगिक है। आज विश्व नाना प्रकार की भयंकर बीमारियों से जूझ रहा है यह मानुषी सभ्यता को विनाश की ओर ले जा सकता है। अब समय है जब पर्यावरण केवल साहित्य या सेमिनार का विषय न होकर जीवन–चरित्र में जीने का विषय है, जैसे हमारे पूर्वज जिये, वही जीवन–शैली हम अपनाएं। दूसरी ओर यदि हम चाहते हैं कि हमारा जीवन पूरी तरह सुरक्षित और सुखमय बना रहे तो जैसे हम अपने शरीर का ध्यान रखते हैं ठीक वैसे ही अपने पर्यावरण रुपी पाँच तत्वों के विशाल शरीर को सुरक्षित और संरक्षित करें।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *ठाकुर छाया अथर्ववेद में पर्यावरण की अवधारणा (आलेख), पर्यावरण प्रभुत्वम, संस्कृत साहित्य एवं पर्यावरण*
2. *अग्रवाल. साक्षी, हिन्दी साहित्य द्वारा पर्यावरण संरक्षण के प्रति जागरूकता international journal for environmental rehabili. and conservation vol I 6th 12015 page 129 issn0975-6272*
3. *रामचरितमानस, तुलसीदास रचित, किष्किंधाकांड, श्लोक 11, चौपाई*
4. *जोशी, डॉ. रतन, पर्यावरण अध्ययन, साहित्यभवन प्रकाशन, आगरा, पृ.2*
5. *शर्मा मनोहर लाल, अथर्ववेद, लक्ष्मी प्रकाशन, दिल्ली*
6. *आलेख– पर्यावरण और वाङ्मय, संपादक–डॉ.महेश दिवाकर में डॉ. हरमहेन्द्रसिंह बेदी द्वारा, संस्कृत साहित्य में पर्यावरण,पृ.186*
7. *अग्रवाल नरेश, माध्यम, सहस्त्राब्दिअंक–9, जनवारी–मार्च 2003, पृ. 80 संपादक– डॉ. सत्यप्रकाश मिश्रा*
8. *डॉ. रेवतीरमण, भारत दुर्दशा :कथ्य और शिल्प, अभिव्यक्ति प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम सं.1999 पृ.63*
9. *द्विवेदी हजारी प्रसाद, ग्रंथावली, कुटज, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली अंक 9, पृ.32*
10. *कामायनी, जय शंकर प्रसाद रचित, श्रद्धा सर्ग*
11. *रघुवंश, कालिदास विरचित, 5/8*
12. *जोशी, आचार्य गोविंद वल्लभ, वेब दुनिया, वैदिक चिंतन से ही बचेगा पर्यावरण, दिनांक 7/11/2020*

राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोगः एक संगठनात्मक अध्ययन

डॉ. वंदना शर्मा
सह आचार्य, राजकीय कला महाविद्यालय, कोटा

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

मानवाधिकार 'जीओ और जीने दो' की भावना पर आधारित हैं जिनका जन्म पृथ्वी पर मानव विकास के साथ हुआ। मानवाधिकार के अन्तर्गत वे सभी अधिकार आते हैं, जो मानव होने के नाते व्यक्ति के विकास और कल्याण क लिए अनिवार्य हैं। मानवाधिकारों की अवधारणा का विकास प्राकृतिक सिद्धान्तों के अहरणीय अधिकार से हुआ हैं। ये अधिकार हमारी प्रकृति में निहित हैं, जिनके अभाव में एक व्यक्ति सभ्य जीवन व्यतीत नहीं कर सकता। मानवाधिकार की यह अवधारणा सत्ता के स्वेच्छाचारी इस्तेमाल को रोकने के उपकरण के रूप में विकसित हुई हैं। भारतीय संविधान की प्रस्तावना के साथ-साथ विभिन्न अनुच्छेदों में इसकी झलक देखने को मिलती हैं। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर मानवाधिकारों की रक्षा हेतु अनेक संस्थाऐं सक्रिय हैं। प्रस्तुत शोध लेख के माध्यम से राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग का एक सम्पूर्ण परिचय प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

संकेताक्षर : *मानवाधिकार संरक्षण, सार्वभौम घोषणा UDHR, NHRC, अन्वेषण, संयुक्त राष्ट्र महासभा, पेरिस सिद्धान्त, स्वेच्छाचारी, निस्तारण, प्राकृतिक अधिकार, मानवाधिकार परिषद्, अधिनियम, सवैधानिक गारन्टी।*

लोगों को उनके मानवाधिकारों से वंचित करना उनकी मानवता को चुनौती देना है। – नेल्सन नण्डेला

मानवाधिकारों की ''सार्वभौम घोषणा'' एक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक दस्तावेज है, जिसे संयुक्त राष्ट्र महासभा द्वारा 10 दिसम्बर, 1948 को पेरिस में अपनाया गया थ। मानव अधिकारों के इतिहास में यह बहुत महत्वपूर्ण घोषणा है, क्योंकि इसके द्वारा पहली बार मानव अधिकारों को सुरक्षित करने का प्रयास किया गया। प्रति वर्ष 10 दिसम्बर को UDHR-Universal Declaration of Human Rights की वर्षगांठ के रूप में मानवाधिकार दिवस मनाया जाता है। 1991 में पेरिस में हुयी संयुक्त राष्ट्र की बैठक ने सिद्धान्तों का एक समूह तैयार किया जो आगे चलकर पेरिस सिद्धान्तों के नाम से जाना जाता है। ऐसे सिद्धान्त राष्ट्रीय मानवाधिकार संस्थाओं की स्थापना और संचालन की नींव साबित हुए। इन्हीं अधिकारों का अनुसरण करते हुए भारत में मानवाधिकारों में अधिक जवाबदेही और मजबूती लाने के उद्देश्य से ''मानव अधिकार संरक्षण अधिनियम, 1993'' बनाया गया है। यह अधिनियम सभी राज्य सरकारों को भी ''राज्य मानवाधिकार आयोग'' बनाने का अधिकार देता है।

मानवाधिकार परिषद्

यह एक अन्तर-सरकारी निकाय है जिसका गठन संयुक्त राष्ट्र महासभा के प्रस्ताव द्वारा 15 मार्च, 2006 को किया गया इसे संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार आयोग के स्थान पर लाया गया। यह पूरी दुनिया में मानवाधिकारों के संवर्द्धन और संरक्षण को बढ़ावा देने के लिये उत्तरदायी है। इसी के साथ यह संस्था अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर मानव अधिकारों के उल्लंघनों की भी जाँच करती है। इसके पास मानव अधिकार से जुड़े सभी महत्वपूर्ण मुद्दों और विषयों पर चर्चा करने का अधिकार है। यह परिषद् संयुक्त राष्ट्र महासभा में चुने गए 47 सदस्य देशों से मिलकर बनती है।

राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग : राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग एक स्वतन्त्र वैधानिक संख्या है। जिसकी स्थापना मानव अधिकार संरक्षण अधिनियम, 1993 के प्रावधानों के तहत 12 अक्टूबर, 1993 को की गयी थी। NHRC का मुख्यालय नई दिल्ली में स्थित है और 12 अक्टूबर, 2020 को इसने अपनी स्थापना के 27 वर्ष पूर्ण कर लिए हैं।

यह संविधान में दिए गए मानवाधिकारों जैसे – जीवन का अधिकार, स्वतन्त्रता का अधिकार और समानता का अधिकार आदि की रक्षा करता है और उनके प्रहरी के रूप में कार्य करता है।

क्या होते हैं मानवाधिकार ?

संयुक्त राष्ट्र की परिभाषा के अनुसार ये अधिकार जाति, लिंग, राष्ट्रीयता, भाषा, धर्म या किसी अन्य आधार पर भेदभाव किए बिना सभी को प्राप्त होते हैं। मानवाधिकारों में मुख्यतः जीवन और स्वतन्त्रता का अधिकार, गुलामी और यातना से मुक्ति का अधिकार, अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता का अधिकार और काम एवं शिक्षा का अधिकार आदि शामिल है। कोई भी व्यक्ति बिना किसी भेदभाव के इन अधिकारों को प्राप्त करने का हकदार होता है।

मानवाधिकार ''जीओ और जीने दो'' की भावना पर आधारित होते हैं। मानवाधिकार के अन्तर्गत वे सभी अधिकार आते है, जो मानव होने के नाते व्यक्ति के विकास और कल्याण के लिए अनिवार्य है।

मानवाधिकार वो अधिकार हैं जो व्यक्तिगत जीवन, व्यक्तिगत विकास और अस्तित्व के लिए महत्वपूर्ण होते है। ये अधिकार हमारी प्रकृति में निहित है, जिनके अभाव में एक व्यक्ति सभ्य जीवन व्यतीत नहीं कर सकता। मानवाधिकार की यह अवधारणा सत्ता की स्वेच्छाचारी प्रवृत्ति को रोकने के उपकरण के रूप में विकसित हुयी है।

राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग की संरचना : यह एक बहु–सदस्यीय संस्था है जिसमें एक अध्यक्ष और 7 सदस्य होते हैं। यह आवश्यक है कि 7 सदस्यों में से 3 पदेन सदस्य हों। अध्यक्ष एवं सदस्यों की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा, प्रधानमंत्री की अध्यक्षता वाली उच्च स्तरीय समिति की सिफारिशों के आधार पर की जाती है। वर्तमान में सर्वोच्च न्यायालय के सेवानिवृत्त जस्टिस एच.एल.दत्तू राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग के अध्यक्ष है। जयदीप गोविन्द महासचिव है।

अध्यक्ष – उच्चत्तम न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश।

एक सदस्य – जो उच्चतम न्यायालय के वर्तमान या निवर्तमान न्यायाधीश रहे हो।

एक सदस्य – जो उच्च न्यायालय के वर्तमान या निवर्तमान मुख्य न्यायाधीश रहे हो।

दो सदस्य – जिन्हें मानव अधिकारों से सम्बन्धित मामलों का ज्ञान हो या व्यावहारिक अनुभव हो।

तीन पदेन सदस्य – जो निम्न आयोगों के अध्यक्ष होंगे–

- अल्पसंख्यक आयोग के अध्यक्ष।
- राष्ट्रीय महिला आयोग की अध्यक्ष।
- अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों के आयोग के अध्यक्ष।

महासचिव – कार्यपालक अधिकारी।

कार्यकाल – अध्यक्ष और सदस्यों का कार्यकाल। 5 वर्ष या 70 वर्ष की उम्र, जो भी पहले हो तक होता है। इन्हें केवल तभी हटाया जा सकता है जब सुप्रीम कोर्ट के न्यायाधीश की जाँच में उन पर दुराचार या असमर्थता के आरोप सिद्ध हो जायें।

आयोग के विभाग – आयोग में 5 विशिष्ट विभाग होते है –

(1) विधि विभाग (2) जाँच विभाग (3) नीति अनुसंधान और कार्यक्रम विभाग (4) प्रशिक्षण विभाग (5) प्रशासन विभाग।

उच्च स्तरीय समिति के पदाधिकारी

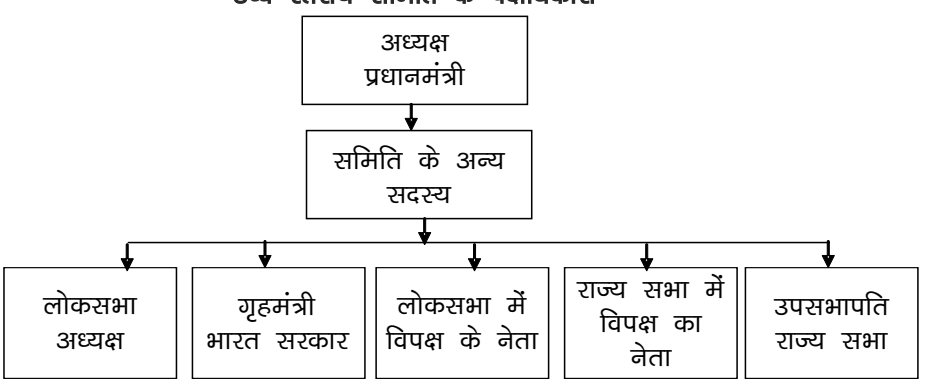

NHRC के कार्य और शक्तियाँ

- मानवाधिकारों के उल्लंघन से संबंधित कोई मामला यदि NHRC के संज्ञान में आता है या शिकायत के माध्यम से लाया जाता है तो NHRC को उसकी जाँच करने का अधिकार है।
- इसके पास मानवाधिकारों के उल्लंघन से संबंधित सभी न्यायिक मामलों में हस्तक्षेप करने का अधिकार है।
- आयोग किसी भी जेल का दौरा कर सकता है और जेल में बंद कैदियों की स्थिति का निरीक्षण एवं उसमे सुधार के लिये सुझाव दे सकता है।
- NHRC संविधान या किसी अन्य कानून द्वारा मानवाधिकारों को बचाने के लिये प्रदान किये गए सुरक्षा उपायों की समीक्षा कर सकता है और उनमें बदलावों की सिफारिश भी कर सकता है।
- NHRC मानवाधिकार के क्षेत्र में अनुसंधान का कार्य भी करता है।
- आयोग प्रकाशनों, मीडिया, सेमिनारों और अन्य माध्यमों से समाज के विभिन्न वर्गों के बीच मानवाधिकारों से जुड़ी जानकारी का प्रचार करता है और लोगों को इन अधिकारों की सुरक्षा के लिये प्राप्त उपायों के प्रति भी जागरूक करता है।
- आयोग के पास दीवानी अदालत की शक्तियाँ हैं और यह अंतरिम राहत भी प्रदान कर सकता है।
- इसके पास मुआवज़े या हर्जाने के भुगतान की सिफ़ारिश करने का भी अधिकार है।
- NHRC की विश्वसनीयता का अंदाज़ा इसी बात से लगाया जा सकता है कि इसके पास हर साल बहुत बड़ी संख्या में शिकायतें दर्ज़ होती हैं
- यह राज्य तथा केंद्र सरकारों को मानवाधिकारों के उल्लंघन को रोकने के लिये महत्त्वपूर्ण कदम उठाने की सिफ़ारिश भी कर सकता है।
- आयोग अपनी रिपोर्ट भारत के राष्ट्रपति के समक्ष प्रस्तुत करता है जिसे संसद के दोनों सदनों में रखा जाता है।

नवम्बर 2020 में NHRC को प्राप्त शिकायतें नयी शिकायतें –6523

निस्तारित मामले – 7552

विचाराधीन मामले – नयी एवं पुरानी – 17033

वित्तीय वर्ष 2020–21 में प्राप्त शिकायतें – 46544

राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग की भूमिका : भारत में 1993 से राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग एक सजग प्रहरी के रूप में नागरिकों के मानवाधिकारों के संरक्षण हेतु प्रयासरत हैं। पिछले कुछ वर्षों से भारत में मानवाधिकार आन्दोलन एक निश्चित स्वरूप ग्रहण करने की दिशा में आगे बढ़ रहा हैं। आयोग की भूमिका को निम्न रूपों में देखा जा सकता हैंः

एक आन्दोलन अभिकरण के रूप में : आयोग का मुख्य कार्य मानव अधिकारों के हनन की एक अन्वेषण करने वाले अभिकरण के रूप में अतिक्रमण की जाँच करना हैं। आयोग ने पुलिस हिरासत में मौत, मुठभेड़ की हत्याऐं, पुलिस का व्यवहार, भूख से होने वाली मौतें बलात्कार जैसे मुद्दों पर अन्वेषण करके महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया हैं।

सुधारात्मक भूमिका : आयोग ने अपने अल्पकाल में सुधारों के अभिकरण के रूप में विशेषकर सामाजिक मामलों में प्रशंसनीय कार्य किया हैं। आयोग ने विभिन्न जेलों में रह रहे कैदियों की दशा एवं स्थिति का अन्वेषण ही नहीं किया हैं अपितु कैदियों के लिए रिहाई के बाद आजीविका कमाने में सक्षम बनाने में भी महत्वपूर्ण योगदान दिया हैं। जेलों के सुधार में भी आयोग ने अनेक सराहनीय कार्य किए हैं। तिहाड़ जेल में आयोग ने सूक्ष्म अध्ययन करके कार्यो को चलाने के सुझाव दिए। आयोग ने अपराधिक व्यवस्था को अधिक मानवीय बनाने तथा सुधार के लिए दृढ़ प्रयास किए है।

अन्तर्राष्ट्रीय एवं राष्ट्रीय स्तर पर भूमिका : मानवाधिकारों को लेकर आज पूरा विश्व चिंतित हैं। भारत में मानवाधिकारों की स्थिति बहुत अच्छी नहीं कही जा सकती। इस दिशा में आयोग ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई हैं। आयोग ने TADA जैसे कानून का सूक्ष्म निरीक्षण कर इसके गलत प्रयोग को उजागर किया। आयोग के निरन्तर प्रयासों के कारण 2003 में इस कानून का उन्मूलन किया गया।

राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग की सीमाएँः

- राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग के पास जाँच करने के लिये कोई भी विशेष तंत्र नहीं है। अधिकतर

मामलों में यह संबंधित सरकार को मामले की जाँच करने का आदेश देता है।

- राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग के पास किसी भी मामले के संबंध में मात्र सिफारिश करने का ही अधिकार है, वह किसी को निर्णय लागू करने के लिये बाध्य नहीं कर सकता।
- कई बार धन की अपर्याप्ता भी राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग के कार्य में बाधा डालती है।
- राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग उन शिकायतों की जाँच नहीं कर सकता जो घटना होने के एक साल बाद दर्ज कराई जाती हैं और इसीलिए कई शिकायतें बिना जाँच के ही रह जाती हैं।
- अक्सर सरकार या तो राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग की सिफारिशों को पूरी तरह से खारिज कर देती है या उन्हें आंशिक रूप से ही लागू किया जाता है।
- राज्य मानवाधिकार आयोग केंद्र सरकार से किसी भी प्रकार की सूचना नहीं मांग सकते, जिसका सीधा सा अर्थ यह है कि उन्हें केंद्र के तहत आने वाले सशस्त्र बलों की जाँच करने से रोका जाता है।
- केंद्रीय सशस्त्र बलों के संदर्भ में राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग की शक्तियों को भी काफी सीमित कर दिया गया है।

सुझाव

- राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग को सही मायनों में मानवाधिकारों के उल्लंघन का एक कुशल प्रहरी बनाने के लिये उसमें कई सुधार करने की आवश्यकता है।
- सरकार द्वारा आयोग के निर्णयों को पूरी तरह से लागू करके उसकी प्रभावशीलता में वृद्धि की जा सकती है।
- राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग की संरचना में भी परिवर्तन करने की आवश्यकता है तथा इसमें आम नागरिकों और सामाजिक संगठनों के प्रतिनिधियों को भी शामिल किया जाना चाहिए।
- राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग को जाँच के लिये उचित अनुभव वाले कर्मचारियों का एक नया काडर तैयार करना चाहिए ताकि सभी मामलों की स्वतंत्र जाँच की जा सके।
- भारत में मानवाधिकार स्थितियों को सुधारने और मजबूत करने के लिये राज्य अभिकर्त्ताओं और गैर-राज्य अभिकर्त्ताओं को एक साथ मिलकर काम करना होगा।

राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग की सशक्तता : भारत में मानवाधिकारों के सम्मान की संस्कृति अभी पूर्णतः विकसित नहीं हो पाई हैं। व्यक्ति की गरिमा की संवैधानिक गारण्टी तथा लोगों को न्याय दिलाने के अनेक कानूनी प्रावधानों के बावजूद सामाजिक सम्प्रभु वर्ग खुले रूप में लोगों के अधिकारों का हनन करते आ रहे हैं। भारत में मानवाधिकारों की स्थिति चिंताजनक हैं। यद्यपि आयोग ने एक सजग प्रहरी की तरह मानवाधिकारों के संरक्षण हेतु सार्थक पहल की है। परिणामस्वरूप भारत में मानवाधिकार आन्दोलन एक निश्चित स्वरूप ग्रहण करने की दिशा में आगे बढ़ रहा हैं। आयोग के निरन्तर प्रयासों के कारण पुलिस, सेना और सुरक्षा बलों में मानवाधिकारों के अनुसरण के प्रति बहुत जागरूकता पैदा की हैं। किन्तु आयोग संवैधानिक प्रतिबंधों एवं सीमाओं के कारण एक जाँच अभिकरण मात्र बनकर रह गया हैं, क्योंकि आयोग मामलों की जाँच के बाद केवल कार्यवाही हेतु परामर्श मात्र ही दे सकता हैं। उसके सुझावों को मानना न मानना सरकार के हाथ में होता हैं। इस दृष्टि से यह एक शक्तिहीन आयोग हैं। आयोग मूलरूप से एक छानबीन और प्रतिवेदन देने वाला अभिकरण मात्र हैं जिसमें नागरिक अदालत की शक्तियाँ तो निहित हैं किन्तु यह किसी अपराधी को दण्ड नहीं दे सकता।

यदि कोई राज्य मानवाधिकारों के हनन के लिए किसी सरकारी संस्थान की नियुक्ति कर लेता हैं तो स्वयं द्वारा जाँच पड़ताल की शक्ति सीमित हो जाती हैं। आयोग सशस्त्र सेनाओं से सम्बन्धित मानवाधिकार मुद्दों की छानबीन नहीं कर सकता। आयोग की अपनी स्वयं की वित्तीय व्यवस्था नहीं हैं और यह केन्द्रीय अनुदान पर निर्भर रहता है। आयोग अन्य कानूनी अभिकरणों जैसे राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग, राष्ट्रीय महिला आयोग, एस.टी./एस.सी. आयोग के साथ परस्पर निर्भरत की स्थिति में कार्य करता है।

इस प्रकार आयोग को सीमित शक्तियाँ प्रदान की गयी है। प्रक्रियात्मक और संस्थात्मक प्रतिबंधों के बावजूद आयोग ने मानव अधिकारों को लागू करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई हैं। एक परामर्शदात्री निकाय होते हुए भी आयोग ने मानवाधिकार के प्रति जन जागरूकता लगने का सराहनीय कार्य किया हैं। मानवाधिकारों को जड़ से मजबूत करने के लिए अनुकूल प्रक्रिया तथा परिस्थितियों की आवश्यकता हैं। नौकरशाही, पुलिस प्रशासन में अभी भी ब्रिटिश उपनिवेशी मानसिकता विद्यमान हैं। जब तक साक्षरता, निर्धनता उन्मूलन जैसे कार्य पूर्ण नहीं हो पाते मानवाधिकार अधिकांश लोगों के लिए एक सपना ही रहेगा।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *तपन विश्वास– मानवाधिकार सेन्टर एवं पर्यावरण, वीवाबुक 2011 नई दिल्ली।*
2. *डॉ. एस.सी. सिंहल – समकालीन राजनीतिक मुद्दे, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, 2010*
3. *मानवाधिकार संरक्षण अधिनियम, 1993*
4. *कार्मिक प्रतिवेदन, राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग।*
5. *google से विकीपिडिया स्रोत से ।*

वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में भारत की बदलती भूमिकाः एक समीक्षा

डॉ. सरस कपूर
असिस्टेंट रजिस्ट्रार, छत्रपति शाहू जी महाराज विश्वविद्यालय, कानपुर (उत्तरप्रदेश)

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

वर्तमान वैश्विक परिदृश्य आर्थिक युग है तथा राष्ट्रों की शक्ति का आकलन सैन्य शक्ति के साथ –साथ आर्थिक समृद्धि के परिप्रेक्ष्य में भी किया जाता है। कोरोना महामारी के युग में बड़ी से बड़ी महाशक्ति इसके समक्ष घुटने टेकने को मजबूर है। आज अमेरिका, जो कि सैन्य आयुध के संबंध में अपनी आधुनिकतम तकनीकी से विश्व के समक्ष अपना दंभ भरता है तथा अपने को विश्व की एकमात्र महाशक्ति मानता है, औषधि के लिए भारत के समक्ष गुहार लगाने को मजबूर है। कमोबेश यही स्थिति विश्व की अन्य महाशक्तियों की भी है, ऐसे में भारत ने इस महामारी के संबंध में सही समय पर प्रभावी कदम उठाकर इस पर काफी हद तक नियंत्रण कर रखा है और विश्व को आश्चर्यचकित भी किया है। जिसकी प्रशंसा विश्व स्वास्थ्य संगठन ने भी की है। अतः ऐसे समय में भारत की भूमिका विश्व पटल पर परिवर्तित हो रही है और उसके विश्व का नेतृत्व करने वाले अग्रणी देशों में शामिल होने की संभावना बढ़ गई है। विश्व भारत की ओर आशा भरी निगाहों से देख रहा है, इस संदर्भ में चाहे विश्व की बडी बहुराष्ट्रीय कंपनियां अन्य देशों से पलायन करके भारत आने को आतुर हैं और चाहे इस महामारी पर नियंत्रण हेतु पहल करते हुए सार्क देशों तथा जी–20 देशों के साथ सामूहिक रूप से चर्चा करने में भारत की भूमिका की बात हो। प्रधानमंत्री ने राष्ट्र के नाम अपने संबोधन में लोकल से वोकल के माध्यम से स्वदेश निर्मित वस्तुओं के प्रयोग पर जोर देकर अपना मंतव्य भी स्पष्ट कर दिया है। परंतु प्रश्न यह है कि क्या भारत विश्व नेतृत्व करने की स्थिति में है ? प्रस्तुत शोध पत्र में मैंने उन बिंदुओं को समाहित करने का प्रयास किया है जिसके द्वारा भारत इस महामारी के युग में तथा उसके पश्चात विश्व को नेतृत्व प्रदान कर सकें। इसके लिए भारत को विश्वपटल पर अपनी दीर्घकालिक कार्ययोजना प्रस्तुत करनी पड़ेगी तथा अपने प्राकृतिक तथा मानवीय संसाधनों का मूल्यांकन करना होगा कि वह उनका किस प्रकार सर्वोत्तम प्रयोग करे कि भारत एक बार पुनः विश्व गुरु बन सके।

संकेताक्षर : *महामारी, वैश्विक, आत्मनिर्भर, महाशक्ति, नेतृत्व, भारत, विश्वगुरू, तृतीय विश्व।*

प्राचीन काल से ही जब–जब विश्व में संकट गहराया है तब–तब भारत ने आगे आकर विश्व गुरु की भांति संसार का नेतृत्व किया है, चाहे बात शीतयुद्ध[1] कालीन द्विध्रुवीय व्यवस्था की हो, तब भारत ने तृतीय विश्व[2] के देशों का नेतृत्व करते हुए गुटनिरपेक्ष आंदोलन[3] के द्वारा दोनों महाशक्तियों (संयुक्त राज्य अमेरिका और सोवियत संघ रुस) से तटस्थ भाव की नीति अपनाई थी, तथा भारत ने स्वयं के संसाधनों के नैतिक पोषण से विश्व का संवर्धन भी किया। इसी तरह सोवियत संघ के विघटन[4] के बाद तथा शीत युद्ध कालीन व्यवस्था की समाप्ति के उपरांत भारत ने अपनी नई भूमिका को पहचाना और विश्व के सभी महत्वपूर्ण मंचो एवं संगठनों में अपनी भूमिका का निर्वाहन किया। और जब आज विश्व इस महामारी के संकट से गुजर रहा है उस समय भी भारत की भूमिका महत्वपूर्ण हो जाती है।

वर्तमान में संपूर्ण विश्व के समक्ष आर्थिक विषमता, गरीबी, भुखमरी, पर्यावरण अपनय (निम्नीकरण), आतंकवाद, व्यापार युद्ध (अनैतिक व्यापार), अंतर्राष्ट्रीय संगठनों की साख में कमी के साथ–साथ नवीन महामारी के प्रकटीकरण ने विश्व व्यवस्था के समक्ष एक गंभीर चुनौती पेश की हैं। इस महामारी ने सबसे ज्यादा तबाही विश्व की महाशक्ति

ISSN 2277-5587

कहे जाने वाले देशों में मचाई है तथा विश्व की स्वघोषित एकमात्र महाशक्ति अमेरिका में कोरोना से सर्वाधिक मृत्यु हुई हैं, जबकि वह विश्व की सबसे बड़ी आर्थिक व सैन्य ताकत है। इसके विपरीत विकासशील व अल्पविकसित कहे जाने वाले राष्ट्र इस महामारी से अपेक्षाकृत कम प्रभावित हैं। विश्व में सर्वाधिक जनसंख्या के मामले में द्वितीय स्थान पर स्थापित भारत जिसकी आबादी का जनघनत्व[5] भी बहुत है, ने इस महामारी का दृढ़तापूर्वक सामना किया है और अन्य देशों के मुकाबले भारत की मृत्यु दर भी कम है, जबकि सही होने वाले मरीजों की संख्या अधिक है। मैंने अपने इस शोधपत्र में कोरोना महामारी संकट के दौर में विश्व पटल पर भारत की भूमिका में क्या परिवर्तन हो रहा है, भारत ने इस संकट का किस प्रकार सामना किया है तथा भारत किस प्रकार से अपने संसाधनों का उपयोग करके इस संकट को संभावना में परिवर्तित कर सकता है जिससे विश्व जनमत में भारत का कद ऊंचा हो व भारत अपनी गौरवशाली परंपरा के अनुसार विश्व का नेतृत्व कर सके।

भारत में कोरोना महामारी से निपटने के लिए प्रारंभ से ही प्रभावशाली व कड़े कदम उठाए हैं तथा भारत में इस महामारी की शुरुआत से ही प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी जी का यह बिल्कुल स्पष्ट मत था कि घरेलू चुनौतियों से पार पाना सरकार की प्राथमिकता होगी, इस हेतु भारत में कोरोना महामारी के खिलाफ बहुत जल्दी और सही तरीके से कई रणनीतियों को अपनाया। देशव्यापी लाकडाउन महत्वपूर्ण था, क्योंकि इसके जरिए शारीरिक दूरी को आक्रामक रुप से प्रोत्साहित किया गया। भारत की रणनीति भी विज्ञान और प्रौद्योगिकी संसाधनों के आसपास केंद्रित है। आरोग्य सेतु एप का क्रियान्वयन भारत सरकार की ओर से उठाया सर्वाधिक महत्वपूर्ण कदम रहा। किसी भी बीमारी को नियंत्रित करने के लिए तीन सिद्धांत निदान, टीकाकरण और हस्तक्षेप है। इन सभी के तेजी से और सटीक होने की आवश्यकता है। भारत की रणनीति भी इन तीन मूल सिद्धांतों पर आधारित है।[6] भारत ने न केवल इस महामारी से निपटने के लिए सही समय पर सही कदम उठाए बल्कि अन्य देशों से सहयोग और समन्वय का भी मजबूती से प्रयास किया। प्रधानमंत्री ने सार्क देशों के प्रमुखों के साथ वर्चुअल शिखर सम्मेलन किया, इसके बाद उन्होंने जी–20 देशों के प्रमुखों के साथ भी वर्चुअल शिखर सम्मेलन किया, इसी के साथ–साथ भारत के विदेश मंत्री श्री एस. जयशंकर ने ब्रिक्स के विदेश मंत्रियों के वर्चुअल सम्मेलन में भी सम्मिलित हुए। इस तरह भारत ने इस महामारी से निपटने के लिए विभिन्न क्षेत्रीय व अंतरराष्ट्रीय मंचों का बहुत अच्छा उपयोग किया जबकि एक समय पर यह मंच विश्व पटल पर बिल्कुल नेतृत्व विहीन लग रहे थे। भारत में कोरोना महामारी से निपटने के लिए न केवल विश्व समुदाय को एकजुट करने का प्रयास किया है बल्कि अपने पड़ोसी देशों व विश्व के अनेक देशों को इस महामारी से निपटने के लिए दवाओं और अन्य उपकरणों के माध्यम से मदद पहुंचाई, भारत ने श्रीलंका को कोरोना वायरस से निपटने के लिए 10 टन चिकित्सा सामग्री, नेपाल को 23 टन आवश्यक औषधि जिसमे हाइड्रोक्सी क्लोरोक्वीन और पेरासिटामोल आदि शामिल हैं व भूटान को व्यापक चिकित्सा आपूर्ति की खेप भेजी है। भारत ने बांग्लादेश को हाइड्रोक्सी क्लोरोक्वीन की 1 लाख गोलियां और 50 हजार सर्जिकल दस्ताने व संयुक्त अरब अमीरात को हाइड्रोक्सी क्लोरोक्वीन 50 लाख टेबलेट प्रदान किए हैं। फिलहाल भारत कोरोना से प्रभावित करीब 85 देशों को सहायता और वाणिज्य के आधार पर हाइड्रोक्सी क्लोरोक्वीन की आपूर्ति करने की प्रक्रिया में है। भारत ने अमेरिका, सेशेल्स और मारीशस समेत म्यामार ब्राजील, इंडोनेशिया जैसे देशों को भी दवा भेजी है इन सभी देशों ने भारत का आभार व्यक्त किया है। भारत ने विश्व समुदाय को चिकित्सा सहायता उपलब्ध कराकर यह सिद्ध करने की कोशिश की है कि वैश्विक स्वास्थ्य को वह वैश्विक मानव अधिकार के रुप में देखता है। इसी के साथ भारत ने कोविड 19 महामारी के दौर में अन्य देशों में फंसे न केवल भारतीयों को निकाला बल्कि अन्य देशों के नागरिकों को भी उनके देश पहुंचाने में मदद की। इस तरह भारत की स्वास्थ्य कूटनीति ने इस बात को स्पष्ट तौर से स्थापित कर दिया है कि वैश्विक परिदृश्य में भारत की कितना महत्वपूर्ण भूमिका है। इस बीच बदलते दौर में दुनिया में आर्थिक संरक्षणवाद जिस तरह बढ़ रहा है उस स्थिति के कोरोना काल में विश्व में भारत को अपनी घरेलू अर्थव्यवस्था में बड़े संरचनात्मक सुधार करने होंगे। आज के विश्व में सफल घरेलू नीति ही विदेश नीति को अधिक ठोस आधार दे सकती है। भारत सरकार को केवल विश्व की शक्ति राजनीति पर ही नहीं बल्कि घरेलू राजनीति की दिशा को स्वस्थ आधार देना ही होगा ।

भारतीयों ने जब गांधी जी के नेतृत्व में अंग्रेजों के विरुद्ध स्वतंत्रता का बिगुल बजाया तब स्वतंत्रता का उनका एक व्यापक संदर्भ था, जिसमें आर्थिक, सांस्कृतिक, सभ्यतागत आजादी तथा मनुष्य की अंतिम मुक्त की स्थिति कायम रखना सन्निहित है। इसी संदर्भ में प्रधानमंत्री मोदी ने देश के समक्ष अपने उद्‌बोधन में आत्मनिर्भरता की इसी विस्तृत अवधारणा को आगे बढ़ाया है और 5 आई (इंटेंट, इंफ्रास्ट्रक्चर, इन्क्लूसिव, इनोवेशन, इन्वेस्टमेंट) फार्मूला के द्वारा उन्होंने लोकल से वोकल की बात करते हुए इसे जीवन का मंत्र बनाने की अपील की। यहां लोकल को अपनाने के साथ उसे बनाने का भाव भी निहित है। हमें लोकल सामान खरीदना है, उसका प्रचार करना है और उस पर गर्व भी करना है। प्रधानमंत्री जी ने स्पष्ट किया कि भारत का संस्कार ऐसा नहीं है कि हमारी आत्मनिर्भरता कभी आत्म केंद्रित नहीं हो सकती। जिस देश की मूल अवधारणा यह हो कि संपूर्ण वसुधा एक परिवार है, जो मानता हो कि पृथ्वी सबकी माता है और सब उसकी संतान हैं, वाह भौगोलिक सीमाओं में होते हुए भी कोई कदम उठाते समय विश्व की चिंता अवश्य करेगा। प्रधानमंत्री मोदी जी का उद्देश्य संकट के समय देशवासियों के अंदर यह आत्मविश्वास भरना है कि यह समय हमारे लिए अपने विचार के अनुरुप भारत बनाने का संकल्प लेकर काम करने का है ताकि हम इतने सक्षम हो सके कि स्वार्थों के टकराव पर आधारित मानवीय विश्व व्यवस्था को भारतीय विचार के अनुरूप मानव कल्याण पर आधारित ढांचे में रूपांतरित करने की भूमिका निभा सकें। जो देश स्वयं ही सक्षम नहीं होगा, जहां के नागरिकों के अंदर अपने लक्ष्य की कल्पना नहीं होगी और उसे पाने के लिए प्राण प्रण से काम करने का भाव नहीं होगा, वह न आंतरिक रूप से मजबूत हो सकता है और न ही उसकी प्रभावी वैसी भूमिका ही हो सकती है।[7]

कोरोना महामारी के दौर में भारत की भूमिका बदली है और उसने कोरोना वायरस की महामारी को लेकर सार्क देशों के बीच सहयोग की जो पहल की और फिर जी–20 देशों को एक साथ लाने में अग्रणी भूमिका निभाई उससे यह स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है कि भारत वैचारिक और राजनीतिक विविधताओं के समीकरण के बीच अपनी भूमिका बहुत अच्छे तरीके से निभा सकता है। भारत को ऐसा प्रयास अपने घरेलू राजनीतिक परिदृश्य में भी करने की आवश्यकता है। इसी के साथ विश्व व्यवस्था, क्षेत्रीय संतुलन और दक्षिण पूर्वी एशियाई देशों[8] एशिया प्रशांत[9] के क्षेत्रों के सागरी संप्रभुता से खिलवाड़ करने वाले चीन के व्यवहार को नियंत्रित करने के लिए भारत द्वारा यथार्थवादी दृष्टिकोण अपनाया गया है, कोरोना महामारी के बीच पिछले माह भारत ने चीन और अन्य पड़ोसी देशों से सीधे प्रत्यक्ष विदेशी निवेश को लेकर अपना सुरक्षा चक्र मजबूत किया। भारत के इस कदम ने चीन को काफी कुपित किया, चीनी दूतावास ने इसकी घोर आलोचना करते हुए इसे डब्ल्यूटीओ के गैर भेदभाव वाले सिद्धांत का उल्लंघन बताया।

कोविड आपदा ने एक ऐसी बदलती विश्व व्यवस्था की दस्तक दे दी है, जहां आरोप–प्रत्यारोप के दौर के बीच पॉलिटिक्स ऑफ जेनेरोसिटी यानी उदारता की राजनीति के जरिए वैश्विक छवि को निर्मित करने के प्रयास तो हो ही रहे हैं साथ ही ताकत की राजनीति के जरिए कोरोना के बाद के काल में अपनी वैश्विक हैसियत को ऊंचा करने का संघर्ष भी देखा जा रहा है। इस आपदा की राजनीति ने अमेरिका की कमजोरी और चीन के गैर जिम्मेदाराना नजरिए को दुनिया के सामने उजागर कर दिया है इससे भारत जैसे उन देशों की वैश्विक भूमिका बढ़ गई है क्योंकी सॉफ्ट पावर के रूप में इनकी छवि भी बेहतर है और हाल के वर्षों में जिन्हें महत्वपूर्ण आर्थिक और तकनीकी ताकत के रूप में भी देखा जाने लगा है।

वैश्विक राजनीति में भारत ने पहलकारी भूमिका की तलाश की है और इसी दिशा में हाल ही में अमेरिका के नेतृत्व में भारत सहित दुनिया के 7 बड़े देशों[10] की बैठक भी हुई, जिसमें कोविड 19 की उत्पत्ति के प्रति पारदर्शिता लाने की मांग की गई, हालांकि इसका मुख्य फोकस कोविड 19 को लेकर चीन की नकारात्मक भूमिका की आलोचना करना था, मगर भारत बखूबी जानता है कि इस महामारी के चलते अमेरिका कमजोर हुआ है और अमेरिका के कमजोर होने से महत्वाकांक्षी चीन की वर्चस्ववादी नीतियों को और अधिक बढ़ावा मिलेगा। वहीं पिछले कुछ वर्षों से जिस प्रकार चीन भारत को उसकी सीमाओं व पड़ोस में घेरने की नीति अपना रहा है ऐसे में चीन को मिलने वाली यह बढ़त भारत के सामरिक हितों को नुकसान पहुंचा सकती है इसलिए भारत ने वैश्विक गठजोड़ की नई राह पकड़ी है। इसके लिए भारत अपनी छवि को सॉफ्ट पावर के रुप में और अधिक मजबूत आधार देने

की कोशिश में जुटा है, जहां मेडिकल डिप्लोमेसी के जरिए भारत सार्क देशों को एक बार फिर एक मंच पर लाने में कामयाब होता दिख रहा है वहीं पाकिस्तान के इस मंच पर भी गैर जिम्मेदाराना व्यवहार को निशाना बनाने के जरिए भारत में दक्षिण एशियाई देशों को यह संदेश दे दिया कि भारत के लिए उसका पड़ोस प्रथम है। पड़ोसी देशों में भारत की बढ़ती स्वीकार्यता का एक बड़ा उदाहरण नेपाल द्वारा 17 मई को भारत सरकार द्वारा दिए गए स्वास्थ्य सहायता के लिए धन्यवाद प्रेषण के रुप में देखा जा सकता है यह भारत की परंपरागत बिग ब्रदर की छवि को बदलने का और पड़ोस प्रथम नीति को अधिक प्रभावी बनाने का सर्वोत्तम अवसर है। अफगानिस्तान को दी गई चिकित्सीय सहायता भारत की प्रोएक्टिव विदेश नीति का ही प्रमाण है। इस महामारी के समय एक तरफ जहां तालिबान ने कुछ दिन पहले कहा था कि भारत पिछले चार दशक से अफगानिस्तान में नकारात्मक भूमिका निभाता आया है तो वहीं अफगानिस्तान सरकार ने तालिबान को इसका जवाब देते हुए कहा है कि भारत वह देश है जिसने हमें सबसे ज्यादा दान दिया है और सबसे ज्यादा मदद की है। वास्तव में भारत ने अपने बुद्धिमत्ता पूर्ण कदमों से उन राष्ट्रों का विश्वास जीता है जो भारत का समय समय पर अवसरवादी मानसिकता के कारण विरोध करते रहे है।

किसी भी अंतरराष्ट्रीय परिदृश्य में अपने राष्ट्रीय हितों की अपेक्षित पूर्ति किसी देश की विदेश नीति की सफलता का पैमाना मानी जाती है, कोरोना संकट के बीच यह प्रश्न उठना भी स्वाभाविक है कि भारतीय विदेश नीति इससे कैसे प्रभावित हुई है और इसने वैश्विक, क्षेत्रीय राजनीति को किस प्रकार प्रभावित किया है। कोरोना जनित कारणों से चीन को पीछे छोड़ अमेरिका भारत का सबसे बड़ा व्यापारिक साझेदार बन गया तो उसके जैसे देशों के साथ मिलकर भारत ने संदेश दे दिया है कि अब चीन की अनैतिक चालों के समक्ष मूकदर्शक बनकर नहीं रहा जा सकता। तमाम बदलते समीकरणों के बीच कोविड 19 का असर भारत की विदेश नीति में कई रूपों में पड़ सकता है।

पहला, वंदे भारत जैसे मिशन ने भारत के सबसे बड़ी कूटनीतिक संपदा यानी भारतीय डायस्पोरा में भारत के प्रति निष्ठा का भाव मजबूत किया है और विश्व में फंसे भारतीयों को वापस लाने का काम केंद्र सरकार ने कुशलता पूर्वक संपन्न किया है। दूसरा, चीन के प्रति विश्व में बढ़ते घृणा का भाव भारत के लिए बड़ा अवसर है कि वह आर्थिक संबंधों में चीन का विकल्प बन सके, ऐसे में जब विश्व की अधिकांश कंपनियां चीन से बाहर निकल रही हैं तो भारत उनके लिए बेहतर गंतव्य स्थल के रुप में खुद को स्थापित करने में लगा है। भारत द्वारा रक्षा कंपनियों के लिए विदेशी प्रत्यक्ष निवेश की सीमा को बढ़ा दिया गया है तो दूसरी तरफ भारतीय प्रधानमंत्री द्वारा आत्मनिर्भर भारत पर दिया जाने वाला फोकस भी इसी उद्देश्य से प्रेरित है। तीसरा, वर्तमान आपदा के दौरान भारत की विदेश नीति में एक और महत्वपूर्ण बात जो देखने में आई है वह है, गुटनिरपेक्ष देशों के संगठन का प्रभावी इस्तेमाल, भारत की कूटनीतिक पहुंच और मानवतावादी प्रतिक्रिया को विश्व समुदाय के समक्ष रखने के लिए करना। भारतीय प्रधानमंत्री पर वर्ष 2016 और 2019 के गुटनिरपेक्ष आंदोलन के सम्मेलन में भाग नहीं लेने और उसकी उपेक्षा के आरोप लगाए गए थे, लेकिन अब पीएम मोदी द्वारा इस महामारी से निपटने के लिए इसके वर्चुअल सम्मिट को महत्व दिया गया है और गुटनिरपेक्ष आंदोलन के 59 देशों को चिकित्सीय सेवाओं की आपूर्ति भी की है।

चौथा पड़ाव, चुनौतियों से जुड़ा है मोदी सरकार के दौर में खाड़ी देशों सहित अन्य मुस्लिम देशों के साथ रिश्ते मजबूत हो रहे थे लेकिन हाल ही में दिल्ली में जमात प्रकरण और खाड़ी देशों में सोशल मीडिया पर मुस्लिम विरोधी बयानों ने संबंधों में कुछ खटास ला दी है, दूसरी ओर चीन की नीतियां अधिक आक्रामक हो रही हैं। भारत का अमेरिका की तरफ दिखने वाले झुकाव भारत और चीन के बीच आमने-सामने के संघर्ष को बढ़ावा दे सकता है। भारतीय अर्थव्यवस्था में आ रही गिरावट की वजह से दुनियाभर में भारत द्वारा संचालित विकास परियोजनाओं को यह महामारी प्रभावित कर सकती है। भारत की तृतीय विश्व के देशों में एक लीडर के रूप में उसके प्रोजेक्ट का विशेष महत्व है। एशिया अफ्रीका ग्रोथ कॉरिडोर, श्रीलंका में कंटेनर टर्मिनल के निर्माण, बांग्लादेश और लैटिन अमेरिकी देशों में ऊर्जा परियोजनाएं विभिन्न देशों में मानवीय आधार पर बुनियादी ढांचा कार्यक्रमों के वित्तपोषण पर प्रभाव पड़ सकता है। इसके बावजूद भारत ने अपना मानवतावादी दृष्टिकोण नहीं छोड़ा वहीं इस बात की आशंका से इनकार नहीं किया जा सकता कि चीन कोरोना प्रभावित देशों को वित्तीय लालच देकर अपना वर्चस्व बढ़ाने का पुनः प्रयास करेगा।

यह बड़े दुर्भाग्य की बात है कि नए कोरोना वायरस की महामारी ने अंतरराष्ट्रीय समुदाय पर उस वक्त हमला बोला जब वह अपने सबसे मुश्किल दौर से गुजर रहा था। यह वह समय था, जब राष्ट्रीय राजनीतिक हित और आर्थिक संकीर्णता आपस में मिलकर एक वैश्विक गांव की परिकल्पना का गला घोट रहे थे जैसा कि प्रोफेसर श्रीधर वेंकट पुरम बिल्कुल सही लिखते हैं और शशि थरूर और समर सरीन ने अपनी किताब दि न्यू वर्ल्ड डिसऑर्डर एंड द इंडियन इंपरेटिव में लिखते है कि हमारा एतराज इस नई विश्व व्यवस्था की वकालत करने वाले मूल्य और नियमों को लेकर नहीं है बल्कि हमारी आपत्ति उन तरीकों और माध्यमों को लेकर है जिसे याद करके इस तरह से इस्तेमाल किया गया है कि मानव दुनिया में छल किया जा रहा हो। वैसे तो अपनी किताब में उन्होंने तमाम वैश्विक संकेतों का विश्लेषण किया है परंतु इसमें से दो संकटों का मौजूदा महामारी के संदर्भ में विशेष महत्व है। पहली बात तो यह है कि अंतरराष्ट्रीय संगठनों की वैधानिकता में उत्तरोत्तर गिरावट आती जा रही है, इस वैश्विक महामारी से निपटने के लिए विश्व स्वास्थ्य संगठन ने शुरुआती दिनों में जो प्रयास किए वह बहुत जिम्मेदारी पूर्ण नहीं दिखा। अगर विश्व स्वास्थ्य संगठन ने चीन की बातों पर नरमी नहीं बरती होती तो यह महामारी इतनी तेजी से फैलने में सफल नहीं होती। हमारे कई वैश्विक संगठन राजनीतिकरण, छल, प्रपंच और प्रतिनिधित्व की कमी के संकट से जूझ रहे हैं उनका मकसद ही खत्म हो गया है, उनके पास स्वतंत्र नेतृत्व का भी अभाव है। दूसरे वैश्विक संकट का संबंध राष्ट्रीय संप्रभुता से है। आज पूरी दुनिया में राष्ट्रवाद की लहर चल रही है इसका नतीजा यह हुआ है कि विश्व मंच पर हर राष्ट्र अपनी संप्रभुता को उग्र तरीके से प्रस्तुत कर रहा है।

भारत को कोरोना महामारी के संकट को संभावना में परिवर्तित करने के लिए विश्व स्तर पर प्रयास के साथ-साथ घरेलू स्तर पर भी अनेक प्रयास करने होंगे। 1. कृषि जो हमारी अर्थव्यवस्था की रीढ़ है उसमें संलग्न कृषकों तथा मजदूरों की समस्याओं का दीर्घकालिक समाधान करना होगा तथा प्रवासी मजदूरों के लिए रोजगार के अवसर तलाशने होंगे। 2. मानव तथा मानव के बीच बढ़ती दूरी को, चाहे वह धार्मिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, सामाजिक जो भी हो, खत्म करने का प्रयास करना होगा। जिससे कि वे एकजुट होकर समृद्ध भारत का निर्माण कर सकें। 3. जनसंख्या का अधिक के भारत के समक्ष सबसे बड़ी चुनौती है, इसके समाधान हेतु सभी भारतीयों को विश्वास में लेकर एक दीर्घकालिक कार्ययोजना बनाकर इसका समाधान आवश्यक है। 4. वर्तमान में विकास कि जो धारा नगरों की ओर अधिक प्रवाहित है, उसमें विकास के लिए गांव तथा नगरों के बीच संतुलन बनाना होगा ताकि भारत की परंपरागत संस्कृति के पतन को रोका जा सके, क्योंकि किसी भी देश के लिए उसकी संस्कृति सबसे बड़ी धरोहर होती है। 5. हस्त कौशल पर बल, समग्र स्वदेशी परिवेश का निर्माण, आध्यात्मिक पर्यावरण का निर्माण तथा स्वावलंबन की धरा पर आत्मनिर्भर आर्थिक पोषण पर बल देकर भारत घरेलू चुनौतियों से निपट सकता है। 6. एक समुदाय के रुप में हमें खुद को परिस्थितियों से निपटने के लिए तैयार रखना होगा, हमें ऐसी शिक्षा मिलनी चाहिए जो हमें बुनियादी आवश्यकताओं के लिए आत्मनिर्भर बनाए, गांधीजी की बुनियादी शिक्षा का प्रारूप न केवल इस समय अपितु सामुदायिक आत्मनिर्भरता के लिए बहुत उपयोगी है।

भारत का यह उत्तरदायित्व है कि वह वैश्विक सहयोग के नैतिकता को पुनर्जीवित करें। इस समय दुनिया अलग-अलग प्रभाव क्षेत्रों में बंटती जा रही है। जहां पर कुछ देश मिलकर एक दूसरे के साथ विशेष संबंध बना रहे हैं। ऐसे में किसी वैश्विक संकट का सामना करने की हमारी क्षमता ही सीमित होती जा रही हैं। भारत ने कोरोना वायरस की महामारी को लेकर सार्क देशों के बीच सहयोग की जो पहल की और जी-20 देशों को एक साथ लाने में अग्रणी भूमिका निभाई उससे यह स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है कि भारत वैचारिक और राजनीतिक विविधताओं के समीकरणों के बीच अपनी भूमिका बहुत अच्छे तरीके से निभा सकता है। भारत का ऐसा प्रयास अपने घरेलू राजनीतिक परिदृश्य में भी करने की आवश्यकता है। बहुत से देशों को इस महामारी से एक अवसर मिल गया है कि वह विश्व समुदाय के लिए अपने दरवाजे बंद कर ले बाकी दुनिया से खुद को काट दे। भारत को ऐसी आकांक्षाओं का दमन करना चाहिए, इस मुश्किल समय में भारत का नेतृत्व और वैश्विक प्रशासन को लेकर नई प्रतिबद्धताए दुनिया के लिए एक ऐसी वैक्सीन का काम करेगी जो अंतरराष्ट्रीय समुदाय को एक नए दशक की चुनौतियों का सामना करने की शक्ति प्रदान करेगी।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1 *द्वितीय महायुद्ध के बाद विश्व में दो महा शक्तियां रह गई और इन दो महाशक्तियों के आपसी संबंधों को अभिव्यक्त करने वाला सबसे अधिक उपयुक्त शब्द शीत युद्ध है जो युद्ध ना होते हुए भी युद्ध की परिस्थितियों को बनाए रखने की कला थी जिसमें प्रत्येक विषय पर विश्व शांति के दृष्टिकोण से नहीं बल्कि अपने संकीर्ण स्वार्थों को ध्यान में रखकर विचार और कार्य किया जाता था। (डॉ. बी. एल. फड़िया, अंतरराष्ट्रीय राजनीति, साहित्य भवन पब्लिकेशंस, 2002 दसवां संशोधित संस्करण, पृष्ठ 25)*

2 *उन देशों के समूह को तृतीय विश्व कहा जाता है जो न तो नाटो देशों के साथ थे और न ही सोवियत गुट के साथ। संयुक्त राज्य अमेरिका, पश्चिमी यूरोप के देश तथा उनके साथ के देशों को प्रथम विश्व कहते थे, सोवियत संघ, चीन, क्यूबा तथा उनके सहयोगियों को द्वितीय विश्व कहते थे। विश्व में यह संकल्पना शीत युद्ध के समय आई थी।*

3 *गुटनिरपेक्ष आंदोलन के उदय के पीछे मूल धारणा यह थी कि साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद से मुक्ति पाने वाले देशों को शक्तिशाली गुटों से अलग रखकर उनकी स्वतंत्रता को सुरक्षित रखा जाए। भारत के जवाहरलाल नेहरू, मिस्र के राष्ट्रपति नासिर तथा युगोस्लाविया के मार्शल टीटो ने इस आंदोलन की शुरुआत की। (डॉ. बी. एल. फड़िया, अंतरराष्ट्रीय राजनीति, पूर्वो, पृष्ठ 134)*

4 *सोवियत संघ क्षेत्रफल की दृष्टि से विश्व का सबसे बड़ा देश था तथा उसकी सीमाओं में 15 संघीय गणतंत्र, 20 स्वायत्तशासी गणतंत्र तथा 8 स्वायत्तशासी क्षेत्र सम्मिलित थे, किंतु 26 दिसंबर, 1999 को सोवियत संघ विघटित हो गया और इस घोषणा से सोवियत संघ के भूतपूर्व गणतंत्र को स्वतंत्र मान लिया गया। अंतरराष्ट्रीय संधियों में रुस को सोवियत संघ के उत्तराधिकारी के रुप में मान्यता दी गई।*

5 *2011 की जनगणना के अनुसार भारत का जनसंख्या घनत्व 382 वर्ग मीटर है।*

6 *डॉ. शेखर मांडे, महानिदेशक, वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली दैनिक जागरण, दिनांक 10 मई, 2020, पृष्ठ 13*

7 *श्री अवधेश कुमार, नवभारत टाइम्स, दिनांक 21 मई, 2020, प्रश्न 8*

8 *दक्षिण पूर्व एशिया या दक्षिण पूर्वी एशिया एशिया का एक उपभाग है, जिसके अंतर्गत भौगोलिक दृष्टि से चीन के दक्षिण, भारत के पूर्व, न्यू गिनी के पश्चिम और ऑस्ट्रेलिया के उत्तर के देश आते हैं। दक्षिण पूर्व एशिया को दो भौगोलिक भागों में बांटा जा सकता हैः मुख्यभूमि दक्षिण पूर्व एशिया, जिसे इंडोचायना भी कहते हैं, के अन्दर कंबोडिया, लाओस, बर्मा (म्यांमार), थाईलैंड, वियतनाम और प्रायद्वीपीय मलेशिया आते हैं और समुद्री दक्षिण पूर्व एशिया, जिसमें ब्रुनेई, पूर्व मलेशिया, पूर्वी तिमोर, इंडोनेशिया, फिलीपींस, क्रिसमस द्वीप और सिंगापुर शामिल हैं।*

9 *एशिया–प्रशांत या एशिया प्रशांत दुनिया का वह हिस्सा हैं जो पश्चिमी प्रशांत महासागर के पास या निकट हैं। इस क्षेत्र का आकार संदर्भ के अनुसार बदलता रहता हैं, लेकिन आम तौर पर इस में पूर्व एशिया, दक्षिण एशिया, दक्षिण पूर्व एशिया और ओशिआनिया के कई क्षेत्र शामिल होते हैं।इस शब्द में रुस (उत्तरी प्रशांत पर) और पूर्वी प्रशांत महासागर के तट पर स्थित महाअमेरिका के देश भी शामिल हो सकते हैं। उदाहरण के लिए, एशिया–पसिफ़िक आर्थिक सहयोग में कनाडा, चिली, रूस, मैक्सिको, पेरु और संयुक्त राज्य अमेरिका शामिल हैं। वैकल्पिक रुप से, इस शब्द में कभी कभी पूर्ण एशिया और ऑस्ट्रेलेशिया के साथ साथ छोटे/मध्यम/बड़े प्रशांत द्वीप राष्ट्र (एशिया प्रशांत और ऑस्ट्रेलेशियाई महाद्वीप) भी शामिल होते है।*

10 *मई माह में कोरोना की पारदर्शी जांच हेतु चीन को कड़ा संदेश देने के लिए अमेरिका के विदेश मंत्री माइक पॉम्पियो ने विश्व के 7 बड़े देशों के साथ वर्चुअल बैठक की। जिसमें भारत के अलावा इजराइल, जापान, दक्षिण कोरिया, ब्राजील और ऑस्ट्रेलिया के विदेश मंत्रियों ने प्रतिभाग किया।*

भारत–नेपाल : एक–दूसरे के पूरक

अनिल सरोवा
सहायक आचार्य, राजकीय कला महाविद्यालय, सीकर

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

नेपाल धरती पर एक ऐसा देश, जिसका नाम लेते ही भारतीयों के मन–मस्तिष्क में एक स्नेह का भाव आता है। इसीलिए भारत और नेपाल के बीच सीमा सुरक्षा कोई मुद्दा नहीं रहा। यहाँ आधुनिक नेपाल के निर्माता 'पृथ्वी नारायण शाह' के कथन का उल्लेख करना भी आवश्यक है, जिन्होने नेपाल के परराष्ट्र सिद्धान्त के निर्धारण के अवसर पर कहा था कि– ''यह देश चट्टानों के बीच खिले हुए फूल के समान है। हमें चीन के साथ मित्रता पूर्ण संबंध रखने चाहिए, इसके साथ ही दक्षिण समुद्रों के शासकों से भी सुन्दर सम्बन्ध होने चाहिए। परन्तु दक्षिण वाले बहुत चतुर है।'' अर्थात् भारत के साथ सम्बन्ध अच्छे तो रखने है पर सर्तक भी रहना है।

संकेताक्षर : *परराष्ट्र, साम्राज्यवाद, धर्म–संस्कृति, खुली सीमाएं, पारस्परिक हित नेपाल भारत।*

मेरी दृष्टि में पृथ्वी नारायण शाह का आशय (उपर्युक्त) भारत के चक्रवती सम्राटों से था, जिन्होने प्राचीन व मध्यकाल में अपने बल और बुद्धि से संसार को चकित किया था।[1] पर सन् 1947 के बाद का भारत पड़ौसी देशों की सीमाओं का सम्मान करता है। जब तक भारत में ब्रिटिश साम्राज्यवादी शक्ति विराजमान थी, तब तक नेपाल की सम्प्रभुता, समानता और स्वाधीनता का कोई विशेष अर्थ नहीं था। नेपाल भले ही भारत की तरह पराधीन न रहा हो, किंतु अपना स्वतंत्र अस्तित्व बनाए रखने के लिए वह ब्रिटिश भारत की सरकार की कृपा पर निर्भर था। अनेक साधन–सम्पन्न व प्रशिक्षित नेपाली स्थायी प्रवासी के रुप में भारत में रहते और उनके वंशजों ने भारत की आजादी की लड़ाई में सहर्ष हिस्सा लिया। 1942 में लोकनायक जयप्रकाश नारायण आदि ने नेपाल में शरण ली और बाद के वर्षों में कोइराला बंधुओं ने नेपाली कांग्रेस की स्थापना भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की प्रेरणा और समर्थन से ही की। इन जनतांत्रिक व समाजवादी तत्वों को नहेरूजी ने निरंतर प्रोत्साहित किया। यह इस प्ररेणा और प्रोत्साहन का ही प्रभाव था कि राजनीतिक चेतना वाले नेपालियों ने अपने देश के सामाजिक व राजनीतिक जीवन में राणा वंश की सामंतशाही की जकड़ को दूर करने की रणनीति बनाई।[2] दोनों राष्ट्रों की सीमाएँ उसी तरह खुली हुई है, जैसे एक राष्ट्र के दो प्रांतों की सीमाएँ खुली रहती है। दोनों राष्ट्रों के लाखों नागरिक एक–दूसरे के यहाँ ठाठ से रहते हैं, काम करते हैं, अधिकार और सुविधाएँ पाते हैं। दोनों राष्ट्रों के अधिकांश नागरिकों के धर्म, संस्कृति, परंपरा, लिपि, भाषा आदि में अद्भुत समानता है। दोनों के आर्थिक और सामरिक हितों में भी विलक्षण समन्वय है। यदि नेपाल के लोग भारत को अपना पुण्यभूमि समझते हैं तो भारत के लोग भी नेपाल को अपना पूण्यंभू मानते है।[3] इस दृष्टि से दोनों देश एक–दूसरे का तन–मन है।

ध्यान रहे, स्वतंत्र भारत ने नेपाल के भविष्य में रूचि लेना प्रारंभ किया। 1947 में नेपाल के प्रधानमंत्री ने एक ऐसे व्यक्ति की मांग भारत सरकार से ही जो नेपाल के लिए एक संविधान बनाने में मदद करें। नेपाल की मदद के लिए एक वरिष्ठ भारतीय राजनीतिज्ञ श्री श्रीप्रकाश को नेपाल भेजा। उनकी सहायता से नेपाल के लिए एक संविधान का प्रारुप तैयार हुआ। लेकिन यह लागू नहीं हो सका। राजनैतिक दृष्टि से नेपाल मे दृढ़ता लाने के लिए यह आवश्यक था कि नेपाल में पुरानी सामंतशाही का अंत कर लोकतंत्रात्मक व्यवस्था स्थापित हो। इसके लिए नेपाल कांग्रेस के नेता बहुत दिनों से सक्रिय थे और भारत सरकार उसके साथ सहानुभूति रखती थी। ब्रिटिश काल में भारत और नेपाल

के बीच जो संधि हुई थी उसको भारत सरकार स्वयं नहीं मान सकती थी क्योंकि उसमें साम्राज्यवाद की बू थी। भारत सरकार नये सिरे से नेपाल के साथ एक सन्धि करना चाहती थी।

उधर नेपाल के दूसरे महत्वपूर्ण पड़ौसी चीन के गृह–युद्ध का फैसला अन्तिम रूप से हो गया। कोमिन्तांग की पराजय के बाद यहाँ कम्युनिस्ट शासन स्थापित हुआ। इस हालात में भारत सरकार ने अपनी उत्तरी सीमा पर स्थित राज्यों के साथ नये संबंध स्थापित करने की ओर विशेष ध्यान दिया। 1949–50 ईस्वी में सिक्किम और भूटान के साथ उसने नई संधियाँ थी। लेकिन नेपाल की स्थिति सिक्किम और भूटान से बिल्कुल भिन्न थी, क्योंकि नेपाल भारत का संरक्षित राज्य न होकर एक स्वतंत्र देश था। अतएंव कुछ समय तक भारत सरकार के इरादों के बारे में नेपाल सरकार अत्यंत शंकालु रही[4] जबकि भारत के इरादे नेक थे।

एक महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि नेपाल और भारत को एक–दूसरे से पृथक करने वाली कोई प्राकृतिक सीमा नहीं है। निकटतम पड़ौसी होने के नाते दोनों के हित एक–दूसरे से बंधे हुए हैं। भारत–नेपाल की प्रभुसत्ता का पूर्ण सम्मान करता है, परंतु साथ ही वह इस बात को भी बर्दाश्त नहीं कर सकता कि विश्व की कोई अन्य शक्ति नेपाल को अपनी आक्रमणकारी लिप्सा का शिकार बनाए अथवा उसे अपने सैनिक अड्डे के रूप में इस्तेमाल करे।[5]

परतंत्र भारत की जो संधि नेपाल के साथ हुई थी, वह स्वतंत्रता के पश्चात् उपयुक्त नहीं थी। इसलिए भारत सरकार ने नेपाल की सरकार के सम्मुख एक नई संधि का प्रस्ताव रखा। परंतु कोई ठोस परिणाम नहीं निकला। दूसरी ओर चीनियों की गतिविधियाँ तिब्बत में तेज हो रही थी और नेपाल में उनके प्रभाव के बढ़ने का खतरा था, इसलिए भारत सरकार उनके प्रति उदासीन नहीं रह सकती थी। इस संदर्भ में 17 मार्च, 1950 को भारतीय संसद में पंडित नेहरू ने एक वक्तव्य में कहा कि – ''भारत एवं नेपाल के बीच कोई सैनिक समझौता नहीं है, फिर भी भारत सरकार द्वारा किसी भी ओर से नेपाल पर आक्रमण निश्चित रूप से भारत की सुरक्षा के लिए खतरा होगा।'' इसके बाद भी जवाहरलाल नेहरू के निमंत्रण पर अप्रैल, 1950 में नेपाल के प्रतिनिधि के रूप में जनरल विजय शमशेर और एन.एम. दीक्षित ने भारत की यात्रा की। हमारे प्रधानमंत्री की उनसे लंबी वार्ता हुई।[6] जुलाई, 1950 ई. में भारत और नेपाल के बीच में दो संधियाँ हुई एक संधि राजनैतिक थी, तो दूसरी व्यापारिक थी।

काठमाण्डू में हुई राजनीतिक संधि में कहा गया कि–

''दोनों देश भारत और नेपाल एक–दूसरे के साथ सदा के लिए मित्र बन कर रहेंगे। दोनों देश एक–दूसरे की सम्प्रभुता, प्रादेशिक अखंडता और स्वतंत्रता का सम्मान करेंगे। नेपाल को अपनी सुरक्षा के लिए भारत से शस्त्र आयात करने की सुविधा रहेगी। दोनों देशों के नागरिकों का एक–दूसरे देश में व्यवसाय और उद्योगों में काम करने के लिए, सम्पत्ति रखने के लिए आवास और आने–जाने के लिए उन्हीं के नागरिकों जैसी सुविधा प्राप्त होगी। इसके साथ–साथ नेपाल के तत्कालीन प्रधानमंत्री मोहन शमशेर ने भारत सरकार को एक पत्र भी लिखा–इसमें कहा गया– ''कोई भी देश किसी अन्य देश के द्वारा एक–दूसरे की सुरक्षा के प्रति खतरे को सहन नहीं करेगा और ऐसे खतरों का सामना करने के लिए दोनों देशों के शासन सुरक्षात्मक उपायों पर तुरंत विचार–विमर्श करेंगे।

व्यापारिक संधि के अंतर्गत भारत और नेपाल ने एक–दूसरे को बहुत–सी आर्थिक सुविधाएँ प्रदान की। नेपाल ने विकास के अनेक कार्य भारत को सौंपे, जैसे–काठमाण्डू में हवाई अड्डे का निर्माण तथा काठमाण्डू से रक्सौल तक एक पक्की सड़क का निर्माण। भारत ने नेपाल को पहले आसान शर्तों पर ऋण दिया और फिर इस ऋण का अनुदान के रूप में बदल दिया।

इन संधियों के द्वारा भारत और नेपाल में मधुर संबंधों के नये अध्याय का श्री गणेश हुआ।

निष्कर्ष

एक छोटे देश को अपने बड़े पड़ौसी देश के बारे में मानसिक तौर पर आशंका रहती ही है। नेपाल चीन से तो डरता था लेकिन भारत की ओर से वह बेफ्रिक था। भारत और नेपाल के लोगों का आपस में घनिष्ठ संबंध था और भारत द्वारा नेपाल पर आक्रमण किए जाने की बात सोची भी नहीं जा सकती थी और न ही आज व भविष्य में सोची जा सकती है। भारत की अपनी सुरक्षा के लिए नेपाल की स्थिरता और सुरक्षा बहुत आवश्यक है और यही बात दूसरी ओर भी लागू होती है। वर्तमान में नेपाल का नेतृत्व चीन के हाथों खेल रहा है जो कि एक अशुभ संकेत है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. डॉ. एस.पी. सिंहल – ''भारत की विदेश–नीति'', पृष्ठ संख्या 185
2. डॉ. पुष्पेश पंत व श्रीपाल जैन – ''भारत विदेश–नीति, नए आयाम'', पृष्ठ संख्या 109.
3. डॉ. वेद प्रकाश वैदिक – ''महाशक्ति भारत'', पृष्ठ संख्या 337.
4. डॉ. दीनानाथ वर्मा – ''अन्तर्राष्ट्रीय संबंध'', पृष्ठ संख्या 425.
5. दिनेश कुमार चतुर्वेदी – ''अन्तर्राष्ट्रीय संबंध'', पृष्ठ संख्या 160.
6. *The Journal of Defense Studies, Vol. 6 – Page No. 126.*

ISSN 2277-5587

स्वाधीनता समर में बुंदेलखंड (छतरपुर जिले के संदर्भ में)

डॉ. चित्रगुप्त
झांसी (उत्तरप्रदेश)
श्री शत्रुघ्न कुमार खरे
शोधार्थी, महात्मा गांधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय, चित्रकूट (मध्यप्रदेश)

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

भारतीय स्वाधीनता की प्रथम चिंगारी जो सन 1857 में प्रज्ज्वलित हुई उसने भारत के हृदय प्रदेश बुंदेलखंड क्षेत्र को भी अपने आगोश में समेट लिया यह क्रांति सर्वजनों की क्रांति थी। क्रांति का सूत्रपात अंग्रेजों के शोषण, अत्याचार एवं उनकी नीतियों, खासतौर पर साम्राज्यवादी नीति के नाम पर नैतिक और अनैतिक गतिविधियों के विरुद्ध ही हुआ था। जहाँ इस क्रांति का शोला अंतिम मुगल बादशाह बहादुर शाह जफर था इस क्रांति के जनक मंगल पांडे थे जिन्होंने भारतीय सैनिकों में कारतूसों के नाम पर विद्रोह किया। यही विद्रोह बढ़ते बढ़ते उत्तर भारत के बुंदेलखंड क्षेत्र में व्यापक रुप से फैला। 1857 की क्रांति में बुंदेलखंड के जिलों में छतरपुर जिले के स्वाधीनता संग्राम के इतिहास की रुपरेखा निश्चित की जा सकती है। इसी प्रकार इन रियासतों के कार्यकर्ताओं के द्वारा ब्रिट्रिश इलाकों एवं अन्य देशी रियासतों के स्वाधीनता संग्राम में योगदान की भूमिका को स्मरण रखना होगा। बुंदेलखंड में झांसी की रानी लक्ष्मीबाई, बानपुर के राजा मर्दनसिंह, विजय राघवगढ़ के राजा सरजूप्रसाद, जैतपुर के राजा परीक्षत, रनवांकुरे दीवान देशपत, शाहगढ़ के राजा वखतवली, क्रांतिकारी चंद्रशेखर आजाद, पण्डित परमानन्द आदि ने जो स्वाधीनता की मशाल प्रज्ज्वलित की उसकी रोशनी से छतरपुर जिला भी अप्रभावित नहीं रह सका।

संकेताक्षर : *स्वाधीनता, बुंदेलखण्ड, छतरपुर, 1857 का विद्रोह, बुंदेला विद्रोह, चन्द्रशेखर आजाद, देशपत।*

10 मई 1857 की क्रांति जिसने हिंदुस्तानियों का वह जज्बा कायम रखा है कि वह अपनी आजादी के काम करने के लिए और उसे पाने के लिए अपनों को से कितनी दूर जा सकते हैं हिंदुस्तान का हर एक आदमी अपनी धरती अपने देश अपने वतन पर से कितना प्यार करते हैं और किस सीमा तक जाकर कीमत चुका सकता है 1857 को वर्ष भारतीय इतिहास में स्वर्ण अक्षरों में लिखा जाने वाला वर्ष है और एक क्रांतिकारी घटना का साक्षी भी है जब भारत के सैनिक शहंशाह कामगार जिम्मेदार एवं आम जनता हिंदू-मुसलमान सब एक साथ ब्रिटिश अत्याचारों के विरुद्ध खड़े हुए थे इसलिए खड़े हुए थे कि तीसरे धर्म के विरुद्ध नहीं लड़ रहे हैं बल्कि इसलिए कि उन्हें स्वाधीनता और स्वाभिमान प्रिय था यह भी जानते थे कि यह लड़ाई एक अति पुरातन देश की संस्कृति संस्कार एवं स्वाभिमान को बचाने के लिए आवश्यक है भारत एक ऐसा देश है जिस के जीने और रहने के लिए अपने स्वतंत्र रुप है 1857 के हमारे तेजस्वी पुरखों ने जिनकी याद हमारी चेतना से धूमिल होती है जा रही है जिन्होंने आजादी की जो मशाल जलाई थी उसमें महारानी लक्ष्मीबाई, तात्या टोपे, मंगलपांडे तो थे ही लेकिन ऐसे अगिनत चेहरे भी थे जो इतिहास के पन्नो में सिमट कर रह गए है अगर यह वीरांगना होती तो क्या आजादी की पताका को लहराना संभव होता अगर आजादी के मतवाले अपनी जान हथेली पर लेकर इनके साथ ना निकल पड़े होते भारत में सन 1857 में ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध जन आंदोलन हुआ बुंदेलखंड के जिलों एवं रियासतों पर भी इस आंदोलनों का असर पड़ा तथा बुंदेलखंड इस विद्रोह से अछूता नहीं रह सका इस भूभाग में छतरपुर जिले के देसी रियासतों में अलीपुरा गरौली लोड़ी गौरहारी लुगासी, बिजाबर आलमपुर आदि प्रमुख रियासतें थी राजा और जमीदारों को ब्रिटिश सरकार ने अपने नियंत्रण में लेकर उन पर कई बंदिश लगा दी और इससे राजाओं जमीदारों में असंतोष फैल गया और यह असंतोष एक ज्वाला के रूप में प्रस्फुटित हुआ।

स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास को हम तीन भागों में विभक्त कर सकते हैं पहला चरण 1757 से 1857 तक दूसरा चरण 1857 से 1905 तक तीसरा चरण 1950 से 1947 तक इन तीन चरणों की अवधि मैं अनेक सशस्त्र क्रांति हुई स्वाधीनता आंदोलन हुआ, और अतः पूर्ण आजादी की प्राप्ति हुई 1757 से 1950 तक की आजादी की लड़ाई में हिंसात्मक और अहिंसात्मक दोनों रूप से लड़ी गई थी भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में दो तिहाई भाग हिंसात्मक रहा तथा शेष एक तिहाई भाग महात्मा गांधी और कांग्रेस के नेतृत्व में अहिंसात्मक रूप से लड़े गए थे छतरपुर जिले के स्वतंत्रता संग्राम आंदोलन पर दृष्टि डालें तो पता चलता है कि इस प्रसून धारा पर भारतीय स्वाधीनता समर के प्रथम चरण में ही महत्वपूर्ण योगदान दिया है[1] सागर और नर्मदा क्षेत्र में जमींदारों ने तथा मुखियाओं के राजनीतिक सामाजिक और आर्थिक विस्थापन के फल स्वरुप 1842 में अंग्रेजों के विरोध में जो पहली चिंगारी भड़की उसे बुंदेला विद्रोह कहा जाता है 1842 के प्रारंभ में सागर जिले के उत्तर में प्रभावशाली ठाकरों चंद्रपुर के जवाहर जवाहर सिंह और नाराहट के मधुकर शाह को सागर के सिविल कोर्ट ने आपराधिक राशि का भुगतान करने की डिग्री दे दी थी। दोनों ठाकुरों ने सरकारी फरमान की अवहेलना की और 8 अप्रेल 1842 को नाराहट में पुलिस थाने पर हमला कर विद्रोह की शुरुआत कर दी और इस विद्रोह में बुंदेलखंड के बेदखल प्रमुख भी इसमें शामिल हो गए और छतरपुर जिले के देसी रियासतों ने इस विद्रोह में महत्वपूर्ण योगदान दिया और यह वह स्थान है जिन्होंने अट्ठारह सौ सत्तावन के महाविलप्व में अग्रणी भूमिका निभाई थी।[2] देसी राज्यों विलय तथा विंध्य प्रदेश के निर्माण के कारण बुंदेलखंड के भूभाग की स्थिति के कारण छतरपुर बिजावर अलीपुरा रौली लुगासी गौरिहार तथा चरखारी के भू भाग को मिलाकर छतरपुर जिले का निर्माण किया गया स्वाधीनता संग्राम आंदोलन में छतरपुर जिले ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की रियासतों की जनता द्वारा ब्रिटिश सरकार के विरोध में किए गए कार्यों का स्मरण हमेशा याद रखना होगा क्योंकि उन्होंने अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है बुंदेलखंड में झांसी की रानी लक्ष्मीबाई बानपुर के विद्रोही राजा मर्दन सिंह विजय राघव गढ़ के राजा सरजू प्रसाद जेतपुर के विद्रोही राजा पारीछत रणबांकुरे शाहगढ़ राजा बखतबलि लोहागढ़ राजा शहीद सुमेर सिंह क्रांतिकारी चंद्रशेखर आजाद एवं पंडित परमानंद जी ने स्वाधीनता कि जो मशाल जलाई उसकी रोशनी से छतरपुर जिला भी प्रभावित हुए नहीं रह सका।[3] छतरपुर जिले में 1857 की क्रांति का बिगुल नौगांव छावनी से बजा 1857 मे नौगांव छावनी में 12वीं भारतीय पलटन का एक अंग और 14 वी असंयोजित धुडसवारों की एक टुकड़ी तैनात थी जिसमें 400 बंदूकधारी सेनिक घुड़सवार 219 सैनिक तथा तोपखाने की नवीं बटालियन की चौथी कंपनी के 40 तोपों अलावा सिपाही थे इस फौज का कमांडर मेजर किटके तथा स्टाफ ऑफिसर पीजी स्पाट था इसमें 14वीं असंयोजित घुड़सवार सेना के भाग ने 9 जून को विद्रोह कर दिया जिसके परिणाम स्वरूप समूचे छतरपुर जिले में विद्रोह की ज्वाला फैलायाी इास विद्रोह का नैत्तृव छतरपुर के सेनानायक दीवान देशपथ ने किया था। छावनी से 11 मील दूर स्थित ग्राम झीझन के जमींदार थे यह ग्राम ब्रिटिश परगना पनवाड़ी के अंतर्गत आता था बुंदेलखंड के अधिकांश देशों और जागीरदारों से उनके परिवारिक संबंध थे।[4]

अंग्रेजों द्वारा मालगुजारी की बकाया मांगने पर उनका विवाद अंग्रेजों से हो गया था और उनके ग्राम का पट्टा अंग्रेजों द्वारा प्राप्त करने के लिए आए लोगों को गोलियों से भून कर मार डाला था। और विद्रोह का शुभारंभ किया छतरपुर की महारानी उन्हें अप्रत्यक्ष रूप से सहायता करती थी अंग्रेज सरकार उन्हें गिरफ्तार ना कर सके दिसंबर 1857 के अंतिम चरण में विद्रोही सेना नायक तात्या टोपे ने जब चरखारी पर आक्रमण किया था तब छतरपुर महारानी ने दीवान देशपत की जनधन से सहायता की थी। मई, 1857 से मई 1858 तक दीवान देशपत अंग्रेजी राज्य के तथा उनके मित्र राज्यों में निरंतर लूटपाट करके अंग्रेजों के नाक में दम कर रखा था दीवान देशपत की इस गतिविधियों से तंग आकर अंग्रेज सरकार ने उन पर ₹10000 का इनाम घोषित कर जिंदा या मुर्दा पकड़ने का फरमान जारी कर दिया पर अंग्रेजों को सफलता नहीं मिली थी।

नौगांव छावनी के पोलिटिकल एजेंट के गवर्नर जनरल के इंदौर स्थित प्रतिनिधि ए. जी. सी. को एक पत्र दीवान देशपत के विषय में लिखा था। सारी शरारत की जड़ में मुख्य हाथ देशपत का है उसे विद्रोह करने का इतना अधिक अनुभव है और दुष्टता प्रदर्शित करने की उसकी ऐसी प्रसिद्धि है कि उसे इस काम में हमारे लोगों के आवागमन एवं हमारी स्थिति की सूचनाएं देश के सभी भागों से यथा समय अविलंब प्राप्त होती हैं

इसी पत्र में पोलिटिकल एजेंट ने लिखा शासन की राय में देशपत की गिरफ्तारी का महत्व तात्या टोपे की गिरफ्तारी के ठीक बाद दितीय स्थान पर है।[5]

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि 1857 की क्रांति का सूत्रपात दीवान देशपत ने छतरपुर से किया था। छतरपुर जिले के स्वतंत्रता संग्राम जिन वीरों ने अपना सर्वस्व निछावर कर दिया उसमें श्री लक्ष्मण राय उर्फ छुट्टू जिन्होंने अपना बलिदान आगरा जेल में 17–08– 1921 को कर दिया इन्हीं की तरह 18/12/1930 को बिजावर में हुए जन आंदोलन का दमन करने के लिए अंग्रेजों सेना द्वारा गोलीकांड कराया गया इस गोलीकांड में गोकुल प्रसाद शुक्लग्राम वेडरी श्री कडोरे लुहार ग्राम बेडरी शहीद हो गए इसके अलावा लगान वसूली का विरोध करने पर अंग्रेजों के अत्याचार के शिकार हुए श्री गणेश चमार की मौत हो गई तो छतरपुर जिले के लौडी तहसील के निवासी थे।[6]

छतरपुर जिले के स्वाधीनता संग्राम को चार घटनाओं में वर्गीकृत किया जा सकता है (1) पादुका आंदोलन 1931 (2) भूमि बंदोबस्त विरोधी आंदोलन 1938, भारत छोड़ो आंदोलन 1942 (3) प्रजा मंडल का उत्तरदायी शासन हेतु आंदोलन 1943 से 48 (4) नबम्बर अट्ठारह सौ सत्तावन ईसवी में महारानी विक्टोरिया की ओर से राजाओं के पक्ष में जो घोषणा की गई उसे बुंदेलखंड की जनता में राजाओं के विरोध होने लगा और जनता को राजाओं का सामंती वादी दास्तां अखरने लगी थी । देसी राज्यों में प्रजा का जिस प्रकार से शोषण अत्याचार राजा और उनके अधीनस्थ अधिकारियों व कर्मचारियों द्वारा किया गया उसने मानवता को हिला कर रख दिया। रियासती जनता का चित्रण बुंदेलखंड की देसी रियासतों में बीसवीं सदी में दिखाई दे रहा था जनसामान्य की हालत बहुत दयनीय थी तथा जनता में राजाओं और अंग्रेजों के प्रति असंतोष पनप रहा था राजा ऐसे कठोर कर लगा कर रखे थे जिसका चुका पाना असाधारण जनता को असंभव था इन करों में जजिया व्याई, करू, चमड़ा कर, मडवा कास्ट मड़वा शाही नहुरा प्लयावान नजराना रॉड चुकाना पान की जमीन पर कर मरने पर कर विधवा के पुनर्विवाह पर कर आदि कठोर ढंग से वसूले जाते थे इसके अलावा किसी भी प्रकार की अभिव्यक्ति व सभा करने का व जुलूस निकालने की अधिकार नहीं था तथा कर की अदायगी न करने पर छाती पर पत्थर रखना चारपाई पर लाकर खड़ा किया जाना मुर्गा बनाना व मारपीट करना आदि आम सजा थी। तथा विरोध करने पर काठ की चांप से मैं डाल दिया जाता था और मनप्यारी दिल बिगाड़ नाम के डंडों से जेल में पिटाई की जाती थी इस प्रकार बुंदेलखंड के प्रत्येक राज्य की स्थिति अलग अलग होते हुए सभी जगह भय और आतंक का सम्राट था ऐसी परिस्थिति में स्वतंत्रता के लिए जन भावना का उत्पन्न होना स्वाभाविक था।[7]

छतरपुर राज्य में कर के विरोध में जन आंदोलन

छतरपुर राज्य में जनता पर अंग्रेजों द्वारा जो अत्याचार किए जा रहे थे उनके विरोध में आम जनता में प्रतिशोध की आग जल रही थी उसी समय महोबा और बांदा में महात्मा गांधी का आगमन हुआ जिससे आग में घी का कार्य किया उनके द्वारा किए गए नमक आंदोलन का जनता पर व्यापक असर हुआ और जनता ने जन जागृति आ गई तथा अंग्रेजों और देशी राज्यों के दमनात्मक अत्याचारों से ऊब कर और उनका विरोध करने के लिए एक संगठन बनाने का निश्चय किया तथा साथ ही 1929 में भितरिया के जंगल में पियासे के पास 1520 लोग एकत्र हुए और एक गुप्त बैठक का आयोजन किया गया। इस बैठक में रंगोली के हीरा सिंह ने भाग लिया तथा 15 दिनों के बाद रंगोली में बैठक का आयोजन किया गया और पदाधिकारी नियुक्त किए गए इसमें कुंवर हीरा सिंह सभापति और पंडित राम सहाय तिवारी को मंत्री चुना गया 1930 अगस्त महीने में उर्मिल नदी के किनारे एक सभा का आयोजन किया गया जिसमें लगभग 30000 लोग एकत्रित हुए इस सभा में राज़नर के लोगों ने भी भाग लिया था जो असहनीय करों का विरोध कर रहे थे जब सभा का आयोजन चल रहा था उसी समय छतरपुर राज्य के सुपरिटेंडेंट एक भारी फौज लेकर पहुंच गया लेकिन उसके पहुंचने से पूर्व ही सभा समाप्त हो गई थी तथा जनता के चले जाने से एक दमन कारी दुर्घटना टल गई।[8]

चरण पादुका हत्याकांड

14 जनवरी, 1931 को मकर संक्रांति के पावन पर्व पर छतरपुर जिले के चरण पादुका में मेला लगा हुआ था इस पर्व मेले में अत्याधिक भीड़ थी क्योंकि देसी रियासतों की जनता तथा ब्रिटिश शासन के अन्तर्गत आने वाली जनता, चरण पादुका नामक सिंह पुर ग्राम स्थान पर अपने नेता को रिहा करवाने के लिए एकत्र हो रही थी और यह भीड़ ने एक सभा का रूप ले लिया था सभा का संचालन सरजू दउवा कर रहे थे तथा मंत्री

पद रिक्त था क्योंकि रामसहाय की गिरफ्तारी हो चुकी थी उसके स्थान पर लल्लूराम ने पूर्ति की स्थापना मंत्री के पद के अनुसार उन्होंने यहां उपस्थित जनता को संबोधित किया अंग्रेजों द्वारा निर्मित तत्कालीन परिस्थितियों पर प्रकाश डाला एक जोश के साथ अपनी बात रखते हुए अपने नेताओं की रिहाई की मांग की जब सभा अपनी गति की चरम सीमा पर थी तभी अंग्रेज पोलिटिकल एजेंट फिसर के आदेश पर इंदौर से बुलाई गई कोल भील पलटन को लगभग 30 बसों में भरकर आई थी उसने सभा स्थल को चारों तरफ से घेर लिया था तथा फौज ने सभा स्थल पर एकत्र भीड़ पर मशीनगनों से गोलियों की बौछार कर दी करवा दी थी जिससे सभा स्थल पर भगदड़ मच गई थी सरकारी सूचना के अनुसार इस गोलीकांड में 21 लोग मारे गए तथा 29 लोग घायल हुए और सैकड़ों लोगों को चोट आई थी लेकिन यह संख्या सरकारी आंकड़ों से अधिक थी इतना ही नहीं अनेक व्यक्तियों की लाशों को उर्मिल नदी के बालू में दबा दिया गया तथा यह बताने की कोशिश की गई कि व्यक्ति बहुत कम मरे हैं।[9]

परंतु वहां पर केवल 6 ही लोगों के पार्थिव शरीर मिले थे जो इस प्रकार है गोलीकांड में श्री सुंदरलाल सेठ ग्राम गिलोहा श्री धर्मदास मातो श्री राम लाल मातो गुना पुरवा श्री हलकाई यादव बनियान, श्री करण सिंह बधिया श्री रघुराज सिंह करिया आदि लोग शहीद हो गए थे। अनेकों गर्भवती महिलाएं गर्भपात हो गए और बेशुमार पशु पक्षी हताहत हुए। इसके बाद अंग्रेजी फौज ने पूरे इलाके में भयंकर लूटमार की और अनेक मकान जला डाले तथा अनेकों व्यक्तियों को पकड़-पकड़ कर जेल में डाल दिया 14 जनवरी, 1931 को मकर संक्रांति के पावन पर्व पर हुए चरण पादुका नरसंहार को भारतीय स्वाधीनता संग्राम का बुंदेलखंड का जलियांवाला बाग के नाम से जाना जाता है शासन द्वारा अपनी शक्ति के बल पर किया गया गोली कांड के बाद मल्ल सिंह का मकान गिरा दिया गया तथा लल्लू राम के मकान में आग लगाकर जला दिया गया जब अंग्रेज शासन को इतने अत्याचार से संतुष्ट नहीं हुई तो 21 व्यक्तियों जेल में डाल दिया गया तथा सरजू दउवा को 4 साल की सजा तथा अन्य लोगों को तीन-तीन वर्ष का कारावास की सजा हुई।[10]

भूमि बंदोबस्त विरोधी आंदोलन 1938

सन 1938 में छतरपुर राज्य में भूमि बंदोबस्त हुआ और उस पर भूमि पर लगान लगाए जाने की रुपरेखा तैयार की गई इनका विरोध करने के लिए भितरियां के जंगलों में कार्यकर्ताओं की एक सभा बुलाई गई तथा सत्याग्रह को सुचारू रूप से चलाने के लिए एक प्रशिक्षण केंद्र श्रीनगर थाना अंतर्गत खिजवाहा गांव में खोला गया इस कार्यक्रम में गया प्रसाद एवं बंदे ने सराहनीय सहयोग दिया इस सभा के आयोजन को खबर जैसे ही ब्रिटिश शासन को लगी तो वह तिलमिला गई। परिणामस्वरूप कुंवर हीरासिंह पंडित राम सहाय तिवारी के नाम वारंट जारी कर दिए गए ठाकुरदास रिछारिया भग्गू पांडे कामता प्रसाद गोविंदास गोरेलाल पांडे आदि को जेल में डलवा दिया गया इन लोगों को जल में भयंकर यातनाएं दी गई थी कुंवर हीरा सिंह वाह बिंद्रावन तिवारी पर झूठे मुकदमे चलाए गए हैं तथा हर प्रकार से इन को प्रताड़ित किया गया था।

भारत छोड़ो आंदोलन और बुंदेलखंड

1942 भारतीयों से गतिरोध दूर करने के लिए सरकार ने 1942 में क्रिप्स मिशन भारत भेजा जिसने एक योजना प्रस्तुत की गई जिसमें युद्ध के पश्चात भारतीय स्वतंत्रता का जनता को आश्वासन दिया गया था परंतु इसके साथ ही में पाकिस्तान की स्थापना करने का प्रयास किया गया था लेकिन भारत के सभी राजनीतिक दलों ने इस योजना को नामंजूर कर दिया था 8 अगस्त, 1942 को अखिल भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने घोषणा कर प्रस्ताव पारित कर दिया देशभर में आंदोलन शुरू हो गया महात्मा गांधी समेत कई बड़े नेताओं को गिरफ्तार कर लिया गया इस आंदोलन से बुंदेलखंड का छतरपुर भी अछूता नहीं रहा था आसपास के राज्यों में आंदोलन किसी ना किसी रूप में हो रहे थे राजनगर में एक बैठक की गई जिसमें हीरासिंह रामसहाय तिवारी श्री पन्नालाल जी, श्री जगन्नाथ प्रसाद स्वर्णकार, बाबू राम, रामप्रसाद यादव, सुखदेव ने कार्यकर्ताओं ने भाग लिया इसके बाद राजनगर में एक जुलूस निकाला और अंग्रेजी सरकार द्वारा लाठीचार्ज कर दिया गया और इस लाठीचार्ज में कई कार्यकर्ता घायल हो गए दिनांक 11/08/1942 को जिला कांग्रेस कमेटी की मीटिंग ग्राम मुखर्रा में हुई जिसमें श्री चतुर्भज पाठक बाबू प्रेम नारायण खरे ग्यासीलाल गुप्ता, प्यारेलाल चौरसिया शामिल हुए। बाबू प्रेमनारायण खरे, चतुर्भुज पाठक को राज्य की सीमाओं से निष्कासित कर दिया गया। जबकि लक्ष्मी नारायण तिवारी को 1 वर्ष की सजा हुई।[11]

जिस समय आन्दोलन अपने पूर्ण वेग पर था। उसी

समय 11 अगस्त, 1942 में महाराजपुर में हड़ताल हुई और जुलूस निकाला गया जुलूस में लाठीचार्ज कर दिया कई लोग घायल हो गए उन्ही दिनों महोबा तहसील लूटने का विचार किया। रामसहाय तिवारी अन्य साथियों ने इस पर विचार किया और लोगों के साथ महोबा पहुच गये। इस षडयंत्र का पता अंग्रेजी शासन को चल गया और सभी लोंगो को गिरफ्तार कर जेल में डाल दिया गया था छतरपुर के लोगों के नाम वारंट जारी कर दिए गए एवं गोकुल प्रसाद को गिरफ्तार कर लिया गया इसी प्रकार अलीपुरा राज्य में हड़ताल करने की स्वीकृति मिली गर्रोली राज्य में श्री राम नारायण खरे पंडित अयोध्या प्रसाद ठाकुर मदन सिंह तथा प्रताप सिंह आदि कार्यकर्ताओं के सहयोग से कांग्रेस की कॉन्फ्रेंस हुई जिसमें काफी जन जाग्रती हुई। लुगासी स्टेट में भी श्री महादेव प्रसाद तिवारी तथा श्री राम कृष्ण पालिया द्वारा जनता में राजनीतिक विचारधाराओं की जन जागृति फैलाई गई बहादुर सिंह ने अपनी विश्वविद्यालय पढ़ाई छोड़ कर आंदोलन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई नारायण खरे एडवोकेट इलाहाबाद विश्वविद्यालय से अध्ययन करने पहुंचे तो राष्ट्रीय आंदोलन से प्रभावित होकर सन 1942 से विद्यार्थी कांग्रेश के सक्रिय कार्यकर्ता बन गए इधर अंग्रेजी शासन का दमन चलता रहा वहीं छतरपुर जिले के छोटी छोटी रियासतों के लोग अंग्रेजी शासन की परवाह किए बिना आंदोलन में सक्रिय भूमिका निभाते रहे। तथा अंग्रेजी सरकार के अत्याचारों का प्रत्युतर जनता ने दिया और अनेक कष्ट सके। तथा शासन का मन इतने दमन से नहीं भरा तो जनता के घरों को लूट कर आग लगवा दी। [12]

छतरपुर राज्य में प्रजा मण्डल

सन 1943 में बुंदेलखंड सेवा संघ जिसका उद्देश्य भारतीय एकता और अखंडता की मजबूत बनाने के लिए प्रेम स्वभाव और संस्कृति के आधार पर समस्त बुंदेलखंड को एकीकृत करने का था इस कार्य को राज्यों में आरंभ किया गया तथा इसके सदस्य बनाए गए तथा जगह–जगह प्रचार किया गया इस संगठन का उद्देश्य बुंदेलखंड की रियासतों को संगठित कर बुंदेलखंड प्रांत का निर्माण करना था बुंदेलखंड सेवा संघ का सम्मेलन हरपालपुर में श्री गोविंद दास की अध्यक्षता में हुआ था। इस सम्मेलन में श्री कन्हैया लाल जी वैद्य मध्य भारत से पधारे और मंडल की स्थापना की इसके बाद श्री गोपाल कृष्ण विजयवर्गीय अध्यक्ष देसी राज्य लोक परिषद छतरपुर आए और आवश्यक कार्य निर्देशित कर प्रजा मंडल का गठन कर चले गए दिनांक 19 अप्रेल, 1945 को छतरपुर में रियासत से समस्त कार्यकर्ताओं की एक सभा करने का निश्चय किया वहीं छतरपुर के महाराजा ने प्रजामंडल के नेताओं को बुलाकर खूब डांटा, डराया धमकाया और कहा कि अगर आप लोग सभा करोगे तो मैं गोली चलवा दूंगा परंतु नेताओं ने महाराजा की बात को अनसुना कर दिया तथा सभा प्रारंभ हुई इधर दीवान साहब ने सभा आरंभ होते ही नेताओं को बुलाया तथा जनता ने देखा कि नेता बग्गी पर बैठा कर लाया जा रहा है तो जनता में यह उत्साह उमड़ आया। और जनता साथ–साथ चलने .ली। सभा के स्थान तक जाने तक इस भीड़ ने जुलूस का रूप धारण कर लिया वहां सभा की कार्यकर्ताओं ने कहा कि हम यह चाहते हैं कि हमें झंडा लगाने तथा सभा करने की आजादी बनी रहे।[13]

2 अक्टूबर, 1946 को गांधी जयंती के अवसर पर राज़नर में सभा का आयोजन किया गया जिसमें बाहर से रज्जब अली आजाद का आगमन हुआ था गढ़ी मलहरा महाराजपुर छतरपुर से सभी कार्यकर्ता शामिल हुए इस सम्मेलन में सबसे बड़ी सफलता यह मिली कि प्रजामंडल के कार्यो में श्री बाबूराम चतुर्वेदी व श्रीमती विद्यावती चतुर्वेदी सक्रियता से भाग लेने लगे नारायण स्वामी सहजानंद श्री रामेश्वर प्रसाद जी ने मार्गदर्शन दिया। तथा छतरपुर जिले की कार्यकारिणी का गठन किया गया सभापति कुवर हीरा सिंह उपसभापति मदन गोपाल चौरसिया प्रधानमंत्री दीनदयाल चौरसिया उपप्रधानमंत्री पं रामसहाय तिवारी तथा सदस्य राधाचरण चौरसिया ग्राम चतुर्वेदी जगन्नाथ प्रसाद कोषाध्यक्ष गोकुल प्रसाद महाशय, बाबूराम चतुर्वेदी, स्वर्णकार जी थे। चूँकि रियासत की तरफ से कार्यकर्ताओं पर सख्ती बरती जाने लगी इसलिए प्रजा मंडल के काम को बढ़ाने के लिए अनेक कार्यकर्ता भूमिगत होकर कार्य करने लगे।[14]

उत्तरदायी शासन और छतरपुर जिले में आन्दोलन

छतरपुर रियासतों में जब जन आंदोलन ने तीव्र रुप धारण कर लिया तो प्रजा मंडल की कार्यकारिणी के निश्चय अनुसार 27 फरवरी, 1947 को ग्राम कुसमा में प्रजामंडल की आम सभा में सर्वसम्मति से प्रस्ताव पारित किया गया कि राज्य शासन को एक अल्टीमेटम इस आशय पर दिया जाए कि राज्य सरकार पूर्ण

उत्तरदायी शासन तथा अंतिम सरकार की स्थापना की मांग पूरी की जाए ताकि राज्य की जनता अपने नागरिक अधिकारों का पूरा उपयोग कर सके तथा निर्धारित समय में मांग पूरी ना होने पर प्रजा मंडल की ओर से 11 मार्च, 1947 से सत्याग्रह के शुरू कर दिया जाएगा जिसके फलस्वरूप महाराजा छतरपुर को और सुधारों का एक आज्ञा पत्र जारी हुआ तथा राज्य शासन के अनुरोध पर छतरपुर राज्य प्रजा मंडल ने बार्तालाप करने के लिये 4 प्रतिनिधि मनोनीत किए इसमें श्री कुंवर हीरासिंह अध्यक्ष, काशी प्रसाद महतो महामंत्री, पंडित ठाकुर प्रसाद तिवारी वकील एवं गोकुल प्रसाद थे इस संबंध में प्रजा मंडल द्वारा राज्य शासन को दिनांक 10 मार्च, 1947 को एक पत्र भेजा। महाराजा छतरपुर के आज्ञा पत्र अनुसार जिस में काश्तकारों का शासन संबंधी सुधारों की व्याख्या के अनुसार एक कमेटी के निर्माण का आदेश दिया तथा इसके साथ ही महत्वपूर्ण तथ्य था कि शासन द्वारा तत्कालीन समय में भी रियासत के संचालन हेतु एक कौंसिल होगी जिसमें एक गैर सरकारी सदस्य एक रियासती शासन का सदस्य होगा।[15]

आंदोलन कारियों का लक्ष्य इससे से पूर्ण नहीं हुआ। वे उत्तरदायी मांगों पर ढ़ढ़ रहे। और दिनांक 11 मार्च, 1947 को दरबार हॉल के सामने सत्याग्रहियों के दो जस्था पहुच गए जिसका नेतृत्व हीरा सिंह और दूसरे का जगन्नाथ जी कर रहे थे तथा लगभग 100 सत्याग्रहियों के साथ धरना प्रदर्शन दिया दूसरे दिन 12 मार्च, 1947 को राधा चरण महतो के नेतृत्व गड़ीमलहरा के जत्थे ने सत्याग्रह किया महिलाओं का भी एक जस्था बेनी बाई चौरसिया के नेतृत्व में करारा के साथ छतरपुर पहुंचा। सत्याग्रह का यह चरण पूर्ण ढ़ंग से 17 मार्च, 1947 से 20 मार्च, 1947 तक चला इसके बाद महराजा छतरपुर ने घोषणा की तथा स्वीकार किया कि विधान परिषद का चुनाव होगा। प्रजा मंडल का एक मंत्री अंतरिम सरकार में लिया जायेगा।[16]

22 मार्च, 1947 को सरकार द्वारा बुलाई गई मीटिंग में प्रजा मंडल द्वारा या दावा किया गया कि सिर्फ एक ही पार्टी है प्रजा मंडल ही है जो उत्तरदायी शासन की मांग कर रही है। महाराजा भवानी सिंह ने इस संबंध में आंदोलन को विकल्प के लिए 23–24 मार्च को कुछ घोषणाऐं की और प्रजामंडल और महाराजा के मध्य 30 मार्च, 1947 तक समझौते की मांग चलती रही तथा समझौता पर सहमति नहीं बनी प्रजामंडल ने एक सभा मऊ सानिया के पास की जिस में राज्य भर के कार्यकर्ता एकत्र हुए। उधर राज्य सरकार द्वारा सभा को विफल करने का प्रयास किया गया। सभा स्थल चरखारी राज्य में होने के कारण सरकार कुछ नहीं कर सकी वहीं पर सर्वसम्मति से सत्याग्रह करने का निर्णय लिया गया राज्य भर से आंदोलन की तैयारियां हो गई 15 अप्रैल, 1947 से लेकर 25 अप्रैल, 1947 तक सत्याग्रह शान्तिपूर्वक चलता रहा। 26 अप्रैल को सत्याग्रहियों पर सरकार का दमन चक्र प्रारम्भ हो या। तथा रियासत के प्रमुख कार्यकर्ताओं को गिरफ्तार करके जेल में भेज दिया गया तथा उनको भयंकर यातनाएं दी गईं तथा विरोध प्रदर्शन में निकले जुलूस में छतरपुर महाराजपुर तहसील के लगभग 90 व्यक्तियों को जिसमें बच्चे बुजुर्ग भी शामिल थे उनके नाम पर इस प्रकार श्री कुंवर राम सहाय तिवारी मदन गोपाल चौरसिया जगन्नाथ सैनी बिहारी लाला बैध गजाधर जैन चौधरी, ग्यारसी लाल दुर्गा प्रसाद ओमरे, गिरजा शंकर दीनदयाल चौरसिया, भागीरथ शर्मा आदि को देवरा किशनगड़ की घाटियों में 45 मील दूरी पर छुड़वा दिया गया वहां से पैदल चलते हुए दूसरे दिन छतरपुर पहुचे।[17]

शासन की ओर से अत्याचारी रवैया अपना लिया गया दरबार हॉल के सामने पुरानी नगर पालिका के पास एक कटघरा बनाया गया था जिसमें सत्याग्रहियों को शाम तक बंद किया जाना था और पानी तक पीने को नहीं दिया जाता था लोगों पर भयंकर अत्याचार किए जाते थे तथा साथ ही लाठीचार्ज किए गए और कोतवाली में बन्दी बनाए रखा जाता था तथा अनेक लोगों के नाम वारन्ट निकाले गए। भुवानीदीन चौरसिया के नेतृत्व में सत्याग्रह किया उन पर लाठीचार्ज कर दोनों को गिरफ्तार कर लिया गया। 1947 के मध्य भारत देसी राज्य लोक परिषद के अध्यक्ष श्री गोपी कृष्ण, छतरपुर पहुंचे उन्होंने आंदोलन की गतिविधिया देखी। आंदोलनकारियों को रिहा करने का निर्णय लिया और समझौता हो गया बाद 21 मई, 1947 को लोड़ी में एक मीटिंग हुई जिसमें पंडित राम सहाय तिवारी का नाम अंतरिम मंत्रिमंडल के प्रस्ताव किया गया 24 मई, 1947 को एक प्रतिनिधि स्टेट काउंसलिंग में लिया गया इस विजय के उपलक्ष्य में 29 मई, 1947 को छतरपुर में यह झंडा जुलूस निकाला गया और एक आम सभा हुई तथा छतरपुर के

राज्य में जनता का लोकप्रिय मंत्रिमंडल बन गया जिसमें पंडित श्री रामसहाय तिवारी को लोकप्रिय मंत्री चुना गया राज्य ने उत्तरदायी शासन 14 फरवरी, 1948 को जनता को सौंप दिया। जिसमें मुख्यमंत्री श्री रामसहाय मंत्री चुने गए और इसके साथ ही आंदोलन सफलतापूर्वक समाप्त हो गया।[18]

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. *राष्ट्र गौरव – बुन्देलखण्ड का स्वतंत्रता संग्राम पृ. संख्या 200*
2. *डॉ पी.एस. मुखरया – 1857 की क्रान्ति सागर और नर्मदा क्षेत्र*
3. *राष्ट्रगौरव बुन्देलखण्ड का स्वतंत्रता संग्राम पृ.स. – 200*
4. *छतरपुर डिस्ट्रिक्ट गजटियर 1982 पृ.स. 59*
5. *फॉरिजन डिपार्टमेन्ट पॉलिटिकल प्रोसीसिडिग ऑफ जनरल 1863 पृ.स. – 59*
6. *विध्यवाणी (शहीद अंक) 1948*
7. *जंगे ऐं आजदी में बुन्देखण्ड की देशी रियासतें (1925–1948) डॉ सुधा बैसा (जैन) पृ.स. 37*
8. *जैन दशरथ–विध्यांचल का स्वतंत्रता संग्राम पृ.स. 14*
9. *महाशय गोकुल प्रसाद– छतरपुर राज्य के स्वतंत्रता संग्राम का इतिहास पृ.स. 17*
10. *जैन दशरथ – विध्यांचल स्वतन्त्रता संग्राम, अंक जनवरी 1954 पृ.स. 63*
11. *साहू श्यामलाल– विंध्यप्रदेश के राज्यों का स्वतन्त्रता संग्राम का इतिहास पृ.स. 174*
12. *जैन दशरथ – विध्यांचल स्वतत्रता संग्राम जनवरी 1954 पृ.स. 70*
13. *साहू श्यामलाल – विंध्यप्रदेश के राज्यों का स्वतंत्रता संग्राम का इतिहास पृ.स. 439–40*
14. *राष्ट्र गौरव – बुन्देलखण्ड का स्वतंत्रता संग्राम पृ. संख्या 203–204*
15. *घोषण पत्र– दीवान छतरपुर राज्य– 09.03.1947*
16. *विज्ञप्ति– प्रस्तुतकर्ता भवानीसिंह (एच–एच) महाराजा छतरपुर राज्य 06.04.1947*
17. *उत्सर्ग– प्रकाशक स्वागत समिति (दसवां) म.प्र. स्वतंत्रता सैनिक संघ अधिवेशन चरणपादुका छतरपुर पृ.स. 170*
18. *उत्सर्ग– प्रकाशक स्वागत समिति (दसवां) म.प्र. स्वतंत्रता सैनिक संघ अधिवेशन चरणपादुका छतरपुर पृ.स. 174*

18 वीं सदी में नागौर एक प्रमुख व्यापारिक मार्ग के रूप में

कामिनी
शोधार्थी, जय नारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

राजस्थान के मध्यकाल में व्यापार–वाणिज्य की उन्नति यहाँ की भौगोलिक स्थिति पर निर्भर करती थी। व्यापार का केन्द्र नगर होते थे। नगर में राजधानी सांस्कृतिक जीवन का केन्द्र हुआ करती थी। अठाहरवीं सदी में राजस्थान के आर्थिक पहलुओं में व्यापार–वाणिज्य के लिए विभिन्न मार्ग हुआ करते थे जिनके माध्यम से वस्तुओं का आदान प्रदान हुआ करता था। व्यापारी लोग विभिन्न नगरों में जाकर अपने सामान को बेचा करते थे। इसी क्रम में राजस्थान का नागौर शहर भी जुड़ा हुआ था। नागौर परगना मारवाड़ का एक केन्द्र बिन्दु था। नागौर में भेड़, ऊन, ऊंट, बैल की खरीद–फरोख्त तथा समय–समय पर अनेक मेलों का आयोजन भी होता था। नागौर एक व्यापारिक केन्द्र था। प्रस्तुत शोध–पत्र में नागौर क्षेत्र के व्यापार एवं व्यापारिक मार्गो का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

संकेताक्षर : *नागौर, व्यापार, वाणिज्य, मार्ग, मंडी, माल, बंजारा, मारवाड़, सांस्कृतिक केन्द्र।*

किसी भी समाज की अर्थ व्यवस्था का आधार वहाँ के व्यापार–वाणिज्य की गतिविधियों के संचालन की प्रमाणिकता पर निर्भर करता था। यह व्यापार–वाणिज्य की क्रियाविधि व्यापारियों द्वारा ही सफल मानी जाती थी। क्योंकि ये व्यापारी अपने समान एवं वस्तुओं की खरीद–फरोक्त एक स्थान से दूसरे स्थान पर अबाधित रुप से करते थे। 18 वीं सदी में इसी श्रेणी को पूर्ण करने हेतु मारवाड़ राज्य में अनेक व्यापारिक मार्गो का जाल बना हुआ था। जहाँ से नागौर परगना भी व्यापारिक केन्द्र के रूप में सेवाएं प्रदान करने में सहायक था। यहाँ पर व्यापार भारत के विभिन्न राज्यों के साथ–साथ बाह्य देशों से भी होता था। जिनमें विशेषकर मालवा, मुल्तान, सिंध, ढ़ाका, अहमदनगर, इत्यादि देशों से होता था। यहाँ से विभिन्न आन्तरिक एवं बाह्य व्यापार किया जाता था।[1]

नागौर परगने के प्रमुख ब्राह्य व्यापारिक मार्ग– 18 वीं सदी के दौरान मारवाड़ के प्रमुख व्यापारिक केन्द्रों में नागौर परगना भी विशेष श्रेणी में स्थान रखता था। क्योंकि यह राजस्थान राज्य के मध्य भाग में स्थित था। 'अकबरनामा' से हमें विभिन्न व्यापारिक मार्गो का उल्लेख मिलता है जिनसे ज्ञात होता है कि, नागौर से गुजरात तक का एक मार्ग सिरोही एवं जालौर से होता हुआ जाता था।[2] तथा दिल्ली और मालवा नागौर व ग्वालियर के माध्यम से जुड़े हुए मार्गो में से एक थे।[3] 1228 ई. में अब्बासिद खलीफ का गुप्तचर बगदाद से कीमती उपहार लेकर आया तब वह नागौर के मार्ग से गुजरा था। तथा उसने नागौर परगने के आसपास विध्वंसक कार्य किये जाने के प्रमाण भी प्राप्त होते है।[4]

मध्यकाल तक मारवाड़ में कई व्यापारिक केन्द्र में विकसित अवस्था में थे। दूसरा कारण प्रमुखतया राष्ट्रीय राजमार्ग पर स्थित होने से व्यापारियों के कारवां अपना माल छकड़ों ऊंटों एवं घोड़ों पर लादकर गन्तव्य स्थान पर जाते हुए जोधपुर पाली, नागौर, मेड़ता, और भीनमाल रुक विश्राम करते थे तथा फिर कारवां के साथ आगे बढ़ते थे।[5]

नागौर के प्रमुख आन्तरिक व्यापारिक मार्ग– नागौर परगने का केवल मारवाड़ राज्य तथा अन्य सभी राज्यों द्वारा

व्यापारिक जुड़ाव ही नहीं था। अपितु आन्तरिक मार्गो द्वारा भी व्यवसायिक गतिविधियों को संचालित करने में सहयोग प्रदान किया था। जिनमें नागौर का अपने स्थानीय स्तर पर विभिन्न गांवों से जुड़ाव था। स्थानीय लोग अपनी आवश्यकता की पूर्ति हेतु इन मार्गो का उपयोग किया करते थे, जिनमें नागौर परगने के गांव **खादू कला की तवारीख के अनुसार–''गांव रो मारग आवण–जावण रो गांव रे माय तो भाखर ऊपर बैवे है। नै गांवं रे बारै रैती वाद री जमीन में बैवे है नै मारग में नदीया बालो भाखर नहीं नहीं आवै है।''**[6] तथा एक गांव से दूसरे गांव जाने की दूरी एवं कोस का उल्लेख भी इसी प्रकार मिलता है–गांव में धानमंडी नहीं है जरुरत पड़ती है जब गांव मूंडवे नागौर की मंडियों से धान मोल लाते है गांव से नागौर 5 कोस और मूंडवां 6 कोस है।

इस प्रकार यह मार्ग स्थानीय एवं अर्न्तदेशीय रुपों से जुड़े हुए थे।[7]

प्रमुख आवागमन के साधन– व्यापारिक मार्गो की पूर्ति हेतु व्यापारियों के पास आवागमन के साधन होते थे। जिनमें बैलगाड़ी, ऊंट गाड़ियां, बैलों एवं खच्चरों की पीठ पर सामान लादकर लाते थे। ऊंटों पर साजो–सामान, अनाज, पानी, आदि का परिवहन किया जाता था। नागौर के पुरालेखीय स्त्रोतों में ऊंटों के विक्रय के बहुत से प्रमाण प्राप्त होते है। जिनमें सनद परवाना बही वि.सं. 1825 के अनुसार–''मूंडवां के मेले से 40 चालीस ऊंट खरीदने का हुकम हुवा था। कीमत प्रति ऊंट रु. 70 सितर असी रुपया मूंडवां रा मेला से प्राप्त आमदनी से देने का आदेश हुआ था।[8]

इसी प्रकार बैलों द्वारा भी परिवहन किया जाता था और नागौर के बैल पूरे हिन्दुस्तान में प्रसिद्धी प्राप्त थे। बैलों द्वारा खीचें जाने वाले रथों का उपयोग राजाओं, महाराजाओं तथा बड़े सैन्य अधिकारियों तथा उनके सगे सम्बन्धियों द्वारा किया जाता था। बहियों से ज्ञात होता है कि नागौर के व्यापारी 18 बैलगाड़ियों पर तलवास (बून्दी) से नागौर माल लेकर आये थे। लाडनूं से 500 गाड़ी घास भरकर डीडवाने भेजने के आदेश प्राप्त हुए थे।[9]

घोडे भी परिवहन के साधनों के प्रमुख स्त्रोत थे। सामन्त एवं जागीरदार भी बहुत संख्या में ऊंट एवं घोड़े रखते थे। उनको गढ़ों और पोलों में घोड़े, बांधने के लिए घुड़साले होती थी जिसे 'पायगा' कहा जाता था। नागौर से घोड़े मंगवाये जाने का भी उल्लेख मिलता है, जिनमें विशेष रुप सनद परवाना बही नं. 61 मुगल शासक खुस्याल बेग के पास 32 घोड़े पहुँचाये गये थे।[10] तथा व्यापारिक मार्गो से माल को लाने एवं ले जाने का कार्य प्रमुखतया बंजारा जाति का होता था तथा बंजारों के समान ही चारण एवं भाट जाति भी आवागमन के व्यवसाय द्वारा जुड़े हुए थे। इन्होंने यह कार्य जनमानस में अपने पवित्र–चरित्र का लाभ उठाते हुए अपनाने का विचार किया।

व्यापारिक मार्गो की सुरक्षा हेतु प्रबन्ध– 18 वीं सदी के मध्य होने वाले व्यापारिक गतिविधियों के प्रमुख साधनों में आवागमन के मार्ग विशेषतया महत्त्वपूर्ण थे। इन्हीं मार्गो से होकर व्यापारी एक स्थान से दूसरे स्थान पर अपनी आवश्यक वस्तुओं की खरीद–फरोक्त किया करते थे। लेकिन कभी–कभी उनकी असुविधा होने की स्थिति में मार्गो को व्यवस्थित एवं व्यापारियों को सुरक्षित गन्तव्य स्थान पर माल सहित पहुँचाने हेतु राजदरबार की ओर से सुविधायें प्रदान की जाती थी जिनमें प्रबन्ध किये गये जो निम्न रूपों में है।

चौकीयों की स्थापना– नागौर में आन्तरिक एवं बाह्य मार्गो से आने वाले व्यापारियों हेतु सुरक्षा हेतु जाबता किया जाता था। जिनमें चौकीयों की स्थापना विशेष रुप से आवश्यक होती थी। नागौर के मूंडवा मेले में अनेक क्षेत्रों से व्यापारी अपने माल की आवाजाही करते थे। उनके माल को सुरक्षित पहुँचाने हेतु राजदरबार यह सनद परवाना नागौर चौतरे एवं कचेड़ियों को भेजे गये जो इस प्रकार से है ''तथा मूंडवां रा मैला चौकी पोहरा रो जाबतो आछी तरै रावजो नै सामल रहै हासल रो बदोबसत राषजो नै भा गोयदंदास तालकै रा ताबीनदार नै मास 4 चार रोजगार देजो श्री हजूर रो हुकम छै।''[11]

सशस्त्र सैनिकों की तैनाती– व्यापारिक मार्गो की सुरक्षा हेतु सशस्त्र सैनिकों की नियुक्ति की जाती थी। जिनमें पाला, हवलदार, सिलैपोस इत्यादि सैनिक होते है। बीकानेर की और से आने वाली घोड़ों की जो कतारें नागौर, दौलतपुरा व मारोठ होकर जयपुर जाती थी। उनको पैदल सैनिकों की सुरक्षा देकर मारोठ तक सुरक्षित पहुँचाने के आदेश राज्य द्वारा जारी किए गए।[12]

रोशनी की व्यवस्था– रात्रि में यात्रा करने पर व्यापारियों को असुविधा न हो इसके लिए मसालची की नियुक्ति की गयी। ताकि चोर एवं लूटेरों द्वारा व्यापारिक मार्गो पर व्यापारियों की सुरक्षा हो सके।[13]

माल को पुनः सुरक्षित पहुँचाना– आवागमन के मार्गों यदि माल चोरी हो जाता तो राजदरबार के आदेशानुसार पुनः लुटे हुए व्यापारी को माल को पहुँचाने के निर्देश दिये गये थे। जिसका उल्लेख सनद परवाना बही नं. 77 में इस प्रकार से मूण्डवा के मेला से फतेपुरिया सोभाचन्द का माल सेखावटी में जा रहा था तो मूंडवा से कोस 2 डीडीया रा मारग में धाड़ेतीया ने चुरा लिया सु तो उनका माल स्वरुप ऊंट कोरे माल राजदरबार के आदेशानुसार वापस किये जाने की सनद हुई।[14]

मार्गों पर माल स्वरूप लगने वाले कर– नागौर क्षेत्र के व्यापारिक मार्गों पर व्यापारियों द्वारा माल लाने या ले जाने पर राजदरबार की कर वसूल किया जाता था। उसे 'राहदारी' कर कहा जाता था। राज्य की सीमा में से गुजरने वाली प्रत्येक वस्तु पर राज्य की सीमा में चौकी पर नियुक्त ओहदेदारों द्वारा वसूल किया जाता था। जागीरदार व किसान वर्ग जब अपने कृषि सम्बन्धी उत्पादों की ब्रिकी हेतु जाते थे तो राहदारी कर में छूट भी दी जाती थी। इसी के साथ राज्य की सीमा में निमिति माल जब उस राज्य की सीमा से बाहर भेजा जाता था, तो उसे निकासू माल कहा जाता था तथा अन्य राज्य एवं क्षेत्रों की सीमा से गुजरने वाले माल को 'वहतीवान' कहा जाता था।[15]

व्यापारिक मार्ग द्वारा व्यापार को बढ़ावा– व्यापारिक मार्गों द्वारा मारवाड़ राज्य में ही नहीं अपितु मुगल शासकों तथा मराठा राज दरबार में नागौर कि व्यवसायिक उन्नति के साक्ष्य प्राप्त होते है। नागौर की विभिन्न प्रसिद्ध वस्तुएं एवं मवेशियों की मांग सदा बनी रहती थी। जिनमें मराठा दरबार में अहिल्याबाई के आदमियों ने नागौर के मूंडवा मेले से ऊंट खरीदने के प्रमाण प्राप्त होते है।[16] इसी के साथ यहाँ से विभिन्न वस्तुएं, बर्तन, थान जिनमें विलायती मलमल, मूण्डवा से खरीदे जाने वाले गोटो पठानी, ऊनी कम्बल, इत्यादि वस्तुओं की मांग बनी रहती थी।[17]

व्यापारिक मार्गों का महत्त्व– सम्पूर्ण राजस्थान व्यापारिक मार्गों द्वारा ही 18 वीं सदी के मध्य एक व्यापारिक संगठन के रुप में विख्यात था। ये मार्ग कच्ची जमीन के होते थे तथा थकावट लिए हुए थे। तथा नागौर के कुछ गांव घुममारग के रूप में होते थे। लेकिन नदी–नाला इत्यादि नहीं थे तथा कुछ गांवों में रास्ता एकदम साफ दिखाई देता था।[18] इन मार्गों के होने से व्यापारिक गतिविधियों को बढ़ावा मिला। लोगों द्वारा आवश्यक वस्तुओं की उपलब्धि आसानी से हो जाती थी तथा रोजगार के साधन उपलब्ध हुए इन व्यापारिक मार्गों द्वारा नागौर परगना मारवाड़ में ही नहीं अपितु सम्पूर्ण हिन्दुस्तान में व्यापारिक मण्डी के रुप में विख्यात हुआ।

मार्ग द्वारा व्यापारियों को कई असुविधाओं का सामना पड़ता था। लेकिन इन मार्गों से व्यापारी वर्ग अपनी व्यवसायिक क्रिया–कलापों का आदान–प्रदान करने में अग्रणी भूमिका निभा पाते थे। जिनमें कई उद्योगों का विकास हुआ। जिनमें विशेष रुप से नागौर परगने में प्रसिद्ध थे–पत्थर उद्योग, हाथीदांत उद्योग, बर्तन उद्योग, औजार, खाद्य–पदार्थों इत्यादि विभिन्न वस्तुएं नागौर परगने में मंगवायी जाती थी।[19] नागौर परगने में इनके साथ–साथ मवेशियों की खरीद–फरोक्त भी होती थी। इस प्रकार से व्यापारिक मार्ग विभिन्न राज्यों की सीमा मार्ग द्वारा जुड़े हुए थे। जिनके द्वारा राजदरबार के राजकोष में आय प्राप्त होती थी। क्योंकि व्यापारियों द्वारा जब माल एक स्थान से दूसरे स्थान लाया ले जाया जाता था, तो राज्य के राजकोष में वृद्धि होती थी। क्योंकि व्यापारियों से 'चुंगी' एवं 'राहदारी' शुल्क कर के रुप में प्राप्त होता था उसी से कर से प्राप्त आय का उपयोग जनकल्याण हेतु किया जाता था।

इस प्रकार नागौर का व्यापारिक मार्ग के रुप में महत्त्व इस दृष्टिकोण से लगाया जा सकता है, कि क्योंकि यह राजस्थान के केन्द्र में अवस्थित है। कोई भी मार्ग चाहे वह दिल्ली को जाये या चाहे सिन्ध को सभी मार्ग के रुप में नागौर क्षेत्र आता था तो व्यापारी से माल की खरीद–फरोक्त आसानी से कर लेते थे तथा व्यापारियों की सुविधा की दृष्टि से अनेक कुएँ एवं सराय की भी व्यवस्था राजदरबार द्वारा की जाती थी। तथा इन मार्गों के द्वारा अनेक उद्योग–धन्धों के विकास से लोगों का जीवन स्तर भी अच्छा था। लोग अपनी आवश्यक वस्तुओं हेतु आस–पास के गांवों की मण्डियों में क्रय–विक्रय करते थे। यह परगना व्यापारिक मार्गों की श्रेणी में उच्च स्तर पर था। इसी दृष्टिकोण के कारण यहाँ पर सिन्ध, मुल्तान से व्यापारी बैलों की खरीद–फरोक्त करते थे। बैलों के साथ–साथ बीकानेर को लोहा, ऊन, सीसा, अभ्रक, मिर्च, सुहागा, जस्ता, तथा चूरु को ऊन भेजी गयी थी।[20]

उपरोक्त निष्कर्षानुसार यह कहा जा सकता है कि नागौर क्षेत्र सम्पूर्ण राजस्थान में व्यापारिक मार्ग के रुप अलग दृष्टिकोण लिए हुआ था। जिनसे यहाँ के व्यापार–वाणिज्य को बढ़ावा मिला। 18 वीं सदी के

दौरान यह मार्ग विभिन्न देशों से माल का आयात-निर्यात के प्रमुख मार्गों में से एक था। यहाँ पर माल की आवाजाही हेतु विभिन्न आवागमन के साधनों में घोडे, ऊंट, बैलगाड़ियों का उपयोग में लाया जाता था। ये साधन भी नागौर परगने में लगने वाले पशु मेलों की शान थे। जिनकी मांग दूरवर्ती राज्यों में भी होती थी। इन साधनों पर व्यापारी अपने माल को रखकर एक सीमा से दूसरे देश की सीमा पर जाते थे। जिनमें प्रत्येक राज्य की सीमा पर राजस्व वसूल किया जाता था। जो राज्य की आय का प्रमुख स्त्रोत था तथा मार्गों पर चलने वाले व्यापारियों के साधनों हेतु भी दरबार हेतु विशेष खाने की व्यवस्था की जाती थी। जिसे 'हसम खुराक' कहा जाता था। जिसमें मवेशियों हेतु दाणा, पानी मूंग की व्यवस्था की जाती थी।

इन मार्गों के द्वारा विभिन्न उद्योग-धन्धों का विकास हुआ। नागौर क्षेत्र में व्यापारिक गतिविधियों का संचालन सुचारु रूप से होने लगा तथा व्यापारिक सुविधाओं हेतु मार्ग में चौकी एवं थाणों की व्यवस्था की जाती थी। ताकि कोई चोर-लूटेरों द्वारा व्यापारियों को माल को न लूट ले सके तथा उनकी सुरक्षा की पूरी जिम्मेदारी परगना स्तर के हाकिम की होती थी। अगर वह चोरी की रकम वसूल किये जाने के आदेश दिए गये तथा मार्गों में मेलों के अवसरों पर व्यापारियों के लिए रात्रि के समय मसालची की नियुक्ति की गयी थी। ताकि वह रोशनी का प्रबन्ध सुनियोजित रूप से कर सके।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *सनद परवाना बही नं. 2, पत्रांक सं. 35 इमेज सं. 71, संवत् 1822, म.मा.पु.प्र. जोधपुर*
2. *वही, पृ. 322-23*
3. *विलियम फिंच अर्ली ट्रेवल्स इन इण्डिया, पृ. 170*
4. *वही, पृ. 189*
5. *महाजनों री पीढ़ियां की बही, नं. 1926, रा.रा.अ.बी. रिर्कोड्स*
6. *नागौर के गांव खाटू कलां की तवारीख, लिस्ट नं. 36, बस्ता स. 23, पृष्ठ सं. 32, जो रि.रा.रा.अ.बी*
7. *नागौर के गांव खरनाल की तवारीख, लिस्ट नं. 36 बस्ता सं. 23 प्र.स. जो रि.रा.रा.अ.बी.*
8. *सनद परवाना बही नं. 8, पोस वद 4, सोमवार वि. सं. 1823 मुकाम गढ़ जोधपुर, पत्रांक सं. 111, जो.रि.रा.रा.अ.बी.*
9. *सनद परवाना बही नं. 21, वि.सं. 1835 (1778 ई.), पत्रांक सं. 294, जो.रि.रा.रा.अ.बी*
10. *सनद परवाना बही नं. 61, वि.सं. 1866, पत्रांक सं. 44, जो.रि.रा.रा.अ.बी.*
11. *सनद परवाना बही नं. 77, संवत् 1882, पत्रांक सं. 79, जो. रि. रा. रा. अ. बी*
12. *सनद परवाना बही नं. 1, संवत् 1820-21 सम्पादक डॉ. विक्रमसिंह भाटी, पृ. 9, 95*
13. *जोधपुर दफ्तर हजुरी बही नं. 53, वि.स. 1840 पृ. 265, जो. रि.रा.रा.अ.बी.*
14. *वही, पृ. 87*
15. *राठौड़, डॉ. विमलेश, 18 वीं शताब्दी में राजस्थान का सामाजिक एवं आर्थिक जीवन, राजस्थानी ग्रन्थागार, 2018, पृ. 336*
16. *सनद परवाना बही नं. 21, संवत् 1835, पत्रांक सं. 44, जो.रि.रा.रा.अ.बी.*
17. *जोधपुर दफ्तर हजुरी बही नं. 51 नि.स. 1893 बही जनानी ढोडी कपडा रा कोठार री हजुरी, पत्रांक सं. 142, जो.रि. रा.रा.अ.बी.*
18. *नागौर के गांव खाटु कलां की तवारीख, लिस्ट नं. 36, बस्ता नं. 23, पत्राक सं. 33*
19. *सनद परवाना बही, 14, संवत 1831, पत्रांक सं. 21, 48, 61, 64, 72, 75, जो.रि.रा.रा.अ.*
20. *गुढ़ा, बी.एल, ट्रेड एण्ड कोमर्स इन राजस्थान, पृ. 114*

भारत में पर्यटन उद्योग की दशा और दिशा

सुनील भारती
शोधार्थी, कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल (उत्तराखण्ड)

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

पर्यटन आज दुनिया का सबसे बड़ा उद्योग बन गया है। भारतीय अर्थव्यवस्था के विकास में भी यह प्रमुख क्षेत्र के रूप में उभर कर सामने आया है। इस मामले में भारत की प्राकृतिक, सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक धरोहर, उसे पर्यटन की दृष्टि से अति महत्वपूर्ण क्षेत्र बनाती है। आज भारत विभिन्न श्रेणी के पर्यटन के लिए जाना जाता है, जैसे कि साहसिक पर्यटन, चिकित्सा पर्यटन, पारिस्थितिकी पर्यटन, ग्रामीण पर्यटन, मेडिकल टूरिज्म आदि। भारत में कश्मीर से कन्याकुमारी तक अपनी विशिष्टता और संस्कृति है। यहाँ के परिदृश्य में पाये जाने वाले व्यापक विविधता और सांस्कृतिक विरासत विदेश से आने वाले पर्यटकों के लिए कई विकल्प प्रदान कर रहे हैं। भारत में पर्यटन सबसे बड़ा सेवा उद्योग है, जहां विदेशी पर्यटकों के भारत आने की उत्सुकता होती है शायद यही कारण है पिछले दो दशकों में यूरोप और अमरीका की कंपनियों ने अपने मालों की बिक्री के लिए भारत के बाजार को चुना वहीं दूसरे देशों की अन्य बड़ी कंपनियाँ भी भारत के पर्यटन बाजार में अपनी संभावनाएँ तलाश रही हैं।

संकेताक्षर : *पर्यटन, अर्थव्यवस्था, सरकार, मीडिया, दशा, विकास, दिशा ।*

मार्क ट्वेन ने भारत के बारे में कहा था ''एक ऐसी भूमि जिसे सभी लोग देखना चाहते हैं और एक बार देख लेने पर, भले ही वह एक झलक ही क्यों न हो, वे शेष विश्व के सभी सम्मिलित दृश्यों के बदले भी उस झलक का त्याग नहीं करें''।

पर्यटन की पहली परिभाषा 1905 में गायर फ्यूलर द्वारा दी गई थी। संयुक्त राष्ट्र विश्व पर्यटन संगठन के अनुसार ''पर्यटन में अवकाश, व्यापार एवं अन्य उद्देश्यों के लिए अधिकतम एक वर्ष तक के समय तक अपने सामान्य परिवेश से बाहर के स्थानों पर यात्रा करने एवं रहने वाले व्यक्तियों की गतिविधियों को सम्मिलित किया गया''। 1990 के दशक के आरंभ तक भारत के पर्यटन उद्योग का अधिक विकास नहीं हुआ था। यद्यपि भारतीय अर्थव्यवस्था की गति धीमी हुई है, फिर भी शेष विश्व की तुलना में इसकी वृद्धि तीव्र है भारतीयों की अतिरिक्त आय में वृद्धि के साथ, देश और विदेश में अवकाश यात्रा पर जाने वाले लोगों की संख्या में वृद्धि के परिणामस्वरूप पर्यटन उद्योग में वृद्धि हुई है। वृद्धि के प्रतिरूप से ज्ञात होता है कि भारत का पर्यटन उद्योग केवल विदेशी पर्यटकों पर ही निर्भर नहीं है क्योंकि वैश्विक समस्याओं और अव्यवस्थाओं के कारण विदेशियों का आगमन सदैव प्रतिकूल रूप से प्रभावित होता रहता है। घरेलू पर्यटन में वृद्धि सुव्यवस्थित तरीके से हो रही है। भारत में मेलों और त्यौहारों का निरंतर आयोजन किया जाता है। उत्तर में कुंभ तथा दक्षिण में ओणम जैसे उत्सव लगभग प्रत्येक वर्ष पर्यटकों को आकर्षित करते हैं। पंडित जवाहरलाल नेहरू ने पहली बार देश में पर्यटन के महत्व पर ध्यान दिया था। उनके अनुसार, यह न केवल विदेशी मुद्रा प्राप्त करने का एक साधन है, बल्कि राष्ट्रों के मध्य अंतरराष्ट्रीय सहयोग, समझ और शांति हेतु प्रयास का भी एक माध्यम है।

फेडरेशन ऑफ इंडियन चौम्बर्स ऑफ कॉमर्स इन इंडिया और यस बैंक ने एक अध्ययन में पाया है कि भारत में एक पर्यटक द्वारा की जाने वाली औसत यात्रा, सिंगापुर में की जाने वाली यात्रा का 2.8 गुना, मलेशिया में की जाने वाली यात्रा का 4.5 गुना और चीन के 6.5 गुना के समान है। इसके बावजूद सकल घरेलू उत्पाद में पर्यटन उद्योग का योगदान चीन, मलेशिया और सिंगापुर से कम है।

पर्यटन के प्रकार

मनोरंजनात्मक पर्यटन : पर्यटन प्रायः मनोरंजन गतिविधियों के उद्देश्य से किया जाता है। अधिकांश पर्यटन माहौल में परिवर्तन एवं आराम के लिए किया जाता है। यही कारण है कि पैकेज टूर अधिक लोकप्रिय हो गए हैं।

पर्यावरणीय पर्यटन : धनी और समृद्धशाली पर्यटक ऐसे सुदूरवर्ती स्थानों की यात्रा को अधिक प्राथमिकता देते हैं, जहां उन्हें साँस लेने के लिए प्रदूषण मुक्त वायु प्राप्त हो।

ऐतिहासिक पर्यटन : पर्यटक यह जानने में रूचि रखते हैं कि हमारे पूर्वज किस प्रकार किसी विशेष क्षेत्र में रहते थे, उसे प्रशासित करते थे। अतः वे विरासत स्थलों, मंदिरों, चर्चा, संग्रहालयों, किलों आदि की यात्रा करते हैं।

विरासतविशेष पर्यटन : यह उन लोगों के पर्यटन को संदर्भित करता है जो अपने मूल से जुड़ने और पारिवारिक दायित्वों को पूरा करने के लिए दूरस्थ स्थानों की यात्रा करते हैं। विवाह और मृत्यु के समय लोग अपने पैतृक स्थानों पर एक साथ एकत्रित होते हैं। ऐसे व्यक्ति जो अपने शेष जीवन के लिए विदेश में बसे होते हैं जब अपने जन्म स्थान की यात्रा करते हैं तो वे ऐसे पर्यटन को बढ़ावा देते हैं।

सांस्कृतिक पर्यटन : कुछ लोग यह जानने में रूचि रखते हैं कि अन्य लोग या समुदाय कैसे रहते हैं, कैसे जीवन व्यतीत करते हैं और किस प्रकार समृद्ध होते हैं। उनकी संस्कृति और कला एवं संगीत हमारी संस्कृति से किस प्रकार भिन्न है इसलिए वे ज्ञान प्राप्त करने, संस्कृति से परिचित होने एवं संस्कृति को बेहतर तरीके से समझने के लिए यात्रा करते हैं।

साहसिक पर्यटन : युवाओं के मध्य साहसिक यात्रा करने की प्रवृत्ति होतीहै । वे ट्रेकिंग, रॉक क्लाइंबिंग, रिवर राफ्टिग इत्यादि के लिए जाते हैं। वे कैम्प फायर का आयोजन करते हैं और खुले आसमान के नीचे रहते हैं। यह पर्यटन मजबूत इच्छाशक्ति वाले लोगों के लिए है। जो तनाव सहन कर सकते हैं।

स्वास्थ्य पर्यटन : हाल के वर्षो में, स्वास्थ्य पर्यटन अत्यधिक लोकप्रिय हुआ है। लोग प्राकृतिक देख–भाल केंद्रों और अस्पतालों में जाते हैं जहां उनका उपचार विशेषज्ञों द्वारा किया जाता है। उपचार हेतु अनेक विदेशियों द्वारा भारत की यात्रा की जाती है क्योंकि उनके देश में इस प्रकार की सेवाएं काफी महंगी होती हैं।

धार्मिक पर्यटन : भारत, बहु–धार्मिक संरचना वाली जनसंख्या का प्रतिनिधित्व करता है। यहाँ लोगों को धार्मिक कर्तव्यों को पूरा करने और धार्मिक महत्व के स्थानों की यात्रा करने में सक्षम बनाने हेतु विभिन्न पर्यटन पैकेज आयोजित किए जाते हैं। जैसे– चारधाम यात्रा।

संगीत पर्यटन : यह आनंददायक पर्यटन का भाग हो सकता है क्योंकि इसमें लोगों के गाने, संगीत सुनने तथा उसका आनंद लेने के क्षण शामिल होते हैं।

वन्यजीव पर्यटन : यह पर्यावरण एवं जंतु अनुकूल पर्यटन हो सकता है। वन्य जीव पर्यटन से तात्पर्य जंगली जानवरों को उनके प्राकृतिक आवास में देखने से है।

ग्रामीण पर्यटन : इसके अंतर्गत कृषि पर्यटन, सांस्कृतिक पर्यटन, प्रकृति पर्यटन, साहसिक पर्यटन और पर्यावरण पर्यटन शामिल हैं। ग्रामीण पर्यटन इस क्षेत्र के सामाजिक –आर्थिक विकास की कुंजी है।इससे खोई हुई विरासत, लोक कलाओं, हस्तशिल्पों और संस्कृति को पुनर्जीवित करने में मदद मिलती है। इससे रोजगार सृजन में मदद मिलती है। महिलाओं और युवाओं और खासकर उन लोगों के लिए जिनके पास कृषि भूमि नहीं है।स्थानीय समुदाय के सदस्य नए कौशल विकसित करते हैं।सांस्कृतिक आदान प्रदान को बढ़ावा मिलता है ।

केंद्र सरकार की पर्यटन पर प्रमुख पहलें :

- 2002 –03 ग्रामीण पर्यटन योजना शुरू की गयी। इस योजना किए तहत 29 राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों में 186 परियोजनाओं को मजूरी दी गयी। इनमें 56 परियोजना पूर्वोत्तर क्षेत्र में है।
- वर्ष 2017–18 के आम बजट में 5 विशेष पर्यटन अंचलों की घोषणा की गई, जहाँ राज्यों की भागीदारी के साथ विशेष प्रयोजन उद्यम किये जा रहे है।
- ग्रामीण पर्यटन को आकर्षक बनाने के लिये पर्यटन मंत्रालय फार्म पर्यटन और 'होम स्टे' को भी प्रोत्साहित कर रहा है।
- अतुल्य भारत 2.0 के तहत पर्यटन मंत्रालय ने चार ग्रामीण पर्यटन स्थलों के विकास की योजना को मंजूरी दी।

- कुछ चुनी हुई देशी थीम के इर्द गिर्द स्वदेश दर्शन नामक एक नई योजना बनी गयी है।
- पर्यटकों की मदद के लिए 'अतुल्य भारत हेल्पलाइन' स्थापित की गई है।
- ''अतुल्य भारत'' के उप–ब्रांड के तौर परग्रामीण भारत खोज को बढ़ाया जा रहा है।
- सरकार ने हार्डवेयर (पर्यटन क्षेत्र का बुनियादी ढांचा) और सॉफ्टवेयर (स्थानीय समुदायों के क्षमता निर्माण) की नीति अपनायी है।
- Rural Tourism Infrastructure Development Corporation की स्थापना की गयी है।

सरकार निरंतर पर्यटन के क्षेत्र में नई नई योजनायें बना रही है जिसका लाभ बीते दशकों में देखने को मिला है। सरकार की विदेशी नीतियाँ भी पर्यटन को बढ़ावा देने में कारगर साबित हो रही है। भारतीय पर्यटन मंत्रालय ने सरकार की मदद से वीजा आन अराइवल (विदेशियों को स्वदेश आने के बाद वीजा देना) और ई–पर्यटक वीजा की सुविधा की शुरुआत की है इससे विदेशियों को पर्यटन के लिए आने में सुविधा मिलेगी। देश में बढ़ रहे पर्यटकों की संख्या में जो सबसे बड़ा इजाफा देखने को मिला है वह ई–पर्यटक वीजा पर आने वाले पर्यटकों के कारण से सबसे अधिक हुआ है। ई–पर्यटक वीजा का लाभ उठाने वाले विश्व के यदि 15 देशों की सूची देखें तो ब्रिटेन से 12.1, अमेरिका 10.2, चीन 6.3, ऑस्ट्रेलिया 5.5, जर्मनी 4.9, फ्रांस 4.3, स्पेन 3.9, इसराइल 3.2, कोरिया गणराज्य 3.2, ओमान 3.2, कनाडा 3.1, सिंगापुर 2.6, संयुक अरब अमीरात 2.2, मलेशिया 2.1 और इटली 4.9 प्रतिशत लोग भारत को देखने व समझने भारत आये।

भारतीय पर्यटन में युवाओ को आकर्षित करने के लिए साहसिक पर्यटन ने अपनी जगह बना ली है जिसमें साहसिक खेल शामिल है। इस पर्यटन को बढावा देने के लिए हाल ही में पर्यटन मंत्री ने इसके दिशानिर्देश लागू किये। इससे न सिर्फ हमारे देश के युवा बल्कि दूसरे देश से आने वाले युवा पर्यटकों को भी बहुत कुछ देखने और खेलने को मिलेगा। पर्यटन मंत्रालय ने एडवेंचर टूर ऑपरेटर एसोसिएशन ऑफ इंडिया (एटीओआईए) के साथ भारत में साहसिक पर्यटन के लिए सुरक्षा और गुणवत्ता मानदंडो पर दिशानिर्देश तैयार किये है। इन दिशानिर्देशो में भूमि वायु और जल आधारित साहसिक गतिविधियाँ शामिल भारत में आने वाले विदेशी पर्यटकों की संख्या में दिन प्रतिदिन वृद्धि ही भारतीय अर्थव्यवस्था को आगे बढाने का एक प्रमाण है। आजादी के बाद कुछ वर्षो तक इस क्षेत्र पर ज्यादा ध्यान नहीं दिया गया लेकिन विगत कुछ वर्षो के बाद 1966 में भारतीय पर्यटन विकास निगम (आईटीडीसी) का गठन किया गया जोकि आज के दिन में पर्यटन को बढावा देने में सहायक संस्था साबित हुई है और इसी तरह की संस्था राज्यों में भी बननी शुरू हो चुकी है। पर्यटन आकड़ों के अनुसार जून 2016 से जून 2017 तक भारत आये विदेशी पर्यटकों की संख्या 6.25 लाख पहुँच चुकी थी जबकि जून 2016 तक यह 5 लाख थी। पर्यटन के क्षेत्र में पर्यटकों की संख्या में अगर ऐसी ही बढ़ोत्तरी रही तो हम 2025 तक 25 लाख का आंकड़ा पार कर जायेंगे।

आधुनिक भारत में पर्यटन के क्षेत्र में मेडिकल पर्यटन और धार्मिक पर्यटन ने अपनी अच्छी जगह बनायीं है। जहाँ यूरोप और मध्यपूर्व से आने वाले मेडिकल पर्यटकों की संख्या में बढ़ोत्तरी देखने को मिली है वही भारतीय तीर्थ स्थलों में भी पर्यटकों की संख्या में वृद्धि हुई है। 'स्वदेश दर्शन' नामक योजना ने पर्यटन के प्रत्येक क्षेत्र को अपने अन्दर निहित किया है और इस योजना से पर्यटकों को अत्यंत लाभ भी हुआ है। भारत में पर्यटन विभाग के विकास और इसे बढ़ावा देने के लिए पर्यटन मंत्रालय नोडल एजेंसी के रूप में कार्यरत है।अगर ऐतिहासिक स्मारक की बात करे तो भारत के प्राचीनकाल से लेकर आधुनिक भारत की धरोहर पर्यटकों को देखने पे मजबूर करती है और यदि प्रकृति पर्यटन में झांके तो इस देश में भौगोलिक विविधता है जोकि पर्यटन की किस्मों में प्रतिफलित है। भारत में वन्यजीव, पहाड़ी सैरगाह, समुद्रतट, पर्यटन को आगे ले जाने में योगदान दे रहे हैं।पर्यटकों के लिए भारतीय बाजार विविधता से भरा हुआ स्थान है। आज के नए पर्यटन स्थलों पर सुविधाओं का विकास कर पर्यटन को बढावा मिला है। विश्व की आर्थिक महाशक्ति बनने की दिशा में भारत का पर्यटन उद्योग अत्यंत कारगर साबित हो रहा है और ऐसी उम्मीद की जा सकती है कि आने वाले वर्षो में यहाँ आने वाले विदेशी पर्यटकों की संख्या में बढ़ोत्तरी ही इस देश को महाशक्ति बनाने में मददगार साबित होगी। देश में पर्यटन सर्किट के विकास हेतु 'स्वदेश दर्शन योजना', विरासत स्थलों के विकास हेतु 'हृदय' योजना तथा धार्मिक पर्यटन स्थलों

के विकास हेतु 'प्रसाद' योजना लाई गई है। इसके अलावा पर्यटन स्थलों पर रोप–वे के निर्माण तथा रेलवे स्टेशनों और लॉजिस्टिक पार्कों के आसपास की वाणिज्यिक भूमि के विकास पर बल दिया गया है। इसी तरह धरोहर गोद लो योजना के द्वारा किसी एक विरासत स्थल को कॉर्पोरेट जगत द्वारा गोद लिया गया है। इसका उद्देश्य लोगों में अपनी विरासत के प्रति उत्तरदायित्व की भावना को विकसित करके उन्हें इनसे जोड़ना है। खास बात है बुनियादी ढाँचे के विकास और रखरखाव पर भी हाल के समय में काफी ध्यान दिया है। विदेशी पर्यटकों के आगमन को सरल बनाने पर बल देते हुए सरकार ने 166 देशों के लिए ई– वीजा की शुरुवात की है।

मेडिकल टूरिज्म :

चिकित्सा पर्यटन या स्वास्थ्य पर्यटन के लिए भारत एक असीम संभावना वाला देश है जिसमें बड़ी बीमारियों का इलाज अमेरिका व यूरोप के देशों की तुलना में लगभग 80 प्रतिशत सस्ता है। भारतीय अस्पताल बेहद कम खर्च पर अमेरिका व यूरोप की तरह आधुनिक चिकित्सा मुहैया करा रहे हैं। विदेशी मरीजों को अपनी ओर खींचने का एक और कारण कम समय में बेहतर इलाज भी है। अगर हम अमेरिका की बात करें तो वहाँ जरूरतमंद मरीजों को हफ्ते व महीने भर की प्रतीक्षा सूची में डाल दिया जाता है बल्कि भारत में इन मरीजों के लिए सिंगल विंडो काउंटर सुविधा उपलब्ध करायी जाती है। पिछले कुछ सालो में भारत के मैट्रोसिटी जैसे दिल्ली, मुंबई, बैंगलुरु, चेन्नई के अस्पतालों ने खूब मुनाफा कमाया है जिसका कारण रहा मेडिकल टूरिज्म । भारत सरकार ने 18 दिसम्बर, 2017 को संसद में कहा था कि भारत में चिकित्सा–पर्यटन का मूल्य वर्ष 2020 तक नौ अरब अमेरिकी डॉलर तक पहुँचने की उम्मीद है जो 2015 में तीन अरब डॉलर थी। पर्यटन राज्य मंत्री ने लोकसभा को एक प्रश्न के लिखित जवाब में यह जानकारी दी थी कि भारत पिछले कुछ वर्षो में एक प्रमुख चिकित्सा पर्यटन क्षेत्र के रूप में उभरा है। वाणिज्य मंत्रालय की 2016 की एक रिपोर्ट के अनुसार भारत शीर्ष छह चिकित्सा गंतव्यों में शामिल है। पर्यटन के क्षेत्र में निरंतर विकास को देखते हुए 2020 तक हम एक नए पायदान पर खड़े होंगे और पर्यटकों की संख्या में निरंतर बढ़ोतरी से वर्ष 2025 तक पर्यटकों की संख्या लगभग 49 लाख के पार हो जाएगी। इससे न केवल भारत को आर्थिक रूप से लाभ होगा बल्कि नए रोजगार की संभावनाएँ भी पैदा होगी । अगर मैडिटेशन व योग की बात करें तो पिछले कुछ वर्षो में इस क्षेत्र ने भी अपनी अच्छी जगह बनायी है। भारत आयुर्वेद व योग एंड मैडिटेशन के मामले में काफी धनी है जो बड़ी संख्या में इलाज करने वाले पर्यटकों को आकर्षित करता है।

भारत में पर्यटन उद्योग के समक्ष कई चुनौतियाँ :

बुनियादी ढांचा का अभाव भारतीय पर्यटन क्षेत्र के लिए एक बड़ी चुनौती बनी हुई है। पर्यटन से जुड़ी आर्थिक और सामाजिक अवसंरचना, होटल, कनेक्टिविटी, मानव संसाधन स्वास्थ्य सुविधाएँ आदि काफी हद तक भारत में विकसित होने की अवस्था में हैं। इस उदासीनता का मुख्य कारण वित्तीय संसाधनों का अपर्याप्त आवंटन है। गौरतलब है कि 2017–18 के बजट में सरकार ने पर्यटन जैसे एक बड़े क्षेत्र के लिए केवल 1840 करोड़ रुपये आवंटित किए हैं।

देश के प्रमुख पर्यटन स्थलों में फैली गंदगी एक अन्य समस्या है। बड़ी संख्या में पश्चिमी देशों के पर्यटक सिर्फ इसलिए भारत आना पसंद नहीं करते क्योंकि यहाँ चारों तरफ गंदगी रहती है। पर्यटकों की सुरक्षा विशेष रूप से विदेशी पर्यटकों की, पर्यटन विकास के मार्ग में एक प्रमुख बाधा रही है। विदेशी नागरिकों पर विशेष रूप से महिलाओं पर हमले, दूरदराज के देशों के पर्यटकों के स्वागत के लिए भारत की क्षमता पर कुछ सवाल उठाते हैं।

देश के अधिकांश पर्यटन स्थलों तक आज भी गरीब, महिला और बुजुर्गों की पहुंच नहीं है। ऐसा यात्रा की उच्च लागत, खराब कनेक्टिविटी और विभिन्न कारणों के लिए आवश्यक अनुमतियों की एक श्रृंखला के कारण होता है।

भारत को अपनी समृद्ध सांस्कृतिक विरासत को उजागर करने में वैसी सफलता नहीं मिली है जैसा कि पश्चिम के देशों, विशेषकर यूरोपीय देशों को मिली है।

स्वास्थ्य पर्यटन, योग, प्राकृतिक चिकित्सा, साहसिक पर्यटन में अपार संभावनाओं के होते हुए भी इन क्षेत्रों पर ध्यान कम दिया गया है।हालाँकि योग, प्राकृतिक चिकित्सा और साहसिक पर्यटन में निजी क्षेत्र के लोग अच्छी कमाई कर रहे हैं लेकिन राज्य सरकारें इनको एक सूत्र में बाँधकर लाभ नहीं उठा पाई हैं।

चार धाम के यात्रा पथ को आपदा के बाद पर्याप्त बजट के बावजूद अभी तक सुविधाजनक नहीं बनाया जा सका है। वही ट्रैकिंग के लिए कई सालों से नए मार्ग नहीं बनाए जा सके हैं ।

पर्यटन पर कोरोना काल की बुरी मार :

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद पर्यटन क्षेत्र पर शायद सबसे अधिक विपरीत प्रभाव कोरोना महामारी के दौरान देखने में आया है एवं कोरोना महामारी का असर विश्व के सभी देशों के पर्यटन स्थलों पर पड़ा है। इसके चलते विभिन्न देशों में राजस्व, रोजगार एवं अर्थव्यवस्था तीनों को बहुत भारी नुकसान हो रहा है। वस्तुतः पर्यटन उद्योग एक ऐसा क्षेत्र है जिसे कोरोना महामारी के कारण सर्वाधिक नुकसान हुआ है इसलिए आज सभी देशों के सामने सबसे बड़ा प्रश्न यह आकर खड़ा हुआ है कि पर्यटन उद्योग को कोरोना महामारी के चलते हुए भारी नुकसान से किस प्रकार उबारा जाये। एक नजरिया तो यह है कि कोरोना महामारी के पूर्ण रूप से खत्म होने पर ही पर्यटन उद्योग में बदलाव देखने को मिलेगा क्योंकि लोग जब तक स्वयं को सुरक्षित महसूस नहीं करेंगे तब तक यात्रा के लिए घरों से बाहर ही नहीं निकलना चाहेंगे और वैसे भी पर्यटन लोगों के लिए दरअसल एक मूलभूत आवश्यकता की श्रेणी का कार्य नहीं है। सामान्यतः पर्यटन तो फुर्सत के क्षणों में किया जाता है, जब सभी मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति हो जाती है। आज की विशेष परिस्थितियों में तो पर्यटन वैसे भी अंतिम प्राथमिकता की श्रेणी का कार्य बन गया है। इस प्रकार पर्यटन उद्योग को वापस पटरी पर लाना बहुत ही टेढ़ी खीर साबित होने जा रहा है।

भारत में भी केंद्र सरकार अब पर्यटन क्षेत्र को कुछ राहत प्रदान करती दिखाई दे रही है। पर्यटन उद्योग की महत्ता को देखते हुए अब यह लगने लगा है कि केंद्र एवं राज्य सरकारों को पर्यटन क्षेत्र को खोलने के सम्बंध में कई और भी महत्वपूर्ण निर्णय शीघ्र ही लेने पड़ सकते हैं। हाँ, कोरोना बीमारी के प्रति सावधानी बरतना भी जारी रखना होगा। इस संबंध में केंद्र सरकार ने जो भी नियम जारी किए हैं उनका कड़ाई से पालन करना अनिवार्य है। भारत एक बहुत बड़ा देश है, यहाँ नियमों का कड़ाई से पालन कराना भी अपने आप में एक बहुत बड़ी चुनौती है। कोरोना बीमारी से स्वयं को तथा अपने परिवार और समाज को सुरक्षित रखने का कार्य भी वर्तमान समय में, देश के नागरिकों के लिए, धर्म और संस्कृति का ही कार्य माना जाना चाहिए।

अभी पर्यटन की दृष्टि से लोगों का घरों से बाहर निकलना बहुत कम है। नागरिकों में विश्वास की भावना जगाने के लिए होटलों को सेनेटाईज सम्बंधी नियमों का अनिवार्य रूप से, कड़ाई से पालन करना आवश्यक होना चाहिए। पर्यटन उद्योग में कुशल श्रमिकों की भी जरूरत होती है, इन्हें कार्य करने हेतु उद्योग में वापस लाया जाना चाहिए।

'अतुल्य भारत' और 'अतिथि देवो भवः' जैसे स्लोगनों को व्यापक योजनाओं के साथ सिरे चढ़ाना होगा। इसके तहत बड़ी संख्या में किफायती होटलों का निर्माण, मनोरंजन के लिए भी नई किस्म के विकल्प तैयार करने होंगे। म्यूजियम और आर्ट गैलरी बनानी होंगी। विरासत स्थलों की दशा सुधारनी होगी। कनेक्टिविटी बढ़ानी होगी। गाइड्स, म्यूजियम एवं आर्ट गैलरी कर्मचारियों और सुरक्षाकर्मियों को प्रशिक्षित करना होगा।

केंद्र एवं राज्य सरकारों के अलावा निजी क्षेत्र के बीच बेहतर जुड़ाव की जरूरत है। इन सबसे बढ़कर पर्यटकों की सुरक्षा सुनिश्चित करनी होगी। पर्यटक ऐसी सुखद स्मृतियों के साथ वापस लौटें कि वे देर–सबेर उस स्थान पर दोबारा आने की योजना बनाएं।

पर्यटन विकास में मीडिया की भूमिका :

मीडिया और पर्यटन दोनों एक दूसरे के पूरक हैं ।दोनों किसी भी देश में अगर मिलकर कार्य करें तो इससे विकास को नया आयाम मिल सकता है ।भारत की बात करें तो यहाँ पर मीडिया के कारण सरकारों को बड़ा राजस्व पर्यटन से मिलता हैवहीं दूसरी तरफ हमें यह भी नहीं भूलना चाहिए मीडिया और पर्यटन दोनों एक दूसरे के विरोधी भी दिखाई देते हैं।पर्यटक उन इलाकों में जाना पसंद नहीं करते हैं जहां के बारे में नकारात्मक छवि मीडिया दिखाता है ।भारत में प्रिन्ट मीडिया , इलेक्ट्रानिक मीडिया और हाल के दिनों में तो अब सोशल मीडिया भी लोगों को खासा प्रभावित कर रहा है और पर्यटन विकास में एक बड़ी भूमिका निभा रहा है ।यह सभी जनमानस को अपनी रिपोर्टिंग से प्रभावित करते हैं और समय समय पर पर्यटन को केंद्र में रखते हुए अपनी रपट के माध्यम से जनमानस का ध्यान पर्यटन से जुड़े विषयों की तरफ आकर्षित करते रहते हैं।सरकार भी इन मीडिया माध्यमों में पर्यटन

विषयक विज्ञापनों को प्रकाशित करते रहती है, जो लोगों के दिलों को प्रभावित करते हैं जिसके बाद पर्यटक इन स्थानों में जाना पसंद करते हैं।जनसंचार सूचनाओं को एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुंचाने का बेहतर माध्यम है। विविधता में एकता हमारे देश की संस्कृति है। अपना भारत तमाम ऐतिहासिक, धार्मिक विरासत को अपने में सँजोये हुए है। मीडिया चाहे तो इन सब पर बेहतर ढंग से काम करते हुए उस पर अपनी रपट बना सकता है बल्कि दृश्य और श्रव्य माध्यम तो लोग आसानी से समझ सकते हैं। वैसे भी एक चित्र हजार शब्दों को व्यक्त करता है। आम जन में जन जागरूकता पर्यटन के विषय में कैसे अधिक बढ़े उसे इस पर ध्यान देने की जरूरत है और ऐसे स्थानों को परक्ष में लाना चाहिए जो अभी तक सभी की नजरों से ओझल हैं। वैसे भी भारत में बहुत सारे इलाके आज ऐसे हैं जो मीडिया और सरकार की नजरों से ओझल हैं। इन पर विशेष काम करने की आज आवश्यकता है। मीडिया कई बार छोटी मोटी खबरों को तिल का ताड़ और सनसनी के अंदाज में पेश करता है जिससे कई बार देश की पर्यटन छवि पर बुरा असर पड़ता है । देश के किसी भी इलाके में घटी खबर को अगर सनसनी के अंदाज में पेश किया जाए तो इससे उस पर्यटन इलाके पर नकारात्मक असर पड़ता है जिससे वहाँ चाहकर भी पर्यटक जाना पसंद नहीं करते। कई बार पर्यटन से जुड़ी खबरों में बहुत ही नकारात्मक खबरें देखने को मिलती हैं जिसे किसी भी राज्य की पर्यटन की सेहत को बहुत नुकसान झेलना पड़ता है ऐसे में जो नुकसान होना था वो होकर ही राहत है और उस इलाके में पर्यटकों की आवाजाही चाहकर भी नहीं बढ़ पाती है। अतः मीडिया को अपना काम ईमानदारी और जिम्मेदारी के साथ करने की आज सबसे अधिक आवश्यकता है जिससे उसके प्रति लोगों की विश्वसनीयता बनी रहे ।

निष्कर्ष : पर्यटन की सफलता सुविधाओं के विकास पर निर्भर करती है, साथ ही जनता का योगदान भी उतना ही महत्वपूर्ण है। इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता कि भारत में पर्यटन के क्षेत्र में वृद्धि महत्वपूर्ण रही है लेकिन विदेशी पर्यटकों के आगमन और उनसे प्राप्त होने वाली आय का हिस्सा काफी कम रहा है। यह बात भी सही है कि भारत में पर्यटन विकास की असीम संभावनाएँ हैं जिनमें भारतीय प्राकृतिक एवं सांस्कृतिक विविधता के साथ साथ पर्यटक उत्पादों एवं अनुभवों का मुख्य आधार है जिनमें व्यवसाय, सांस्कृतिक, साहसिक, आध्यात्म, धार्मिक और ईको टूरिज्म के साथ साथ स्वास्थ्य पर्यटन भी शामिल है। इसके साथ ही अब ग्रामीण पर्यटन को भी बढ़ावा देना जरूरी हो रहा है। मीडिया की भागीदारी के बिना इच्छित लक्ष्य नहीं पाया जा सकता। देश के भीतर की इलाके ऐसे हैं जहां मीडिया को चाहिए वह इन्हें सबके सामने लाए। सरकार को भी चाहिए वह देश के ग्रामीण इलाकों में मौजूद कई पर्यटक स्थलों का प्रचार प्रसार करे जिससे ये सभी स्थल पर्यटन नीति के केंद्र में आ सकेंगे।मीडिया को भी अपनी बड़ी सकारात्मक भूमिका इन स्थलों के विकास में निभाने की जरूरत है ।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *https://hi-wikipedia-org*
2. *नेगी, डॉजगमोहन, पर्यटन मार्केटिंग एवं विकास, तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली*
3. *शर्मा,. डा. संजय कुमार, पर्यटन एवं पर्यटन उत्पाद, तक्षशिला प्रकाशन नई दिल्ली*
4. *प्रेमधर, इंटरनेशल टूरिज्म, कनिष्क पब्लिकेशन, नई दिल्ली*
5. *ग्रामीण पर्यटन – कुरूक्षेत्र फरवरी 2015*
6. *रोमांच भरा भारत, इंडिया टुडे, 21 अक्टूबर 2015*
7. *भारत में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश – शोध पत्रिका 2014–2015 -tourisminindia-com*
8. *सबनानी, प्रह्लाद, https://www-prabhasakshi-com/currentaffairs/impact&of&corona&on&tourism&industry&and&measures&being&taken&by&modi&government*
9. *https://www-jagran-com/editorial/apnibaat&tourism&opens&door&to&prospects&tourism&industry&can&change&economic&condition&and&direction&of&country&19177945-html*
10. *www-rstv-nic-in*

इतिहास के पन्नों में फलौदी और हुमायूं (एक अध्ययन)

दिनेश गहलोत
शोधार्थी, जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय जोधपुर

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

मारवाड़ के विभिन्न परगनों में फलौदी परगने का स्थान विशिष्ट रहा है। यहाँ कि भौगोलिक स्थिति व इतिहास अपना अलग ही महत्व रखता है। जब मुगल बादशाह हुमायूं चौसा व कन्नौज के युद्धों में अफगान शासक शेरशाह से पराजित होकर इधर-उधर भटक रहा था। उस समय उसे मारवाड़ के शासक मालदेव से सहायता का आश्वासन मिला परन्तु हुमायूं ने उस पर कोई ध्यान नहीं दिया तथा जब चारों तरफ से निराशा हाथ लगी तब यह मालदेव की तरफ आगे बढ़ा तथा मारवाड़ के फलौदी परगने में आ पहुँचा परन्तु अब परिस्थितियाँ बदल चुकी थी। अतः वह दईजर से वापस फलौदी होते हुए अमरकोट चला गया। अतः हुमायूं का फलौदी में रुकना भारतीय इतिहास में एक महत्वपूर्ण घटना है तथा मालदेव का हुमायूं को सहायता देने का आश्वासन देना एक इतिहास प्रसिद्ध घटना है अतः फलौदी परगने का उल्लेख समकालीन सभी इतिहासकारो ने अपने ग्रन्थों में किया है जो फलौदी परगने का भारतीय इतिहास में महत्व को दर्शाता है।

संकेताक्षर : *मरूधर, विजयनगर, फलौदी, शेरशाह, मालदेव, हुमायूं, चौसा, कन्नौज, अमरकोट।*

जोधपुर क्षेत्र का ऐतिहासिक नाम मरूधर या मारवाड़ है। मारवाड़ के इतिहास में फलौदी परगने का स्थान विशिष्ट रहा है। प्रख्यात इतिहासकार व संवत् 1694 वि. में फलौदी परगने के हाकिम मुंहता नैणसी ने 'मारवाड़ रा परगना री विगत' में क्रमांक चार पर 'बात परगने फलौदी री' में फलौदी का विवरण निम्न प्रकार से उद्धृत किया है –

'आदी फलौदी विजै नगरी कही जाती।' फलोधी सेहर विच देहरो एक श्री कलाणराय रो छै। तिण रै माथे नांवौ छै। संमत 1145 रा जैइ थे देव पंवार राज करतौ तद दैहरो हुआ छै। तद विजै नगरी कही जाती । देहरो एक वलभे जैन रो थो। फूल मोहल री ठोड़ थौ। तद भलो सहर बसतौ । पछे बीच में दल दुकाल, तुरकांणा राज उथल हुवौ। पंवारा सूं बाहड़मेर छूटौ, तरै आही धरती छूटी सु गांव सूनौ होय गयौ, सु गांव घणा दिन सूनौ रहौ। देहरा (मन्दिर) विगर कोई आईठाण रहौ नहीं।[1]

इस वर्णन से यह प्रमाणित होता है कि वर्तमान में जिस जगह पर फलौदी स्थित है, वहां प्राचीन काल में एक शहर बस्ता था। उसका उस समय का नाम 'विजय नगर' 'विजैपुर' या 'विजै पट्ट्ण' में से कोई एक प्रचलित था। ऐतिहासिक तथ्यों की जानकारी की जो भी सामग्री उपलब्ध हुई है, उसमें जैन मुनि सुन्दरजी ने एक विशाल 1600 पृष्ठ के लगभग ग्रन्थ की रचना है वह प्रमुख है तथा ख्याति प्राप्त है और प्रमाणिक भी है। यह ग्रन्थ दो भागों में विभाजित है। उक्त ग्रन्थ का नाम – 'भगवान पार्श्वनाथ की परम्परा का इतिहास है।' इस ग्रन्थ से हमें फलौदी के इतिहास की जानकारी मिलती है।

श्री जगदीश सिंह गहलोत ने ''मारवाड़ राज्य का इतिहास'' ग्रन्थ में लिखा है कि ''हुकुमत कस्बा फलौदी है जो 70 मील उत्तर-पश्चिम में जोधपुर रेल्वे की फलौदी ब्रांच का स्टेशन है। आबादी 13 हजार और आबाद घर तीन हजार है। इसका पुराना नाम फलवृद्धिका और विजयपुर पाटन था। यह कस्बा उन्नत शील है और यहां के व्यापारी बड़े उत्साही व व्यापार में कुशल हैं जो भारत वर्ष के बड़े-बड़े नगरों में कारोबार चलाते है। यहां के मकान सुन्दर व कोरनीदार

पक्के पत्थरों के बने हैं यह नगर जिस समय 'विजयपुर पाटन' कहलाता था उस समय आंचन राजपूतों के अधिकार में था, राव मालदेव राठौड़ ने इसे जीता। बाद में सम्राट अकबर ने अधिकार कर जैसलमेर के रावल हरराय को दिया। बाद में बीकानेर ने इस पर कब्जा किया। अंत में यह महाराज अजीत सिंह के समय से जोधपुर राज्य में है। यहाँ का किला राव हमीर नरावत (राव सूजा का पोता) ने पोकरन से आकर वि.सं. 1545 में बनवाया था। कहते है कि इस किले को बनाने में पुष्करणा ब्राह्मण फला का धन व्यय हुआ था इस कारण कलावंशीय फला ने राव हमीर से कहकर इसका नाम फला धी (अर्थात् फला की कन्या) रखवाया जो कालान्तर में फलौदी हो गया।[2]

राव मालदेव गांगा का ज्येष्ठ पुत्र था।[3] जब राव मालदेव जोधपुर के शासक सं. 1588 वि. में बने थे। उसके ठीक एक साल बाद सं. 1589 वि. में फलौदी के राव हमीर के एकाएक देवलोक गमन हुआ था। एकाएक यह घटना घट जाने से जोधपुर के राव मालदेव ने फलौदी के राव रूप में राव हमीर के ही पुत्र राम को राव नियुक्त किया सं. 1589 वि. में राव राम फलौदी की गद्दी पर बैठा। इसके पूर्व के सभी फलौदी के राव जोधपुर के शासक को अपना स्वामी मानते चले आ रहे थे। वे एक ही परिवार के सदस्य जो थे। राव मालदेव एक साहसी, वीर, स्वाभिमानी और महत्वाकांक्षी शासक था। वह राज्य विस्तार करने में लगा रहा और अपने अधीन छोटे राव लोगों पर भी अपना पूर्ण नियंत्रण में रखना पसन्द करता था। इस रूझान के परिणाम स्वरूप उत्तर भारत के कई इलाकों को वह अपने अधीन कर चुका था। उस समय उत्तर भारत में स्वाभिमानी ताकत के शासकों का एक त्रिकोण निर्मित हो चुका था। एक और दिल्ली का बादशाह हुमायूं था, दूसरी और अफगान सरदार शेरशाह विजयी यात्राएं कर रहा था; और इधर मारवाड़ का शासक राव मालदेव उन्नति की शिखर पर था। हुमायूं और शेरशाह में आपसी प्रतिद्वन्द्विता थी। दिल्ली पर अपना अधिकार करने के लिए वे आपस में लड़ाइयां करते आ रहे थे। मालदेव तीसरा चौकन्ना था। कहां किस पक्ष में अपने आपको उपस्थित या स्थिर करे। हुमायूं की स्थिति दिन प्रतिदिन बदतर और कमतर होती जा रही थी, क्योंकि वह अफगान सरदार से हारता जा रहा था।

डॉ. सोहन कृष्ण पुरोहित के अनुसार– 'जिस समय मालदेव उन्नति के शिखर पर था,' उस समय मुगल बादशाह हुमायूं चौसा और कन्नौज के युद्ध में पराजित होकर, मारा–मारा फिर रहा था।[4] फारसी ग्रन्थों के अनुसार, मालदेव ने हुमायूं को जब वह भक्खर में था, सहायता देने हेतु सन्देश भेजा था, ताकि देश की राजनीतिक स्थिति से लाभ उठा सके। उधर मालदेव के शत्रु शेरशाह की सेवा में पहुंच चुके थे। विशेष रूप से बीकानेर के कल्याण मल जिसके परिवार के एक सदस्य को राव मालदेव ने मारा था, वह मालदेव से नाराज था। वह (मालदेव) अफगान नेता से नाराज था क्योंकि वह उसके ही सरदारों को पनाह दे रहा था। प्रारम्भ में हुमायूं ने मालदेव के पत्रों का उत्तर नहीं दिया था, लेकिन जब सभी उसका साथ छोड़ चुके थे तो वह मालदेव के राज्य फलौदी परगने में पहुंचा। उसने एक दूत अतका खां के माध्यम से मालदेव से सहायता की बात चलाई; लेकिन राठौड़ शासन ने उसे कोई स्पष्ट आश्वासन नहीं दिया । इसलिए हुमायूं वहां से अमरकोट रवाना हो गया।

नन्दकिशोर शर्मा ने अपनी पुस्तक में यह उल्लेख किया है कि 'हुमायूं शेरशाह से पराजित होने के बाद कन्नौज से आगरा की ओर चल पड़ा तथा लाहौर से वह रोहरी पहुंचा। इस बीच उसे मालदेव राठौड़ का पत्र मिला; जिसमें उसे जोधपुर आने का निमंत्रण था।[5] पहले तो उसने कोई ध्यान नहीं दिया, लेकिन जब किसी भी स्थान पर आदर या स्वागत नहीं मिला तो वह रोहरी से उछ पहुंचा। उछ में भी विषय परिस्थिति थी। ऐसी विकट परिस्थितियों में उसने मालदेव राठौड़ के पत्र का स्मरण आया और वह मारवाड़ की ओर चल पड़ा।'[6] हुमायूं को मारवाड़ जोधपुर जाना था। अतः उसके लिए देरावल से फलौदी होकर जोधपुर पहुंचना ही सुगम, सरल एवं निकटतम रास्ता था।[7] डॉ. विद्याधर महाजन लिखते है – 'मारवाड़ के राजा मालदेव ने हुमायूं को निमंत्रित किया और उसने निमंत्रण स्वीकार कर लिया।[8] मार्ग में उसे पता चला कि मालदेव ने अपना विचार बदल दिया है; और वास्तव में शेरखां को प्रसन्न करने के लिए उसे बन्दी बनाना चाहता है। ऐसी परिस्थिति में उसे सिन्ध की ओर मुड़ जाना पड़ा।'[9] हुमायूं का फलौदी में ठहरने का उल्लेख डॉ. मांगीलाल व्यास 'मयंक', इतिहासकार आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव, डॉ कानूनगो, रामकरण आसोप ने भी अपने ग्रन्थों में यत्र–तत्र थोड़ा–अधिक किया है कि हुमायूं फलौदी में रूका था। कर्नल टॉड ने राव मालदेव के अधीन परगनों की सूची में 'फलोडी' लिखा है। यह सब उल्लेख करने का मकसद है कि यह

घटना फलौदी के राव राम के समय की ही है। यह भारत कि इतिहास की एक प्रमुख घटना है और भारत के इतिहास लेखकों ने इसे उद्धृत किया है। यह घटना सन् 1542 ई. के अगस्त (सं. 1599 वि. के भाद्रपद माह) की होनी स्पष्ट है[10] और उस समय फलौदी में राम राव शासक था। कहीं–कहीं ग्रन्थों में यह भी उल्लेख है कि राव मालदेव ने हुमायूं के स्वागत के लिए फल भेंट स्वरूप भिजवाए थे।[11] इतना सब कुछ होते हुए भी मालदेव ने राव राम को क्या निर्देशित किया था? या आदेश दिया था? उल्लेख नहीं है इस संदर्भ में राव राम ने क्या भूमिका अदा की ? यह कहीं भी उल्लेख नहीं मिलता है। फिर भी हुमायूं का फलौदी ठहरना या रूकना–फलौदी के इतिहास में, फलौदी की प्रसिद्धि का ही लक्षण है। यह एक ऐतिहासिक घटना भी है।

फलौदी के राव राम के समय में हुमायूं के फलौदी ठहराव या विश्राम के बारे में रेऊ का यह उल्लेख विशेष ध्यान देने योग्य है, यह उद्धृत करता है– देरावर से होकर वह (हुमायूं) फलोदी तथा वहां से देईजर नामक गांव में पहुंचा और जोगी तीर्थ पर मुकाम किया । इस पर राव मालदेव ने भी अतिथि के योग्य ही खिदमत और मोहरें आदी भेजकर उसका स्वागत किया, हर प्रकार से मदद देने का वादा कर उसे बीकानेर का परगना खर्च के लिए सौंप देने की प्रतिज्ञा की (गुलबदन) इसी बीच शेरखां ने अपना वकील भेज मालदेवजी को अपनी तरफ मिलाने की कोशिश शुरू की इससे हुमायूं को सन्देह हो गया और वह फलौदी होता हुआ उमर कोट की तरफ चला गया। यह उद्धरण अधिक विश्वसनीय लगता है। हुमायूं का फलौदी में ठहराव नहीं रूकाव हुआ। फलौदी होता हुआ गया है। यदि फलौदी में हुमायूं ठहरता ओर वहां से अपने प्रतिनिधि भेजता और उत्तर की प्रतीक्षा करता, तब तक चार–पांच दिन की अवधि अवश्य लगती। ऐसा होना सम्भव नहीं लगता है। उस समय फलौदी परगना मारवाड़ के अन्य परगनों में प्रमुख था। इतिहास के पन्नों पर हम फलौदी को एक शरण स्थली के रूप में पाते है यह इसकी अपनी स्थिति के फलस्वरूप ही सम्भव हुआ है, क्योंकि फलौदी, जोधपुर, बीकानेर और जैसलमेर, के करीब–करीब समान दूरी पर ही स्थित है।[12]

अतः फलौदी परगना मारवाड़ के इतिहास में ही नहीं बल्कि भारत के इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। मुगल बादशाह हुमायूं का फलौदी में रूकाव इतिहास में महत्वपूर्ण घटना है जो फलौदी परगने की महत्ता को दर्शाता है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1 *मुहणोत नैणसी :– मारवाड़ रा परगना री विगत भाग– 2 पृ. 1*

2 *जगदीश सिंह गहलोत :– मारवाड़ राज्य का इतिहास*

3 *गोपीनाथ शर्मा :– राजस्थान का इतिहास, पृ 250*

4 *डॉ. सोहन कृष्ण पुरोहित :– मारवाड़ की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि*

5 *नन्द किशोर शर्मा :– जैसलमेर का राजनीतिक इतिहास, पृ 149*

6 *डॉ. मागीलाल मयंक :– जोधपुर राज्य का इतिहास, पृ. 11*

7 *नन्द किशोर शर्मा :– जैसलमेर का राजनीतिक इतिहास पृ 151*

8 *डॉ. विद्याधर महाजन :– मुस्लिम कालीन भारत*

9 *अकबरनामा, भाग– 1, पृ 371–73*
(i) गुलबदन, हुमायूँनामा, पृ. 154
(ii) ईश्वरीप्रसाद, पृ. 210–11
(iii) कानूनगो, पृ. 368–70
(iv) तबकात–ए–अकबरी, इलियट, भाग 5 पृ. 211–12

10 *आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव, मध्यकालीन भारत का इतिहास पृ. 339*

11 *(i) गुलबदन, हुमायूँनामा, पृ. 154*
(ii) ईश्वरी प्रसाद, हुमायूँ, पृ. 210–11
(iii) कानूनगो, शेरशाह पृ. 366
(iv) जौहर (पाण्डुलिपि), पृ. 75

12 *पुष्करणा संदेश, फलौदी विशेषांक, पृ 35*

भारत में जनजातीय समुदाय की सामाजिक, आर्थिक एवम् शैक्षणिक स्थिति

डॉ. पूनम कुमारी
अतिथि शिक्षिका, बलिराम भगत महाविद्यालय, समस्तीपुर (बिहार)

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

किसी भी समाज की उन्नति एवं विकास के लिए शिक्षा अत्यंत आवश्यक है। शिक्षा के अभाव में हम एक सभ्य समाज की कल्पना नहीं कर सकते है। भारत एक विशाल देश है। जिसमें अनेक विविधताएँ है। आदिकाल से ही यह विभिन्न धर्मों, मतों, सम्प्रदायों, संस्कृतियों, प्रजातियों, जनजातियों की कर्म भूमि रही है अधिकतर जनजातियाँ ऐसे भौगोलिक क्षेत्रों में निवास करती है जहाँ अभी भी सभ्यता का विकास नहीं हुआ है। भारतीय संविधान में उन वर्गो के उत्थान और कल्याण के लिए विशेष प्रावधान किये गये हैं जो सामाजिक, आर्थिक और शैक्षणिक दृष्टि से पिछड़े हुए है। सरल अर्थो में कहें तो जनजातियों का अपना एक वंशज, पूर्वज तथा सामान्य देवी देवता होते है। ये अमूमन प्रकृति पूजक होते हैं। भारतीय संविधान में जहाँ उन्हें अनुसूचित जनजाति कहा गया है तो दूसरी ओर उन्हें अन्य कई नामों से भी जाना जाता है जैसे- आदिवासी, आदिम जाति, वनवासी, प्रागैतिहासिक इत्यादि।

संकेताक्षर : *भारत, जनजातीय समुदाय, सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक स्थिति।*

जनजाति या आदिवासी का मूल अर्थ है–निवासी। डी.एन. मजूमदार ने ''जनजाति को परिवार का संकलन कहा है जिसका अपना एक सामान्य नाम होता है जिसके सदस्य एक निश्चित भू–भाग पर रहते है, सामान्य भाषा बोलते हैं, विवाह, व्यवसाय या उधोग के विषय में कुछ निषेधों का पालन करते है तथा एक सुनियोजित आदान–प्रदान की व्यवसाय का विकास करते है। इस प्रकार आदिवासी कहने से एक ऐसे परिवार का बोध होता है, जिसकी अपनी भाषा, संस्कृति, एक सुनिश्चित भू–भाग होता है, जिसमें वे परम्परागत विधि–विधानों से परिपूर्ण स्वतन्त्र सुरक्षात्मक संगठन के जरिये अपने समाज का संचालन करने में समर्थ होते हैं।

आदिवासी जनजातियाँ भारत के लगभग सभी भागों में पायी जाती है। उत्तर में हिमालय की ऊँची चोटियाँ, भारत के मध्य में सतपुड़ा और विन्धयाचल के हरे–भरे पर्वत, पश्चिम भारत में अरावली की पहाड़ियों और पूर्व के भारी वर्षा वाले सघन क्षेत्रो में आदिवासी जनजातियाँ रहती है। मूलतः आदिवासी शहरी सभ्यता को शहरीपन से दूर है। उनकी अपनी अलग संस्कृति है, अलग तरह की सभ्यता है। उनका जीवन रीति रिवाज और परम्परायें अलग तरह की है। उनके जीवन में गीत और नृत्य को बहुत महत्व दिया जाता है कठिनाईयाँ भरे अपने अभावपूर्ण जीवन को वे गीतों और नृत्यों के द्वारा सुखमय और मनोरंजन पूर्ण बना लेते है।

भारत में पाई जाने वाली विशेष जनजातियाँ

पूर्वोतर, मध्य, दक्षिण एवम् द्विपीय क्षेत्र : कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, उत्तर प्रदेश, बिहार, उत्तराखण्ड तथा पूर्वोतर के सभी राज्य इस क्षेत्र में आते हैं। इन क्षेत्रों में बकरवाल, गुर्जर, थारु दूक्सा, राजी,जौनसारी, शौका, भोटिया,गद्दी, किन्नौरी, खासी, जायंतिया, जमातिया, चकमा, रियांग, लेपचा, मुण्डा, भुटिया, लुसाई, कुकी, भील, संथाल, इत्यादि जनजातियाँ निवास करती है।

दक्षिण राजस्थान, आँध्र प्रदेश, उत्तर प्रदेश, गुजरात, बिहार, झारखण्ड, छतीसगढ़, उडीसा आदि राज्य इस क्षेत्र में आते है जहाँ भील, गौड़, रेड्डे, संथाल, हो, मुंडा, कोरवा, उँराव, कोल, बंजारा, मीणा, कोली आदि जानजतियाँ निवास करती है।

दक्षिण क्षेत्र : कर्नाटक, तमिलनाडु, केरल राज्य आते हैं जहाँ टोडा, कोरमा, गौड़, भील, कडार इसला, आदि जनजातियाँ निवास करती है।

द्विपीय क्षेत्र के अन्तर्गत अण्डमान निकोबार की जनजातियाँ आती है । संटिनलीज, ओंग, जारवा एवम् शोम्पेन इत्यादि जानजातियाँ पायी जाती है।

जनजातीय महिलाएँ

आदिवासी समाज के अलग-अलग जनजातियों में स्त्रियों की स्थिति, कार्य और महत्व अलग-अलग है। कहीं स्त्रियों को बहुत आर्थिक अधिकार प्राप्त है और कही वह समाज और परिवार की सामाजिक संरचना और संस्कृति का निर्माण प्रकृति के सम्पर्क में स्वतंत्र रुप से विकसित करती है। अतः सामान्य रुप में स्त्रियों को पुरुषों के समकक्ष स्थिति प्राप्त है।

आदिवासी समाज में लिंग भेद नहीं माना जाता है। पुत्र के समान पुत्रियों को भी समाज में समान रुप से आदर, महत्व और अधिकार प्राप्त है। यही कारण है कि आदिवासी समाज स्त्री पुरुष संख्या के अनुपात में अधिक अन्तर नहीं है। एन.सी.चौधरी का मत है कि ''जनजातीयें समाज में स्त्रियों को एक आर्थिक सम्पदा के रुप में माना जाता है तथा कठोर परिश्रमी एवं कर्तव्य परायण पत्नी को पर्याप्त महत्ता एवंम् सम्मान की दृष्टि से देखा जाता है स्त्री पुरुषों के बीच श्रम विभाजन स्पष्ट रुप से दिखाई देता है। स्त्रियाँ घरेलू कार्य एवम् बच्चों का लालन पालन के अतिरिक्त,कृषि संबंधि कार्य एवम् पशु आहार और ईधन संग्रह के कार्यों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है इसके साथ यह भी देखा जाता है कि पुरुषों से अधिक काम करके भी स्त्रियाँ को पुरुषों के समकक्ष उन्हें पीछे दोयम स्थान पर मानी जाती है।

सामाजिक स्थिति

पहाड़ो, जंगलो एवम् सुदूरवर्ती इलाके में जीवन यापन करने के कारण या कई समस्याओं से जूझते रहते है। सामाजिक संपर्क स्थापित करने में अपने आप को सहज नहीं पाती है, इस कारण ये सामाजिक सांस्कृतिक अलगाव, भूमि अलगाव, अस्पृश्यता की भावना महसूस करती है। ये वर्ग अभी भी जंगलो एवं ऊँचे-ऊँचे पहाड़ों पर रहने के कारण कुछ क्षेत्रों में अभी भी निरक्षर है जिसके कारण ये आम बोलचाल की भाषा को समझ नहीं पाते हैं जो इनके पिछड़ेपन का मूल कारण है।

गरीबी के कारण ये दूसरे के घरों मे काम कर अपना जीवन यापन चलाते है। आर्थिक तंगी के कारण अपने बच्चों को पढ़ा लिखा नहीं पाते है तथा पैसे के लिए अपने बच्चें को व्यवसायियों या दलालों के हाथ बेच देते है गरीबी के कारण ये मानव तस्करी के शिकार हो जाते है।

लड़कियों को अमूमन वेश्यावृति जैसे घिनौने दलदल में धकेल दिया जाता है। आर्थिक अलगाव भी जनजातियों की समस्याओं का एक बहुत बड़ा पहलू है। सार्वजनिक मंदिरों में प्रवेश तथा पवित्र स्थानों के उपयोग पर अभी भी कही-कही प्रतिबंध लगा हुआ है जो इनके सामाजिक रुप से हेय दृष्टि से देखा जाता है।

आर्थिक स्थिति

आदिवासी समाज को अनेक आर्थिक समस्याओं का सामना करना पड़ता है जैसे- ऋण, पानी, यातायात, शिक्षा और स्वास्थ आदि। आज भी इस समाज में लोग दूसरों के घरों में काम कर अपना जीवनयापन कर रहे हैं। माँ बाप आर्थिक तंगी के कारण अपने बच्चों को पढ़ा-लिखा नहीं पाते है। इसी कारण आदिवासी समाज में शिक्षा का बहुत अभाव है। संविधान द्वारा अनेक अधिकार मिलने के बाद भी इन्हें अपने अधिकार का ज्ञान नहीं है। कानून के दांव पेंच न जानने के कारण इनकी जमीन हडप ली जाती है। आदिवासियों के बीच काम करने वाले संगठनों की एक सर्वेक्षण रिपोर्ट से पता चला है कि आंध्रप्रदेश, छतीसगढ़, उडीसा और झारखण्ड में जो लोग विस्थापित हुए हैं उनमें से 79 प्रतिशत आदिवासी थे। इनकी बहुत सारी जमीन बांधों के जलाशयों में डूब चुकी है। इसके अलावा भारत में 104 राष्ट्रीय पार्क और 543 वन्य जीव अभयाण्य है। ये ऐसे इलाके है जहाँ मूल रुप से आदिवासी रहा करते थे। अब उन्हें वहाँ से निकाल दिया गया है।

अपनी जमीन और जंगलो से बिछडने पर आदिवासी समुदाय आजीविका और भोजन के लिए अपने मुख्य स्रोतो से वंचित हो जाते हैं। अपने परंपरागत निवास स्थानों के छोडने की वजह से बहुत सारे आदिवासी काम की तलाश में शहरों की ओर पलायन कर रहे है। वहाँ उन्हें छोटे-छोटे उद्योग, इमारतों या निर्माण स्थलों पर मामूली वेतन वाली नौकरियाँ करनी पडती है। इस तरह वे गरीबी और लाचारी के जाल में फसते चले जाते हैं। ग्रामीण इलाकों में 45 प्रतिशत और शहरी इलाकों में 35 प्रतिशत आदिवासी गरीबी की रेखा से नीचे गुजर बसर करते है।

ये समुदाय बाजार हाट एवं पानी लेने के लिए मीलों दूर पैदल जाते है। अधिक श्रम और अभावों से त्रस्त जीवन में आदिवासी समाज शराब का सहारा लेते हैं। शराब के साथ संगीत एवं नृत्य के मनोरंजन से अपना दुख भुलाते है, लेकिन लगातार कुपोषण, शराब की लत और तंबाकू के सेवन के कारण इनका स्वास्थ जल्दी खराब होने लगता है। प्राकृतिक वातावरण में रहने के बाद भी जब कोई बीमारी फैलती है तो वह जानलेवा ही सिद्ध होता है। उस समय इनके पास सही इलाज की जानकारी नहीं रहती है। जादू टोना के चक्कर में वे अपनी जान गवा देते हैं।

शैक्षणिक स्थिति

किसी भी वर्ग की उन्नति एवं विकास में शिक्षा एक बहुत बड़ा कारक होता है। बिना समुचित शिक्षा के अभाव में कोई भी वर्ग तरक्की नहीं कर सकता है। जनजातीय वर्ग के समुदाय पहाड़ों जंगलो, दूर दराज क्षेत्र में रहने के कारण ये अपना समुचित शिक्षा ग्रहण नहीं कर पाते हैं। अतः इन वर्गो को बिना शिक्षित कराये राष्ट्र की मुख्य धारा में मिलाये बगैर देश के समग्र विकास की कल्पना नहीं की जा सकती हैं। बिना शिक्षा के ये अपने अधिकार के बारें में जानकारी प्राप्त नहीं कर सकते हैं। सरकार इनके शैक्षणिक उत्थान विशेष रुप से एकलव्य विद्यालय, कॉलेज, विश्वविद्यालयों के नांमाकन में सीटों का आरक्षण एवंम् छात्रवृति का प्रावधान कर दिया गया है जो इनके जीवन के खुशहाल बनाने में एवंम् राष्ट्र की मुख्य धारा में मिलने में सहायक है।

आदिवासी ही भारत के असल मूल निवासी है जो लाखों वर्षो से भारत भूमि पर रहकर यहाँ की प्रकृति और खनिज संपदा को बचाए रखे हैं अतः इनका मुख्य धारा में अग्रणी होना हमारे देश के लिए सौभाग्य की बात होगी। इसके लिए सरकार को और भी विभिन्न प्रकार की शैक्षणिक योजनाएँ लागू करते रहना चाहिए ताकि ये शैक्षणिक दृष्टि से समाज में अपना कद ऊँचा कर सकें एवंम् विभिन्न सरकारी नौकरियों में अपना योगदान देकर अपनी आर्थिक स्थिति को भी ठीक कर सकें।

इस प्रकार हम कह सकते है कि वनवासी, आदिवासी जनजातीय निरक्षर एवम् जंगलों, उचे–उचे पहाड़ों, सीमावर्ती क्षेत्रों एवं निर्जन जंगल में वास करने वाले हमारे लाखो वर्षो से इस देश में निवास करने वाले इन महामानवों के उत्थान विकास के लिए राज्य सरकार, केन्द्र सरकार एवम् स्वायत संगठनों को इनके लिए आर्थिक, सामाजिक, शैक्षणिक एवंम् सांस्कृतिक दृष्टि से सबल बनाने के लिए सरकार के साथ–साथ शहरी क्षेत्रों में रहने वाले सभी संगठनों का यह कर्तव्य बनता है कि इनके लिए जन–जाति जागृति लाने के लिए विशेष अभियान एवं कार्यक्रम घूम–घूम कर चलाना चाहिए ताकि ये समाज में अपना इज्जत के साथ और बिना अस्पृश्ता की भावना से रह सके। इसके साथ–साथ समाज को इस बात के लिए भी प्रोत्साहित किया जाना चाहिए कि वे इनकी संस्कृति को हानि न पहुंचाये बल्कि उसको सुरक्षित रखते हुए विकसित करे।इसके साथ ही इनके मान सम्मान की भावना की कद्र करते हुए सभी वर्ग के लोग इनको किसी भी प्रकार की समस्या आने पर खुले मन से इनकी सहयता करें ताकि हम अपने महामानव को पुराना गौरव लौटा सके जिनकी वीरता और विश्वसनीयता विभिन्न शास्त्रो, पुराणो एवंम् महाकाव्यो में वर्णित है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *उपाध्याय विजय शंकर, वर्मा विजय प्रकाश : भारत की जनजातीय संस्कृति– मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पंचम संस्करण–1998*
2. *डॉ. विजय कुमार, डॉ नामदेव दलित चेतना और स्त्री विमर्श– क्लासिकल पब्लिसिंग कम्पनी नई दिल्ली,*
3. *संतोष भारतीय : दलित, अल्पसंख्यक सशक्तीकरण, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली 2008, बेव सामग्री*
4. *https://www.google.co.in/books/edition/Aadivasi_Kaun/x77CfjnAHmYC?hl=en&gbpv=1&dq=baharat+me+janjatiy+samuday&pg=PA82&printsec=frontcove*

योगमाहात्म्य

मनजीत कंवर
शोधार्थी, जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

विविध भारतीय दर्शनों के बीच योगदर्शन का स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण रहा है। योग हिन्दू जाति की सबसे प्राचीन सम्पत्ति है। ऋषियों ने ज्ञान उत्पत्ति का कारण योग ही माना है। योग के अभ्यास से ही मनुष्य अनेक प्रकार की सिद्धियाँ भी प्राप्त कर सकता है। योग शब्द का उल्लेख ऋग्वेद, शतपथ ब्राह्मण तथा बृहदारण्यकोपनिषद् में प्राप्त होता है। वेद में इस शब्द का प्रयोग यद्यपि विभिन्न अर्थों में हुआ है तथापि अधिकतर इसका प्रयोग 'घोड़े को वश में करना' इस अर्थ में ही किया गया है। महार्षि पतंजलि द्वारा चलाये गये योग को सभी ने अंगीकार किया है। योग से ही मानव का कल्याण संभव है। प्रस्तुत शोध-पत्र में योग के महत्त्व को चित्रित किया गया है।

संकेताक्षर : *योग, दर्शन, आत्मा, मोक्ष, ज्ञान, परमपद, तत्त्वज्ञान।*

''योग जीवन का वह दर्शन है, जो मनुष्य को उसकी आत्मा से जोड़ता है।''

भारतीय संस्कृति में ध्यान और योग की परंपरा का अस्तित्व प्राक् ऐतिहासिक काल से ही उपलब्ध होता है। मोहनजोदड़ों व हड़प्पा से उपलब्ध सीलों में ध्यानस्थ योगियों के अंकन इस बात के प्रमाण है कि भारत में योग व ध्यान की जड़े अति गहन है। योग का शाब्दिक अर्थ जोड़ना है, यह संस्कृत के 'युज्' धातु से उत्पन्न है। परन्तु जब हम दार्शनिक दृष्टि से या आध्यात्मिक दृष्टि से योग पद का विचार करते हैं, तब योग का अर्थ त्रिविध दुःखों से निवृत्ति के साधन के रुप में निरूपित किया जाता है। इस प्रकार विविध भारतीय दर्शनों के बीच योगदर्शन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। महाभारत में श्रीशुकदेव ने ठीक ही कहा है-**'न तु योगामृते प्राप्तुं शक्या सा परमा गतिः।'**

योगदर्शन के उद्धावक महान् व्याकरणाचार्य पतंजलि थे। यह दर्शन कपिल मुनि के सांख्य दर्शन से बहुत मिलता जुलता है। महाभारत में इन दोनों दर्शनों को एक दूसरे का पूरक बतलाया गया है। सांख्य दर्शन सिद्धान्त का प्रतिपादन करता है तो योग दर्शन व्यवहार का। योग दर्शन के अनुसार इस संसार में दुःख ही दुःख है। उससे मुक्ति मोक्ष द्वारा हो सकती है परन्तु मोक्ष प्राप्ति के लिए योग परमावश्यक है। आत्मा और परमात्मा का अभेद ही मोक्ष है। आत्मा को परमात्मा में विलीन करने के लिए, चार्वाक को छोड़कर, सभी भारतीय दर्शन योग को को साधन के रूप में स्वीकार करते है। यह स्थिति प्राप्त करने के लिए शरीर, इन्द्रियों व मन पर पूर्ण नियंत्रण आवश्यक है। जो योग द्वारा ही संभव है। यह एक सुविदित तथ्य है कि भारतीय दर्शन का चरम लक्ष्य प्राणियों को त्रिविध दुःखों से सदा के लिए छुटकारा दिलाना ही है। दुःखों की यह शाश्वतिक निवृत्ति मोक्ष, कैवल्य, अपवर्ग, निःश्रेयस्, निर्वाण और परमपद इत्यादि पदों से अभिहित की गयी है। इसकी सिद्धि हेतु प्रायः सभी भारतीय दर्शन पदार्थों के शुद्ध ज्ञान को किसी न किसी प्रकार से अपरिहार्य उपाय मानते हैं।

पदार्थों के इस शुद्ध ज्ञान को विभिन्न दर्शनों में तत्त्वज्ञान, सम्यक्-ज्ञान, तत्वसाक्षात्कार, परमज्ञान, विज्ञान परप्रसंख्यान और विवेकख्याति नाम दिये गये हैं। इस शुद्ध ज्ञान का एक रुप वह है, जो बुद्धि की शुद्ध सात्विक वृत्ति के द्वारा प्राप्त किया जाता है और दूसरा व उत्तम रुप वह है जो वृत्तिहीन स्थिति में आत्मा का अपरोक्ष अनुभव होता है। प्रथम प्रकार का तत्वज्ञान 'सांख्ययोग' में 'विवेक-ख्याति' के नाम से प्रसिद्ध है और द्वितीय प्रकार का तत्वज्ञान

योगशास्त्र में 'असम्प्रज्ञात योग' के नाम से विख्यात है। इस उभयस्तरीय प्रक्रिया का रचनात्मक स्वरूप ही योग साधना है। उपनिषदों में भी लिखा है कि–

विज्ञातारमरेकेन विजानीयादिति।[1]
यन्मनसा न मनुते।[2]

वृत्तिलभ्य शुद्ध ज्ञान का पर्यवसान विवेक–ख्याति है। ईश्वरकृष्णीय सांख्य की चरम साधना विवेक–ख्याति है, किन्तु उसमें सारी करामात सात्त्विक बुद्धिवृत्ति की होती है।

सात्विक्या तु बुद्ध्या तदाथस्य मनाक्
संभेदोऽस्त्येव।[3]

असम्प्रज्ञात योग के संबंध में श्री कृष्ण ने गीता में लिखा है कि–

यत्रोपरमते चित्तं निरुद्धं योगसेवया।
यत्र चौवात्मनात्मानं पश्यन्नात्मनि तुष्यति।[4]

योग का उल्लेख ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद में अनेकशः हुआ है। जहाँ व्यवहृत 'योग' शब्द योग साधना का ही अर्थ होता है। उदाहरण–

यस्मादृते न सिद्धयति यज्ञो विपिश्चितश्चन।
स धीनां योगमिन्वति।[5]
योगे योगे तवस्तरं वाजे वाजे हवामहे।
सखाय इन्द्रमूतये।[6]

बृहदकारण्यक उपनिषद् में भी आत्म दर्शन के लिए समाधि को अनिवार्य रुप में प्रतिपादित किया है। जैसे–

तस्मादेवं विच्छान्तो दान्त उपरतस्तितिक्षुः समाहितो
भूत्वोत्मन्येवात्मानं पश्यति।[7]

श्वेताश्वतर उपनिषद् तो योग की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा करता है–

(अ) योगप्रवृत्तिं प्रथमा वदन्ति।[8]
(आ) न तस्य रोगो न जरा न मृत्युः प्राप्तस्य
योगाग्निमयं शरीरम्।[9]

योग अभ्यास से योगी को ऋतम्भरा प्रज्ञा की प्राप्ति होती है–

नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।
तत्स्वयं योगसंसिद्धः कालेनात्मनि विदन्ति।[10]

भगवान श्री कृष्ण ने योग धर्म को ''रहस्यं ह्येतदुत्तमं'' ही कहा है। जैसे–

स एवायं मया तेद्य योगः प्रोक्तः पुरातनः।
भक्तोसि मे सखा चेति रहस्यं ह्येतदुत्तमम्।।[11]

आचार्य यशोविजय ने योग के माहात्म्य के बारे में बताया है कि–

शास्त्रस्योपनिषद्योगो योगो मोक्षस्य वर्तनी।
अपायशमनो योगो योगः कल्याणकारणम्।।[12]

अर्थात् शास्त्र का रहस्य योग है। मोक्ष का मार्ग योग है। विघ्नों को शांत करने में योग है। कल्याण का कारण योग है।

संसारवृद्धिर्धनिनां पुत्रदारादिना यथा,
शास्त्रेणेऽपि तथा योगं विना हन्त विपश्चिताम्।।[13]

जिस प्रकार पुत्र, पत्नी आदि द्वारा धनवान मानस की संसार में वृद्धि होती है। उसी प्रकार योग बिना शास्त्रों के पंडितो की भी संसार में वृद्धि होती है।

योगदर्शन के महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त[14]– पतंजलि द्वारा प्रतिपादित योग के आठ अंग है–यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान व समाधि रहे हैं।

यम– यम के पाँच प्रकार बताये है–अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य तथा अपरिग्रह। ये पाँच प्रकार के यम शरीर को सबल व शक्तिशाली बनाते है।

नियम– नियम भी पाँच है–शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय व ईश्वर प्रणिधान।

आसन– योग के सभी अंगों में बैठने का ढ़ंग सबसे महवपूर्ण है। इनकी संख्या 84 है। इसके अतिरिक्त योग के विभिन्न अंगों की क्रियाशीलता को मुद्रा के नाम से भी जाता जाता है।

प्राणायाम– प्राणायाम का अर्थ है 'सांस को वश में रखना'। प्राणायम में नाक एक महत्त्वपूर्ण अंग है। पूरक, कुम्भक और रेचक प्राणायाम की तीन महत्त्वपूर्ण अवस्थाएं हैं। पूरा सांस अंदर खींचना पूरक है। सांस को अंदर रोकना कुम्भक है व सांस को बाहर निकालना रेचक कहलाता है।

प्रत्याहार– प्रत्याहार का अर्थ है 'इंद्रियों को अपने वश में करना'। बाहरी विकृत्तियों से इंद्रियों और मन को विमुख करना प्रत्याहार कहलाता है।

धारणा– मन या चित्त को एक विशेष स्थान या वस्तु पर स्थिर करने की क्रिया को धारणा कहते है। इस अवस्था में मन उसी वस्तु विशेष पर एकाग्र हो जाता है।

ध्यान– जब धारणा द्वारा मन को किसी भी वस्तु पर एकाग्र करके उस वस्तु पर लगातार मनन और चिंतन किया जाता है तो उसे ध्यान कहते है। योग साधना में ध्यान का भी अपना विशेष महत्त्व होता है।

समाधि– यह योग का अंतिम सोपान है। जब ध्यान ध्येय वस्तु के आवेश से मानों अपने रुप से शून्य हो जाता है और ध्येय वस्तु के आकार को ही ग्रहण कर लेता है तो समाधि का उदय होता है। इसमें जीवात्मा और परमात्मा का मिलन हो जाता है।

योग का स्वरूप

योग का अर्थ समाधि या चित्तवृत्ति का निरोध अवश्य है किन्तु प्रत्येक समाधि या प्रत्येक प्रकार के चित्तवृत्ति निरोध को योग नहीं कहा जा सकता। अतः पतंजलि ने लिखा है–

अथ योगानुशासनम्।[15]
योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः[16]
तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्।[17]

तीसरे सूत्र में आया 'तदा' शब्द समस्या का समाधान स्वयं कर देता है। चित्तवृत्तिनिरोध लक्षणक योग के सिद्ध होने पर द्रष्टा की अपने वास्तविक चिन्मात्र रूप में प्रतिष्ठा हो जाती है। अर्थात् योगी को मोक्ष की सिद्धि हो जाती है। फलतः यह सिद्ध हुआ कि मोक्षप्रद चित्तवृत्तिनिरोध को ही योग कहते है। जिस–जिस चित्तवृत्तिनिरोध या समाधि से कैवल्य न प्राप्त हो सके अर्थात् जीवात्मा की अपने वास्तविक स्वरूप में प्रतिष्ठा न हो पाये वह वह चित्तवृत्तिनिरोध समाधि मात्र है, योग नहीं। इस प्रकार हम कह सकते है कि प्रत्येक योग समाधि है पर प्रत्येक समाधि योग नहीं। कुछ विशिष्ट समाधियाँ ही योग कही जा सकती है। ऐसी समाधियाँ यानि चित्तवृत्तिनिरोध जो योग कहे जाने की योग्यता रखती है, वे केवल दो बतायी है–संप्रज्ञात समाधि और असंप्रज्ञात समाधि।

संप्रज्ञात समाधि–चित्त की एक एकाग्र भूमि का वृत्तिनिरोध राजस और तामस वृत्तियों का पूर्ण निरोध होता है। इसमें केवल सात्त्विक वृत्ति पूर्ण रुप से उदित रहती है। फलतः साधक को समग्र वस्तुओं का वास्तविक, निभ्रन्ति एवं युगपद ज्ञान होता है। अतः कहा जा सकता है– **'सम्यक् प्रज्ञायतेऽस्मिन्निति संप्रज्ञात समाधिः।'** इसी समाधि के सिद्ध होने से प्रकृति और पुरुष–इन दो अंतिम तत्त्वों का विविक्तज्ञान भी हो जाता है। यही विवेकख्याति है।

असंप्रज्ञात समाधि– **'विरामप्रत्ययाभ्यासपूर्वः संस्कारशेषोऽन्यः।'**[18] ऐसी समाधि जिसमें चित्त की 'सात्त्विकवृत्ति' का भी पूर्ण निरोध हो जाता है। यानि राजस, तामस और सात्त्विक तीनों प्रकार की वृत्तियां इस समाधि में पूर्णतः निरुद्ध हो जाती है। केवल निरोध संस्कार ही चित्त में अवशिष्ट रहते है। ये संस्काररचित्त के प्रविलय में बाधक नहीं होते और न तो व्युत्थान को ही प्रश्रय देते हैं। ये केवल कैवल्यभागीय होते हैं। इन निरोधात्मक संस्कारों को ही अवशिष्ट रखने वाले पूर्ण वृत्तिनिरोध को ही 'असंप्रज्ञातसमाधि' कहते है। अतः पतंजलि ने असंप्रज्ञात की सिद्धि तक पहुँचने के लिए उपयोगी सारी अवस्थाओं की एक सूत्र में इस प्रकार संकलित करते है– **'श्रद्धावीर्यस्मृतिसमाधिप्रज्ञापूर्वक इतरेषाम्।'**[19]

इस प्रकार योग से आत्मा अपने शुद्ध स्वरूप में सब वस्तुओं से विनिर्मुक्त ज्ञानस्परूप, निरंजन निरावरण, कर्मनिर्मुक्त है, मोक्ष की आकांक्षा करने वाली बन जाती है।

संतोष रुपी अमृत में निमग्न, सुख–दुःख का परिज्ञाता, शत्रु–मित्रभाव से सर्वथा अस्पृष्ट सर्वत्र सदैव समभाव युक्त, राग द्वेष से पराङ्मुख, ज्ञानात्मक दिव्य प्रभा राशि से रामायुक्त, आध्यात्मिक लक्ष्मीयुक्त, श्रीमान् समस्त जगत् के उपकारक, शाश्वत आनंद एवं सुख से परिपूर्ण अपनी आत्मा का ही ध्यान करना चाहिए।[20]

निर्मल शुद्ध स्फटिक के सदृश सर्वज्ञत्व रुपग गुण से विभूषित, परमात्म गुणोपन्न अपनी आत्मा ही ज्ञानीजनों के लिए ध्येय रुप में स्वीकार्य है। अपनी देह में विद्यमान किन्तु वस्तुतः देहवर्जित परामपदारुढ़ सर्वोत्तम परमात्म पद पर अवस्थित अपनी निरंजन आत्मा को ही ध्येय आलम्बन के रुप में स्वीकार कर ध्यान करना चाहिए।[21]

इसी क्रम में योग के अष्टांग मार्ग का प्रतिपादन किया है। संपूर्ण विधिपूर्वक इनकी आराधना की जाए तो ये सत्पुरुषों व साधकों के लिए युक्ति के हेतु बन सकते है।

वर्तमान युग में योग का महत्त्व

- आज के वैश्विक युग में मशीनीकरण के समय व्यक्ति शारीरिक मानसिक स्वास्थ्य के लिए योग पर ही निर्भर है।
- आज विभिन्न योग पद्धतियों का प्रचलन बढ़ रहा है।
- आज विभिन्न योग संस्थान भी खुल गए है। जहाँ व्यक्ति अपनी परेशानियों को योग के माध्यम से कम करता है।

- योगसूत्र एवं योगशास्त्र दोनों ही द्वारा मानव का कल्याण संभव है।
- मानसिक, आध्यात्मिक एवं व्यावहारिक दृष्टि से योग पद्धति कारगर है।
- राष्ट्रीय व अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भी योग–साधना ने ख्याति प्राप्त की है।
- 21 जून को 'योग दिवस' के रूप में मनाया जाता है।
- योग को अब पाठ्यक्रम में भी शामिल कर दिया गया है।

इस प्रकार योग में पूर्णता प्राप्त करने के लिए योग के आठों अंगों का अभ्यास करना परमावश्यक है– **'अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते।'** अन्ततः योग स्वरूप कल्पवृक्ष का फल यह है कि यह लोक में विविध लब्धियों को प्रकट करता है। परलोक में महान् अभ्युदय होता है तथा परमात्मा के अधीन होता है। इस तरह योगदर्शन मानव कल्याण के लिए बहुत ही महत्त्वपूर्ण है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *बृहदारण्यकोपनिषद् 2/4/4*
2. *केनो. 1/15*
3. *सां.त.कौ. पृः 236*
4. *गीता, 6/20*
5. *ऋक्संहिता, मंडल 1/सूक्त 18/मंत्र 7*
6. *ऋक्संहिता 1/18/7*
7. *वृहदा. 4/4/23*
8. *श्वेता. 2/13*
9. *श्वेता. 2/12*
10. *गीता, 4/36*
11. *गीता, 4/3*
12. *द्वा. द्वा. भाग 6–26/1*
13. *द्वा. द्वा. भाग 6–26/2*
14. *संस्कृत साहित्य का विशद इतिहास : डॉ. पुष्पा गुप्ता, पृ. 280–282*
15. *योगसूत्र 1/1*
16. *योगसूत्र 1/2*
17. *योगसूत्र 1/3*
18. *योगसूत्र 1/18*
19. *योगसूत्र 1/20*
20. *जैन धर्म में ध्यान का ऐतिहासिक विकास क्रम, पृ. 54, खंड 7*
21. *योगप्रदीप, 9–16*

अर्वाचीन संस्कृत वाङ्मय में पर्यावरण चेतना

डॉ. राजमल मालव
सह–आचार्य, राजकीय कला कन्या महाविद्यालय, कोटा

डॉ. उमा बड़ोलिया
सह–आचार्य, राजकीय कला कन्या महाविद्यालय, कोटा

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

पर्यावरण संरक्षण हेतु सजग रहना मानव मात्र का सर्वोच्च दायित्व है। पर्यावरण चिन्तन से तात्पर्य है कि मनुष्य यह समझे एवं स्वीकार करे कि प्रकृति प्रदत्त पर्यावरण के साथ संगति रखने में सुख एंव समृद्धि है तथा उसके साथ विसंगति में वेदना एंव विभीषिका अन्तर्हित है। पर्यावरण चिन्तन एंव चेतना का रचनात्मक स्वरूप यह है कि मनुष्य पारिस्थितिकी सन्तुलन को सुरक्षित रख सके। अर्वाचीन संस्कृत वाङ्मय में पर्यावरण चेतना का अभिप्राय है कि पर्यावरणीय संघटकों के महत्व को समझना, उसने अनुकूल आचरण करना, उसका समुचित उपयोग करना तथा उसका संर्वधन, संरक्षण का प्रयत्न करना।

संकेताक्षर : *अक्षय, यज्ञोपवीत, भेषज, विश्वतः, दन्तधावनम्, अयजन्तम्, विषदूषणम्, विभीषिका, अप्सु।*

हमारे देश की संस्कृति सहस्त्राब्दियों से प्रकृति की स्नेहमयी गोद में ही पली, फली–फूली और बढ़ी है। मनीषियों की प्रज्ञा का निखार पर्वतों की गोद में और नदियों के संगम में हुआ है। आज भी हम हमारे इतिहास के युगपुरुषों को देवता की तरह पूजते हैं। सूर्य, पृथ्वी, अग्नि, वरुण आदि देवी–देवताओं, जो प्राकृतिक ऊर्जा के चेतना स्त्रोत हैं। पृथ्वी से बड़ा देवता मानव के लिए और कोई नहीं हो सकता है, जिसकी अक्षय निधियाँ हमें सदियों से अखण्ड जीवनी–शक्ति दे रही हैं। संस्कृत वाङ्मय में पद–पद पर पर्यावरण विवेचना का घोष दृष्टिगत होता है। प्रकृति और पुरुष का सम्बन्ध स्थापित करते हुए वर्तमान समय में घर–घर में खान–पान, विभिन्न प्रसाधनों के द्वारा प्रदूषण बढ़ता जा रहा है। तीव्र गति से बढ़ रही पश्चिमी संस्कृति की जीवन–शैली 'सूर्य आत्मका जगतस्तस्थश्चु' के अनुसार सूर्य की महत्ता, विश्व संचालन में सूर्य की चैतन्य पृष्ठभूमि, सम्पूर्ण पारिस्थितिकी चक्र को ऊर्जा प्रदान कर नियन्त्रित करना, साथ ही कीटनाशक सूर्य की किरणों, पीलिया, क्षय एंव हृदय रोग आदि के निदान में भी 'मील का पत्थर' साबित हुई है। वायु देवता को विश्व भेषज कहा जाता है, जो कि दूषित वायु को परिमार्जित एवं शुद्ध करता है, अतः शुद्ध वायु को शान्तिदायक और आयुवर्धक माना है। यथा–

आ वात वाहि भेषज वि वात वाहि यद्रपः।
त्वं हि विश्वभेषजो देवानां दूत ईयसे।।

पर्यावरण चेतना हेु वृक्षारोपण, कृषि परम्परा का अनुकरण, पीपल, तुलसी, बड़ और झाक आदि वृक्षों की महनीयता पर सविस्तार गुम्फान अर्वाचीन संस्कृत वाड्.मय में मिलता है।

आज भी गृहप्रवेश, पाणिग्रहण–संस्कार, यज्ञोपवीत एंव भूमिपूजन आदि मांगलिक कार्य भला यज्ञ के बिना सम्भव नहीं हो सकते हैं। अतः समग्र प्रकार के यज्ञों में दी जाने वाली आहुतियाँ वायु के साथ–साथ असंख्य रोगों का भी निदान करती हैं। आज बायो–डाइवर्सिटी अर्थात् प्रकृति में पलने वाले विभिन्न प्रकार के जीव–जन्तुओं और वनस्पतियों के पारस्परिक सन्तुलन के विनाश ने सम्पूर्ण जगत् को चिन्तित कर रखा हैं हमारे यहाँ इसी सन्तुलन को विश्व का आधार मानकर चला जाता था। प्रत्येक देवता के साथ स्थलचर अथवा जलचर जीवों का जुड़ाव रहना तथा उनके हाथ में समुद्र से उत्पन्न शंख अथवा जल से उत्पन्न कमल का रहना इसी सन्तुलन का प्रतीक है।

हमारे यहाँ आधुनिक पर्यावरणवेत्ताओं ने ''जीव विधिवता'' को प्रकृति और पर्यावरण महत्वपूर्ण माना है। प्रकृति ने

वनों में, भूतल पर और पर्यावरण में विधि प्रकार के स्थलचर, नभचर, जलचर आदि पशु–पक्षियों तथा विभिन्न प्रकार की वनस्पतियों को शताब्दियों से पनपा रखा है। ये सब एक दूसरे के सहकार और सन्तुलन से समस्त प्राणी जगत को धारण करते हैं कुछ जीव और वनस्पतियाँ अन्य जीवों के भोजन के रूप में, कुछ उनके नियन्त्रक के रूप में और कुछ उनके सहायक के रूप में आवश्यक है। यही ''जैव विविधता'' पर्यावरण चेतना को धारण करती है। संस्कृत वाङ्मय में पर्यावरण की परिशुद्धि के लिए जल की महत्वपूर्ण उपादेयता मानी गई है। उस जल को जीवन का पर्याय माना गया है। यथा –

अप्स्वन्तरमृत अप्सु भेषजम्।

अर्थात् शुद्ध जलों में अमृत और औषधि का निवास होता है, किन्तु वर्तमान परिप्रेक्ष्य में शुद्ध जल का पूर्ण अभाव हो गया है। चारों ओर प्रदूषित जल ही मिल रहा है। आज तो गंगा जैसी पवित्र नदियों का जल भी शुद्ध नहीं रहा है। इसीलिए तो आजकल प्रदूषित जल के कारण अनेक बीमारियेां का बोलबाला बढ़ता जा रहा है। हमारे ऋषियों ने पूर्व में ही शुद्ध जल सेवन का उपदेश दिया था, जो आज के परिवेश में पूर्णतः तर्क संगत है। अतः नदियों को स्वच्छ रखने के निर्देश एंव संदेश का सम्पूर्ण जगत् को अक्षरक्षः पालन करना चाहिए। यथा–

न दन्तधावनं कुर्यात् गंगागर्भे विचक्षणः।
परिधायाम्बराम्बूनि गंगा स्त्रोतसि न त्यजेत्।।

अर्थात् गंगा में कचरा डालना तो दूर इसमें दांतुन करना, यहाँ तक कि स्नान के पश्चात् भीगी धोती निचोड़ना आदि का भी निषेध माना है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि अर्वाचीन संस्कृत वाङ्मय में पर्यावरण संरक्षण चेतना का अतिमहत्व हैं– 1 मानव पर्यावरण का एक ऐसा घटक है, जिसे जीवन निर्वाह के लिए भौतिक संसाधनों के अतिरिक्त सांस्कृतिक परिवेश की आवश्यकता है। इस दृष्टि से पर्यावरण के दो भेद दृष्टिगोचर होते हैं– (1) भौतिक पर्यावरण (2) सांस्कृतिक पर्यावरण। भौतिक पर्यावरण मूलतः प्रकृति निर्मित होता है, जबकि सांस्कृतिक पर्यावरण मानव निर्मित है। जिस प्रकार भौतिक परिवेश के द्वारा मानव को सांस्कृतिक पर्यावरण की आधार भूमि प्राप्त होती है, उसी प्रकार सांस्कृतिक पर्यावरण के द्वारा भौतिक परिवेश को सम्पोषण एंव अनुरक्षण प्राप्त होता है।

''परिभवन्ति विश्वतः'' शब्द भी पर्यावरण अर्थ का बोध कराता है। इस प्रकार पर्यावरण से हमारा अभिप्रायः ''किसी भी प्राणी अथवा मानव या समाज के चारों ओर विद्यमान समस्त परिवेश है।'' जलमण्डल, स्थलमण्डल, और वायुमण्डल तीनों सम्मिलित रूप से समग्र पर्यावरण की संरचना करते है। अतः वे सभी पदार्थ पर्यावरण के अंग है, जो किसी न किसी रूप में पृथ्वी की जैविक प्रक्रिया को प्रभावित करते हैं।

आज सम्पूर्ण विश्व का पर्यावरण प्रदूषित हो चुका है। आधुनिक मानव भौतिक प्रगति के उच्चतम सोपानों को संस्पर्श करने की लालसा में प्राकृतिक मर्यादाओं का निरन्तर अतिक्रमण करता जा रहा है। आज प्रकृति का प्रकोप भूकम्प, महामारी, अतिवृष्टि, अनावृष्टि, पादपग्रह प्रभाव (Green House Effect) जैव विविधता एंव विनष्ट होते जंगल आदि के रुप में प्रकट हो रहा है। पौधों और जीव–जन्तुओं की अनेकानेक प्रजातियाँ प्रतिदिन समाप्त होती जा रही है। पर्यावरण संकट की वर्तमान विपद् वेला में प्रकृति के प्रति जिन विचारगत एंव व्यवहारगत सुधारों की आवश्यकता पर सम्पूर्ण विश्व चिन्तातुर होकर ध्यान दे रहा है, वे सभी विचार संस्कृत वाड्.मय में निहित है।

सृष्टि रचना के मूलाधार देवता है। वे पर्यावरण के निर्माता एंव घटक तत्व है। देवता पर्यावरण के परिचारक, परितोशक एंव उपकारक तत्व हैं, अतः देवता पितृतुल्य हैं। पुत्रवत् मानव को अपने जीवन को ज्योतिर्मय बनाने के लिए उनसे शिक्षा लेनी चाहिए। देव–तत्वों का अनुसरण करके मानव पर्यावरण को समुन्नत एंव प्रदूषण रहित रख सकता है। यज्ञ भी पृथ्वी के पर्यावरण को सुरक्षित एंव संरक्षित रखने में प्रमुख जज्ञ माना गया है। यथा–

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्।

वातावरण के शुद्धिकरण तथा उसे प्रदूषित रखने में सूर्य का महत्वपूर्ण येागदान है। वह चल और अचल जगत की आत्मा है। यथा– सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुशश्य।

जीव जन्तु भी पर्यावरण के अभिन्न अंग होते हैं। पारिस्थितिकी सन्तुलन को बनाए रखने में इनकी महत्वपूर्ण भूमिका होती है। देवताओं एंव ऋषियों ने पशु–समृद्धि की कामना की है, क्योंकि गाय आदि पशु दूध तथा घी आदि प्रदान कर मानव को अजा सम्पन्न बनाते हैं। पर्यावरणीय नियमों का पालन करते हुए हमें जलों को स्वच्छ रखना चाहिए।

इस प्रकार वर्तमान पर्यावरणीय समस्याओं का

समाधान मानव के ऋत अर्थात् सृष्टि के शाश्वत नियमों अथवा पर्यावरणीय नियमों के अनुकूल आचरण में निहित है। ऋत के अनुकूल आचरण करने वाला मानव पर्यावरण प्रदूषण अथव संकट रूपी पाप नहीं करने और असमय मृत्यु को प्राप्त नहीं होगा, क्योंकि वह ऋतुओं द्वारा संरक्षित होगा और उस भूत और भविष्य सुरक्षित होगा। यथा–

ऋतेन गुप्त ऋतुभिश्च सर्वैर्भूतेन गुप्तो भव्येन चाहम्।
मा मा प्रापत् पाप्मा मोत मृत्युरन्तर्दधऽहं सलिलेन वाचः।

अन्त में यही कहा जा सकता है कि पर्यावरण संरक्षण और चेतना हेतु आज आवश्यकता इस बात की है कि नवीन विचारधाराओं तथा प्राचीन चिन्तन में एक समन्वय स्थापित किया जाय और इसके लिए हमें पुनः एक बार गौरवशाली अतीत से जुड़ना होगा।

उपसंहार

पर्यावरण संरक्षण हेतु सजग रहना मानव मात्र का सर्वोच्च दायित्व है। पर्यावरण चिन्तन से तात्पर्य है कि मनुष्य यह समझे एवं स्वीकार करे कि प्रकृति प्रदत्त पर्यावरण के साथ संगति रखने में सुख एंव समृद्धि है तथा प्रकृति प्रदत्त पर्यावरण के साथ विसंगति में वेदना एंव विभीषिका अन्तर्हित है। पर्यावरण चिन्तन एंव चेतना का रचनात्मक स्वरूप यह है कि मनुष्य पारिस्थितिकी सन्तुलन को सुरक्षित रख सके।

वेद पर्यावरण चेतना एंव चिन्तन के प्रणेता है। वैदिक संदर्भ में पर्यावरणचेतना का अभिप्राय यह है कि पर्यावरणीय घटकों संघटकों के महत्व को समझना, वैदिक आर्यों द्वारा उसके अनुकूल आचरण करना, उसका समुचित उपयोग करना तथा उसका संर्वधन, संरक्षण का प्रयत्न करना। वेदों में समस्त पर्यावरण की रक्षक एक महान् मोटी परत का उल्लेख मिलता है। ऋग्वेद के अनुसार एक महान् अतिव्यापक मोटी परत द्वारा जलीय वातावरण का नियन्त्रण होता है। अथर्ववेद में प्रदूषण का विलोम 'विशदूषणम्' शब्द उपलब्ध होता है–

तिस्त्रः सरस्वतीरदुः सचित्त विशदूषणम्।

सामवेद में लिखा है कि साररूप मन्त्र 'पावमानी' शुद्ध करने वाले, ''स्वस्त्ययनी'' कल्याण करने वाले होते है। इस प्रकार स्पष्ट है कि वेदों में पर्यावरण चिन्तन एवं चेतना का विवेचन मानव जगत् के लिए प्रेरणा प्रदत्त है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. *ऋग्वेद*
2. *अथर्ववेद*
3. *मनुस्मृति*
4. *उपनिषद्*
5. *पुरुष सूक्त*

व्यंग्यायुध : मुहावरे-लोकोक्तियाँ

डॉ. आशा पाण्डेय
असोसिएट प्रोफेसर, आत्मा राम सनातन धर्म कॉलेज दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

साहित्य के लिए मनुष्य और जीवन से बड़ा कोई सत्य नहीं होता है, वह सर्वाधिक प्रतिबद्ध भी इन्हीं के प्रति होता है, व्यंग्य-लेखन में भी मनुष्य और जीवन के प्रति आस्था का स्वर मुखर होता है। जब व्यंग्यकार चतुर्दिक व्याप्त विसंगतियों, विडंबनाओं, विद्रूपताओं से आज का जीवन घिरा हुआ देखता है, तो वह मौन होकर नहीं बैठ पाता। अपने भाषायुधों को तैयार कर प्रहार आरंभ करता है, मुहावरे-लोकोक्ति उन्हीं में से एक आयुध हैं। मुहावरे भाषा की लाक्षणिक और व्यंजक शक्ति के द्योतक हैं। ये रुढ़ लाक्षणिक प्रयोग होने के कारण स्वयंमेव अभिव्यंजक होते हैं तथा चित्रात्मक व्यंग्य एवं सौंदर्य की सृष्टि करने में विशेष अभिव्यंजक होते हैं। लोकोक्तियाँ मानव स्वभाव की प्रतिबिंब हैं। ये मानव के लिए मार्गदर्शक, जीवन के प्रत्येक क्षेत्र के लिए उद्‌बोधक हैं और चेतावनी के रूप में चिरकाल से विद्यमान हैं। इन दोनों का प्रयोग मानवीय संवेदनाओं का आईना है। प्रस्तुत शोध-लेख व्यंग्य साहित्य में मुहावरा-लोकोक्ति के सार्थक, महत्वपूर्ण एवं व्यंग्यात्मक प्रयोग पर आधारित है।

संकेताक्षर : *विसंगतियाँ, सूत्रात्मक, आक्रोश, आयुध, व्यंग्यकार, कुव्यवस्था, उपकरण ।*

मुहावरे-लोकोक्तियाँ मानव भाषा की अमूल्य की निधि हैं। भाषा को व्यावहारिक बनाने तथा व्यंग्य के सशक्त संप्रेषण में मुहावरे और लोकोक्तियाँ विशेष उपयोगी हथियार हैं। मुहावरों में व्यंग्य करने की अपूर्व एवं पर्याप्त क्षमता होती है। भावावेश की अवस्था में मुहावरे अनायास प्रस्फुटित होते हैं, या यों कहें मुहावरे की उत्पति प्रायः भावावेग के कारण होती है, तो दूसरी तरफ व्यंग्य विरोधात्मक प्रक्रियाओं, विषमताओं, विसंगतियों और विडंबनाओं के प्रति भावावेग एवं आक्रोश के कारण व्यंजित होता है। अतः मुहावरे की प्रकृति व्यंग्य-कथन के सर्वथा अनुकूल पड़ती है तथा अपकर्ष, व्यंग्य आदि का प्रभाव मुहावरे के प्रयोग से पुष्ट रूप में प्रकट होता है। इसी प्रकार अभीष्ट प्रभाव की बलपूर्ण व्यंजना के लिए व्यंग्यकार लोकोक्ति का चयन करता है।

मुहावरे अभिधार्थ से भिन्न कोई विशेष अर्थ ध्वनित करते हैं – 'वह शब्द, वाक्य या वाक्यांश जो अपने अभिधेयार्थ से भिन्न किसी और अर्थ में रूढ़ हो गया हो।'[1] अर्थात् 'किसी भाषा में प्रयुक्त विशिष्ट प्रयोग जिनका अभिधार्थ से भिन्न विशिष्ट अर्थ लिया जाता है, मुहावरा कहलाता है।'[2] मुहावरे भाषा की लाक्षणिक और व्यंजक शक्ति के द्योतक हैं। ये रूढ़ लाक्षणिक प्रयोग होने के कारण स्वयमेव अभिव्यंजक होते हैं तथा चित्रात्मकता, व्यंग्य एवं सौंदर्य की सृष्टि करने में विशेष अभिव्यंजक होते हैं।

लोकोक्ति का शाब्दिक अर्थ है – लोक की उक्ति। हिंदी साहित्य कोश के अनुसार लोकोक्ति में कहावत का समावेश होता है।[3] बोलचाल में बहुत आने वाला ऐसा बंधा वाक्य जिसमें किसी अनुभव की बात संक्षेप में, पर प्रभावशाली ढंग से कही गई हो – लोकोक्ति कहलाती है। भारतीय साहित्य कोश के अनुसार – 'ऐतिहासिक, पौराणिक या लोककल्पित कथाओं, प्राकृतिक नियमों, प्रतीकों या अनुभवों आदि पर आधारित ऐसी सूत्रात्मक सारगर्भित, लोक-प्रचलित उक्तियाँ, वाक्य में प्रयोग के बाद भी पानी में तेल की बूँद की तरह जिनकी स्वतंत्र सत्ता रहती है, लोकोक्तियाँ कहलाती हैं।'[4]

लोकोक्तियाँ मानवीय ज्ञान के चोखे और चुभते हुए सूत्र हैं। लोकोक्तियाँ मानव जीवन का विशिष्ट अंग हैं, नित्यप्रति इनका प्रयोग मानव करता रहता है। लोकोक्तियाँ मानव स्वभाव की प्रतिबिंब हैं। ये मानव के लिए मार्गदर्शक, जीवन

के प्रत्येक क्षेत्र के लिए उद्‌बोधक हैं और चेतावनी के रूप में चिरकाल से विद्यमान हैं।

लोकोक्ति का प्रयोग संपूर्ण व्यंग्य–साहित्य में दृष्टिगत होता है। विशेष कथन भंगिमा, गागर में सागर भरने की क्षमता, सूत्रात्मकता तथा व्यंग्यात्मक क्षमता के कारण यह व्यंग्यकारों को विशेष प्रिय है। लोकोक्ति में किसी तथ्य या अनुभूत सत्य का चमत्कारपूर्ण प्रतिपादन करने की विशिष्ट क्षमता होती है। व्यंग्यकारों ने किसी को शिक्षा या चेतावनी देने के उददेश्य से, किसी बात को किसी आड़ में कहने के अभिप्राय से अथवा किसी बात का खंडन– मंडन करने के निमित लोकोक्तियों का भरपूर उपयोग किया है।

मुहावरे तथा लोकोक्ति में अंतर है। मुहावरे प्रयोग के स्तर पर अपने आप में स्वतंत्र इकाई या उक्ति नहीं होते, बल्कि वाक्य में घुलमिल कर आते हैं, जबकि लोकोक्ति स्वतंत्र इकाई के रूप में प्रचलित उक्ति है और वाक्य में उसकी स्वतंत्र सता उसी प्रकार बनी रहती है, जैसे पानी में तेल की। मुहावरे में पूरी बात व्यक्त नहीं की जा सकती, जबकि लोकोक्ति एक विचार को पूर्ण अभिव्यक्ति प्रदान करती है। मुहावरे एक शब्द के भी हो सकते हैं जबकि लोकोक्ति एक पूर्ण वाक्य है।

- **मुहावरे –** व्यंग्य–साहित्य में मुहावरों का प्रयोग प्रमुखता से किया गया है। कथ्य की सशक्त एवं प्रभावशाली अभिव्यंजना के लिए व्यंग्यकारों ने मुहावरों का अत्यधिक प्रयोग किया है या यूँ कहें वे स्वतः ही निकल पड़े हैं – 'मुहावरे प्रायः वहाँ विशेष करके अपने आप निकल पड़ते है, जहाँ कारणवश आपे से बाहर होकर कुछ लिखना पड़ता है। यदि किसी के ऊपर कटाक्ष करना होता है या व्यंग्य की बौछार छोड़नी होती है तो वहाँ भी एक तरह से मुहावरों की छूट सी हो जाती है और मुहावरे बिना प्रयास के कलम से निकल पड़ते हैं।'[5]

हर तरफ फैली विसंगतियों, विद्रूपताओं से आहत व्यंग्यकार जहाँ अपने आक्रोश, आवेश को दबा नहीं पाया है अथवा जब वह आलंबन का तिरस्कार करना चाहता है या उपहास उड़ाना चाहता है, या जब किसी कटु बात या अप्रिय सत्य को सीधे शब्दों में व्यक्त करना उसे अशिष्ट जान पड़ता हो, तब उसने मुहावरे के प्रयोग द्वारा कथ्य को अभिव्यक्ति दी है। व्यंग्य की कटुता एवं प्रहार की तीक्ष्णता को प्रखर करने में मुहावरे विशेष सहायक रहे हैं।

संक्षिप्तता व्यंग्य का विशेष गुण है। संक्षेप में गहरी चोट तथा मार्मिक व्यंजना करना मुहावरे के माध्यम से ही संभव है, क्योंकि अन्य रूप से अर्थ बोध कराने के लिए जहाँ बहुत अधिक शब्दों का अपव्यय करना पड़ता है, वहाँ मुहावरे उसे संक्षेप में व्यंजित कर देते हैं। 'नावक के तीर' के समान अत्यंत संक्षेप में 'गंभीर घाव' करने की सामर्थ्य मुहावरों में विद्यमान रहती है, अतः व्यंग्यकारों ने इसका खुलकर प्रयोग किया है।

व्यंग्यकारों ने मुहावरों का प्रयोग व्यंग्यात्मक ईमानदारी से किया है अर्थात् अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए व्यंग्यकारों ने मुहावरे में मनमाने परिवर्तन किए हैं। यूँ तो मुहावरे स्वयं ही एक निश्चित प्रतिमान से विचलित होते हैं, किंतु व्यंग्यकारों ने इस विचलन का भी विचलन कर दिया है जिससे मुहावरे और अधिक व्यंजक हो उठे हैं। शब्द, पदबंध, वाक्य, अर्थ – सभी स्तरों पर व्यंग्य साहित्य में मुहावरों का विचलित प्रयोग हुआ है।

मुहावरे के सामान्य एवं प्रचलित प्रयोगों की व्यंग्य–साहित्य में भरमार है। विशिष्टता वहाँ है. जहाँ उन्होंने इन्हें व्यंग्यात्मक ईमानदारी से अपनाया है अर्थात् जहाँ मुहावरों के स्वरूप, संरचना, अर्थ और प्रयोग को व्यंग्यानुकूल ढालकर उन्हें नई अर्थवत्ता प्रदान की है। वाकई संपादक काफी बड़ी चीज है। वह चाहे तो गधे को भी लेखक बना सकता है... हाँ अलबत्ता प्रकाशक जो है, वह संपादक से भी बड़ी चीज है वह चाहे तो गधे को लेखक क्या संपादक तक बना सकता है।'[6] (रवीन्द्रनाथ त्यागी)

व्यंग्यकार ने 'गधे को बाप बनाना' – मुहावरे का विचलन करके गधे को लेखक बनाना तथा 'गधे को संपादक बनाना' – बनाकर कथन को अभिव्यंजक बनाया है। इस विचलित मुहावरे द्वारा प्रकाशन क्षेत्र में व्याप्त विसंगतियों पर भरपूर कटाक्ष किया तथा मुहावरे में नया अर्थ भरा है।

वापस लौट रहे छात्रों के पैर भीगे कोट–से भारी हो गए थे। उनकी चाल आर्थिक विकास–सी मंद थी।[7] (अशोक शुक्ल)

'पैर भारी होना' मुहावरे के मध्य पैरों के भारी होने का प्रकार बताते हुए मुहावरे को और अभिव्यंजक बनाया गया है। छात्रों की निराशा का सजीव चित्र इस नए

मुहावरे के माध्यम से चित्रित हो सका है।

'उसने ट्रक देखा और उसकी बाँछे – वे जिस्म में जहाँ कहीं भी होती – खिल गई।'[8](श्रीलाल शुक्ल) 'बाँछे खिलना' मुहावरे की संरचना में बिखराव लाकर कथन को रोचक बनाया है तो दूसरी तरफ बाँछों के अस्तित्व पर प्रश्न चिह्न लगा दिया है।

'भोलाराम के पेंशन के कागजात पाँच वर्ष तक दफ्तर में अटके रहे क्योंकि उन पर वजन नहीं रखा गया था .. परंतु मरकर भी भोलाराम का जीव पेंशन की फाइल में अटका रहा।'[9](हरिशंकर परसाई)

'जीव अटकना' मुहावरे का यथावत् प्रयोग न करके उसमें परिवर्तन कर व्यंग्यकार ने रिश्वतखोरी की निकृष्टतम प्रवृत्ति पर विडंबनात्मक प्रहार किया है, जो सीधे मुहावरे से संभव नहीं था इसी प्रकार 'खून पीना' – मुहावरे का बड़ा सार्थक प्रयोग परसाई जी ने किया है। इसकी संरचना में परिवर्तन करके बेईमानों पर कुठाराघात किया है:'जो पानी छानकर पीते हैं, वे आदमी का खून बिना छना पी जाते हैं।'[10](हरिशंकर परसाई)

'रास्ते का कुत्ता', 'आवारा कुत्ता' – मुहावरों में परिवर्तन करके एक ओर शिक्षा क्षेत्र की विसंगतियों को उभारा है, तो दूसरी तरफ हर बात में अदालती दरवाजा खटखटाने की प्रवृति पर लताड़ा है– 'वर्तमान शिक्षा पद्धति रास्ते में पड़ी हुई कुतिया है, जिसे हर कोई लात मार सकता है।'[11] (श्रीलाल शुक्ल)

'आजकल ये साला अच्छा फैशन चल गया है किसी ने खाँस दिया, तो अदालती जाँच कराओ और छींक दिया तो अदालती जाँच कराओ। अदालती जाँच न हुई, आवारा कुतिया हो गई।'[12] (अशोक शुक्ल)

'नेता : जाओ–जाओ, सालो. देख लूँगा । अभी मैं कमजोर नहीं हुआ हूँ। हरामजादों एक–एक को गुंडों से जिंदा न फुकवाया तो मेरा नाम भी नेता नहीं।'[13](सुशील कुमार सिंह)

'मेरा ही अपना बॉस कई साल पहले बीमार था। सब कहते थे कि आखिरी ओवर खेल रहा है।'[14] (के.पी. सक्सेना)

'खून पसीना किया बाप ने एक, जुटाई फीस

x x x x

शिक्षा मंत्री ने सीनेट से कहा, अजी शाबाश

सोना हो जाता हराम, यदि ज्यादा होते पास।'[15]

(नागार्जुन)

'तुम भी ऐसे ही मरोगे – कुत्ते की मौत तड़फ–तड़फ कर और उन सभी की प्रेतात्माएँ जिन्हें तुमने सता–सता कर बेरहमी से मारा है, तुम्हारी लाशों पर नाचेंगी, खुशियाँ मनाएँगी।'[16] (सुशील कुमार सिंह)

'मैं गैस की दलाली में हाथ काले कर रहा हूँ पिछले बीस वर्षों से। पहले कोयले की करता था परंतु वहाँ मार्केट नहीं रहा सो गैस की करने लगा।'[17] (पूरन सरमा)

व्यंग्यकार ने देखा कुव्यवस्था तो बदलने में काफी मशक्कत करनी पड़ रही है, उन्होंने मुहावरा ही बदल दिया।

'मैं उसे कहीं फँसाने की कोशिश करूँगा' अग्रवाल साहब ने वायदा किया।'यह बात तो आप न जाने कब से कह रहे हैं। पर उसका बाल भी टेढ़ा नहीं कर पाए, गुलाटी ने नाराजगी जाहिर की।'[18] (ज्ञान चतुर्वेदी)

ऐसे मुहावरों की व्यंग्य–साहित्य में भरमार है, जिन्हें व्यंग्यकारों ने व्यंग्य को और अधिक प्रखर बनाने के लिए, अपनी बात सही ढंग से संप्रेषित करने के लिए तथा संक्षिप्तता की दृष्टि से स्वरुप, संरचना, अर्थ एवं प्रयोग के स्तर पर परिवर्तित कर लिया है।

अभिव्यंजकता की दृष्टि से मुहावरों के स्वरूप, संरचना आदि में परिवर्तन किया है तो कहीं नए मुहावरों की रचना भी की है:

'नेता: राजनीति का क ख ग पढ़ाने की आवश्यकता नहीं होगी। मैं पेशेवर राजनीतिज्ञ हूँ।'[19](सुशील कुमार सिंह)

स्थितिगत, वस्तुगत एवं चरित्रगत विसंगतियों को उभारने के प्रयास में मुहावरे व्यंग्यकार की लेखनी से अनायास अनुस्यूत हुए हैं। व्यंग्य–भाषा के ये सशक्त उपकरण हैं, तथा व्यंग्य–भाषा में इनका इतना अधिक प्रयोग हुआ है कि इन्हें व्यंग्य–भाषा की सामान्य विशेषता कहा जा सकता है। मुहावरे भाषा में जहाँ रंजकता उत्पन्न करते हैं, कथ्य को बल प्रदान करते हैं, वही लोकमत की मुहर भी लगा देते हैं।

स्थितिगत विसंगतियों के संदर्भ में राजनैतिक स्थितियों पर प्रहार करने वाले कुछ मुहावरे :

'कुछ देश एक आध दर्द पाले ही रहते हैं।'[20] (हरिशंकर परसाई)

'नारों ने आसमान छू रखा था।'[21](शरद जोशी)

'टके की मुस्कान, करोड़ों का खर्चा, इस ताम–झाम की नहीं कहीं चर्चा।'[22] (नागार्जुन)

'कोई किसी से है न कम, देश के फूटे करम।'[23] (सर्वेश्वरदयाल सक्सेना)

'राजनीतिक नेताओं ने देश की लुटिया डुबो रखी है।'[24] (सुदर्शन मजीठिया)

'बेचारा समाजवाद लहू–लुहान हो गया।'[25] (हरिशंकर परसाई)

''सता–सुख वास्तव में वह सुख है जिसकी प्राप्ति के लिए मुँह से लार टपकने लगती है। सत्ता सुख के आगे सभी सुख ही सूखे होते हैं। संयोग से एक बार किसी भाग्य का सिकंदर टूट गया तो वह अपने खानदान के हवाले करके ही दम लेता है। कहीं स्वार्थ टकरा न जाए, इसके लिए कुछ टुकड़े दूसरों के लिए फेंके जा सकते हैं। अगर विशेष संकट न हो तो पाँच सालों बाद ही चुनावी डंका बजता है। इस बीच बहुतों की गिद्ध दृष्टि कुर्सी पर टिकी रहती है। वे चुनावी घोषणा होते ही मैदान में कूद पड़ते हैं। शायद छीना–झपटी में ही सत्ता की रानी हाथ लग जाए। चिराग लेकर ढूँढने पर भी सेवक नहीं मिलेंगे बल्कि सेवा के नाम पर ठग जरूर मिलेंगे अब तो माल चबाने, माल बटोरने के उद्देश्य से ही लोग राजनीति की सीढ़ी पर पैर बढ़ाते हैं। काफी लाभ का यही एक व्यवसाय है।[26] (अरविंद विद्रोही)

शैक्षिक एवं साहित्यिक क्षेत्र में प्रयुक्त मुहावरे ,जो इन क्षेत्रों में व्याप्त विसंगतियों का पर्दाफाश करने में अत्यंत सहायक सिद्ध हुए हैं:

'आलोचना तो अंधे की लाठी है।'[27] (रवीन्द्रनाथ त्यागी)

'कहा तो घास खोद रहा हूँ। इसी को अंग्रेजी में रिसर्च कहते हैं।'[28] (श्रीलाल शुक्ल)

'इस एकलव्य ने गुरु को अँगूठा दिखाया।' [29](हरिशंकर परसाई)

'दरअसल, अब साहित्य जगत् में बड़ा लेखक होने के लिए लिखने की कम और हल्ला करने की ज्यादा जरूरत है। जो लोग साहित्य के फटे में अपनी टाँग देर तक फँसाए रहते हैं, वे कभी न–कभी इस महासत्य को जान लेते हैं।'[30] (अश्विनी कुमार दुबे)

'यह संपादक और लेखक का मिला–जुला आयोजन है हम दोनों उसी को महान सिद्ध करेंगे, जो भले ही प्रतिभाहीन हो परंतु उससे हम दोनों का उल्लू भली–भाँति सीधा हो जाता हो। फिर वह रवीन्द्रनाथ, प्रेमचंद और निराला से भी बड़ा लेखक है।'[31] (अश्विनी कुमार दुबे)

स्थितिगत विसंगतियों में मुहावरों का बहुत ही सर्जनात्मक प्रयोग किया है, जिसके द्वारा कथन में वक्रता का समावेश हो गया है। 'हमारा धर्म और संस्कृति त्याग के हैं। चिड़िया न फंसे तो हम कहते हैं कि हमने दयावश छोड़ दी।'[32] (हरिशंकर परसाई)

न्याय के क्षेत्र में व्याप्त विसंगतियों के चित्रण करने में मुहावरों के प्रयोग के कुछ उदाहरणः

'(नेताओं ने) न्याय की संस्था को जेब में रख लिया है।'[33] (हरिशंकर परसाई) 'जैसी चाहे, वैसी अदालतें मौजूद हैं ... कोडिल्ला–छाप वाला, ओछी नस्ल का आदमी वहाँ एक बार फंस जाए तो समझ लो बैठकर उठ न पाएगा। दाने–दाने को मोहताज हो जाएगा।'[34] (श्रीलाल शुक्ल)

व्यंग्यकार ने चरित्रगत विसंगतियों के चित्रण में मुहावरों का प्रयोग सर्वाधिक किया है। विकृत एवं विसंगत चरित्र की उद्भावना मुहावरे के प्रयोग से अधिक उपाहासास्पद एवं व्यंग्यात्मक हो सकी है–

'चरित्र के संदर्भ में मैं इतना धनी हूँ कि करीब आधा दर्जन चरित्र मैं अपने गोदाम में रखता हूँ।'[35] (रवीन्द्रनाथ त्यागी)

'जिस सन् 42 की तुम डींग मारा करते हो, उस समय तुम चोरी के अपराध में जेल भेजे गए थे।'[36] (सुदर्शन मजीठिया)

'ये किसान अब सरकारी पैसा हजम करना सीख गए हैं।' [37](सुदर्शन मजीठिया)

'वर की तलाश में लड़की को पीला करने के चक्कर में दौड़ते–दौड़ते हम लोग खुद पीले पड़ गए।'[38] (बालेंदु शेखर तिवारी)

'बेच–बेच कर गाँधी जी का नाम
बटोरो वोट
निपोरो खीस।'[39] (नागार्जुन)

'उस पवित्र शोणित धारा से नहा–नहा कर
खाज मिटाना चाहेंगे।' [40] (नागार्जुन)
'हममें से हर एक कपड़ों के नीचे तो नंगा है।'[41]
(रघुवीर सहाय)

'.. इन दिनों सिफारिश, चाटुकारिता और बड़ों की कृपा से अपने लिए लोग शिखर सुरक्षित कर लेते हैं। हम पर आज तक किसी की कृपादृष्टि नहीं पड़ी, इसलिए

अपुन अपनी मेहनत, लगन, और तपस्या को अँगोछे में गठियाए यहीं मैदानों में खप रहे हैं।'[42] (अश्विनी कुमार दुबे)

कहीं-कहीं मुहावरों का श्रृंखलाबद्ध प्रयोग करके व्यंग्य के प्रभाव को घनीभूत कर दिया हैः

'... यही रामस्वरूप रोज बैद जी के ही मुँह-में-मुँह डालकर तीन तेरह की बातें करता था और जब दो ठेला गेहूँ लदवाकर रफूचक्कर हो गया तो दो दिन से टिलटिला रहे हैं।'[43] (श्रीलाल शुक्ल) 'श्रोताओं में स्वतंत्री कांग्रेसी का गला घोटेगा, जनसंघी साम्यवादी की गर्दन नापेगा और प्रजा समाजवादी एक दूसरे की गर्दन पकड़कर कहेंगे कि हम विलयन की वार्ता कर रहे हैं।'[44] (हरिशंकर परसाई)

'खून पसीना किया बाप ने एक, जुटाई फीस
आँख निकल आई पढ़-पढ़कर, नंबर आए तीस
शिक्षामंत्री ने सीनेट से कहा : अजी शाबाश!
सोना हो जाता हराम यदि ज्यादा होते पास
फेल पूत का पिता दुखी है, सिर धुनती है
माता।'[45] (नागार्जुन)

'सत्यवान को पता था कि यमराज इतनी आसानी से पसीजने वाले नहीं हैं। जब बिजली दफ्तर का अदना-सा क्लर्क भी छोटे- से काम तक के लिए दांतों पसीना निकलवा देता है और जेब ढीली करवाता है सो अलग, ये तो भैसावाहन मृत्युदेव यमराज थे।'[46] (राजेश कुमार) 'तो हम अपनी प्यास किसे दिखाएँ ? हमारा प्रतिनिधि तो बोतल वाला पानी पीता है। वो या तो पानीदार है ही नहीं, अथवा उसकी आँख का पानी उतर गया है या फिर वह भूल गया है कि देश की जनता जब बहुत ज्यादा परेशान हो जाती है तो अच्छे-अच्छे को पानी पिला देती है, अथवा और कुछ नहीं तो चुल्लू भर पानी में डूब मरना अवश्य सिखा देती है। यही सब सोचकर हम फिलहाल, पानी की बजाए खून का घूँट पीकर रह जाते हैं।'[47] (शशि भूषण पांडेय)

'था मेरी दुकान का
या धुंआ
तेरे मकान का
मुँह तो काला
हो ही गया है
आसमान का !'[48]

(घनश्याम अग्रवाल)

आसमान का मुँह काला करने वाले धुंए के बारे में कौन बता सकता है कि यह धुँआ हिंदू के घर/ दुकान जलने से निकला है या मुसलमान के घर / दुकान जलने से ? साम्प्रदायिकता पर प्रहार मुहावरे से बहुत प्रभावशाली हो गया है।

व्यंग्यकारों की मुहावरेदानी की यह विशेषता है कि कहीं भी मुहावरों का प्रयोग सायास नहीं लगता है, वे अनायास ही व्यंग्यकार की लेखनी से निसृत हुए हैं। व्यंग्य-साहित्य में प्रयुक्त मुहावरों की संख्या बहुत अधिक है। सभी को यहाँ लेना संभव नहीं था मुहावरे व्यंग्य-भाषा की अभिव्यंजकता की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण हैं। मुहावरों से व्यंग्य-भाषा प्रवाहपूर्ण बनी है। व्यंग्यकारों ने मुहावरों की संरचना, स्वरूप, अर्थ तथा प्रयोग में व्यंग्यानुकूल परिवर्तन एवं परिवर्द्धन करके व्यंग्य की प्रखर एवं दूरगामी व्यंजना की है तथा परंपरागत मुहावरों का प्रयोग करके स्थितिगत एवं चरित्रगत विसंगतियों को उभारा है। वहीं नए मुहावरों को गढ़ गागर में सागर भरने का सफल प्रयास किया है।

- व्यंग्य-भाषा में लोकोक्तियों का प्रयोग बहुत हुआ है लेकिन जहाँ व्यंग्यकार ने व्यंग्यात्मक ईमानदारी से उनके स्वरूप, संरचना एवं अर्थ में किंचित् फेरबदल कर दिया है, वहाँ ये. विशेष अभिव्यंजक हो उठी हैं। प्रसिद्ध लोकोक्ति है 'न रहेगा बाँस न बजेगी बाँसुरी' - लेकिन व्यंग्यकार ने व्यंग्य की तीव्रता के उद्देश्य से इसकी संरचना में परिवर्तन कर लिया :

'अनुशासनहीनता का उपयुक्त अर्थ जान लेने के बाद हल आसानी से निकाला जा सकता है। सबसे सीधा रास्ता तो यह है कि पॉलिटिक्स ही खत्म कर दी जाए -न रहे बाँस न बजे डंडा।'[49] (श्रीलाल शुक्ल)

उद्दंड छात्रों को अनुशासित करने के लिए डंडे की आवश्यकता पड़ती है बाँसुरी की नहीं । व्यंग्यकार ने यहाँ डंडे का सार्थक प्रयोग करके छात्र जीवन में दखलंदाजी मचाने वाली राजनीति पर मानो डंडे से प्रहार किया है। यहाँ विसंगति पर प्रहार के लिए पर्यायमूलक लोकोक्ति का प्रयोग किया है। इसी प्रकार एक लोकोक्ति 'चार दिन की चाँदनी फिर अंधेरी रात' इस लोकोक्ति की संरचना को तोड़कर वाक्यात्मक रूप में इसका प्रयोग किया है :

'चुनाव तो चार दिन की चाँदनी होता है, जिसमें जनता चाहे इतरा ले, मगर बाद में वहीं अंधकार होता है।'[50] (शरद जोशी)

आवश्यकतानुसार लोकोक्ति की संरचना में परिवर्तन करके व्यंग्यकार ने एक बड़ी धूर्तता को बेनकाब किया है कि जब तक चुनाव है तभी तक जनता को पूछा जाता है और चुनाव काल केवल थोड़े समय तक का होता है अधिकांश समय तो जनता अंधेरे में ही रहती है अर्थात् उसे कोई नहीं पूछता।

'नौ दिन चले अढ़ाई कोस' लोकोक्ति की संरचना एवं स्वरूप में आमूलचूल–चूल परिवर्तन करके व्यंग्यकार ने उसे नई अर्थवत्ता प्रदान की हैः

'राज्य की ओर से हिंदी की अनेक विभूतियों को आकाशवाणी से संपृक्त किया गया और केंद्रीय हिंदी निदेशालय जैसी संस्थाओं ने हिंदी की प्रगति के लिए यथासंभव सब कुछ किया पर फिर भी क्या कारण है कि हिंदी पिछले पंचविंशति वर्षों में द्वय और अर्धकोश ही चली ?'[51] (रवीन्द्रनाथ त्यागी)

'पंचविंशति वर्षों में द्वय और अर्धकोश' पच्चीस वर्षों में अढ़ाई कोस – परिवर्तित लोकोक्ति के द्वारा तथाकथित हिंदी की क्लिष्टता के पक्षपातियों पर कुठाराघात किया है अर्थात् जो हिंदी को राष्ट्रभाषा भी बनाना चाहते हैं लेकिन सरलीकरण के नाम पर हिंदी को अत्यंत क्लिष्ट बनाते जाते हैं।

'पुरस्कार की आशा करना व्यर्थ है यहाँ तो अंधा रेवडियाँ बाँटता है..दूसरा बोला–परसाल अंधे ही ने तो बाँटी थी।'[52] (हिमांशु श्रीवास्तव) 'अंधा बाँटे रेवड़ी फिर–फिर अपनों को दे' लोकोक्ति से व्यंग्यकार ने अपनी आवश्यकतानुसार अंश चुनकर तथा उसके भी स्वरूप में परिवर्तन करके अभीष्ट व्यंग्य किया है। साहित्य अकादमी में पुरस्कार वितरण में होने वाली धाँधली तथा भाई–भतीजावाद पर व्यंग्य इस अपूर्ण लोकोक्ति द्वारा ही प्रभावशाली बन पड़ा है।

'उल्लुओं को तो कुछ सूझता नहीं, आँख मूँदे बैठे रहते हैं और मौका आने पर किसी के कहने से हाथ उठाकर या मोटा गिराकर महत जनों का कल्याण करते हैं। इसलिए सौ नासमझ की अपेक्षा एक समझदार आज पसंद नहीं किया जाता।'[53] (श्यामसुन्दर घोष)

'सौ नासमझ से अच्छा एक समझदार' – लोकोक्ति की संरचना एवं स्वरूप में परिवर्तन करके इसे निषेधात्मक बनाकर व्यंग्यकार ने तथाकथित बुद्धिवादियों पर व्यंग्य किया है।

'खाली दिमाग शैतान का घर होता है' – लोकोक्ति को 'खाली दिमाग शैतान की दुकान होता है' – में परिवर्तन करके स्थितिगत विसंगति पर व्यंग्य किया हैः 'रेल की पटरी हमारे देश में इतनी लंबी है कि आपकी पूरी पीढ़ी भी शायद उसे पूरी तरह न उखाड़ सके। खाली बैठने से ऐसे काम करना कहीं बेहतर है। खाली दिमाग तो शैतान की दुकान होता है। आप लोग कुछ टोलियाँ बना लें और कार्यक्रम आरंभ कर दें।'[54] (रवीन्द्रनाथ त्यागी) रचनात्मक काम के नाम पर कुछ भी कराने वाले नेताओं पर व्यंग्य किया है।

नवाब द्वारा अपना नाम करने की लालसा से राह चलते थिएटर वाले को फेलोशिप देने की घोषणा करने पर, एक नागरिक व्यंग्य करते हुए कहता है :

'नागरिक 3ः बधाई जनाब इसे कहते हैं –

खुदा जब देता है थिएटर फाड़ कर देता है।'[55] (शरद जोशी)

लोकोक्ति 'खुदा जब देता है छप्पर फाड़कर देता है' – को व्यंग्यानुकूल बनाकर प्रहार किया है। इसी प्रकार लोकोक्ति का निर्माण करके सर्वेश्वरदयाल सक्सेना ने 'बकरी' नाटक में राजनीतिक क्षेत्र की विसंगति पर व्यंग्य किया हैः

'जिसके पास माया, वो मंत्री का जाया'[56] (सर्वेश्वरदयाल सक्सेना)

प्रचलित लोकोक्ति 'हर्र लगे न फिटकरी रंग चोखा जाए' तथा 'जैसा देश वैसा भेष' के परिवर्तित स्वरूपों का प्रयोग उपहास, व्यंग्य, तिरस्कार, अवज्ञा आदि की प्रभावशाली अभिव्यक्ति के निमित्त तथा किसी तथ्य या अनुभूत सत्य के चमत्कारपूर्ण उदघाटन के लिए हुआ है : 'तभी दीहातियों के लिए कोडिल्ला छाप इंसाफ का इंतजाम हुआ है। न हर्रा लगे न फिटकरी, रंग चढ़ा भरपूर। एक खुराक ले लो बुखार उतर जाएगा। अपने देश का कानून बहुत पक्का है,जैसा आदमी वैसी अदालत।'(श्रीलाल शुक्ल) स्थितिगत विसंगति पर व्यंग्यात्मक प्रहार के लिए लोकोक्तियाँ बहुत उपयुक्त उपकरण हैं, कम शब्दों में बखिया उधेड़ कर रख देती है, ऐसा घातक प्रहार करती है कि तिलमिलाने के अलावा कोई दूसरा रास्ता नहीं छोड़ती हैंः

'पूर्वी उत्तरप्रदेश पर ईश्वर की अनुकंपा यथावत् जारी है। पहले सूखा पडता है और फिर बाढ़ आती है। इस दिशा में सारा कार्यक्रम निश्चित–सा रहता है और

उसमें ईश्वर न देर करता है न अंधेर।'[57] (रवीन्द्रनाथ त्यागी)

'सच तो यह है कि देश-दशा की चिंता करने वालों को भी अच्छी तरह पता है कि बेहतर चिंता करने से लाभ कुछ भी नहीं है। हम चाहे देश की दुम लाख सीधी करना चाहें, यह टेढ़ी- की-टेढ़ी ही रहेगी। 'सब चलता है' का मंत्र जिसने रट लिया है और इसका रहस्य जान लिया है, वही वास्तविक सिद्ध पुरुष है।'[58] (बालेंदु शेखर तिवारी)

'उपभोक्ता तू क्यों नहीं भूँकता' व्यंग्य-लेख में उन्होंने उपभोक्ताओं की एक सभा में कहा - 'भूँकना स्वास्थ्य एवं जागरुक मनुष्य का लक्षण है।' गुजराती की एक पुरानी कहावत है कि 'जो बोलता है उसी के बेर बिकते हैं।' आधुनिक युग की कहावत है कि जो भूँकता है, उसी की मांग पूरी होती है। [59] (जब्बार ढाँकवाला)

'एक बात तो तय है कि जब कागज नहीं होगा तो पुस्तकें नहीं छपेंगी। और जो हो सो हो, स्कूली बच्चे बहुत खुश होंगे। अभी तो यह हाल है कि 'सेर भर की लोमड़ी, सवा सेर की पूँछ'। 'नन्ही-सी जान और उसका पहाड़-सा बस्ता।'[60] (शशि भूषण पांडेय)

चरित्र की व्यंजना के लिए लोकोक्ति का प्रयोग बड़ा सार्थक है। मजिस्ट्रेट के चरित्र में मिलावट है तो हलवाई के कर्म में -'अमां, लंका में सब बावन गज के ही हैं। याद है पिछली बार दीवाली पर सामने वाले मजिस्ट्रेट साहब के डेढ़ सौ डिब्बे मिठाई के आए थे, बाबू राम हलवाई मिलावट में पकड़ा गया था उन दिनों।'[61] (बाला दुबे) रिश्वत खाने में सब एक बराबर हैं चाहे छोटा हो या बड़ा, चाहे न्याय की व्यवस्था सँभाले मजिस्ट्रेट ही क्यों न हो - 'लंका में सब बावन गज के हैं' के द्वारा सटीक व्यंजना की है।

किसी चरित्र की विसंगति को उभारने में लोकोक्तियाँ विशेष उपयोगी उपकरण हैं:

'जजः एक हाथ ककड़ी और उसमें नौ हाथ लंबा बीज।'[62] (लक्ष्मीनारायण लाल)

'मूर्ख मूर्ख सब हो गए मेरी ओर
छोड़कर कायरता
लिख दिया गया स्कूलों में सुभाषित।
मरता क्या न करता।' [63]

(रघुवीर सहाय)

'एक तो ऑफिसर, दूसरे राइटर, है न डेडली कांबिनेशन यानी एक तो करैला दूसरे नीम चढ़ा यानी बिटरनेस एक्सक्वायर, कडवाहट सफिशिएंट।'[64] (यश मालवीय)

'कई चतुर लेखक तो अपनी किताब उन्हें भेट कर देते हैं जिनका उधार खाए होते हैं। साँप भी मर जाता है और लाठी भी नहीं टूटती। हर्र लगती है न फिटकरी और रंग भी चोखा आता है। साहित्य की राजनीति और राजनीति का साहित्य करने वाले भी पीछे नहीं रहते।'[65] (यश मालवीय)

'जब लाल पार्टी चुनाव में हार गई और हरी पार्टी के हाथ में सता की बागडोर आई तो शहर की संस्थाओं के सारे समीकरण बिखर गए। जयंतियाँ, पुण्यतिथियाँ, वार्षिक उत्सव और सांस्कृतिक समारोह तो होते ही रहते हैं परंतु अब अहम प्रश्न यह उभरा कि अध्यक्ष पद पर किसे आसीन करें। अनुभवी प्राचार्य जी ने चुटकी बजाते हुए समस्या का समाधान किया, भई, इसमें सोचना-विचारना क्या है। हमारे पूर्वज गिरधर कविराय पहले ही कह गए हैं, 'जैसी बहे बयार पीठ तब तैसी कीजे।' इसलिए अविलंब हरी पार्टी वाले किसी बड़े नेता को अध्यक्ष पद के लिए आमंत्रित करिए।'[66] (अश्विनी कुमार दुबे)

'... जो लोग संपादक के साथ कभी गिल्ली-डंडा खेलते थे, परीक्षाओं में नकल टीपने के लिए जिन्होंने संपादक की मदद की, वे लोग आए दिन जो प्रदूषण कर रहे हैं, वह सब रंगीन पृष्ठों पर प्रमुखता से छप रहा है। बतर्ज सैयाँ भए कोतवाल तो अब डर काहे का!'[67] (अरविंद विद्रोही)

'राजनीति की दुकान में झूठ की पकौड़ियाँ ' - व्यंग्य लेख में व्यंग्यकार चुनावों से जुड़ी विसंगतियों को उजागर करते हैं तो मुहावरे-लोकोक्तियों युक्त भाषा कथ्य को और प्रभावशाली बना देती है-

'अब वे किसी भी कीमत पर लूटराज नहीं बनने देंगे। घर का भेदी लंका ढाए वाली कहावत चरितार्थ कर रहे हैं। वे निर्ममतापूर्वक हर एक लूट की पोल खोल रहे हैं। इन-आउट का राज उन्हें मालूम है। वे किसकी हजामत बना रहे हैं यह अलग शोध का विषय है। मतदाता उन्हीं को अपना मत देंगे ऐसा विश्वास है। वे लोगों का ध्यान खीचने में अपने भावी मंत्रीमंडल का स्वरूप भी प्रोजेक्ट कर रहे हैं। चूँकि यह चुनाव आचार संहिता से एकदम बाहर है, वे ताल ठोककर कहते भी हैं, शेषन डाल-डाल तो हम पात-पात।'[68](अश्विनी कुमार दुबे) कहावतों को नया रूप देकर कवयित्री ने 'सौ साल कैसे

जिएँ' की व्यंग्यात्मक योजना की है,जबकि आज मनुष्य मनुष्य न रह कर वस्तुवत् हो गया है –

रोशनी से बचें
अँधेरे कमरे में बैठे काली कमरिया ओढ़कर
दूजा रंग न चढ़े कोई
न व्यापे जगत–गति।
ऐसी सिल बने जिस पर
लगातार रस्सी आने–जाने से भी
न पड़े कोई निशान।'[69] (कात्यायनी)
'चार दिन की जिंदगी में दुःख हजारों साल के।
और यह भी देखिए एहसान है भगवान का!'[70]
(पुरुषोत्तम प्रतीक)

सारांशतः व्यंग्य–साहित्य में मुहावरों के साथ–साथ लोकोक्तियों का भी अत्यधिक प्रयोग मिलता है। ग्रामीण, संस्कृत, प्राचीन, नवीन सभी प्रकार की लोकोक्तियों का प्रयोग व्यंग्य–भाषा की अभिव्यंजना की वृद्धि के लिए किया गया है। कहीं–कहीं व्यंग्य की तत्परता के लिए लोकोक्तियों की संरचना, स्वरूप, अर्थ आदि में परिवर्तन भी किया है। विशेष कथन भंगिमा, सारगर्भित, सूत्रात्मक एवं व्यंग्यात्मक क्षमता से युक्त होने के कारण व्यंग्यकारों ने इनका बार–बार प्रयोग करके व्यंग्य–भाषा को समृद्ध बनाया है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *मानक हिंदी कोश (चौथा खंड): सं. रामचंद्र वर्मा, पृ. 594*
2. *भारतीय साहित्य कोश : नगेंद्र, पृ.1005*
3. *हिंदी साहित्य कोशः सं.धीरेंद्र वर्मा, पृ. 693*
4. *भारतीय साहित्य कोश : सं. नगेंद्र, पृ. 1141*
5. *हिंदी मुहावरे (भूमिका) :रामदहिन मिश्र, पृ.14*
6. *शोक सभा :रवींद्रनाथ त्यागी, पृ.93*
7. *प्रोफेसर पुराण : अशोक शुक्ल, पृ.135*
8. *रागदरबारीः श्रीलाल शुक्ल, पृ.10*
9. *सदाचार का तावीज : हरिशंकर परसाई, पृ. 60*
10. *बेईमानी की परतः हरिशंकर परसाई, पृ.11*
11. *रागदरबारीः श्रीलाल शुक्ल, पृ.15*
12. *हड़ताल हरिकथा : अशोक शुक्ल, पृ.91*
13. *सिंहासन खाली है :सुशील कुमार सिंह, पृ.44–45*
14. *कोई पत्थर से : के.पी.सक्सेना, पृ. 21*
15. *नई कविता(नागार्जुन) :सं.वासुदेवनंदन प्रसाद, पृ. 101*
16. *नागपाश : सुशील कुमार सिंह, पृ.51*
17. *बीसवीं सदी के चर्चित व्यंग्य : सं. विजय अग्रवाल, पृ. 261*
18. *नरक–यात्रा : ज्ञान चतुर्वेदी, पृ. 180*
19. *सिंहासन खाली है :सुशील कुमार सिंह, पृ.42*
20. *शिकायत मुझे भी है : हरिशंकर परसाई, पृ. 104*
21. *जीप पर सवार इल्लियाँ : शरद जोशी, पृ. 165*
22. *प्यासी पथराई आँखें : नागार्जुन, पृ. 60*
23. *बकरी : सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृ. 52*
24. *इंडीकेट बनाम सिंडीकेट : सुदर्शन मजीठिया, पृ.79*
25. *ठिठुरता हुआ गणतंत्रः हरिशंकर परसाई, पृ. 1*
26. *बीसवीं सदी के चर्चित व्यंग्य : सं. विजय अग्रवाल, पृ. 428*
27. *शोक सभा : रवींद्रनाथ त्यागी, पृ.91*
28. *रागदरबारी : श्रीलाल शुक्ल, पृ. 11*
29. *सदाचार का तावीज :हरिशंकर परसाई, पृ. 13*
30. *शहर बंद है :अश्विनी कुमार दुबे, पृ. 32*
31. *शहर बंद है : अश्विनी कुमार दुबे, पृ. 82*
32. *विकलांग श्रद्धा का दौर : हरिशंकर परसाई, पृ. 40*
33. *और अंत में : हरिशंकर परसाई, पृ. 108*
34. *रागदरबारी : श्रीलाल शुक्ल, पृ. 187*
35. *शोक सभाः रवींद्रनाथ त्यागी, पृ. 92*
36. *इंडीकेट बनाम सिंडीकेट : सुदर्शन मजीठिया, पृ. 94*
37. *कुछ इधर की कुछ उधर की : सुदर्शन मजीठिया, पृ. 51*
38. *मेरी प्रिय व्यंग्य रचनाएँः बालेंदु शेखर तिवारी, पृ 65*
39. *युगधारा :नागार्जुन, पृ. 92*
40. *युगधारा : नागार्जुन, पृ. 90*
41. *आत्महत्या के विरुद्ध : रघुवीर सहाय, पृ. 65*
42. *शहर बंद है :अश्विनी कुमार दुबे, पृ. 59*
43. *रागदरबारी : श्रीलाल शुक्ल, पृ. 84*
44. *और अंत में : हरिशंकर परसाई, पृ. 165*
45. *नई कविता (नागार्जुन): सं.वासुदेव नंदन प्रसाद, पृ. 101*
46. *बीसवीं सदी के चर्चित व्यंग्य : सं. विजय अग्रवाल, पृ. 297*
47. *युधिष्ठिर की वापिसीः शशि भूषण पांडेय, पृ. 21*
48. *आजादी की दुम : घनश्याम अग्रवाल, पृ. 53*

49. मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएँः श्रीलाल शुक्ल, पृ. 107
50. जीप पर सवार इल्लियाँ : शरद जोशी, पृ. 175
51. शोक सभा : रवींद्रनाथ त्यागी, पृ. 21
52. कथा सूर्य की नई यात्राः हिमांशु श्रीवास्तव, पृ. 42
53. एक उलूक कथा : श्याम सुंदर घोष, पृ. 14
54. शोक सभा : रवींद्रनाथ त्यागी, पृ. 69
55. दो व्यंग्य नाटक : शरद जोशी, पृ. 22
56. बकरी : सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृ. 56
57. शोक सभा : रवींद्रनाथ त्यागी, पृ. 50
58. हिंदी हास्य-व्यंग्य संकलन : सं. श्रीलाल शुक्ल, प्रेम जनमेजय, पृ. 214
59. बीसवीं सदी के चर्चित व्यंग्य : सं. विजय अग्रवाल, पृ. 323
60. रहिमन पानी राखिए : शशि भूषण पाडेय, पृ. 29
61. कलियुग सुदामा : बाला दुबे, पृ. 117
62. अब्दुल्ला दीवाना : लक्ष्मीनारायण लाल, पृ. 33
63. आत्महत्या के विरुद्ध :रघुवीर सहाय, पृ. 30
64. सर्वर डाउन है : यश मालवीय, पृ. 92
65. सर्वर डाउन है : यश मालवीय, पृ. 316
66. शहर बंद है : अश्विनी कुमार दुबे, पृ. 16
67. बीसवीं सदी के चर्चित व्यंग्य : सं. विजय अग्रवाल, पृ. 429
68. शहर बंद है : अश्विनी कुमार दुबे, पृ. 67
69. जादू नहीं कविता : कात्यायनी, पृ. 22-23
70. पेड़ नहीं तो साया होता : पुरुषोत्तम प्रतीक, पृ. 32

मध्यकालीन रेण नगर का स्थापत्य

संजय सैन
शोधार्थी, जय नारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

मध्यकाल में नागौर जिले में कई सारे ठिकाने रहे है जिनके इतिहास व अन्य संसाधनों पर आज तक बहुत ही कम कार्य किया गया है लेकिन इन ठिकानेदारो के इतिहास के अभाव में मारवाड़ तथा राजस्थान के इतिहास का निर्माण नहीं हो सकता है। खानवा के युद्ध मे राठौड़ रायमल शहीद हुए थे जिनको इतिहास में मारवाड़ के बताया जाता है जो कि मूलतः इसी रेण ठिकाने के ही थे। ये ठिकाने अपने आप में स्थानीय इकाई के रूप में कार्य करते थे। जिनमें यहां पर न्यायालय, कर संग्रह के अलावा फौजदारी कार्य भी शामिल थे। इन सब के अलावा इनको शराब बनाने का लाईसेंस भी प्रदान किया जाता था। जिनसे इनकी आय में वृद्धि होती थी। जिससे ये अपने क्षेत्र में कई धार्मिक व सामाजिक कार्य करवाते थे। जिनमें मंदिर निर्माण, दुर्ग व परकोटा बनाना, तालाब की खुदाई, सड़के आदि बनाने का कार्य करवाते थे जिससे गांव व राज्य की आय व प्रतिष्ठा बढ़ती थी। लेकिन आजादी के पश्चात इन ठिकानों से ये अधिकार आदि छीन लिये गये जिससे इनकी आय न्यून हो गयी तथा जो प्राचीन मार्ग इन ठिकानो से होकर गुजरते थे उनकी जगह नवीन आधुनिक नगरो के मार्गों ने ले ली।

संकेताक्षर : *चित्रकला, मध्यकालीन मार्ग, स्थापत्यकला, तालाब, स्थानीय प्रशासन, राजनीतिक सहभागिता रेण।*

मेड़ता से बीकानेर जाने वाले राष्ट्रीय राजमार्ग संख्या 89 पर स्थित रेण कस्बा ऐतिहासिक व धार्मिक क्षेत्र में अपनी विशिष्ठ पहचान रखता है। यह नगर मेड़ता नगर से 16 किलोमीटर उत्तर में व वर्तमान जिला मुख्यालय नागौर से दक्षिण दिशा में 74 किलोमीटर की दूरी पर स्थित 26°47'5'' उतरी अक्षांश व 74°5'12'' पूर्वी देशान्तर पर स्थित है।

इस गांव को मध्यकाल में रायण नाम से भी जाना जाता था। जो कि पूर्व में राव दूदा को प्रदान किया गया था तथा वर सिंह को मेड़ता दिया गया था। कुछ कारणों से बाद में राव दूदा को मेड़ता व वर सिंह के वंशजो को रेण जागीर में दिया गया था। कुछ वर्षो बाद वीरम देव के भाई व राव दूदा के पुत्र रायमल को रेण की जागीरी दी गई जिससे ही मेड़तियां राठौड़ो की एक शाखा रायमलोत मेड़तियां प्रारम्भ हुई।[1] यह वही रायमल थे जो खानवा के युद्ध में राणा सांगा की तरफ से बाबर की सेना से युद्ध लड़ते हुए वीरगति को प्राप्त हुए थे।[2] कई पुस्तकों व इतिहासकारों ने इनको राठौड़ व मारवाड़ के राजकुमार रायमल नाम से उदीत किया है लेकिन यह वास्तव में रेण के मेड़तियां राठौड़ थे। रायण गांव रायमलोत मेड़तियों का पाटवी ठिकाने के रुप में भी जाना जाता है। आज भी इनके वंशज रायमलोत मेड़तियां रेण में निवास करते है। मेड़ता व रेण के मध्य जो भी कृषि भूमि है उसको चारभुजा का ओरण कहते है इसलिये आज तक मेड़ता व रेण के मध्य भूमि विवाद की स्थिति पैदा नहीं हो पायी।[3] मध्यकाल में रेण मेड़ता परगने में आता था।[4]

वर्तमान समय में रामस्नेही सम्प्रदाय की प्रसिद्ध पीठ, दरयावजी महाराज की तपोस्थली के कारण रेण कस्बा देश विदेश में भी जाना जाता है। पूर्व में यह नगर छोटे कस्बे के रूप में ही था तथा वर्तमान में जो राजमार्ग यहां से नागौर के लिये जाता है वो भी फलोदी, रूण, खजवाना होकर निकलता था। वर्तमान का राष्ट्रीय राजमार्ग संख्या 89

आजादी के बाद बनाया गया है। रेण कस्बा पूर्व में मेड़तियां राठौड़ो के स्वतंत्र रियासत का हिस्सा था इसलिये यहां के ठाकुर डोली व सांसण भी निकालते थे, रतन रायमलोत ने अचला रा खेत बीठू आंबा को तथा जारोड़ो बैणां धधवाड़िया चवड़ा भांडणोत चारणो को दिया था।[5] लेकिन अकबर द्वारा मेड़ता सूरसिंह को दिये जाने के पश्चात रेण के ठाकुर जोधपुर के शासक से बिना आज्ञा से यह नहीं कर सकते थे।[6] रेण ग्राम को महाराजा मानसिंह के समय संवत 1888 में हाथ का कुरब प्रदान किया गया था।[7]

स्थापत्य

जैसा कि उपर बताया गया कि रेण में रायमलोत मेड़तियो का शासन रहा था। गांव में रायमलोत राजपूतों द्वारा बनवाया गया एक दुर्ग है जो कि चारों ओर से खाई से घिरा हुआ है। इसलिये इस दुर्ग को खाई दुर्ग की श्रेणी में रखना अतिश्योक्ति नहीं होगी। पूर्व काल में इस खाई में पानी भरा रहता था। दुर्ग का परकोटा मिटटी व पत्थरों से बना हुआ है। जिसमें 24 बुर्जे बनी हुई थी। गढ़ का मुख्य द्वार पूर्वाभिमुखी है। वही दुर्ग में प्रवेश करने पर राठौड़ो की कुलदेवी मां नागणेच्या का मंदिर बना हुआ है। पास में ही दरीखाना स्थित है जो कि दो मंजिला इमारत के रूप में बना हुआ है। कुछ दूर चलने पर गढ का दूसरा दरवाजा आता है जो कि दक्षिण दिशा में खुलता है। इस दरवाजे के पास ही उपर की ओर जाने के लिये सीढ़िया बनी हुई है। वहीं नीचे की तरफ घोड़ो की पायगा स्थित है जिसमें घोड़ो के भगवान रेवतजी का थान बना हुआ जिसमें रेवतजी भगवान की मूर्ति लगी हुई है। हाथियों के लिये पीलखाना रियासतकाल में गढ़ के बाहर बना हुआ था। गढ के मध्य में काफी जगह मैदान के रूप में छोडी गई है। इसके एक हिस्से में जनाना डयोडी व दूसरे हिस्से में कुछ महल बने हुए है।[8]

रामस्नेही सम्प्रदाय के आदि आचार्य दरियाव जी महाराज ने रेण में तप किया था।[9] गांव के उतर दिशा में स्थित पक्के सरोवर की पश्चिम दिशा में दरियाव जी महाराज की समाधि स्थित है जो कि सफेद संगमरमर की बनी हुई है। यह समाधि देखने ही अति मनमोहक व शांत वातावरण में स्थित होने के कारण श्रद्धालु यहां आकर भाव विभोर हो जाते है। प्रति वर्ष दरियाव जी महाराज का मेला भी यहां पर भरता है। जिसमें दरियाव जी महाराज की पत्रि ईट को यहां स्थित लाखासर तालाब में तैराया जाता है। विशाल प्रांगण से घिरे इस भवन में रामस्नेही समाज के बंधुओं द्वारा एक धर्मशाला बनवाई गई है। जिसमें यात्री गण ठहरते व विश्राम करते है। तालाब के उस पार हिरण व चिकांरो को स्वछदं विचरण, पानी पीते व विभिन्न अठखेलिया करते हुए देखा जा सकता है। जो कि अपने आप में बहुत ही मनमोहक दृश्य होता है। दरियाव जी महाराज की समाधि के पास ही शिवनाथ बाबा का मंदिर है कहा जाता है कि रायमल्ल मेड़तियां की इन्होनें कुष्ठ रोग की बीमारी दूर की थी। इसके पास जाखण माता का मंदिर है। जो जन आस्था के केन्द्र के रूप में पूजे जाते है।

रेण ग्राम के मुख्य बाजार में दरियाव जी महाराज का प्रवचन स्थल है जिसे लोग रामद्वारा के नाम से जानते है पूर्व में यह दरियाव जी महाराज का घर व अराधना स्थल रहा था इस दो मंजिला इमारत में विभिन्न प्रकार की नक्काशी व झरोखे स्थित है। रामद्वारा में प्रवेश करने पर दरियाव जी महाराज का छोटा सा मंदिर बना हुआ है। इस भवन की छत विशेष दर्शनीय है जिसमें छत की पटिटयों पर बारीक नक्काशी की गई है। पतली उंची सीढियों को पार करने पर दूसरी मंजिल में मध्यकालीन भितिचित्र बने हुए है जिनमें नीली स्याही का अधिक उपयोग किया गया है। वहीं सामने की ओर के कमरे में दरियाव जी की तपस्या के लिये एक गुफा बनी हुई है। जिसमें वे तपस्या करते थे।[10] यहां प्रतिवर्ष चैत्र माह की पूर्णिमा को विशाल मेला भरता है।[11]

रेण नगर के तीन तरफ तालाब फैले हुए है जिनमें रामसिंह जी द्वारा खुदवाया रामसमर तालाब जो कि पूर्व में, लाखा फुलाणी द्वारा खुदवाया गया लाखासर जो कि उत्तर दिशा में, चंदोलाई तालाब आदि प्रमुख है। इस गांव में कई प्राचीन स्मारक स्थित है।

पूर्व में स्थित रामसागर तालाब के किनारे पर दादूपंथियों का दादूद्वारा है जिसे भी यहां के लोग रामद्वारा ही कहकर पुकारते है। यह दादूद्वारा मेड़ता से रेण में प्रवेश करने वाले मार्ग में रेण में प्रवेश करते ही स्थित है। यह रामसागर तालाब के पश्चिम दिशा में स्थित है। कहते है कि दादू जी महाराज यहां स्वयं पधारे व धूणा की स्थापना की थी। यह लगभग 400 वर्ष पुराना है। राम सागर तालाब की पाल पर एक प्रतिहारकालीन गोर्वधन स्तंभ लगा हुआ है। जिसके बारे में कहा जाता है कि यदि वह पानी से डूब जाता है तो उस वर्ष खेती अच्छी होती है।

रामसागर तालाब के पास ही उतर दिशा में गांव की

तरफ चलने पर राजपूतो के शमसान घाट व शिव भगवान का मंदिर आता है शमसान घाट में राजपूत वीरों की छतरियां बनी हुई है। तालाब के पास ही स्थित शिव मंदिर में श्रावण मास में भक्तों का तांता लगा रहता है। इसके आसपास कई प्राचीन मूर्तियां खण्डित अवस्था में बिखरी पड़ी है। मंदिर एक बाहर एक शिलालेख लगाया हुआ है। जिस पर गोचर भूमि से सम्बन्धित लेख लिखा गया है। यह पूर्व से कई और लगाया हुआ था। जिसको बाद में यहां पर स्थापति कर दिया गया। यहां पास ही सुन्दर नक्काशी युक्त एक पाचं सौ वर्षो से भी अधिक पुराना मंदिर भी बना हुआ है जिसमें मूर्ति स्थापित न होने के कारण इसका पूरा पता नहीं लगाया जा सकता कि यह मंदिर किस भगवान का है। बाजार के मध्य में ही एक एक प्राचीन मंदिर बना हुआ है जिसको घनश्याम जी का मंदिर कहा जाता है यह मंदिर दो मंजिला बना हुआ है नीचे की मंजिल में मंदिर के खर्चे के लिये दुकाने बनाई गई है वहीं दूसरी मंजिल पर मंदिर बना हुआ है। यह मंदिर हवेली मंदिर की तरह दिखाई देता है। बाजार में विभिन्न इमारतों के मध्य स्थित होने के कारण दूर से यह हवेली की तरह दिखाई देता है। मुख्य मंदिर में दोनो ओर उपर जाने के लिये सिढ़ीया बनी हुई है। पत्थरों पर सुन्दर नक्काशी की हुई है तथा गरट के चूने से बने इस मंदिर की पटिटया दो फीट चौड़ी है। वर्तमान में मंदिर प्राकृतिक आपदाओं का शिकार हो रहा है। इसकी पटिटया टूट रही है तथा चूना की गिर रहा है। जिससे मंदिर को काफी नुकसान हुआ है। यदि समय पर इसका जीर्णोद्धार नहीं हुआ तो यह प्राकृतिक धरोहर नश्ट प्राय हो जायेगी।[12] मंदिर में सुन्दर काल पत्थर की बनी हुई घनश्याम भगवान की मूर्ति विराजति है जो कि दूर से ही मंदिर में आने वाले दर्शनार्थीयों का मन मौह लेती है। इन सबके अलावा भी रेण में और भी कई मंदिर व स्थापत्य के नमूने देखने योग्य है जिनमें शनिदेव मंदिर, नागणेच्या माता व चारभुजा नाथ मंदिर प्रमुख है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. *गुप्ता मोहनलाल, नागौर का राजनैतिक व सांस्कृतिक इतिहास पृष्ठ संख्या 106*
2. *मुरारीदान री ख्यात, रा. प्रा. वि. प्र. जोधपुर, पृष्ठ संख्या 574*
3. *साक्षात्कार इन्द्र सिंह रायमलोत मेड़तियां, रेण*
4. *रिपोर्ट मरदुम राय शुमार राज मारवाड़ पृष्ठ संख्या 288*
5. *भाटी विक्रम सिंह, मध्यकालीन राजस्थान में ठिकाना व्यवस्था, पृष्ठ संख्या 156*
6. *भाटी हुकमसिंह, राजस्थान के मेड़तियां राठौड, पृष्ठ संख्या 181*
7. *भाटी हुकमसिंह, मेड़तियां राठौड़ो का राजनैतिक व सामाजिक इतिहास पृष्ठ संख्या 211*
8. *शोधार्थी द्वारा भौतिक सर्वेक्षण*
9. *सम्पादक शास्त्री श्री हरीनारायण जी महाराज, श्री दरियाव दर्शन, पृष्ठ संख्या 48*
10. *गुप्ता मोहनलाल, नागौर का राजनैतिक व सांस्कृतिक इतिहास पृष्ठ संख्या 277*
11. *साक्षात्कार सज्जनराम रामस्नेही*
12. *स्थानीय नागरिक मुकेश सेन द्वारा दी गयी जानकारी व भौतिक सर्वेक्षण*

मानवीय संवेदनाओं के पुरस्कर्ता : नव–वामपंथी कवि उदय प्रकाश

षैजू के
शोधार्थी, कोच्चिन विश्वविद्यालय, कोच्चि (केरल)

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

साहित्य या भाषा की रचनात्मक संभावनाओं को खोजकर इंसानी जीवन के यथार्थ के साथ होनेवाले संरचनात्मक तरीकों पर उदयप्रकाश की रचनादृष्टि चलती है । इसलिए हिंदी साहित्य को श्रेष्ठ दार्शनिक परिवेश देने का श्रेय नव वामपंथी कवि उदय प्रकाश को ही मिलता है। समकालीन सामाजिक जीवन में जो–जो बदलाव आता रहता है उसकी झलक नव वामपंथी साहित्य में देख सकते है। यह प्रवृत्ति उदय प्रकाश की रचनाओं में दृष्टिगोचर होती हैं। उनकी रचनाओं में समकालीन विमर्श देखने को मिलते है। कुछ प्रमुख नव वामपंथी कवियों में इसकी वर्तमानता स्पष्ट और साफ दिखाई देती है जिनमे से केदारनाथ सिंह, चंद्रकांत देवताले, मंगलेश डबराल, मदन कश्यप, विष्णु खरे, अरुण कमल, उदयप्रकाश आदि है। कहना न होगा कि इस तरह का रास्ता अख्तियार करना कभी–कभी एक भयंकर बीमारी या फिर सीधे मृत्यु को आमंत्रित करने के बराबर भी होता है ।यह बात और है कि साहित्य जगत में वर्तमान रहने के लिए तमाम प्रकार के विरोधों से गुजरते हुए ही जन्धार्मिता का निर्वहन किया जा सकता है । सन् 1960 के बाद से लेकर आज तक इस प्रकार के विरोधों से लड़ना रचनाकारों ने अपने जीवन का प्रथम लक्ष्य ही बना लिया था। उदयप्रकाश जी ने अपने रचनाधर्मिता के प्रति इस बात को स्वीकार भी किया है।

संकेताक्षर : *नव वामपंथी दृष्टि, मानवीय स्वर, प्रतिरोध, आम जनता, राजनीतिक खोखलापन ।*

साहित्य वह है जो समय–समाज में विद्यमान स्थितियों एवं परिस्थितियों को व्याख्यायित करने के साथ–साथ उसके अध्येताओं को प्रेरणा और सीख भी दे। प्रचलित और रूढ़ हो चुके परम्पराओं के स्थान पर नवीन परम्पराओं के उद्भव व विकास पर सक्रिय होने के लिए समझ तथा समय–संदर्भित आत्मघाती व्यवस्थाओं से जूझने के साहस भी दे। प्रसन्नता की बात यह है कि इन दोनों ही स्थितियों पर वर्तमान समय–सन्दर्भ को रेखांकित करते हुए लिखो ज रहे नव वामपंथी साहित्य अपने उद्देश्यों पर खरा उतरता है ।

मध्यकालीन संतों के हृदय में नितांत वैयक्तिक अवहेलनाओं का जो दंश उनके हृदय में रह रहकर चुभता था, संतों ने उसे चुपचाप सहे जाने के बजाय सार्वजनिक पटल पर जनसामान्य के समक्ष खोलकर रखना ही उचित समझा। जो यातना, जो कष्ट, जो पीड़ा, उन्होंने सहा, जो अपमान, जो उपेक्षा और अलगाव का जो दंश उन्होंने झेला...यह आश्चर्य की बात नहीं कि संसार के सभी जनसामान्य को उन्हीं स्थितियों एवं परिस्थितियों में देखने का प्रयत्न करे। देश जिस बुरे दौर से उनके समय में गुजर रहा था वह यहाँ व्याख्यायित करने की आवश्यकता शायद नहीं है। जनसामान्य किन विपरीत परिस्थितियों के माहौल से आतंकित था इस बात से भी शायद ही कोई अनभिज्ञ हो। दो वक्त की रोटी और दो टूक कपड़े के मुहताज आम आदमी बिन घर–बार, परिवार के पालन–पोषण के लिए प्रतिपल चिन्ताओ का सामना करते हुए किस तरह स्वयं को सदाबहार मौसम की तरह देख रहे थे...यह आज भी कुछ गरीब बस्तियों में पहुँच कर देखा जा सकता है। किसी बड़े तबके के निवास स्थल पर पहुँच कर समझा जा सकता है । किसी सार्वजनिक स्थल या सामाजिक आयोजनो में प्रतिभागिता करते हुए महसूस किया जा सकता है ।

इनके समय के षड़यंत्रकारी शक्तियां बिल्कुल भी चुप नहीं बैठे थे। तरह तरह के आरोप–प्रत्यारोप इनके ऊपर लगा ही

दिए जाते थे। यह आश्चर्य की बात नहीं है कि इसके बावजूद, उन्हीं बस्तियों में वर्तमान रहते हुए भी उन्होंने मुक्ति का स्वप्न देखा और स्वप्न के आवरण में ही सही. ..स्वयं के दुःख के साथ–साथ लोगों के दुखों को भी अपने 'करनी और कथनी' का आधार बनाया ।यही वजह है कि रोजी–रोटी, घर–परिवार, देश–समाज की संतुलित एवं सामंजस्यपूर्ण दशा एवं दिशा निर्धारित करने के लिए इन संतों ने कभी भी व्यक्तिगत हित को महत्व नहीं दिया ।कबीर का दुःख स्वयं का दुःख नहीं था। उनकी पीड़ा, उनकी खीझ स्वयं की पीड़ा और स्वयं की खीझ नहीं थी। दांसता, गरीबी एवं भुखमरी के कीचड में धंसे तथा वर्णवाद, छुआ–छूत और जाति–पांति के दलदल में उलझे हजारों–करोड़ों निरीह और असहाय मानव की पीड़ा और खीझ थी । गुरुनानक, रैदास, दादूदयाल, सुन्दरदास जैसे संतों को आखिर कमी किस बात की थी, पर इन सबको भी जनसामान्य के वही दुःख, वही वेदनाएं दिखाई दिए थे, जिन्हें समाप्त करने के लिए कबीर ने बीड़ा उठाया था । हालांकि आज हमारे मध्य कबीर नहीं हैं और वे संत कवि भी नहीं हैं, पर उनके विचारों, सिद्धांतों एवं व्यवहारों का कारवां, जिनको लेकर वे आगे बढे थे और जिनके विषय में जनसामान्य को जागरूक कराना चाहते थे, आज भी अपने उसी रूप में चल रहा है।

नव वामपंथी कवि उदय प्रकाश जी के चिंतन और लेखन का आधार वही आम आदमी हैं जो कबीर आदि के चिंतन और संवेदना के आधार थे । निरे ग्रामीण परिवेश के वे पात्र जिन्हें आए दिन राजनीतिक षडयंत्र का शिकार होंना पड़ता है। पूंजीवादी शक्तियों के समक्ष अपने सभी सुख–साधनों को समर्पित करना होता है । सार्वजनिक स्थलों पर, तीजों–त्योहारों पर अपमानित, लांछित एवं शोषित होना पड़ता है ।खुद खाने के लिए मरे, परिवार टूटे, पर अपने आकाओं को खुश रखना होता है, ऐसे सभी पात्र उदय प्रकाश जी के यहाँ वर्तमान हैं । हालांकि उन पर दूसरों की निगाहें बहुत कम ही पड़ा करती हैं। पर कवि बहुत संवेदनशील प्राणी होता है उसे एक आम आदमी की स्थिति, भले ही वह कितना ही छुपाए, आसानी से पता चल जाती है, ऐसी ही स्थिति का पता कवि को भी चलता है और वह कह बैठता है–

"हम जानते हैं कि तुम्हें अभी
परधान का खेत निराना है, ठकुर के
गोरु चराने हैं, पटवारी का चौखट बनाना है,
पंडिज्जी की रसोई के लिए
लकड़ी चीरना है, पटेल का हल चलाना है.
तकादे में आए महाजन के
कारिंदे को फिर से टकराना है।"[1]

यह एक विडंबना ही है कि आदमी एक है और उससे सेवा लेने वाले अनेक हैं । उन सभी में बस लिबास का अंतर है, स्वभाव या व्यवहार इनका मात्र एक ही है... शोषण और अत्याचार । आचार ऐसा जिसके तहत सबको गुलाम बनाकर रखा जा सके । यह कोई आज की बात है भी नहीं । पूरी की पूरी पिछली सदियाँ उनके इस गुलामपन की गवाह रही हैं । उठने का अवसर इन्हें कभी दिया ही नहीं गया । दबाने का प्रयत्न हद से अधिक किया गया । इनके जो व्यक्तिगत अधिकार होते भी थे उस पर भी सामाजिकता का आवरण लोगों द्वारा चढ़ाकर रखा गया । थोड़ी सी भी कोशिश यदि ये करना चाहे उस आवरण को हटाने की तो सामाजिक बहिष्कार का फरमान सुनाया गया । आश्चर्य की बात तो यह है कि यह फरमान सुनाया भी उसे गया जिसने समाज के निर्माण में अपना सर्वस्व कुर्बान कर दिया है। खेत से लेकर खलिहान तक, घर से लेकर बाजार तक की काल्पनिक स्थितियों को साकार स्वरुप देने वाले इस आम आदमी को खेत, खलिहान, घर से नदारद करके बाजार की वस्तु समझा गया है। बाजार में भी इनके किसी अन्य रूप को महत्व नहीं दिया गया, सिवाय इनके श्रम के । यह श्रम ही है जिसकी वजह से वे इस दुनिया में अब भी अपने होने को लेकर आश्वस्त हैं । पर कवि को दुःख है कि जिसने समाज–निर्माण के कण कण में अपना योगदान दिया, वहाँ इस आम आदमी का नाम मात्र भी नहीं छोड़ा जाता । इनका सम्पूर्ण जीवन एक पहेली मात्र बनकर रह जाता है । इनके आने वाले संतति को ये हर एक जगह दिखाई देते हैं पर जब यथार्थ स्थिति उन्हें पता चलती है तो एक पश्चाताप और प्रश्नाकुल निगाहों के अतिरिक्त होता भी कुछ नहीं है । उदय प्रकाश जी ने अपनी इन पंक्तियों के माध्यम से यथार्थ का सुन्दर चित्र खींचा है–

"एक एक ईमारत पर
उनकी कन्नियाँ सरकीं थीं ।
एक एक दीवार पर
उनकी उँगलियों के निशान थे ।
हर दरवाजे की काठ पर
उनका रंदा चला था ।[2]

किसी को पचा ले जाना हालांकि आसान कार्य नहीं है पर मुश्किल भी उतना नहीं है जितना कि हम सोचते हैं। जहां पचा ले जाने की यह प्रवृत्ति आम आदमी के जीवन का सबसे बड़ा अभिशाप सिद्ध हुआ वहीं यह बड़े तबके के लोगों तथा पूंजीपति–वर्ग के लोगों के लिए किसी आशीर्वाद से कम भी नहीं है। ये लोग गाँव से लेकर शहर तक, घर से लेकर ऑफिस तक, हर एक जगह मौजूद दिखाई देते हैं। बड़ी विडंबना तो ये है कि इनकी ये मौजूदगी आवश्यकतावश नहीं साधिकार होती है। दरअसल, उदयप्रकाश जी का चिंतन आम आदमी की वेदनामय अन्तर्दशा से है। शोषक और शोषित की तमाम विडंबनाओं से इनका साक्षात्कार अनवरत होता ही रहता है। इनके दृष्टि में आम व्यक्ति कितना भी अपने कार्यों में दक्ष क्यों न हो, अपने क्षेत्र तथा व्यवसाय का जानकार क्यों न हो, पर शोषण का शिकार आए दिन उसे होना ही पड़ता है । यह एक कटु सत्य है कि अपने तमाम मजबूरियों का कारवां लिए तथा असामान्य परिस्थितियों का सामना करते हुए नौकरी छोड़ने के लिए विवश यही आम आदमी होता है। गलती कोई भी करे डांट खाने के लिए मजबूर इसी को होना पड़ता है। इस प्रकार के विवशता और मजबूरी के पीछे कहीं न कहीं इनका निराशापन भी होता है जो परिस्थितियों से जूझने के बजाय झुकने के लिए अधिक मजबूर करता है। ''जीवनदास'' के बहाने उदय प्रकाश जी आमजन मानस से यही पूंछना चाहते हैं कि–

''कब तक अकेले दफ्तर से
लौटोगे गंजे–गुस्सैल बाबू का
मेज वाली घंटी पर हांफते–झींखते
कब तक कैरियर में
खाली झोला भूखा कनस्तर
झुलाए लौटोगे
कब तक बच्चों के गाल में
खली थपकियाँ बजाओगे
कब तक औरत को ठोंक–पीट कर
सुलाओगे[3]

झुकने की भी तो एक सीमाएं होती हैं। सहने की भी एक हद होती है। इसके बाद यदि कुछ बचता है तो वह इनकार है। नकार का साहस आज तेजी से बढ़ा है आम आदमी में। जो उन्हें रुचिकर है वह खुशी से कर रहे हैं और जो अरुचिकर है उसे सीधे तौर पर नकार रहे हैं। गाँव से लेकर शहर तक उनके शोषण के जो दांवपेंच थे, वे अब निरर्थक साबित हो रहे हैं। इसका जो प्रमुख वजह यह है, कि जनसामान्य के लिए अपने अस्तित्व का बोध होना। अपने अधिकार और अपने दायित्वों को पाने तथा निभाने की प्रतिबद्धता का अहसास होना । यह साहस और यह अहसास समाज से लेकर साहित्य तक स्पष्ट रूप में दिखाई दे रहा है । आदिवासी साहित्य से लेकर दलित साहित्य तक की जो स्थिति है कहीं न कहीं इसी साहस और अहसास का परिणाम है । यह उदयप्रकाश जी को अच्छी तरह पता है और इसीलिए इस बात को रेखांकित करते हुए वे कहते हैं कि–

''जानते हैं हम
कि तुम्हारी छाती के भीतर
पहली बार गुस्से की आग अब धधकी है.
पहली बार तुम्हारी मुट्ठियाँ
कुल्हाड़े पर अब कसी हैं
पहली बार तुम्हारे आँखों के पीछे
तेंदुए की लौक झलकी है''[4]

किसी भी समाज तथा सभ्यता के विकास का आधार वहाँ की सत्ता होती है । यह विडंबना ही है देश का कि सत्ता और अधिकार ये दोनों स्थितियां एक वर्ग विशेष के ही केंद्र में रही हैं जिनका उपयोग वे हर समय अपने फायदे के लिए करते रहे हैं । दूसरा छला जा रहा है या शोषित हो रहा है इसका उन्हें कभी भी अफसोस या पश्चाताप नहीं हुआ । आज जब शक्ति और सत्ता पर जनसामान्य अपना अधिकार जता रहा है तो उन्हें दबाने और पीछे करने के नए–नए तरीके ईजाद किए जा रहे हैं । विरोधाभास की स्थिति तो तब दिखाई देती है जब किसी विशेष आयोजनों पर वे इनके सबसे बड़े शुभचिंतक बनने का प्रयत्न करते हैं और वही जब उनके द्वारा निर्धारित प्रतिमानों को लांघ कर अपनी स्वतंत्रता का इजहार करना चाहते हैं तो ये चिल्लाना और गुर्राना शुरू कर देते हैं। उदयप्रकाश जी की ''एक न एक दिन'' की ये काव्य –पंक्तियाँ विशेष ध्यान देने लायक हैं–

''जब पहली बारिस की उमस के बाद
पौधे बढ़ना चाहेंगे, चिड़िया चहचहाना,
बच्चे हंसना, नदी बहना
लड़की जब लम्बे लम्बे प्यार के बाद
ऊबकर ब्याह करना चाहेगी
वे अपने पैने दांत निकाल कर
गुर्राना शुरू कर देंगे।''[5]

गुर्राने और चिल्लाने की प्रवृत्ति को व्यक्ति सहन कर

सकता है लेकिन तभी तक जब तक वह मजबूर है। असहाय और अनाथ है, लेकिन समय सबका खबर लेता है। परिवर्तन का लहर जब उठता है तो बड़े बड़े का इम्तहान हो जाता है । हर स्थितियों को रोका जा सकता है। किसी को भी बढ़ने या विकास पथ पर सक्रिय होने से पीछे किया जा सकता है लेकिन जब लहर परिवर्तन का हो तो उसे मोड़ पाना असंभव हो जाता है। विश्व की बड़े से बड़े क्रांति इस बात के गवाह हैं। जनता जब भी जागृत हुई है अपना हिसाब ब्याज सहित वसूल की है । यह स्थिति आज इस देश में भी आ चुकी है । किसी भी प्रकार के झांसे और अवरोध को सहन करना किसी भी स्थिति पर जनसामान्य को स्वीकार्य नहीं है। पूंजीवादी सभ्यता का अंत और सच्चे अर्थो में समाजवाद की स्थापना का यही समय है। उदयप्रकाश जी ने अपने एक कविता ''मालिक, आप नाहक नाराज हैं'' के माध्यम से इस बात को और भी सुन्दर तरीके से स्पष्ट करने का प्रयास किया है कि सारी स्थितियां व्यक्ति के वश में हो सकती हैं लेकिन परिवर्तन को वश में करना किसी भी शक्ति के वश की बात नहीं है यदि ऐसा करने का प्रयास किया भी जाता है किसी द्वारा तो समाज में हास्यास्पद ही होगा–

''मालिक यह धूप है
जेठ की असल
जैसे जैसे सूरज चढ़ेगा और धरती घूमेगी
यह और तपतपाएगी
गर्म लाल लोहे की तरह
और मोम की तरह चुएँगे आप
कुलबुलाएँगे
बिलबिलाएँगे आप
कितना ही अंगोंछा लगा लें सरकार
और हवा,
इसके मन की बात तो मत पूछिए मालिक
जितना ही आप गुस्साएंगे
उतना ही सर पर दौड़ेगी कंघी–पाटी मेटटी हुई।[6]

यह सही है कि समय समाज की परख जिस युग के रचनाकार में जितनी गहरी होगी, देर से ही सही जनसामान्य की भावनाओं एवं संभावनाओं की अभिव्यक्ति का माध्यम वह बनेगा जरूर। उदयप्रकाश के कवि–हृदय की यह एक बड़ी विशेषता है कि वे सिर्फ आम आदमी के भावनाओं एवं संभावनाओं को समझते ही नहीं अपितु उसे सबलता प्रदान करने के लिए अपनी पूरी जिज्ञासा भी प्रकट करते हैं । वर्तमान समय में लिखी जा रही कविताओं का निहितार्थ भी इसी में है कि वह उनकी जरूरतों को पूरा करे जो उपेक्षित और अपमानित हैं। हालांकि ऐसा करना किसी भी रूप में उस लेखक या कवि के लिए आसान कार्य नहीं है, पर परिस्थितियों से टकराते हुए आगे बढ़ना ऐसे रचनाधर्मी हृदय का स्वभाव भी होता है और सिद्धांत तथा व्यवहार भी। उदयप्रकाश जी को यह समझ गहरे यथार्थ में हुआ है और सबसे बड़ी बात तो ये है कि वे अपने समय के यथार्थ से बहुत गहरे में परिचित हैं। ऐसे यथार्थ से जो पूर्ण रूप से परिवर्तित होकर अपना रूप बदल दिया है, पारंपरिक के आधार पर बहुत कुछ नया पर वही ढर्रेवादी रवैया जिससे निकलने की कोशिश जनसामान्य द्वारा बड़े अरसे से किया जाता रहा है । अपने समय के यथार्थ को अभिव्यक्त करते हुए उदयप्रकाश ने ''ईश्वर की आँख'' में कहा है –''तो ऐसा हो रहा है हमारा यथार्थ । इसमें पुराने सामाजिक संबंधों का अचानक रूपांतरण हो गया है। शोषण और उत्पीडन के जिन वर्गीय प्रारूपों से हम अब तक, इतिहास और आख्यानों द्वारा परिचित थे, उनको नए, अप्रत्यक्ष, अपरिभाषित प्ररूपों ने विस्थापित करना शुरू कर दिया है। इन नए वर्गो और प्ररूपों की उपस्थिति, दखल अन्दाजी, हिंसा और उनका आक्रमण हमारे दैनिक जीवन का हिस्सा बनता जा रहा है ।'' और इसके जो पैरोकार हैं उनकी शिनाख्त करना भी किसी रूप में सहज नहीं है। जो हमारे शुभचिंतक हैं कहीं वही हमारे परेशानी के सबसे बड़ी वजह तो नहीं हैं,यह पहचान भी अब आसन नहीं रहा गया है। जो अच्छे हैं और जो जनसामान्य का, समाज का हित चाहते हैं वे तो गुमनामी का दंश झेल रहे हैं और जो समय समाज के सबसे खतरनाक, अमानवीयता के प्रहरी और दानवता के पोषक हैं....स्वयं को समाज का शुभचिंतक घोषित कर रहे हैं।

''अब तो वह आएगा तो उसे पहचानना भी मुश्किल होगा
हो सकता है, वह कहता हुआ आए कि मैं इस शताब्दी का सबसे ज्यादा छला गया व्यक्ति हूँ
और वह विनोबा भावे और संत तुकाराम के बारे में
बात करे या सफेद सफेद कपडे पहनकर
सफेद सफेद कबूतर उड़ाए या निरशस्त्रीकरण।[7]

निष्कर्ष

यह सत्य है कि कविता यदि राज्यसत्ता, न्यायपालिका

के सम्बन्ध में होगी या रची जाएगी तो फिर उनका क्या होगा जो इनके आवरण में अपने जीवन के अस्तित्व को संजोए बैठे हैं। उदयप्रकाश जी इन स्थितियों से बहुत ही गहरे रूप में जुड़े हुए हैं। समकालीन स्थितियों एवं परिस्थितियों से उपजे तमाम प्रकार के विसंगतियों को उन्होंने सही तरीके से अनुभव किया है। सत्ता एवं शासन के दोहरे रवैये से आम आदमी जिस तरीके से व्यथित एवं कुंठित है, यह उदयप्रकाश जी के नव वामपंथी कविताओं में प्रमुख रूप से व्यंजित हुए है। यही परिदृश्य काफी कुछ हद इनके कहानियों में भी उभरकर सामने आता है। इनके कहानियों के अधिकांश पात्र सत्ता के दोहरे रवैये की वजह से निर्वासितों का सा जीवन व्यतीत करते हैं । वे न्याय पाने की लालसा लिए भटकते मात्र हैं। इस भटकाव में उन्हें शोषण एवं उपेक्षा मात्र मिलता है। यही शोषण एवं उपेक्षा का दिग्दर्शन इनके काव्य का प्रमुख केंद्र है। सच तो यह है कि उदयप्रकाश को समझने के लिए उनके कहानियों एवं कविताओं को एक करके पढ़ा जाना चाहिए। ऐसा करने से समकालीन यथार्थ से व्यथित आम आदमी का दुःख–दर्द स्वयमेव व्यंजित हो उठेगा । अतः यह कहना गलत न होगा कि समकालीन परिवेश विद्यमान जितनी भी संभावनाएं एवं परिस्थितियाँ हैं वह सब उदय प्रकाश के नव वामपंथी कविताओं में अपने यथार्थ रूप में व्यंजित हुआ है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *उदय प्रकाश – ईश्वर की आँख, नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन, संस्करण द्वितीय–2005, पृष्ठ–33*
2. *उदय प्रकाश – कवि ने कहा, नई दिल्ली, किताब घर प्रकाशन, 2008, पृष्ठ–80*
3. *वही, पृष्ठ–24*
4. *वही, पृष्ठ–29*
5. *उदयप्रकाश – ईश्वर की आँख, नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन, संस्करण द्वितीय–2005, पृष्ठ–79*
6. *उदय प्रकाश – कवि ने कहा, नई दिल्ली, किताब घर प्रकाशन, 2008, पृष्ठ 85*
7. *वही, पृष्ठः 36*

ICT for Teaching and Learning in Primary Schools

Dr. Zeba Tabassum
Assistant Professor/Fellow, CECDR, Jamia Millia Islamia, New Delhi

shodhshree@gmail.com

Abstract

This paper discusses the need to incorporate ICT into school curriculum at primary level to maximize educational outcomes. It highlights the potential of ICT in Primary Education, limitations of ICT and associated concerns in Primary Schools and the Roles of Teachers in ICT-enhanced Teaching and Learning in Primary Schools. The paper emphasizes the importance of integrating ICT around and in all aspects of the Primary School Curriculum. ICT in primary education must serve the pedagogical principles of the curriculum such as activity and discovery learning, child centred authentic learning, integrated and environment based learning, developing a child's sense of wonder and curiosity, developing existing knowledge and experience, language being central to the learning process, the development of higher order thinking and problem solving skills, collaborative learning etc. It should not be viewed as a stand-alone subject or topic requiring the development of separate skills needing distinct curriculum time but as a tool and a means for accessing the curriculum and supporting, enriching and extending teaching and learning. ICT in schools must emphasize teaching and learning, not technology skills. The paper discusses the limitations of ICT put forth by various researches for its application. School leaders, teachers and parents need to put into consideration these limitations, while encouraging students to learn with ICT. It also highlights the changing roles of Teachers in ICT-enhanced Teaching and Learning in Primary Schools.

Keywords: *Primary Schools, ICT, Teaching Learning Process.*

Information Technology (IT) to Information and Communication Technology (ICT) due to the convergence of information technology has opened up new challenges for education. ICT, if used properly, has the potential to radically alter the manner in which students learn and teachers teach. Educational system, all around the world is under increasing pressure to use the ICTs to teach students the knowledge and skills they need in the 21st century. The 1998 UNESCO WORLD EDUCATION REPORT, TEACHERS AND TEACHING IN CHANGING WORLD, describes the radical implications ICTs have for conventional teaching and learning.

The potential of ICT in Primary Education

ICT can enhance, enrich and extend the children's learning in primary schools. It can transform teaching and learning when deployed appropriately, substantially changing the traditional classroom where the teacher in general has control of pupils' learning to one where students learn collaboratively and

construct/discover knowledge for themselves. Learning is facilitated by ICT in ways that was not possible in the past.

ICT in primary education must also serve the pedagogical principles of the curriculum such as activity and discovery learning, child centred authentic learning, integrated and environment based learning, developing a child's sense of wonder and curiosity, developing existing knowledge and experience, language being central to the learning process, the development of higher order thinking and problem solving skills, collaborative learning, catering for individual difference and supporting assessment.

ICT must be integrated around and in all aspects of the Primary School Curriculum. It should not be viewed as a stand-alone subject or topic requiring the development of separate skills needing distinct curriculum time but as a tool and a means for accessing the curriculum and supporting, enriching and extending teaching and learning. ICT in schools must emphasize teaching and learning, not technology skills.

All pupils in primary schools should be able to benefit from the integration of ICT in every area of the curriculum. ICT must become an integral part of the teaching and learning process in every school and in every classroom and in every area of the curriculum.

The expectations and requirements of **society and the world of work** are undergoing fundamental transformations, as rightly observed by Trilling and Fadel:

The 21st century has already brought historic changes to the world of work. The Knowledge Age demands a steady supply of well-trained workers – workers using brainpower and digital tools to apply well-honed knowledge skills to their

daily work. Today's knowledge work is done collaboratively in teams, with team members often spread across multiple locations, using a digital zoo of devices and services to coordinate their project work...

B. Trilling and C. Fadel

More and more we are aware of the importance of new skills for the 21st century and new perceptions about literacy – digital and media literacy being its natural components. Society and social relations are becoming more globalized ("global citizenship"), and the growth of concern about ecology and sustainable development (in reaction to human-induced climate change) is another significant factor for social and political change.

There is a growing agreement that these transitions in the social world should be the cause for substantial changes in formal education. Various forms of ICT in education are frequently discussed, observed, studied, called for, or warned against. The potential of ICT to support learning processes of children, students and teachers is being studied. We are slowly growing out of early, sometimes naive conceptions of the role of ICT in education, often promising too much. Instead, a more consolidated view is being adopted: the perception of ICT as a tool for learning, communication and self-expression, productively and carefully integrated into our learning, work and leisure. Every level of education, from early childhood, primary and secondary, to higher and adult – including professional in-service development of teachers, is affected by the above- mentioned transitions. And yet, among all these levels – as proven by several recent research findings – early childhood and primary education are the most formative stages. As noted by J. Heckman (2010): *the early years in the life of a child are sensitive periods for the production of cognitive skills, and the adolescent years are sensitive periods for the production of non- cognitive skills. Later remediation for early disadvantage is costly and often ineffective*.

Leask and Meadows in (2000) studied and summarized the following clusters of reasons why primary schools need to use ICT:

- The communication aspects and the ways

in which a constructivist theory of education can be supported through ICT.

- The skills which children gain by being able to control ICT applications.
- The confidence children gain by communicating through and controlling their environment.
- The needs for communication skills in their future careers, both in school and in the workplace.
- Access to information on the Internet, although this is still a problem, since much of the content is in an adult form.
- The creative power of ICT, especially in the making of web pages, using text and graphics, as well as more advanced facilities.
- Communication technologies, such as audio and video conferencing, enabling children to communicate their ideas across national and local boundaries.

Today, we know that our lives in the 21st century – our playing, learning, developing and living

– are being shaped by many factors, all permeated by digital technologies.

Trilling and Fadel (2009) describe four powerful forces converging and leading us towards new ways of learning for life in the 21st century: **knowledge work, thinking skills, digital lifestyles,** and **learning research**.

ICT may serve various roles in schools for the purpose of enhancing students' learning. Based on how an ICT tool is used in the classroom, Lim and Tay (2003) classified ICT tools into four types:

1. Information tools. These are applications that provide information in various formats (e.g., text, sound, graphics or video). Examples include multimedia encyclopedias or resources available in the World-Wide Web (www).

2. Situating tools. These are systems that situate students in an environment where they may "experience" a context and happenings. Such systems include simulations, games and virtual reality.

3. Construction tools. These are usually tools that can be used for manipulating information, organizing one's ideas or representing one's interpretations. For instance, mind mapping orsocial networking applications that allow students to organize their ideas or reflections, and communicate these ideas and share with others.

4. Communication tools. These are applications that facilitate communication between teacher and students or among students beyond the physical barrier (of space, time or both) of theclassroom. The important examples are e-mail, e-conferencing and e-discussion boards.In addition to these four types of roles, ICT may also serve other roles such as tutorial and diagnostic tools; and in real classroom practices, ICT often serves more than one mediating role simultaneously.

Limitations of ICT and Associated Concerns in Primary Schools

Whilst research has demonstrated the potential of ICT in enhancing teaching and learning, researches have also identified limitations for its application. School leaders, teachers and parents need to put into consideration these limitations, while encouraging students to learn with ICT.

Limitations of computer programs

While many computer programs may be beneficial to literacy learning, some of them may not be as good as they claim to be. School leader and teachers need to be selective about the programs they choose to use. Moreover, computer technology cannot always substitute teachers' support (Fasting and Lyster, 2005). As for the transformative roles computer games might play in teaching and learning, Merchant (2010) urges us to pay attention to the broader social contexts in which computer games operate. Another important point is that the time commitment in using one software program does not necessarily lead to increased academic

performance whether the programme is initially beneficial or not (Campuzano et al., 2009). Therefore, practitioners should be clear about the possible benefits and side effects of each program before adopting it into the school.

Limitations of the Internet

While the Internet is often used for literacy learning, there is right and wrong information on the Internet. While blogs may help students' literacy learning, it may not be the best tool for aspects such as grammatical control while writing (Bloch, 2007). As for reading, allowing students to search for additional lexical and contextual information related to the content may not significantly increase their reading comprehension (Sakar and Ercetin, 2005). Students may overlook the most important information when there is a lot of other distracting information on the computer screen (Lowe et al., 2010). Students' lack of existing knowledge and skills about computers and the Internet, or lack of access to computers and the Internet outside school, may create barriers for some children to use ICT for learning. Thus a balance between traditional teaching and learning with ICT is desirable. Practitioners need to ensure that they supervise students during most in-class activities using the Internet, and they must give sufficient instruction abouthow to use the Internet for the purposes of learning.

Limitations of multimedia

Multimedia are not necessarily beneficial if they are not properly used or designed. For example, too many attractive "options" on a multimedia text can divert children's attention from its content. Practitioners need to cultivate the **media literacy of students**, so that they can interpret and better use multimedia for learning objectives.

Limitations of ICT caused by time and psychological factors

Psychological factors, such as enthusiasm, can also lead to negative results with the use of ICT in literacy learning. As Merchant (2010) found, students may be unwilling to transfer what theyacquire in the virtual world into the real world, and conventional literacy. On the other hand, Chang et al. (2010) noted that sometimes students might prefer interacting with physically real teaching materials rather than virtual materials. Practitioners need to pay close attention to students' responses to the use of ICT in teaching, and to try switching to traditional teaching if deteriorating learning performance occurs.

Concerns about cyber bullying and cyber-wellness

Safety issues associated with using mobile phones and the Internet have long been the concern of schools parents, such as game addiction, invasion of privacy, bad language use, and danger of online socialisation. "Cyber bullying" as a new form of bullying using new technologies including e-mail, text, chat rooms, mobile phones, cameras and websites has emerged and is a growing problem for children in school (Campbell, 2005). "Cyber-wellness" is a more recently used term which encompasses not only concerns around safety and security online, but also considers young people's psychological and emotional well being (Cyberspace Research Unit, 2006).

Schools in many countries have started efforts to promote students' cyber-wellness. For example, the Ministry of Education (MOE) of Singapore has launched various prevention and intervention programs including training teachers, training student ambassadors, and involving parents (MOE, 2011).

While exploring the increasing use of ICT for teaching and learning in the primary setting, the various limitations and associated concerns must be fully addressed by school leaders, teachers and parents to ensure that the greatest advantages of ICT are realized for learning purposes.

The Roles of Teachers in ICT-enhanced Teaching and Learning in Primary Schools

It is clear that introducing a new technology into any learning situation requires a great deal of thought and planning, and a good deal of developmental testing. This process requires multidisciplinary approaches involving teachers, researchers, technologists, developers and students (Hartley, 2007). Teachers play a pivotal role in creating ICT enhanced learning environments (Lim, 2007). The teacher's tasks include evaluating ICT tools, assessing ICT competencies of students, setting clear expectations, negotiating objectives with students, preparing student for lessons by adopting various scaffolding strategies, and so on (Lim, 2007). In this section we will outline some key roles teachers are expected to play in supporting ICT- enhanced learning.

Teachers must be learners who keep on developing and enhancing their own ICT capacity, in order to guide their students.

Teaching with ICT in primary education requires teachers to act as if they were learners themselves in the computer-enhanced environment (Hardy and Kirkwood, 1994).

The Internet is one major aspect of ICT, but the Internet is fraught with misleading and inappropriate information that may harm young primary students. According to Anastasiades and Vitalaki (2011), teachers who are competent and professional in ICT tend to have high sensitivity and be effective in providing pedagogical guidance, promoting Internet safety, teaching students moral behaviours when navigating the Internet for educational, recreational, and interpersonal purposes. In addition, if teachers are concerned about management of websites and possible risks on the Internet, they will be better skilled in engaging students in meaningful online interaction and be more comfortable to use the Internet as a teaching tool. Therefore, teachers play the role of considering all the information available about the dangers related toInternet use, and what is effective training to protect students, and thus guide their students on the issue of Internet safety.

Provide scaffolding activities for students and intervene into their learning.

As primary students are limited in their capacity for self-directed learning, the value of ICT is to a large extent dependent on teachers' strategies. Hudson's (1997) study, conducted in a relatively early stage of ICT implementation, found that teachers are important for fostering peer interaction among students in multimedia-based activities. Teachers play the cyclical role of observation, reflection, recording, discussion and feedback. Teachers not only monitor the interaction ingroup learning, but also use direct intervention (e.g., asking questions to stimulate discussion) to facilitate students' thinking, understanding, and then learning on the subject.

Therefore, teachers play the role of 1) directly or indirectly leading students through their learning activities, and 2) intervening into students' learning activities where necessary so as to enhancing learning performance and achievement.

Support computer-supported collaboration among students.

Urhahne, Schanze, Bell, Mansfield and Holmes (2010) propose five principles to guide teachers in facilitating computer-supported collaborative inquiry learning: 1) envision the lesson by creating an image of the lesson, and planning and organizing student tasks; 2) enable collaboration by arranging small groups or pairs so that one can learn from the other; 3) encourage students by supporting learners and providing guidance during knowledge acquisition;

4) ensure learning by monitoring learning processes and checking learning outcomes; and 5) evaluate achievement by choosing suitable means to assess processes and products of learning. ***Facilitate human interactions in ICT-enhanced learning activities.***

Postholm (2006) suggests that teachers act as advisers in the ICT classroom through dialogues with students. ICT can mediate interaction between teachers and students to facilitate learning, but in the end teachers are crucial to make such interaction happen through guidance (Uibu and Kikas, 2008). Human interaction cannot be replaced by ICT and teachers play a key role in supporting interactions between and among students, in any ICT-enhanced learning environment. ***Provide psychological supports to students.***

Hardy and Kirkwood (1994) propose a number of roles for teachers when using ICT in tertiary education, some of which are also applicable to primary education: 1) develop the trust of students by affirming and supporting them to deal with their expressed doubts and insecurities when using ICT to learn, 2) enhance students' confidence by affirming students' ICT competence and valuing their acquired knowledge, 3) allow students to control their learning by letting them have significant control over the direction and pace on their own learning path, and

4) encourage reflection and sharing among students for tuning their critical thinking towards their own practices and justifying their perspectives.

Become an expert of study materials in class.

The introduction of ICT leads to a phenomenon that textbooks are less used in teaching than they used to be. Being less limited by such generalized teaching materials, teachers must deal with individualizing the learning process, taking each student's interests and abilities more into consideration (Uibu and Kikas, 2008). At the same time students rely more on teachers' instruction in the use of ICT. Teachers then become experts of study materials and function as the "gateway" to information sources found using ICT (Williams et al., 2000). There can be a challenge for teachers because, without being able to refer to textbooks, teachers may be expected to present knowledge of subjects accurately and effectively. This role as experts (atleast in students' eyes) takes extra time to fulfill because teachers need extra analytical and synthesizing abilities.

The above is by no means a complete account of the roles teachers may play in ICT-enhanced learning environments and use of ICT in teaching and learning also leads to changes in the roles of teachers in ICT based teaching. For example, as Watts and Lloyd (2004) note, use of ICT may increase student autonomy in learning, and at the same time decrease teacher's control and authority. Therefore, teachers will need to develop new strategies to monitor students' learning activities to make sure that learning objectives are met.

Concluding remarks

In today's world, it is unthinkable to separate technology from classroom teaching. Although technology is not the magic wand to fix all problems, but it does allow for more flexibility of the learning process, more engaged classroom and improved student learning. It is undeniable that teachers who are integrating ICT into curriculum have a fascinating future ahead as ICT takes them forward into 21st century. They are switching from the all knowing guru to the role of collaborator and facilitator and whose responsibility is to provide the parameters, feedback and reflections their students need to be successful.

ICT and its visual/simulational ability do offer a tremendous opportunity for empowerment in primary education, but we need to see students as constructors of knowledge and technology, and not merely consumers of the potential offered by technology. Technology can play a significant role in *engaging* students in learning, and this needs to be understood and used carefully. Understanding of technology and a healthy attitude to technology are a fundamental aspect of modern life, and our education system needs to respond significantly in this regard.

If used appropriately and supported properly within the school by a technician, ICT can

dramatically improve achievement levels, inspire creative thinking and encourage the development of skills that will prove invaluable in the real world. We live in an age of computers, so the sooner pupils become au fait with technology, the better. While researching and resourcing technology products and equipment can prove time-consuming, it is worth the effort. ICT can save teacher's time and inspire pupils to learn, so let's get tapping those keypads, pointing those cameras and have some fun

References

1. *ICT in Primary Education, Analytical survey Volume 1 Exploring the origins, settings and initiatives, UNESCO 2012*
2. *The use of ICT in Primary Schools, Submission to the Oireachtas Committee on Education and Social Protection on behalf of the INTO, 6 May 2015*
3. *Voices of Teachers and Teacher Educators, February 2018 ,Volume VI Issue II*
4. *Rebecca Jenkin: How ICT resources can support learning at primary level, Jul-10*
5. *NCERT (2005). National Curriculum Framework-2005. New Delhi*
6. *Voices of Teachers and Teacher Educators August 2017 Volume VI Issue I*

Impact of Employee Engagement Practices on Satisfaction Level of Employee at 321 Foundation

Honey Goyal
Research Scholar, The IIS University, Jaipur

Dr. Sandeep Vyas
Senior Assistant Professor, IIIM, Jaipur

Dr. Bharti Sharma
Associate Professor, IIIM, Jaipur

shodhshree@gmail.com

Abstract

In recent years, the business environment has evolved, become dynamic and is moving faster than it has ever before. The role of leaders and managers hold a paramount importance in inspiring and motivating the staff to perform at their best, engaging them and making them feel valued by taking their suggestions and inputs when important organization's decisions are made. There is no denying the fact that employees are organization's most important asset but it is only true when employees feel content and aligned in their work. The paper seeks to explore the employee engagement practices adopted by the 321 foundation for its employees. It further assess the effect of employee engagement practices on satisfaction level of employees. A sample of 49 employees of 321 foundation were taken using simple random sampling. The research methodology which is applied during the research is descriptive in nature. The questionnaire used in this study is adapted from Gallup's Q 12 model. The secondary data used in this study is collected through reviewing existing research papers published in national and international journals, books and online articles. For data analysis, correlation and regression tools are used.

Keyword: *Employee Engagement, Employee Satisfaction, Career Development, Non Profit Organization.*

Employee engagement is a behavioral approach practiced by people at work. Their level of engagement can be traced through their degree of involvement in performing task, attitude and perception of people towards organization's goals and objectives, willingness to give their best each time when opportunity strikes and the extent of belonging one feels towards organization . Engaged employee is almost three times more sincere towards his job in comparison to employees who are actively disengaged (Kular, Gatenby, Rees, Soane & Truss 2008).

The propensity of organization's success can be determined by employee engagement parameter. By meeting targets on time with much proficiency in performance it enables an organization to gain competitive edge against its competitors. Happiness quotient of employees depend on the mutual trust, commitment and support provided by the organization. Dedicated and empowered staff always outperform to their potential and stand as organization's ambassador. Low turnover rates, employee productivity, organization growth and profitability are good predictor/indicator of employee's engagement level.

Engaged employees make additional effort, keen to learn new things and are more creative in their

approach. They are people who are always ready to put in their maximum effort and may go out of the way to complete a piece of work. Employees being a champion/advocate of organization takes pride in associating with an organization and holds loyalty and trust in high regard. Furthermore, good clientele base and satisfied customers signals the growth of business and indicates the dedication level of employees in the long run.

Organization's values, ethics and beliefs plays a prominent role in deriving equation between an employee and the employer. Management that make employees valued by recognizing their efforts, providing regular feedback on performance, supportive in identifying career opportunities by developing new skills set, empowers them with right balance of authority and responsibility together with mutual trust and respect always creates dedicated and committed staff who are always at par with their efforts thus lowering the recruitment cost of organization.

Employee engagement is not a one-time process but rather it involves continuous and conscious efforts from organization's management side. Entities that strives to align individual goals with organization's mission and vision in the long run and provides employees with right amount of knowledge and tools together with positive mindset at all times instills and motivates them to perform at their best. Quality and frequency of interaction between employee and employer about job roles, job expectations, programme follow up , involving members to offer ideas that can be considered when decisions are made are also one of the determining factor that ensures the motivation level of employees towards the organization. It is a proven fact that people like to devote their time and energy where they feel valued and respected and want to associate with organization that treats them as an integral part of team.

Literature Review

Preeti Thakur in her research paper titled "Effect of Employee Engagement on Job Satisfaction in IT Sector" examinesand finds out the link between employee engagement and job satisfaction of employees. A sample of 120 employees working at middle and lower level were taken. For determining the relationship , correlation analysis and regression analysis was used. It was concluded that degree of engagement level of employees has a favourable impact on the satisfaction of employees and for improving the work morale of employees working at different levels, expanding the horizon of job authority of middle level manager with greater accountability and providing sanctions and non monetary rewards to lower level boosts the work motivation of employees.

Dr. Pratima Sarangi and Dr. Bhagirathi Nayak (2016) in their research paper titled "Employee Engagement and its impact on Organizational success - A study in Manufacturing company, India" attempts to analyze the relevance of dedicated employees with the progress and development of organization and interpret the factors contributing towards productivity and its success. The sample size of 200 employees of manufacturing unit were taken. The study uses 6 C's defined by Gambler (2007). It was concluded that right combination of six practices viz., clarity, credibility, connect, confidence, clarity and career can have a positive influence on the growth and development of organization.

Christine Nyawira Theuri (2017) in her research paper titled "Effect of employee engagement on employee retention within an organization (A case study of Peach Consulting Limited) " examines the degree of impression of employee's engagement have on employee intention to stay.The study also explores the effect of antecedents of employee engagement on employee retention. A sample of 45 employee working in Peach Consulting limited were taken. In order to identify relationship between both variables, correlation analysis was used. It was concluded that cognitive, affective and behavioral engagements and antecedents have a optimistic and significant influence on employee

intention to stay. Providing organization culture that put emphasis on staff engagement, collective decision-making and regular efforts by senior staff to providing solutions to job related problems constructs a positive attitude of people towards organization leads to retention of employees.

K. Anatha Gowda and Siddegowda Y. S. (2018) in their research paper titled " A study on the challenges of employee engagement in the manufacturing industries in Mysore and Bangalore cities of Karnataka" confers to examine the challenges organizations faced with respect to employee engagement and the factors influencing disengagement. The target population covers two manufacturing unit of Mysore and three units of Bangalore. A sample of 60 employees from five manufacturing industries were taken. It was observed that dynamic situation of market, specialized skill set of employees, economic needs, competitive work environment and growth needs of employees are some of the challenges faced by the organization in order to keep employees engaged.

Swathi. S in her research paper titled " Effecting Employee Engagement Factors" attempts to determine the factors that influence employee engagement. The study is conceptual in nature and is based on extensive literature review onengagement level of employees. The present study states that career advancement opportunities, employee's clarity of job expectations, regular interaction by HR with team members , health and safety and family friendliness are some of the major factors that influence individual's motivation and commitment towards job and do have a determinant affect on organization's productivity and growth.

A. Marcus and Namitha M. Gopinath (2017) in their research paper titled "Impact Of The Demographic Variables On The Employee Engagement - An Analysis" examined the effect of variables viz. gender, education and age on employee's perception towards engagement practices in IT companies of south Chennai. A sample of 600 employees from 33 IT companies were taken. It was observed that majority of employees are from the age group 25-30 and it was found that the age of respondents plays a prominent role while gender doesn't play any role in impacting employee engagement activities in IT companies of South Chennai.

Neeta Bhatia (2011) in her research paper titled "To study the employee engagement practices and its effect on employee performance with special reference to ICICI and HDFC bank in Lucknow" discusses the employee engagement training practices used in private banks. It also examines other features of employee engagement like factors influencing employee engagement, goodness of employee engagement and key indicators of dedicated workforce. It was observed that career development programs that opens doors for employees to unlearn old skills and develop skills that equip them to develop for new horizon is one of the most prominent aspect in determining employee engagement level. Also practices like foreign trips to managers, yearly off-site for all groups national and internationally, holiday homes, photography competition, occasional cricket matches are offered by organization for improving the engagement level of employees.

Objectives of the study

- To study the employee engagement practices adoptedat 321 foundation.
- To explore the effect of employee engagement practices on satisfaction level of employees at 321 foundation.

Research Methodology

- **Sample Area**

The research methodology applied in this study is descriptive in nature. The population for this study are employees of 321 foundation. A sample of 49 employees were taken. The employees were chosen randomly through simple random sampling.

- **Data collection method**

The questionnaire used in this study is adapted

from Gallup's Q 12 model. The second section comprises of statements on employee satisfaction. The secondary data used in this study is collected through reviewing existing research papers published in national and international journals, books and online articles.

- **Statistical Tool for analysis**

The data which was collected with the help of distributed questionnaire was analyzed through Pearson Correlation and Regression analysis in SPSS software.

Hypothesis of the study

H_0: There is no significant impact of employee engagement practices on satisfaction level of employees at 321 foundation.

H_1: There is a significant impact of employee engagement practices on satisfaction level of employees at 321 foundation.

Data Analysis and Interpretation

Pearson's Correlation

Correlations			
		Employee Engagement	Satisfaction
Employee Engagement	Pearson Correlation	1	.807**
	Sig. (2-tailed)		.000
	N	49	49
Satisfaction	Pearson Correlation	.807**	1
	Sig. (2-tailed)	.000	
	N	49	49
**. Correlation is significant at the 0.01 level (2-tailed).			

The above table represents sufficiently high degree of positive correlation (i.e **.807**) between the two variables viz., employee engagement practices and satisfaction level of employees working at 321 foundation. The level of significance is high as the value is .000 which is less than .05. Correlation is significant at the .01 level (2-tailed).

Therefore, the alternate hypothesis is accepted and null hypothesis is rejected i.e there is a significant and positive impact of employee engagement practices on satisfaction level of employees.

Regression

Model Summary				
Model	R	R Square	Adjusted R Square	Std. Error of the Estimate
1	.807[a]	.652	.644	.27812
a. Predictors: (Constant), EmployeeEngagement				

The value of R is .807 which explains direct proportional relationship between two variables i.e as employee engagement increases, employee satisfaction also increases.

As per the above table, the R square value is .652 which explains that 65.2% of the variance in the employee satisfaction is explained by the employee engagement.

ANOVA

ANOVA[a]						
Model		Sum of Squares	df	Mean Square	F	Sig.
1	Regression	6.808	1	6.808	88.018	.000[b]
	Residual	3.636	47	.077		
	Total	10.444	48			
a. Dependent Variable: EmployeeSatisfaction						
b. Predictors: (Constant), EmployeeEngagement						

As per the ANOVA table analysis, the significance of F is .000 which states 0% probability of regression output to be obtained by chance.

Coefficient

Coefficients[a]						
		Unstandardized Coefficients		Standardized Coefficients		
Model		B	Std. Error	Beta	t	Sig.
1	(Constant)	.913	.367		2.486	.017
	EmployeeEngagement	.811	.086	.807	9.382	.000
a. Dependent Variable: EmployeeSatisfaction						

Findings

The results of the study states that conscious attempts led by organization through employee engagement practices have a determinant impact on the satisfaction level of employees.The average mean score **4.1** was observed on the statement "At work, I have the opportunity to do what I do best every day". 61% of respondents strongly agreed on the statement that "The mission and purpose of the company makes me feel my job is important".53% of employees agreed on the statement that they are satisfied with the role. 51% of respondents were satisfied with 321's culture. The average mean score of **4.3** was observed on the statement "At work, my opinion seem to count". 41% were strongly agree and 47% were agreed on the statement "There is someone at work who encourages my development".

Conclusion

Through this study, it was observed that employee engagement practices like providing an atmosphere to grow and learn , giving opportunity to develop new skills, striving to have an empathetic attitude towards other etc. adopted by 321 foundation have a positive impact on the satisfaction level of employees. Employees feel content and satisfied in

performing their job role and duties. Also, when organization instills such practices in their day-to-day activities than people take pride and are motivated in associating themselves with such entities and this leads to effective retaining of employees in the long run.

Suggestion for Future Research

The scope of this study is limited to employees working in one non-profit organization. Other public and private sectors can be explored for the application of employee engagement practices and its influence on satisfaction level of employees.

References

1. *Bhatia Neeta (2011) "To study the employee engagement practices and its effect on employee performance with special reference to ICICI and HDFC bank in Lucknow" International Journal of Scientific and Engineering Research,* ***Volume 2 Issue 8****, pp 1-7*
2. *Gowda Anantha K. and Siddegowda Y. S. (2018) "A study on the challenges of employee engagement in the manufacturing industries in Mysore and Bangalore cities of Karnataka" International Journal of Innovative Technology and Exploring Engineering,* ***Volume 7 Issue 6****,pp 19-22*
3. *Marcus A.and Namitha M. Gopinath (2017) "Impact Of The Demographic Variables On The Employee Engagement - An Analysis" ICTACT Journal on Management Studies****Volume 3 Issue 2****, pp 502-510*
4. *Sarangi, Pratima and Bhagirathi Nayak (2016). "Employee Engagement and its impact on Organizational success - A study in Manufacturing company, India" IOSR Journal of Business and Management,* ***Volume 18 Issue 4****, pp 52-57.*
5. *Swathi S. (2013), "Effecting Employee Engagement Factors" International Journal of Scientific and Research Publications****, Volume 3 Issue 8****,pp 1-3*
6. *Thakur, Preeti (2014).* ***"****Effect of Employee Engagement on Job Satisfaction in IT Sector" Journal of Business Management & Social Sciences Research,* ***Volume 3 No. 5,*** *pp 31-39.*

Swadeshi Movement in Rajasthan During British Period

Dr. Peeyush Bhadviya
Assistant Professor, Mohanlal Sukhadia University, Udaipur

shodhshree@gmail.com

Abstract

This research article brings into light the spread of the Swadeshi movement in Rajasthan. Swadeshi movement started in 1905 C.E. in Bengal to annual the decision of partition of Bengal. From the traditional method of 3p's that is petition, prayer and public meetings, the national movement and Indian National Congress underwent a change. The boycott of foreign goods and the use of swadeshi goods was the paramount activity of Swadeshi movement. The movement was initially limited to the Bengal area, but later on spread to other parts of India. In Rajasthan, the first signs of Swadeshi movement appeared through speeches of Dayanand Saraswati. Later in South Rajasthan, Swami Govind Giri through Samp Sabha popularized the use of Swadeshi and it was one of the ten vows which every disciple of him had to take. Rambilas Sarda and Damodar Das Rathi also worked vehemently for spreading message of Swadeshi. However due to heavy repressive policy of British, Swadeshi movement died an early death.

Keywords: *Swadeshi, Boycott, Paramount, Samp Sabha, Popularized, Repressive.*

There were three phases of the Swadeshi movement in India during the British period before independence. First phase from 1850 C.E. to 1904 C.E., developed by leaders like Dada Bhai Naoroji, Gopal Krishna Gokhle, Mahadev Govind Ranade, Bal Gangadhar Tilak, Ganesh Vasudev Joshi and Hindu religious leader Swami Dayanand Saraswati; second phase from 1905 C.E. to 1917 C.E., which began with and because of the partition of Bengal in 1905 C.E. by Lord Curzon; third phase from 1918 C.E. to 1947 C.E., in which swadeshi thought was shaped by Mahatma Gandhi, accompanied by the rise of Indian industrialists.

Swadeshi movement rediscovered the value of indigenous tradition which included a large variety of concepts. Moderates interpreted boycott in the limited sense of boycotting British goods while the extremist version of the boycott extended it further into a kind of non-cooperation with imperial administrative institutions.[1]

In Rajasthan there were all the three phases of Swadeshi movement. In this, article first two phases are discussed. The Rajasthan tour of Swami Dayanand Saraswati initiated the first phase of Swadeshi movement and the second phase was led by Guru Govind Giri through Samp Sabha, Sarda family of Ajmer and Damodar Das Rathi, the industrialist and revolutionary.

Swami Dayanand Saraswati visited Rajasthan in 1878 C.E. and again during 1881-83C.E., and gave speeches on social reforms, religious revival, swadeshi and nationalism.[2] Swami Dayanand Saraswati

mainly emphasized upon four factors, viz., *Swadharma, Swarajya, Swadeshi and Swabhasa*. He emphasized that a nation cannot make progress unless it follows its own language, religion and is ruled by its own Government.[3]

He denounced the salt tax even in 1875 C.E. which was opposed by Mahatma Gandhi in 1930 C.E. He stressed that a foreign Government, whatever be its merits, cannot make the people happy.[4]

Swami Dayanand Saraswati was perhaps the first prominent leader who supported the cause of swadeshi clothes. He advised Maharaja Jaswant Singh of Jodhpur to discard foreign clothes and wear swadeshi clothes. Accordingly, the Maharaja of Jodhpur accepted his advice. As Har Bilas Sarda observes. *"Everyone in the service of the state, from Maharaja down to peons, and the elite of Jodhpur state, adopted the Khadi produced in Marwar".* Thus, long before the cult of swadeshi spread through Bengal, Marwar had appeared clothed in Khadi.[5]

Swami Dayanand Saraswati also emphasized over the adoption of Hindi as the national language. To Swamiji's mind, no reform was possible without having one religion and one language.[6] He also encouraged the people to support the cause of Hindi before Mr. Hunter, the Chairman of Education Commission, appointed by the Government of India.[7]

The second phase of the Swadeshi movement started in 1905 C.E. in Bengal to annual the decision of partition of Bengal. From the traditional method of 3p's that is petition, prayer and public meetings, the national movement and Indian National Congress underwent a change. The boycott of foreign goods and use of swadeshi goods was the paramount activity of Swadeshi movement. The movement was initially limited to Bengal area but later on spread to other parts of India.[8]

In Rajasthan, the first signs of the Swadeshi movement appeared in Banswara, Sirohi, Dungarpur and Mewar where the tribal had organised themselves under the leadership of Guru Govind Giri for representing their grievances before the local rulers and the British Government. By Samp Sabha, formed in 1883 C.E., Govind Guru propagated his views among the Bhils. Among them use of swadeshi was paramount. Use of swadeshi was one of the ten vows which every disciple of Govind Guru had to take. Under the leadership of Govind Giri people boycotted the foreign goods and used swadeshi goods only. Govind Giri asked the people to give up the use of intoxicating drugs also.[9] The Samp Sabha urged the growth of indigenous crafts and industries, boycott of foreign goods, local level administrative reforms and the revival of the Panchayat system of local decision making and governance in the Bhil areas.[10]

As Samp Sabha started to assume the political character British Government got alarmed. Accordingly, by an order of the British Government the Samp Sabha was disbanded in 1908 C.E. and the rulers were asked to check the Swadeshi movement as the British Government regarded it as an act of sedition.[11] As the movement challenged the powers of the feudal jagirdars and rulers, the affected states took a stand against the Samp Sabha. The organisation was not fully stamped out through and continued to be active till 1913, when it was suppressed by joint British and states forces action, as they put down an attempt at forming a Bhil Raj.[12]

In Ajmer Rambilas Sarda was a great patron of swadeshi and used swadeshi goods as far as possible for his family. He said that after his death, his body should be wrapped in Khadi and *dushala* should not be put on it. His son Chand Karan Sarda worked for promotion of Hindi through Nagari Pracharini Sabha.[13]

In Beawar area torch of swadeshi was lightened by Damodar Das Rathi, an industrialist turned into revolutionary after coming into contact with Shyamji Krishna Varma. After the inspiration from Aurobindo Ghosh, Damodar Das Rathi worked for the swadeshi concept. Damodar Das Rathi firmly believed in the use of swadeshi goods and he himself always dressed in that style. He emphasized regularly on the self-reliance of the nation and wanted that all the

required needs of the nation be satisfied domestically. In this aspect he worked energetically for promoting swadeshi goods and also through manufacturing cotton clothes in his Krishna Mill at Beawar.

Wherever he went in Rajasthan and outside Rajasthan, he tried to establish school libraries, gurukuls and organize various seminars. He also contributed to already established schools, the Sanatan Dharma School and college at Beawar. Navbharat School of Marwari and Shiksha Mandal, Wardha, has existence till today.

Damodar Das Rathi always encouraged non-resident Rajasthani people. He contacted with the Rajasthani living in different parts of the nation and promulgated them to work for the nation. It was due to his efforts that Rajasthani's have opened many schools, colleges, hospitals, libraries, hostels, girls' schools and colleges throughout India. He requested Rajasthanis to preserve the rich culture of Rajasthan, in the area wherever they live.[14]

Damodar Das Rathi was the first to recognize that industry would affect a revolution in the society of Rajputana and its real rulers would be scientists and industrialists not princes and nobles. He was a practical businessman, philanthropist and a reformer. His heart was touched by poverty, squalor and drunkenness among the poor. Through Krishna Mill he provided employment to the needy and financing those who were keen to serve the society.[15]

Damodar Das Rathi was also supporter of Hindi. In 1914 he decided to do all his work in Hindi. He established Nagari Pracharini Sabha in Beawar and waged a struggle for the cause of using Nagari script and Hindi language.[16]

The newspapers like Rajasthan Sandesh, Navin Rajasthan, Tyag Bhoomi and others published from Ajmer educated the masses on swadeshi issue and kept well informed about the programmes on swadeshi.[17]

Thus, we see that the efforts of Swami Dayanand Saraswati, Guru Govind Giri, Sarda family of Ajmer and Damodar Das Rathi, promulgated the Swadeshi movement in Rajasthan, irrespective of the heavy repressive policy of the British. The concept of swadeshi affected Rajasthan in many dimensions and gave thrust to the freedom struggle of India.

References

1. *<http://en.m.wikipedia.org>wiki>swadeshi movement> dated 15-10-2020, 11 A.M.*
2. *Rai, Lala Lajpat 2005. Yug Pravartak Swami Dayanand, Vijay Kumar Govind Ram Hasanand Publication, New Delhi, pp. 182, 202, 205, 206.*
3. *Saraswati, Dayanand 2010. Satyartha Prakash,Shrimad Dayanand Satyartha Nyas, Udaipur, Chapter-4, pp.78, 123.*
4. *Sarda, Har Bilas 1968. Life of Dayanand Saraswati, Paropkarini Sabha, Ajmer, p.107.*
5. *Ibid, pp. 235, 282.*
6. *Speeches of Dayanand Saraswat, 2001. Arya Prakashan, Delhi, p.7.*
7. *Mukhoupadhyaya, D.N. 1971. Life of Dayanand Saraswati, Part-2, Calcutta, p.17.*
8. *<http://en.m.wikipedia.org>wiki>swadeshi movement> dated 15-10-2020, 11 A.M.*
9. *Gehlot, J.S. 1937. Rajasthan ka Itihas, Vol.-III, Hindi Sahitya Mandir, Jodhpur, p. 92.*
10. *Pande, Ram 1988. Peoples Movement in Rajasthan, Vol-III, Shodhak, Jaipur.*
11. *Gehlot, J.S. 1937. Rajasthan ka Itihas, Vol.-III, Hindi Sahitya Mandir, Jodhpur, p. 92.*
12. *Pande, Ram 1988. Peoples Movement in Rajasthan, Vol-III, Shodhak, Jaipur.*
13. *Vyas, Indira 2004. Freedom Movement in Rajasthan,University Book House Pvt.Ltd., Jaipur, pp.38-39*
14. *Joshi, Sumnesh 1972. Rajasthan Me Swatantrata Sangram ke Senani, Granthagar Publication, Jaipur, pp. 33-34.*
15. *Sharma, G.N. and Vashishtha V.K. 1993. Political Awakening and Indian Freedom Movement (with special reference to Rajasthan), Centre for Rajasthan Studies, Jaipur, p. 100.*
16. *Joshi, Sumnesh 1972. Rajasthan Me Swatantrata Sangram ke Senani, Granthagar Publication, Jaipur, p. 35*
17. *Vyas, Indira 2004. Freedom Movement in Rajasthan, University Book House Pvt. Ltd., Jaipur, p.38*

Disease and Disability in Samuel Beckett's Endgame

Deepika Tiwari
Research Scholar, Patna University, Patna (Bihar)

shodhshree@gmail.com

Abstract

Diseases, epidemics and pandemics has always been the part of human existence on this earth and undoubtedly the most powerful force to create and end a human history. But disease has always been perceived as a metaphor for social disorder, evil, sins of the past birth, vulgar and ugly. Twentieth century drama, The Theatre of the Absurd was majorly the outcome of two most destructive wars, World War I and II, liberalism and epidemics. But the representation of disease and disability is devoid of its realism in such dramas. It gets veiled with the idea of existentialism. Hence, in this paper my attempt is to understand Samuel Beckett's drama Endgame as a drama representing disease and disability. To see illness as an illness and disability as a disability.

Keywords*: Disease, Disability, Epidemics, Endgame.*

Disease and Disability becomes a political metaphor when it is looked at as horror and disgusting. And then the definition of a disease becomes loaded with moralistic lessons and something that needs to be corrected because it is bad for the society. If a disease's etiology remains undiscovered, it becomes a stigma. syphilis, tuberculosis, cancer and so on are few of the examples which are directly linked to evil. Epidemics are considered to be agents of social disorder. 'Pestilence' is a Latin word for plague and according to the Oxford English Dictionary, the figurative meaning of pestilence is "injurious to religion, morals, or public peace" and "pestilential" meaning "morally baneful or pernicious". Hence, all the evils are directly projected to diseases and disease, pregnant with meanings are projected onto the society. Where, the reality of disease, disability or pain becomes veiled with meanings and its real existence becomes insignificant. In, this paper my attempt is to analyse Samuel Beckett's play; Endgame as a drama of disease and disability. To see things as it is.

In medical science, there have been many attempts to define disease, "Webster defines disease as "a condition in which body health is impaired, a departure from a state of health, an alteration of the human body interrupting the performances of vital functions" The Oxford English Dictionary defines disease as "a condition of the body or some part or organ of the body in which its functions are disrupted or deranged". From an ecological point of view, disease is defined as "a maladjustment of human the human organism to the environment." From a sociological point of view, disease is considered a social phenomenon, occurring in all societies and defined and fought in terms of the particular cultural forces prevalent in the society. The simplest definition is, of course, that disease is just the opposite of health –

i.e., any deviation from normal functioning or state of complete mental well-being – since health and disease are mutually exclusive." (Park 37)

In Christianity, disease and suffering was considered to be one of the evils, resultant of the first sin committed by Adam and Eve. Disease came as a result to the disobedience to God hence, pain and suffering inflicted on the body of a person was considered to be in relation with the sin committed by a person. According to, New Testament there is relation between sickness and the person's relation with God. "A person can reflect on the meaning of his illness by seeking to find out what God wants to tell him through what is afflicting him." (Beck 68) Church considered lepers to be the sinners. This infliction was considered to be the manifestation of both the anger and grace of God. " "My friend", says the ritual of the church of Vienne, "it pleaseth Our Lord that thou shouldst be infected with this malady, and thou hast great grace at hands of Our Lord that he desireth to punish thee for thy iniquities in this world." (Foucault 4)

Religious interpretation of disease and sickness has played a very important role in misrepresenting the reality of disease. Book of Job in the Bible, narrates the story of Job who is inflicted by painful wounds, diseases and leprosy, as a scheme of God's justice in the light of humanity's painful suffering.

The Theatre of Absurd, was a form of drama which came in 1950's after two most destructive wars took place in the history of humankind. These plays were called as "dramatic expression to the philosophical notion of the "absurd". (Batra 9) Apart from the mental trauma and sense of meaninglessness and existentialism that the wars brought. Another major ailment resultant of wars was epidemics and diseases. Tuberculosis, smallpox, influenza and Plague took a huge toll on human population. Likewise, many other forms of disabilities that Wars were responsible for.

Samuel Beckett, in his lifetime suffered from various chronic ailments like cyst, abscesses, arrhythmic heartbeat, hence it's no surprise his plays, veils with metaphors of diseases. His biographer, Deidre Bair in *Samuel Beckett: A Biography* says, "at one- point Beckett insisted that all of life was a disease, with babyhood its beginning. Man, to him was the prime example of the mortally ill, for man began as a helpless infant, unable to attend to himself, and most of the time ended in the same manner. In man's beginning and end there was immobility, and each man was thus at the mercy of all others" (Sarkar 45)

Samuel Beckett's play *Endgame* truly presents the experience of pandemics and disability. The story represents an apocalyptic world post world wars, where the world has come to an end. No one has survived on this earth except the four characters of the play, Hamm, Clov, Nagg and Nell. There is no animals, vegetation, foods or medicine left. There is only decay, destruction and a sense of strong fear among these four characters. The whole action takes place in a single room attached with a kitchen. The situation is very relevant to the covid era, "Outside of here it's death!" (faber 95). Similar to what Hamm has told to Clov.

The play stages the disabled life of two pairs of characters, Hamm and Clov on one side and Nagg and Nell on the other. Hamm is immobile, blind and through the course of the play, he keeps asking Clov for his painkillers 'Is it time for my painkillers?' referring to his physical pains. Hamm, is completely dependant on his servant, Clov for his survival. But Clov keeps threatening him that he shall leave him, but does not go.

Hamm: [...] Why do you stay with me?

Clov: Why do you keep me?

Hamm: There's no one else.

Clov: There's nowhere else.

[*Pause*] (faber 95)

Clov is the only character in the play who can move across the stage, he is comparatively healthier than other characters but his legs are

growing painful. Nagg and Nell on the other hand are physically and psychologically confined to their respective ash bins.

Disability and confinement of space are in direct proportion to each other. Hamm is confined on his wheelchair, Nagg and Nell in their respective closed ash bins. They are physically cut off from the world and from each other. Hamm's physical incapacity to move is in direct contrast to Clov's mental incapacity to leave the stage. Clov, who can walk, threatens Hamm of leaving him every time but choses to be confined in the space of the stage. He does not leave him for some unmentioned reasons or may be because of some indirect control of Hamm over Clov. However, the pain in his eyes and legs may be one of the reasons he choses to stay on.

"Hamm: How are your eyes?

Clov: Bad

Hamm: How are your legs?

Clov: Bad

Hamm: But you can move.

Clov: Yes". (Faber 95)

"Not only do we see shrinkage of lived space in Endgame but also shrinkage of lived time which anticipates what-is-to-come (the future) relative to what-is-now (the present) and what-once-was (the past). The temporal existence of the characters on stage is reduced to their immediacy as if they are stuck or glued to their present "now". They have become prisoners of the present and confined to their single temporal dimension. Unsure about their past their future seem to be very dark and bleak. In illness, "the lived past", as James and Kevin Aho point out, "with its remembered images of vitality and independence closes off. The remaining memories are stripped of their emotional valence and begin showing up in an alien and abstract way as the experiences of someone else" and on the other hand "once open vista of future hopes and dreams collapses" (Sarkar 53) Hence, it can be said that the disease and disability of the characters have led the time and space to cease for them and so their myopic vision does not allow them to think beyond the stage space and time. So, for them, outside too is death.

In the first appearance of Hamm, he is shown to cover his face with "blood-stained handkerchief" (faber 93) His handkerchief has been mentioned many times in the course of play but nowhere it is mentioned the reason of the presence of blood stains on it. Once Clov mentions, "Have you bled?" (faber 95) One of the explanations of it can be the obvious outbreak of infectious disease, 'tuberculosis' or 'consumption' post war.

Clov, wildly scratches his belly and complains that he has got a 'flea'. Hamm asks, if still there are fleas? Clov says, "On me there's one. (scratching) Unless it's a crab louse." (108) Clov moves restlessly in the room. He feels pain in his leg and says, soon I won't be able to think also.

World Wars took toll not only on the life of the soldiers who were directly involved in the war, but also on the civilians. According to the report of The Biomedical Scientists, millions of soldiers died combating in war but the major loss of life is attributed to the diseases, epidemics and famines. Hence, Samuel Beckett's play *Endgame* perfectly represents a world of disease and disability from the perspective of four physically and mentally diseased and confined characters who are cut off from the rest of the world.

References

1. *Beckett, Samuel. The Complete Dramatic Works. London: faber and faber, 2006. Print.*
2. *Batra, Shakti. Eugene Ionesco Rhinoceros. Delhi (India): Surjeet Publications, 2015. Print.*
3. *Park, K. Preventive and Social Medicine. Jabalbur (India): Banarsidas Bhanot Publishers, 2017. Print.*
4. *Foucault, Michel. Madness and Civilization. Indian edition: Routledge Classics, 2016. Print.*
5. *Sarkar, J. The Dys – abled Players of Samuel Beckett's Endgame. 14.139.211.59 Accessed on 22.10.2020.*
6. *Beck, Matthias. Illness, Disease and Sin: The connection between Genetics and Spirituality. https://doi.org/10.1080/13803600701283052. Published online – 17 Apr 2007. Accessed – 4.10.2020*

Web-series and Indian Media: A Lethal Cocktail of Drugs, Sex and Violence

Dr. Rajesh Kumar
Associate Professor, P.P.N. College, Kanpur (Uttarpradesh)

shodhshree@gmail.com

Abstract

In recent years phenomenon of web-series has started dominating the entertainment scene. This paper makes content and discourse analysis of some of these web-series and concludes that these series are serving a cocktail of drugs, sex and violence to the viewers, who mostly belong to younger generation. Every dialogue is prefixed or suffixed by an expletive. There is a cult of glorification of crime and mafia dons are portrayed having Robin Hood like qualities. They take the path of crime, only because, society had left no option for them. Politicians use them and have them killed when they have served their purpose. This paper argues that these web-series are having tremendously negative effects on young minds. This paper suggests that these web-series should immediately be brought under the purview of Censor and people should refuse to watch such series. Parents need to become cautious about what the youngsters in the family are watching.

Keywords *: Web-series, Mafia, Don, Drugs, Sex, Violence, Expletives, Censor, Youngsters.*

Indian constitution grants freedom of expression as a fundamental right to all Indians. Bollywood has taken the full advantage of this right and has become a global brand to reckon with.[1] Indian entertainment industry is not limited to Hindi films only. It is interesting to note that process of economic liberalization and advent of TV channels coincided in India in 1991. Both phenomena became intertwined and worked as force multiplier for each other. Serials and advertisements on TV channels provided an ideological justification for economic liberalization. On the other hand, revenues generated by companies due to economic liberalization became a fodder for advertisements on TV. Serials like *Kyonki Saas bhi Kabhi BahuThi* and *Kahani Ghar Ghar Ki* became the household names. In 2000s, social networking sites caught the fancy of Indian youth. In 2010s, Facebook, Twitter and Instagram became a new fad. It became trendy to post any and everything on social networking sites. There is no doubt that these sites were used positively also for various social campaigns and causes but largely their use remained limited to online entertainment. In late 2010s, phenomenon of web-series emerged in India. What exactly is a web series? Web-series is basically a narrative told in in the form of episodes. In a way, it is very much like a TV series. But its availability is on Internet and all the episodes of a web-series are uploaded simultaneously on the Internet. Thus viewer does not have to wait for every week or every day to enjoy his episode. This has also created a phenomenon of binge watching in which viewer watches all the episodes without breaks. Binge watching a serious hazard to mental and physical health.[2]

The phenomenon of web-series had already been tested in western markets. Series like Narcos, Black

Mirror, House of Cards had become huge commercial success. With this Netflix and Amazon Prime had emerged as new media platforms, which challenged the traditional modes of movies and television series viewing and offered viewers the online platforms. This platform was far more private and intimate, because instead of group or family activity, entertainment consumption became an individual activity since viewers either utilized their laptops or mobile phones for watching online web-series.

In India also, web-series arrived in late 2010s. They immediately caught the attention of tech savvy Indian youth. Initial series like Sacred Games and Ghoul met with unprecedented success. After that there was a deluge of web-series. But web-series got the tremendous boost because of Covid 19. Since people were confined to their homes due to lockdown and there were no entertainment programs on TV because shooting the new episodes became impossible and simultaneously most sporting events were also cancelled, web series became the only option for time pass and entertainment.[3] There was a race among producers like Netflix, Amazon Prime, Disney Hotstar, Zee Five, Voot, MX player etc. to launch new series. But in this competition, the quality of shows was seriously compromised. Although this paper argues that even initial web-series had the toxic cocktails of drugs, sex and violence but in later series even fig leaf was dropped and web series acquired porn like quality laced with expletives and scenes of people consuming drugs like cocaine, heroine, brown sugar and ecstasy. Extra-marital relations, free sex and portrayal of gay and lesbian relationships became the common themes of these web-series. This paper makes content and discourse analysis of these web-series and comes to the conclusion that time has come to impose censorship on these series. I would like to make it clear at this point that I have no objections to the use of expletives and portrayal of drugs, sex and violence in web-series if it is done according to the demand of story and a clear disclaimer is added that is should be watched by adult viewers only. But my analysis points to the fact that the scenes of protagonists and antagonists consuming drugs alike, character indulging in sex only to titillate viewers and mindless violence to imitate slasher[4] movies is dominating the themes of web-series which cannot be justified from any point of view. For this paper, I have made the content analysis of following web-series—

Sacred Games, Ghoul, Made in Heaven, Raktanchal, Apaharan, Bard of Blood, The Family Man, Mafia, Mumbai-The City of Dreams, Mirzapur, Inside Edge, Delhi Crimes, Special Ops, Ek This Begum and Asur.

A Brief History of Web-series in India

There have been many studies regarding the social, political and cultural effects of Bollywood on Indian society. In last two decades, effects of cable TV channels on Indian society have also been studied. There have beef full-fledged studies of the impact of Internet and social networking sites on Indian society. But web-series still remains a comparatively new phenomenon in India. Interestingly, in a very short period, web-series have become a dominant form of entertainment in the country, eclipsing cinema and TV channels. Production companies and online platforms keenly observed the interest of Indian viewers in international web-series and then started serving Indian versions.

There remains a controversy regarding which was the first Indian web-series. Most people agree that Permanent Roommates produced by TVF in 2014 was the first web-series in India. The series was available for free on YouTube. It became hugely popular with younger audience because of its informal dialogues and good theme. For next couple of years, similar kinds of web-series were released in India. It was not a commercial venture at that time. Series makers were motivated more by the sense of creative satisfaction than by commercial profits. Inside Edge, released in 2017, by Amazon Prime is considered to be first commercial Indian web-

series, although a foreign network produced it. Amazon followed this experiment by its next series Breathe. But it was with Sacred Games, produced by Netflix in 2018, that web-series became a household word in India. Sacred Games established a new paradigm of entertainment in India. It was a huge commercial success for Netflix.[5]It also set the tone and tenor for the content of future web-series in India. Very soon, Indian entertainment market was flooded with web-series. As mentioned earlier lockdown imposed due to Covid 19, proved to be a magic pill for web-series. Broadcast of TV serials and new shows was interrupted because of Corona. Consequently, viewers who were earlier not interested in the genre of web-series found themselves watching the web-series. There is no official data available but it is safe to assume that big portion of Indian viewers is hooked to web-series. International broadcasters like Netflix and Amazon Prime had already recognized the potential of Indian market. Now Indian online platforms also followed suit. Very soon, MX player and Zee Five flooded the Indian market with their own web-series. Now there are at least ten major online platform producing web-series in India. Many major production houses have cut deals with international online platforms to produce Indian content for them. Betaal, produced for Netflix by Indian production houses Red Chillies Entertainment and Blumhouse Productions is an example of this phenomenon. Thus Indian and foreign online platforms, Indian producers, actors, directors, technicians, advertisers and viewers, all have found a winning formula of web-series.

In such a short span, why have web-series emerged as dominant form of entertainment? The answer to this question lies in the ethos of Indian culture. Film going is a group activity in India. Most of the times whole families or group of friends make a plan to watch a film. Similarly, watching TV is also a family activity in India. Mostly whole families get together to watch their favorite soap opera. In such scenario if there is an explicit scene or an expletive is used, the members of the group feel embarrassed. Parents and children could not watch such programs together. But laptops and mobile phones have provided a very intimate space for entertainment consumers. Now they can watch web-series filled with scenes of sex without being embarrassed in the privacy of the space created by their mobile phones or laptops. This has changed the entire paradigm of entertainment consumption in India.

A Content Analysis of Web-series in India

Content analysis is a process by which the theme, story and scenes of an artistic work are analyzed vertically and horizontally. Vertical analysis relates to the linear story and theme of the film, TV program or web series while horizontal analysis concentrates on decoding the messages of particular scenes. Discourse analysis concentrates basically on dialogues and tries to reveal the hidden and codded messages of language used in a work of art. This paper utilizes the methodologies of content and discourse analysis to understand the effect of web-series on Indian social system.

An Overdose of Drugs

Indian web-series are obsessed with drug use. Most of the characters are shown freely consuming substances like heroine and cocaine. The method of consuming drugs—making thin lines of cocaine or heroine and then snorting them—is shown in graphic detail. Most of the Indian youth, who are not unfamiliar with drug use, have seen the method of consuming drugs by these web-series. Most of the characters in most of the web-series are shown to be consuming drugs. As a matter of fact, substance abuse scenes are used to depict that a how 'cool' a particular character is. The evil effects of drug abuse on human health are never shown. It could appear that making a blanket statement like most of the characters in most of the web-series are shown to be drug abusers, is a gross generalization, but even a cursory look at any web-series would prove the point. In the series Mafia, a character actually says, “don't you people think of any thing else, just drugs and sex

and only drugs and sex." She could not have been more correct because in Mafia, from beginning to end every character is either taking drugs or indulging in physical relationships. Rest of the scenes, are lased with liberal dollops of extreme violence. Showing a particular character using drugs may be a part of the story, but when almost every other character is consuming drugs, it is dangerous message for the youth of the country. These web-series portray that consuming drugs is a normal practice of uber cool life style. The basic contention here is that these web-series glamourize the use of drugs and indirectly tell the viewers that if you want a glitzy life style, use of drugs is a primary requirement. Most of the characters are shown to be using drugs and alcohol simultaneously. Medical fraternity has always warned that using drugs and alcohol together may lead to immediate fatality. Smoking and using alcohol is another marked feature of these web-series. Since these series are not censored, there is no requirement to add the warning that smoking and consumption of alcohol is injurious to health. Drunk and drugged characters are very much the part of space created by these web-series. Most of the web-series such as Sacred Games, Made in Heaven, Raktanchal, Mafia, Mubai-The City of Dreams and Rangbaaz have characters smoking, drinking and using drugs constantly. None of the series discusses or even mentions that there are severe health effects of smoking, drinking and drug abuse. For example, the lead character of Mubai-The City of Dreams is always drinking, smoking, using drugs and indulging in sex.

Web-Series and Hyper Sexual Themes

Mirzapur, a very popular web-series in India has a sidetrack of a younger woman who is sexually dissatisfied with an older husband. She develops a physical relationship with a servant. Ultimately, her father in law finds it out and rapes her as a punishment. And this is all shown in graphic details to titillate the voyeuristic tendencies of the viewer.[6] Interestingly, all of this has nothing to do with the central plot of the story, which revolves around the gang war to dominate the crime scene of city of Mirzapur. Mirzapur is just an example. Most of the web-series portray sex in graphic detail.[7] It is assumed that viewer will lap up the pornographic content of the series.[8] Series like Delhi Crime—based upon Nirbhaya case— is an exception, which depicts sexual violence against women for bringing social awareness. Sacred Games, which is called the mother of all web-series in India, has a hyper sexual theme running in parallel with the story. There are countless sex scenes in the series, which add nothing to the original plot of the web-series. Inside Edge, which became so popular, that producer churned out two seasons of the series, is also laced with the sexual scenes while the main theme of the series is match fixing in cricket. In order to titillate even further, web-series liberally portray sexual perversions in order to compete with other series and to become most talked about web-series among youngsters.

In India LGBT rights movement is at a critical juncture. Supreme Court has decriminalized gay sex and at this time it is important to present visual image of lesbian and gay community with great deal of sensitivity in order to bring LGBT community in mainstream. But there is a race among web-series to portray gay and lesbian community in a stereotypical manner, which is exactly what LGBT community does not need. Made in Heaven has a gay protagonist whose sexual relationship are shown in graphic detail. Again the theme of the web-series is about a company, which organizes marriages for rich clients. Gay relationships of the protagonist have nothing to do with main story. Similarly gays scenes of Sacred Games add nothing to the main story. In Mumbai-The City of Dreams portray a protagonist in lesbian relationship. But the series is about fight between a brother and a sister after their father is shot. The argument here is that LGBT community needs to be portrayed poignantly and realistically. But these series leave no opportunity to depict lesbians and gays in stereotypical fashion and make a caricature of entire community.

A Cult of Violence

In Sacred Games, Ganesh Gaitonde, the protagonist, kills 80 Muslims randomly in a day. There is no bigger example of mindless violence and gore in India web-series. Violence is not only justified, it is also glorified. Extreme violence, reminding the slasher movies of Hollywood, has become the favorite tool of makers of web-series.[9] In Asur a doctor autopsies the body of his own wife, but she has been so badly disfigured that he is not able to recognize her. Series like Bard of Blood and The Family Man take viewers to Afghanistan and Pakistan where whatever violent methods protagonist uses are justified since he is exterminating fundamentalists, the ultimate evil. Web-series like Rangbaaz, Bhaukal and Mirzapur take a mafia don as a protagonist. Off course he dies in the end but the entire film is shown from his perspective. His life style, his violent streak, his command over his group and his willingness to use extreme violence against his enemies are the basic themes running through the movie. Usually these web-series take a sympathetic view of the muscleman hero and try to portray him as the victim of the circumstances. It is shown that he had no option left but to become a mafia don. Viewers' sympathy usually lies with the mafia don. The glorification of gangster may have serious effect on the thinking of youngsters. The muscleman is usually shown very kind and humble to the poor people. Like in Ek Thi Begum, the gangster is shown to be a very good human being and it is the police, which are vilified. Similarly, in Mumbai-The City of Dreams, as mentioned earlier, a sister kills her own brother without regret, politicians are vilified and it is shown that the protagonist has done the very correct thing by killing her own sibling. In Sacred Games, Bard of Blood, The Family Man and Mirzapur, bullets fly constantly; blood splatters and highly sophisticated weapons are shown off. There is so much violence that viewers become numb to it.

Other Themes Running Through Web-Series

Apart from this, there are certain other themes running through these web-series. Most of the web-series are set in Uttar Pradesh of Bihar. May be the criminalization of politics in these states makes them the perfect setting for Mafia genre of web-series. Most of the web-series use colloquial Hindi as their lingua franca. There is special attempt to use as many expletives as possible. Series like Raktanchal has expletives woven in almost every dialogue. Stories are usually shown from male point of view. Women mostly play only decorative part in the story. Series like Delhi Crime and Ek Thi Begum are exception to this rule. It is usually shown that politicians use criminals to attain their own ends and when their objectives are met, they ruthlessly order police to kill the criminals. The problem with this idea is that criminal is idolized in the young mind. It is almost never gangsters' fault. This raises his status to the cult level. Many characters are shown so mentally unhinged that violence is only expected of them. For example, in Mafia the killer is shown to be completely unhinged. There is absolutely no attempt to understand mental problems sympathetically.

Suggestions

There is absolutely no doubt that these web-series are having negative effects on young minds. Even older viewers are hooked to these series, although they may be better able to handle the negative effects of these web-series. There is an immediate need to frame a law governing the making of these web-series. Bringing web-series under the purview of Information and Broadcast Ministry is the step in right direction.[10] However, government should issue strict guidelines for the makers of these web-series. Although best option would have been that the makers of these web series should have self censored the content and then there would have been no need to involve government but sadly series makers have failed in this responsibility miserably. These web-series should be immediately brought in the purview of censor board.[11] There is no logic to argue that it would curtail freedom of expression in the country. After all, films also have to go through censor board.[12] If anyone has a problem with the

decision of censor board, that decision can be challenged in the courts.There is absolutely no reason why these web-series should not show warnings that use of drugs, cigarettes and alcohol is injurious to health. Popularity of web-series among youngsters makes them a powerful medium of social messaging and change. Web-series like Kota Factory and Pitchers are examples of the power of web-series. There is a need to understand that entertainment and social messaging are not contradictory. It is possible to make a successful web-series with positive social message. Although it is difficult and demands hard work while serving the cocktail of drugs, violence and sex is far easier. This also means that parents and guardians have a great responsibility to check what the teenagers of their family are watching.

Conclusion

This paper has analyzed the new phenomenon of web-series in India. It has made a content and discourse analysis of some popular web-series. This paper concludes that these web-series have become immensely popular in a very short time. This genre of entertainment is different because it does not involve a group activity like film and television watching.People watch these web-series in their intimate space via mobile phone or laptop. Makers of these web-series have used his intimate space to provide a lethal cocktail of violence, drugs and sex. Youngsters are being severely affected by these web-series. There is an immediate need to bring these web-series under the purview of censor board. Society should come forward to boycott the web-series, which almost promote drugs, sex and violence as a lifestyle. Probably this could be the greatest deterrent to the makers of these web-series.

References

1. *Derek Bose. Brand Bollywood: A New Entertainment Order, 2006, Sage Publications India Pvt Ltd: New Delhi*
2. *Jena Birch, How Binge Watching is Hazardous to Your Health, The Washington Post: Washington, June 3, 2019.*
3. *Sampada Sharma, Top Ten Web-Series to Watch During Lockdown, April 2, 2020, Indian Express: Delhi*
4. *Slasher movies is a genre of Hollywood which show blood and gore in graphic details. Please see, Mark H. Harris, The History of Slasher Movies, February 17, 2019,*

   https://www.liveabout.com/slasher-movies-1873211
5. *Samuel Bansal, Netfilx's Indian Series Sacred Games Get World Wide Attention, Media India Group, October 11, 2018, https://mediaindia.eu/cinema/netflixs-indian-series-sacred-games-gets-worldwide-recognition/*
6. *Anurag Kashyap, How Media Giants are Blowing up Bollywood, The Guardian: London, retrieved on August 3, 2020,*

   https://www.theguardian.com/film/2019/aug/02/sex-drugs-politics-streaming-netflix-amazon-blowing-up-bollywood
7. *The Print Team, Hindu Group Wants Ban of Netflix: Should Streaming Platforms be More Culture Sensitive? The Print, September 8, 2019, https://theprint.in/talk-point/hindu-group-wants-a-ban-on-netflix-should-streaming-platforms-be-more-culture-sensitive/288393/*
8. *Anita Kurien, Are Online Shows Obscene? Deccan Herald: Chennai, October 10, 2018*
9. *Giridhar Jha, Sex, Violence and Abuses Alone Can't Win Viewers, Content Must Relate to Common Man: Manoj Bajpayee, Outlook: New Delhi, 17 October 2019.*
10. *"Government to Govern Netflix, Amazon Prime and Other OTT Platforms." The Hindu, New Delhi, November 11, 2020.*
11. *Reuters, Netflix and Amazon Face Censorship Threat in India: Source, Indian Express: New Delhi, October 19, 2019.*
12. *Entertainment Desk, India TV, Netflix, Hotstar Censorship Supported by 57% Indians, Says Survey, November 4, 2019,*

    https://www.indiatvnews.com/entertainment/web-series/yougov-survey-57-percent-indians-want-censorship-ott-platform-netflix-amazon-prime-video-hotstar-voot-561141

India and Commonwealth Nation: Need Synergetic Relationship

Dr. Vinod Kumar Sharma
Principal, Hans College, Paota

shodhshree@gmail.com

Abstract

At the independence India's military, education and administrative system, was totally based on British system. Most of India's trade was also with Britain. Therefore India decided to remain in Commonwealth. At present, Commonwealth comprises 54 countries located in Asia, Africa, the Caribbean and the Americans, Europe and Pacific. The Commonwealth represents human diversity, as well as the shared values of freedom, democracy and human rights. Both India and Britain are members of the Commonwealth and are part of a global approach and commitment to a rules-based international system that strongly opposed unilateral steps that seek to weaken the system through force. Commonwealth nations can be helpful in achieving India's economic and strategic purpose. The aim of the paper writing is to enlighten the multi-dimensional relation of India and Commonwealth nations. The study also highlights on future prospects of both countries India and Britain. Secondary data has been used for the present study.

Keywords*: Imperial Conference, Balfour Declaration, CHOGM, CHRI, Brexit.*

The Commonwealth of Nations is alliance of independent and sovereign countries; most of all are Dominions of the British Empire. The Commonwealth of Nations, generally known simply as the Commonwealth is a political association of 54 member states. The commonwealth is primarily an organization in which countries with diverse economic back grounds have an opportunity for close and equal interaction. The primary activities of the Commonwealth are designed to create an atmosphere of economic cooperation between member states, as well as the promotion of democracy and good governance in them. The commonwealth is not a political union of any sort and does not allow the United Kingdom to exercise any power over the affairs of the organizations other members, while some nations of the commonwealth, known as commonwealth realms, recognize the British monarch as their head of State.

History and Origin of Commonwealth Nations: In 1959, on Dominion Day, Queen Elizabeth-II addresses to Canada and points out that the birth of confederation of Canada on 01 July, 1867 was the first independent country within the British Empire. She declared: "So, it also marks the beginning of that free association of independent states which is now known as the Commonwealth of Nations. Lord Roseberry, in 1884 during a visit of Australia explained about the changing British Empire, as some if its colonies become more independent, as a Commonwealth of Nations. From 1887, at many times government leaders from the self- governing colonies and dominions of the British Empire were

periodically gathered, it was called Colonial Conferences. Colonial Conferences, originally instituted to emphasize imperial unity, as time went on the conferences became a key forum for dominion governments to assert the desire for removing the remaining vestiges of their colonial status. In 1907 conference changed the name of meeting to Imperial Conference.

The Commonwealth developed from the Imperial Conferences. In 1917, Jan Smuts coined the term "the British Commonwealth of Nations". The term was recognized by Imperial Statutory in Anglo-Irish Treaty of 1921 at first time. The term "British Commonwealth of Nation" was substituted for British Empire in the wording of the oath taken by members of parliament of the Irish Free State in 1921.

The 1926 Imperial conference was the 7th Imperial Conference bringing together the Prime Ministers of the Dominions of the British Empire. It was held in London from 19-22 October, 1926. The Conference was notable for producing for Balfour Declatation. In the Balfour Declaration (1926); Imperial Conference, Britain and its dominions admitted that they are equal in status and in no way subordinate one to another in any aspect of their domestic or external affairs. They are united by common allegiance to the Crown and freely associated as members of the "British Commonwealth of Nations". The term "Commonwealth" was officially adopted to describe the community.

The statue of West Minister, an act to give effect to certain resolutions passed by Imperial Conference held in the year 1926 and 1931, passed by the United Kingdom parliament in 1931. It also gave legal recognition to de facto independence to the dominion. After the Second World War ended, the British Empire was gradually dismantled. India and Pakistan achieved independence as dominions and member of the Commonwealth in 1947. Then Commonwealth faced a constitutional crisis. It was assumed that the association's principle would be bound that all members would have the monarch of the United Kingdom as head of state. In April 1949, following the London Declaration the word British was dropped from the title of the Commonwealth to reflect its changing nature.

In April 1949, at the Commonwealth Prime Ministers meeting (under London declaration) India agreed that India might remain a member of Commonwealth as a republic but would accept the monarch as the symbol of the free association of independent member nations and as such Head of the Commonwealth. This development opened the way for other countries to become members of Commonwealth, who adopted republican constitutions after their independence. In two decades (1950-60 and 1960-70) the United Kingdom's rule ended in the part of Asia, Africa and other continent. Consequently, the membership of Commonwealth increase rapidly. At present, there are 54 countries in the Commonwealth from Africa, Asia, the Americas and Caribbean Europe and the Pacific. Countries by region:

- **Africa –** Botswana, Cameroon, Gambia, Ghana, Kenya, Swaziland, Lesotho, Malawi, Mauritius, Mozambique, Namibia, Nigeria, Rwanda, Seychelles, Sierra Leone, South Africa, Uganda, United Republic of Tanzania and Zambia.
- **Asia –** Bangladesh, Brunei Darussalam, India, Malaysia, Maldives, Pakistan Singapore and Sri Lanka.
- **Caribbean and Americas** – Antigua and Barbuda, Bahamas, Barbados, Belize, Canada, Dominica, Grenada, Guyana, Jamaica, Saint Lucia, St Kitts and Nevis, St Vincent and the Grenadines, Trinidad and Tobago.
- **Europe** – Cyprus, Malta and United Kingdom.
- **Pacific** – Australia, Fiji, Kiribati, Nauru, New Zealand, Papua New Guinea, Samoa, Solomon Island, Tonga, Tuvalu and Vanuatu.

The Commonwealth is a voluntary association of 54 independent and equal countries. It is home to 2.4 billion people and includes both advanced economies and developing countries. Members work together to promote prosperity, democracy and peace, amplify the voice of small states, and protect the environment. It represents all five regions, and every income level, country size, race and religion.

Commonwealth's Structure, Membership and Objectives: According to the London Declaration (1949) Queen Elizabeth-II is the head of the Commonwealth. The successor to the crown does not automatically become head of the Commonwealth, after the death of monarch. During Commonwealth Meeting (In April, 2018), Leaders were agreed that Prince Charles should succeed Queen Elizabeth-II as head.

The biennial Commonwealth Heads of Government Meeting (CHOGM) is the main decision-making forum of the organization. In CHOGM Commonwealth Nations Head of Government (Prime Ministers and President) discuss matters of mutual interest. Besides it, there are also regular meeting of Finance Ministers, Law Ministers, Health Ministers etc. The Head of Government hosting the CHOGM is called the Commonwealth Chair Person- in Office and retains the position until the following CHOGM.

The Commonwealth Secretariat is the main intergovernmental agency of the Commonwealth, was established in 1965. The Secretariat, facilitate consultation and co-operation among member governments and countries. The secretariat organizes Commonwealth Summits, Meetings of ministers, consultative meeting and technical discussion. It also provides technical assistance to help governments in the social and economic development of their countries and in support of the Commonwealth's fundamental political values.

The Secretariat is headed by the Commonwealth Secretary General who is elected by Commonwealth heads of government for no more than two, four-year terms. In addition, before Mr. Kamlesh Sharma served as secretary general from 2008 to 2016, two Indian nationals served as deputy secretary general and another served as assistant secretary general. The present Secretary-General is Patricia Janet Scotland (a British Labour Party Politician), Baroness Scotland of Asthal from Dominica.

At the 1997 summit in Edinburgh, Head of Government considered the criteria for commonwealth membership and agreed that in order to become a member of the Commonwealth; as a rule an applicant country should have had a constitutional association with an existing Commonwealth member state. It should comply with commonwealth values, principles and priorities as set out in the Harare Commonwealth Declaration of 1991 and it should accept Commonwealth Norms and Conventions.

The Commonwealth's objectives were first outlined in the 1971 Singapore Declaration, which committed the Commonwealth to institution of world peace; the pursuit of equality and opposition to racism; the fight against poverty, ignorance, and diseases; and free trade. To these were added opposition to discrimination on the basis of the gender by the Lusaka Declaration of 1979 and environmental sustainability by the Langkawi Declaration (Malasiya) 1989. These objectives were reinforced by the Harare Declaration in 1991.

The Commonwealth's current highest priority aims are on the promotion of democracy and development. The Commonwealth area of work as: Democracy, Economics, Education, Gender, Governance, Human Rights. Law, Small states, Sports, Sustainability and Youth.

India-Commonwealth Relationship: Before First World War India was denied to participate in Imperial Conference on the ground that India is not a self-governing colony of British Empire. India's substantial Contributions to British Empire during First World War; India was

allowed rights of direct participation in 1917 in Imperial Conference. India represented by the secretary of state of India (a member of British Cabinet) and at sometime by nominees of Princely state or Vice-Roy till 1944. India's concerns during these conferences were asserting its right to participate with status equal to that of the dominions, safeguarding its economic interests and bringing up the treatment of overseas Indians.

After Independence it was great decision to remain member of Commonwealth Nations. In 1947 there were many reasons to become the member of Commonwealth as: Issue of monetary balance, access to the British market, and British occupation on Indian Ocean. Yet another was the need to neutralize any possible support Pakistan, which had already decide to remain in commonwealth, might garner against India's interests on matters arising from partition and the dispute over Jammu and Kashmir.

In Aril 1949, at the commonwealth Prime Ministers meeting (Under Landon Declaration, 1949) India accepted that, India might remain a member of Commonwealth, But India accepted the King "as the symbol of free association of independent member nation and as such the head of Commonwealth". The conference declaration made it clear that all members were "free and equal" while co-operating in the pursuit of peace, liberty and progress." In this way, India maintains his sovereignty, democratic and republican form with Commonwealth membership.

- **Mediocrity in Relationship:** India's membership of Commonwealth was opposed from beginning by left. Anti commonwealth tendency increased during 1950 in India, because of Unfavorable attitude of Britain on Kasmir dispute. India also opposed British-French attack on Egypt, during the 1956 Suez Crisis. In 1960 decade, a large number of African Countries entered in Commonwealth; it transformed the character of organization. Anti colonial agenda was on priority at this time in commonwealth; Keeping national interest in mind Indian leaders were not enough aggressive on anti-colonial agenda and they refrain to play an active role on African problem.

Bilateral and regional security were the main theme of Indian foreign policy during 1970, it created a distance between both. Between 1950 and 1971, due to decrease in economic value of Commonwealth Nations; the net value of India's trade with the Commonwealth dropped from 38 percent to 15.9 percent. It reduced Commonwealth Nations significance in the overall frame work of Indian foreign policy.

At the 1975, CHOGM other participant saw India as a "Diffident Attendee." After the end of cold war, India starts to focus on affable relation with Commonwealth. India centralizes his relation especially in trade and strategic issue, particular in Asia. Consequently, Indian leaders took least interest in commonwealth issues. The presence of Prime Minister of India becomes irregular in CHOGM. The Prime Minister Man Mohan Singh was the last head of government, who attend the 21st CHOGM 2009, held in Port of Spain (Trinidad and Tobago) on 27-29 November, 2009. After CHOGM 2009 Indian Prime Minister was absent from CHOGM due to various reasons.

Indian Prime Minister Sh. Man Mohan Singh skipped 22nd CHOGM in protest against Australia's refusal to sell India uranium as it had not signed the Nuclear Non- Proliferation Treaty. Vice-President, Hamid Ansari, led the Indian Delegation. 23rd CHOGM was organized in Colombo (Sri Lanka) on 15-17

November 2013. Indian Prime Minister Sh. Man Mohan Singh did not participate in CHOGM due to pressure from the regional Tamil Party regarding Sri Lanka's alleged poor human rights record and reported atrocities against the Tamil population in the country. Then External Affairs Minister, Salman Khurshid represents India at the CHOGM. In 24th CHOGM 2015, held in Malta on 27-29 November, 2015 External Affairs Minister Sushma Swaraj represents the summit, instead of Prime Minister Sh. Modi.

- **Commerce Cooperation:** In the early 1970s, Indian leaders suggested that the economic content of Commonwealth must become more meaningful and purposeful if it had survived. In the 2015-2016 fiscal year, India was the fourth-largest contributor to the Commonwealth's budget and third-largest funder of its joint office at the United Nations in New York. The Commonwealth plans to try and push intra-commonwealth trade to $02 trillion over the next ten years (2030) from an estimated $ 700 billion. India at present (2020) some $ 50.15 billion worth of goods commerce than 19 percent of its exports to Commonwealth Nations. It also imports some $ 54.66 billion of worth of goods or 15.32 percent of all imports from Commonwealth Nations. India can yank this (104 billion) to $ 300 billion by 2030.
- **Cooperation in IT, Technology and development Programmes:** India organized 6th Commonwealth-India Small Business competitiveness Development Programme on 15-09 May, 2007 at Cochin. The Commonwealth Parliamentary Association (CPA) was founded in 1911, is an organizations, work to support good governance, democracy and human rights. India is also its member. India has organized Commonwealth Parliamentary Conference in -1957, 1975, 1991, and 2007. Besides it India organized 7th CPA- Indian regional conference held first time in Lucknow, Utter Pradesh from15-18 January 2020. India also hosted commonwealth Games in 2010.

In 2009, India doubled its contribution of approximately $02 million to the Commonwealth Media Development fund and an annual contribution of $ 80,000 to the Commonwealth Small States Office at the United Nations. The Commonwealth Fund for Technical Co-operation (CFTC) founded for providing technical assistance to Commonwealth countries. At CHOGM in London, 2018, India said it would double its contribution to the CFTC from $01 million to $ 02 million.

Indian Technical and Economic Cooperation Programme (ITEC), is a bilateral assistance programme run by the Govt. of India from 15 September 1964. Along with the special Commonwealth Assistance for Africa Programme (SCCAP), ITEC cover 161 countries across Asia, Africa, Latin America, Central and Eastern Europe and several Pacific and Caribbean Nations. Since its inception, the programme has spent over US $ 02 billion and benefited thousands of students and professionals from around the globe.

India provides 16-20 percent of the consultants and experts in the Commonwealth technical assistance program. It ranks first among member states in providing facilities and venues for Commonwealth training

programmes. India also often provides expert members to Commonwealth nations for monitoring and other works of election on member countries request.

The commonwealth of Learning (CoL) is an inter-governmental organization of commonwealth, founded in 1988 at Canada. CoL has mandate to promote the use of open learning and distance education knowledge, resource and technologies. The commonwealth of Learning (CoL) is voluntarily funded by the Commonwealth countries and India is third major donor after U.K. and Canada. India is represented on the Board of Governors and Executive committee of CoL through secretary in-charge of higher education. IGNOU in India is CoL's key international partner.

- **Participation in the Consolidation of Democracy and Human Rights:** Commonwealth observer group were adopted by Commonwealth Heads of Government in 1991. Since1991, the Commonwealth has observed 137 elections in 38 countries. In last few year Commonwealth election observer group observe election process in many country as: Sierra Leone (2012), Pakistan (2013), Nigeria (2015), Solomon Islands (2014), Vanuatu(2016), Uganda (2016), The Bahamas (2017), Papua New Guinea (2017), Kenya (2017), Tonga (2017), Sierra Leone (2018). India took part in election monitoring for sixteen of those countries.

  The Commonwealth Human Rights Initiative (CHRI) is an independent, non-partisan, international non-governmental organization working in the area of human rights. The headquartered of organization is in New Delhi. The CHRI was founded in 1987, as a response to South Africa's policy of racism. CHRI works for the practical realization of human rights across the Commonwealth. The objective of CHRI's is to promote awareness and adherence to the Harare Commonwealth Declaration and the Universal Declaration of Human Rights.

Challenges for the Commonwealth Nations and India's role: Commonwealth countries are facing many challenges as Violation of Human Rights, Economic, Climate and presently Pandemic crisis. CHRI and Walk Free (an international anti-slavery organization) released a report on slavery on 30 July 2020. It found that Commonwealth countries have made little progress towards their commitment to eradicate modern slavery. India had fared the worst in terms of coordination. There are prospects of hurricane and cyclones throughout the year across the Caribbean countries. Africa has locust attacks and desertification problems. Flooding and drought problems exist in East Africa and Asia. The Corona virus, COVID-19 is pandemic crisis; global health crisis of our time and greatest challenge after the World War 2nd faced by glob. Due to Pandemic crisis lives have been lost, economies of whole world are shrinking and livelihoods have been shattered.

India has always been providing technical and financial support to Pacific and Caribbean countries. At the recent Commonwealth Summit, India has once again reiterated its commitment to help the development of small island nations. India have played a bigger role in terms of medical supplies and providing health care. India proposed the creation of the COVID-19 emergency fund, with voluntary contributions and immediately proposed an initial contribution of $ 10 million. India supplied medical supplies, testing equipment and sanitizers among other items to SAARC members including Commonwealth members such as the Maldives, Sri Lanka and Bangladesh.

On 12 August 2020, India provided US $ 01 million to the Caribbean nations Antigua and Barbuda (Commonwealth members) to combat the COVID-19 epidemic. This assitance amount will be used to improve health capablities and infrastructure here. The Government of India has also offered similar assistance $ 01 million in aid to each country of the Caribeean Community (Commonwealth members).

Need to Synergetic Relation: From 2011, Indian Prime Ministers were absent from CHOGM due to various reasons. In 25th CHOGM on 18-20 April 2018 held at London (England). India's Prime Minister Sh. Narendra Modi attended the summit. It appears that India has beginning to take interest in Commonwealth. It is also demand of time. To get national interest India need to enhance multilateral relationship with Commonwealth. There are various reasons why India should play an important role in Commonwealth. Krishan Menon once envisioned that India would exploit the Commonwealth "until it becomes a big, major power.

- To get permanent seat in United Nations Security Council and membership of various international economic and security bodies (like: G-7, NSG) India have to play a vital role in Commonwealth.
- A platform to connect with UK after Brexit. It is opportunity for India to give leadership the Commonwealth, because presently India is one of largest economy of the world and biggest democracy in globe. India can establish new dimension in relation with Commonwealth for mutual benefits. Both can build strong partnership in trade, IT and other sectors.
- The membership of Commonwealth is spread the entire globe. It comprises 54 countries located in Asia, Africa, The Caribbean, and the Americas, Europe and the Pacific. India can enhance its bilateral ties with individual countries. It is important as, India's foreign and security policy priorities include its neighborhood and the African and Indo-Pacific regions.
- A high proportion of Commonwealth members about 60 percent are small states. These states spread across the globe, if India has diplomatic presence in all these states; it will be fruitful for India in United Nations and other International bodies to get favour during votes.
- China is not and never being a member of the Commonwealth. Commonwealth would become a platform for India to counter the China, especially on security and economic issues in Asian and South Pacific countries.
- At present much regional cooperation (ASEAN, IORARC, BIMST-EC) are not performing their potential. India could form a distinct sub-group of Asia Pacific countries; there are 18 countries in Commonwealth from this region.
- India can clarify its stand on the areas of free trade, security, education and skill development through this forum and by mobilizing the supports of other countries on these issues; can put effectively his point in World Trade Organization (WTO).
- The Commonwealth may be prove an important platform through which India can attempt to build a consensus to develop collaborative atmosphere to deal and counter with treat of terrorism.

Conclusively, India has clear opportunities to enhance its global role and maximize its bilateral relation with Commonwealth. The United Kingdom is keen for India to take a new leadership role in the Commonwealth. Presently India has become more important to United Kingdom than United Kingdom is to India,

because India is home of 60 percent of Commonwealth Nation's population and one third of intra-Commonwealth trade. After the Brexit, United Kingdom sees India as one of its leading economic partner in the world. Reinventing the Commonwealth for new century lies in systematic attempts by prominent member states to revive and supplement traditional "links of affinity and advantage" to make the organization "dynamic and purposeful and the membership of it worthwhile.

References

1. *Editorial. (2002). The Commonwealth at and immediately after the Coolum CHOGM. The Round Table. Vol.- 91, Issue – 364, pp. 125-129.*
2. *Gangal, S.C., (1970). India and the Commonwealth. Agra: Shiva Lal Agrawal & Co. p. 07*
3. *Groom, A.J.R. & Taylor, P. (1984). The Commonwealth in the 1980s: Challenges and Opportunities. London: Palgrave Macmillan. p. 209.*
4. *Iyer, N., (1983). India and the Commonwealth: A Critical Appraisal. New Delhi: ABC Publishing House. p. 38.*
5. *Jayant, R.C., (18 January, 2020). Commonwealth to push intra-Commonwealth trade post Brexit. New Delhi: The New Indian Express.*
6. *Lusaka Declaration on Racism and Racial Prejudice, 07 August, 1979. (1979). Lusaka (Zambia): Issued by Head of Government in Lusaka, Zambia. Available at: Commonwealth Secretariat – Documents - www.commonwealthoralhistories.org.*
7. *Marshall, P., (September, 2001). The Balfour Formula and the evolution of the Commonwealth. The Round Table. Vol.- 90, Issue – 361, pp. 541-553.*
8. *Ministry of External Affairs, (2009-2010). Annual Report. New Delhi, India: Ministry of External Affairs. pp. 112-114. Available at URL: http://www.mea.gov.in/uploads/publicationDos/168_Annual-Report-2009-2010.pdf.*
9. *Ministry of External Affairs, (2015-2016). Annual Report. New Delhi, India: Ministry of External Affairs. pp. 144-146. Available at URL:http://www.mea.gov.in/Uploads/PublicationDos/26525_26525_External_Affairs_English_AR_2015-16_Final_compressed.pdf.*
10. *Mole, S., (September, 2004). Seminars for Statesmen: the evolution of the Commonwealth Summit. The Round Table. Vol. - 93, Issue- 376, pp. 533-546.*
11. *Murthy, R.S.C., (11April, 2018). India and Commonwealth: Redirecting the Relationship. New Delhi: Carnegie India.*
12. *Olson, J.S., (1991). Historical Dictionary of European Imperialism. Westport, Connecticut (USA): Green Wood Publishing Group. p. 297-298. ISBN- 0313262578.*
13. *Patel, H., (2000). Southern Africa and democracy in the light of Harare Declaration. The Round Table. Vol. – 89, Issue- 357 pp. 585-592.*
14. *Queen Elizabeth II, (01 July, 1959). Queen Elizabeth's 1959 Dominion Day Message. Rideau Hall (Ottawa, Canada): Government House.*
15. *Rajan, M.S., (1990). India and the Commonwealth: Some Studies. New Delhi: Konark. p. 152.*
16. *Srinivasan K., (January-March, 2000). India and the Commonwealth. International Studies. Vol. - 37, no.-01, pp. 61-68.*
17. *Srinivasan K., (October-December, 2007). Rethinking India's Leadership Role in the Commonwealth. Indian Foreign Affairs Journal. Vol. -02, no.-04, pp. 33-47.*
18. *Statute of Westminister, 1931. (1931). 22 GEO- 5. Chapter- 04. p. 01.*
19. *Tamilnadu Assembly passes resolution demanding DHOGM Boycott. (24 October,2013). New Delhi: The Times of India.*
20. *Vivekanandan, B., (1983). The Shrinking Circle: The Commonwealth in British Foreign Policy 1945-1974. Bombay: Somaiya Publication. p. 10.*

Perceived Familial Gender Discrimination in Relation to Repression-Sensitization Tendency and Achievement Motivation of Adolescent Girls

shodhshree@gmail.com

Dr. Goswami Poornima
Lecturer in GIMT College, Bhartpur, Rajsthan

Abstract

The present study was undertaken to assess the relationship of perceived familial gender discrimination experienced by adolescent girls with their repression- sensitization tendency and achievement motivation. The sample of the study was comprises of 400 adolescent girls out of which 200 from rural and 200 for urban area to government schools of Ajmer district. Investigation was conducted with the help of the following measurement devices: (1.) Perceived familial gender discrimination scale developed by Susan Sen (1999). (2.) Repression-sensitization scale by Dr. Manju Mehta and Dr. Rashmi Chowdhry (2004). (3.) Achievement motivation scale developed by Dr. Pratibha Deo and Dr. Asha Mohan (1974). The main findings of investigation are perceived familial gender discrimination was found to be negatively correlated with repression-sensitization tendency for all the subgroups (urban, rural, and total). Familial gender discrimination was found positively correlated with achievement motivation for all the subgroups (urban, rural, and total). The effect of rural/urban area on gender discrimination was not significant but according to mean value there is minor difference. Urban girls found more sensitization tendency than rural girls. The effect of rural and urban area on achievement motivation was found significant at .05 level of confidence. Rural girls found more achievement motivation than urban girls.

Keywords : *Gender Discrimination, Repression-sensitization Tendency, Achievement Motivation, Adolescent Girls.*

Adolescent girls in India are particularly subjected to various types of discriminatory practices and many girls find a non-discriminatory environment when various steps are being taken to change the status of women and girls. Girls differ in their family environment and discriminatory practices with the stress and storms of the period should depend on how they perceive these practices used in their families. This perceived familial gender discrimination practices must be influencing the psychology of the adolescent girls. Mishra (2001) found that more than 130 million female children have India has been consistently denied food, clothing, schooling, care and is more and more isolated from Indian societies, which are considered economically useless and socially undesirable. Indian society has always been dominated by men who placed women second and lower. Charles Johannes (1976) indicates that males and females are dichotomized on the repression sensitization scale with males responding as sensitizers and females as repressors. Females respond to

sexually suggestive stimuli with neutral or non threatening interpretations and males with conflict-laden and emotional content. Some studies have focused on competence-related beliefs as a valuable measure of an individual's achievement motivation (Linenbrink & Pintrich, 2002; Wigfield & Eccles, 2002). Males and females were found to have different competence-related beliefs during childhood and adolescence (Wigfield & Eccles, 2002). Results revealed that boys had higher competence beliefs in sports activities and math compared to girls. However, girls had higher competence beliefs in reading English, and social activities compared to boys. Linnenbrink and Pintrich (2002) posited that competence beliefs are important because they predict performance and task choice. These beliefs also affect the student's motivation to succeed and achieve a goal. Liu and Zhu (2009) found significant differences in achievement motivations of male and female senior high school students. The male students had higher achievement motivations than female students; the achievement motivations of science and arts students differed and it was closely to be a significant one. Wiley Periodicals (2006) were explained as providing support for the contention that repressors and sensitizers differ in their willingness to assign negative vs. positive qualities to one's self and to endorse internal conflict rather than in their choice of defense mechanisms in the face of threatening information. Boys have poor emotional adjustment than girls. Girls have less sensitization tendency than boys which might be due to the difference in parental treatment of boys and girls. Girls are expected more to have control on their feelings and are not expected to express their frustration and anger. It is not the sex of the sibling but the mere presence of sibling affects the adjustment of adolescents (Mehta et al., 2005).

Sampling:- The present study was undertaken to assess perceived familial gender discrimination in relation to repression-sensitization tendency and achievement motivation of adolescent girls. The sample of the study was comprised of 400 adolescent girls out of which 200 for urban area and 200 for rural area to government school of Ajmer district.

Procedure: - For data collection three standardized tools were selected First Perceived familial gender discrimination scale developed by Susan Sen (1999). Second Repression-sensitization scale by Dr. Manju Mehta and Dr. Rashmi Chowdhry (2004). Third Achievement motivation scale developed by Dr. Pratibha Deo and Dr. Asha Mohan (1974). The scoring of tests was done strictly according to the instruction given in the manual. The subjects were informed that the data obtained will be kept strictly confidential, will not be misused and will be used only for research purposes, after establishing a good rapport with the subjects, questionnaires were distributed to them. Introduction for each questionnaire was given on the basis of the information provided in the manual. The subjects filled the conflict management style in front of the investigator.

Result and Discussion: - The main findings of investigation are perceived familial gender discrimination was found to be negatively correlated with repression-sensitization tendency for all the subgroups (urban, rural, and total). Familial gender discrimination was found positively correlated with achievement motivation for all the subgroups (urban, rural, and total). The effect of rural/urban area on gender discrimination was not significant but according to mean value there is minor difference. Urban girls found more sensitization tendency than rural girls. The effect of rural and urban area on achievement motivation was found significant at .05 level of confidence. Rural girls found more achievement motivation than urban girls.

Tables and graphs:-

Table 1: *Pearson's 'r' between perceived familial gender discrimination and repression-sensitization tendency of urban, rural and total groups.*

N=400

Variable	Pearson's 'r'		
Repression-Sensitization Tendency	Urban	Rural	Total
	-.31**	-.24**	-.28**

*P=<0.05, **P=<0.01

Table 1 reveals that repression-sensitization tendency is negatively correlated with familial gender discrimination. This shows that higher of perceived familial gender discrimination, lower sensitization tendency for all subgroup (urban, rural and total).

Table 2: *Pearson's 'r' between perceived familial gender discrimination and achievement motivation of urban, rural and total groups.*

N=400

Variable	**Pearson's 'r'**		
Achievement motivation	Urban	Rural	Total
	.26**	.24**	.26**

*P=<0.05, **P=<0.01

Table 2 reveals that achievement motivation is positively correlated with familial gender discrimination scores. This shows that higher of perceived familial gender discrimination, high achievement motivation is found by all subgroups (urban, rural and total) adolescent girls.

Table 3: Mean difference between Rural and Urban adolescent girls' on Familial gender discrimination

Variable	Group	N	M	SD	SED	t
familial gender discrimination	1	200	18.51	3.37	0.238	-1.43
	2	200	19.02	3.64	0.257	

* Significant at .05 level of significant 't' at .05(58) =2.00

Table 3, reveals that Mean, S.D & SED of urban Vs rural subject of gender discrimination, i.e. urban subject are 18.51±3.37, 0.23; rural subject are 19.02±3.64, 0.25. As per the table the mean difference of urban vs rural subject is (0.51) and the t-ratio was statistically insignificant as the obtained value (1.43) is less than the tabulated value (2.00) required for t-ratio to be significant at .05 level of confidence. It indicates that urban area adolescent girls perceiving less familial gender discrimination in comparison to rural adolescent girls.

Table 4: *Mean difference between Rural and Urban adolescent girls' on Repression sensitization tendency*

Variable	Group	N	M	SD	SED	t
Repression sensitization tendency	1	200	16.14	6.41	0.45	0.58
	2	200	15.77	6.16	0.43	

* Significant at .05 level of significant 't' at .05(58) =2.00

Table 4, reveals that Mean, S.D & SED of urban vs rural subject of repression sensitization tendency, i.e. urban subject are 16.14±6.41, 0.45; rural subject are 15.77±6.16. As per the table the mean difference of urban vs rural subject is (0.37) and the t-ratio was statistically insignificant as the obtained value (0.58) is less than the tabulated value (2.00) required for t-ratio to be significant at .05 level of confidence. . It indicates that urban area adolescent girls found more sensitization tendency in comparison to rural adolescent girls.

Table 5: *Mean difference between Rural and Urban adolescent girls' on Achievement motivation*

Variable	Group	N	M	SD	SED	t
Achievement motivation	1	200	144.52	19.84	1.40	-3.48
	2	200	151.62	20.89	1.47	

* Significant at .05 level of significant 't' at .05(58) =2.00

Table 5, reveals that Mean, S.D & SED of urban vs rural subject of achievement motivation, i.e. urban subject are 144.52±19.84, 1.40; rural subject are 151.62±20.89, 1.47. As per the table the mean difference of urban vs rural subject is (7.10) and the t-ratio was statistically significant as the obtained value (-3.48) is less than the tabulated value (2.00) required for t-ratio to be significant at .05 level of confidence. It indicates that rural area adolescent girls found more achievement motivation in comparison to urban adolescent girls.

Conclusion : By all count and with proven results, it is no wonder that if parents should keep in mind while dealing with their children, so that girls may not perceive any discrimination to the extent of leading them to certain personality mal adjustment. Parents should use the right kind o child rearing practices for this. The results will be of help to parents, counsellors and other educators to pay attention to develop positive attitude towards girl's child, which will sample them to have balanced personality, better achievements.

References

1. *Chowdhry, R. & Mehta, M. (1989). Effect of repression-sensitization tendency and need for achievement upon pattern of reaction to frustration and adjustment PhD Thesis submitted to University of Rajasthan- Jaipur, India.*
2. *Deo-Mohan. (1974). Achievement Motivation scale developed by Dr. Pratibha Deo and Dr. Asha Mohan.*
3. *Johannes, C. (1976). Differences in defensive styles in males and females as disclosed by the Repression-Sensitization Scale, Fort Hays State University.*
4. *Linnenbrink, E. A., &Pintrich, P.R. (2002). Achievement goal theory and affect: Anasymmetrical bi-directional model. Educational psychologist, 37 (2), 69-78.*

5. *Liu, Q., & Zhu, X. (2009). Investigation and analysis on the achievement motivations of 278 senior high school students. International Journal of Psychological Studies, 1(1), 229-240.*

6. *Mehta, M., Singh, R., Kulshresjtha, U. &Choudhary, R. (2005). Effect of Family Dynamics upon repression sensitization tendency and adjustment of adolescents. Praach Journal of Psycho-Cultural Dimensions, 21(1), 51-57.*

7. *Wigfield, A. & Eccles, J.S. (2002). The development of competence beliefs, expectancies for success, and achievement values from childhood through adolescence. In A. Wingfield,- &J.S.Eccles, & the institute for Research on Women and Gender (Eds.) Development of Achievement Motivation (pp.91-120). San Diego: Academic Press.*

8. *Wigfield, A. &Eccles, J.S.(2002).Students-motivation during the middle school years. In J. Aronson (ED.), Improving academic achievement: impact of psychological factors on education (pp 159-184). Amsterdam, NY: Academic Press.*

9. *Wiley. (2006). Periodicals. Journal of Clinical Psychology, 33 (4), 1041-1044 Published Wiley Periodicals.*

Cultural Heritage Tourism in Rajasthan: A Retrospection

Vikram Jha
Research Scholar, Maharaja Ganga Singh University, Bikaner

shodhshree@gmail.com

Abstract

Culture has always been a major part of travel. Culture, heritage and the art have long contributed to appeal tourist destinations. The Cultural Heritage Tourism (or just heritage tourism) is a branch of tourism oriented towards the cultural heritage of the location where tourism is occurring. Cultural heritage tourism is important for various reasons; it has a positive economic and social impact, it establishes and reinforces identity, it helps to preserve the cultural heritage, with culture as an instrument it facilitates harmony and understanding among people, it supports culture and helps renew tourism. Cultural heritage tourism has a number of objectives that must be met within the context of sustainable development such as; the conservation of cultural resources, accurate interpretation of resources, authentic visitors experience, and the stimulation of the earned revenues of cultural resources. It shall be worthwhile to review the status of cultural heritage tourism in Rajasthan in general, leaving aside the present crisis due to pandemic which is temporary.

Keywords : *Cultural, Tourism, Heritage, Industry, Conservation.*

Tourism, in simple words, may be understood as the movement of the tourists from one place to another place. This movement is temporary short-term movement of people to destinations outside the place where they normally live & work and includes the activities they indulge in at the destination as well as all facilities and services specially created to meet their needs. Tourism embraces nearly all aspects of our society. Apart from its importance to economic changes, human socio-cultural activities and environmental development, tourism is related to other academic subjects such as geography, economics, history, languages, psychology, marketing, business and law, etc. Therefore, one has to integrate a number of subjects to study tourism. Defining tourism, Theobald (1994) suggested that etymologically, the word "tour" is derived from the Latin 'tornare' and the Greek 'tornos,' meaning 'a lathe or circle; the movement around a central point or axis.' This meaning changed in modern English to represent 'one's turn.' The suffix -ism is defined as 'an action or process; typical behaviour or quality' whereas the suffix -ist denotes one that performs a given action. When the word tour and the suffixes -ism and -ist are combined, they suggest the action of movement around a circle. Therefore, like a circle, a tour represents a journey that is a round trip, i.e., the act of leaving and then returning to the original starting point, and therefore, one who takes such a journey can be called a tourist. [en.wikipedia.org/wiki/Tourism]

Cultural Heritage is an expression of the ways of living developed by a community and passed on from

generation to generation, including customs, practices, places, objects, artistic expressions and values. Cultural Heritage is often expressed as either Intangible or Tangible Cultural Heritage. Intangible Heritage refers to those aspects of a country that cannot be touched or seen. For example traditional music, folklore, language etc. Tangible Heritage refers to those significant places that advocate the country's history and culture. For example monuments, mosques, shrines, monasteries etc.

The tourism sector is the 'industry' that uses Cultural Heritage to the greatest extent as support for its backbone activities like hotel accommodation, transport and catering. The impact of heritage driving the tourism industry is obvious in our cities. Due to the exploitation of heritage, many new jobs were generated in the tourism sector and as a result the figures are even more impressive. When heritage tourism is done right, the biggest beneficiaries are not the visitors but the local residents who experience a renewed appreciation for and pride in their local city and its history. The statistical figures indicate 37% of the global tourism has a cultural motivation. The link between culture and tourism is the most visible aspect of the contribution of culture to local development.

The tourism industry of India is economically important. The World Travel and Tourism Council calculated that tourism generated $121 billion or 6.4% of the nation's GDP in 2011. The sector is predicted to grow at an average annual rate of 7.7% in the next decade. In a 2011 forecast the World Travel and Tourism Council predicted the annual growth to be 8.8% between 2011 and 2021. This gave India the fifth rank among countries with the fastest growing tourism industry.

However, the world is facing an unprecedented global health, social and economic emergency with the COVID-19 pandemic. Travel and tourism is among the most affected sectors with airplanes on the ground, hotels closed and travel restrictions put in place in virtually all countries around the world. Current scenarios point to declines of 58% to 78% in international tourist arrivals for the year, depending on the speed of the containment and the duration of travel restrictions and shutdown of borders, although the outlook remains highly uncertain. Considerable challenges remain ahead, starting with the unknown duration of the pandemic and travel restrictions, in a context of global economic recession. Countries around the world including India, are implementing a wide range of measures to mitigate the impact of the COVID-19 outbreak and to stimulate the recovery of the tourism sector. By regions, Asia and the Pacific, are the first region to suffer the impact of COVID-19 followed by Europe, America and Middle-East. As the pandemic hit Asia before other regions and seasonality in Asia is less significant than in other regions, it is assumed that things will start getting back to normalcy here sooner.

Historical Background of Tourism

When we visualize the history of tourism, we can broadly divide it into 6 different stages. During the Roman Empire period (from about 27 BC to AD 476), travel developed for military, trade and political reasons, as well as for communication of messages from the central government to its distant territories. Wealthy Romans, in ancient times, travelled to seaside resorts in Greece and Egypt for sightseeing purpose. During the Middle Age (from about AD 500 to 1400), there was a growth of travel for religious reasons. It had become an organized phenomenon for pilgrims to visit their “holy land”, such as Muslims to Mecca, and Christians to Jerusalem and Rome. In the 16th century, the growth in England's trade and commerce led to the rise of a new type of tourists- those travelled to broaden their own experience and knowledge. In the 17th century, the sons and daughters of the British aristocracy travelled throughout Europe (such as Italy, Germany and France) for periods of time, usually 2 or 3 years, to improve their knowledge. This was known as the Grand Tour, which became a necessary part of the training of future

administrators and political leaders. The Industrial Revolution (from about AD 1750 to 1850) in Europe created the base for mass tourism. This period turned most people away from basic agriculture into the town / factory and urban way of life. As a result, there was a rapid growth of the wealth and education level of the middle class, as well as an increase of leisure time and a demand for holiday tourism activities. At that time, travel for health became important when the rich and fashionable Europeans began to visit the spa towns (such as Bath in England and Baden - Baden in Germany) and seaside resorts in England (such as Scarborough, Margate and Brighton). In the 19th and 20th centuries, the social and technological changes have had an immense impact on History of Tourism. Great advances in science and technology made possible the invention of rapid, safe and relatively cheap forms of transport: the railways were invented in the 19th century and the passenger aircraft in the 20th century.

Growth of Tourism in India

The first conscious and organized efforts to promote tourism in India were made in 1945 when a committee was set up by the Government under the Chairmanship of Sir John Sargent, the then Educational Adviser to the Government of India (Krishna, A.G., 1993). Thereafter, the development of tourism was taken up in a planned manner in 1956 coinciding with the Second Five Year Plan. The approach has evolved from isolated planning of single unit facilities in the Second and Third Five Year Plans. The Sixth Plan marked the beginning of a new era when tourism began to be considered a major instrument for social integration and economic development. But it was only after the 80's that tourism activity gained momentum. The Government took several significant steps. A National Policy on tourism was announced in 1982. In 1997, the New Tourism Policy recognised the roles of Central and State governments, public sector undertakings and the private sector in the development of tourism. The need for involvement of Panchayati Raj institutions, local bodies, non-governmental organisations and the local youth in the creation of tourism facilities was also recognised.

Features of Tourism in India and Rajasthan

Tourism is the largest service industry in India, with a contribution of 6.23% to the national GDP and providing 8.78% of the total employment. India witnesses' more than 5 million annual foreign tourist arrivals and 562 million domestic tourism visits. The tourism industry in India generated about US$100 billion in 2008 and that is expected to increase to US$275.5 billion by 2018 at a 9.4% annual growth rate. The Ministry of Tourism is the nodal agency for the development and promotion of tourism in India and maintains the ***"Incredible India"*** campaign.

As per the Travel and Tourism Competitiveness Report 2009 by the World Economic Forum, India is ranked 11th in the Asia Pacific region and 62nd overall, moving up three places on the list of the world's attractive destinations. It is ranked the 14th best tourist destination for its natural resources and 24th for its cultural resources, with many *World Heritage Sites*, both natural and cultural, rich fauna, and strong creative industries in the country. India also bagged 37th rank for its air transport network. The India travel and tourism industry ranked 5th in the long-term (10-year) growth and is expected to be the second largest employer in the world by 2019.

Moreover, India has been ranked the "best country brand for value-for-money" in the Country Brand Index (CBI) survey conducted by *Future Brand*, a leading global brand consultancy. India also claimed the second place in CBI's "best country brand for history", as well as appears among the top 5 in the best country brand for authenticity and art & culture, and the fourth best new country for business. India made it to the list of "rising stars" or the countries that are likely to become major tourist destinations in the next five years, led by the United Arab Emirates, China, and Vietnam.

[www.ibef.org/industry/tourismhospitality.aspx]

The Rajasthan State new Tourism Policy was released on 27-9-2001 with mission statement of the Tourism Policy to evolve a pragmatic policy designed to ensure optimum utilization of rich tourism resources of the state to generate employment specially in rural areas, to develop a ready market for the rich and varied handicrafts, to preserve varied bio-diversity, natural historical, cultural and cultural heritage of the state by scientific methods and to accelerate contribution of tourism industry. The instruments of public sector are constantly working on accelerating the growth of this sector.

Significance of Cultural Heritage

The significance of cultural heritage sites can be understood under four broad categories. These aspects help to determine the management policies and procedure pursuant to the particular site. Thus, it is very important to understand and determine the significances before embarking on a heritage project. The four main aspects are:-

(i) Historical Significances

The age or relationship to historical era, person or event. Historical significance is a relatively easy and over bearing trait in heritage management.

(ii) Social Significances

Social Significance is hard to ascertain. It refers to the social, spiritual and other community oriented values attributed to a place. This maybe because the place has existed to serve a certain important role in the society for a period of time.

(iii) Aesthetic Significance

It refers to this special sense of Importance of a place. This could be in terms of architecture, scale or even the designs seen on the place.

(iv) Scientific Significance

It refers to the scope or possibility of scientific findings from a site, monument or place. Here the importance lies more in the information that may yield out of understanding and researching the place or site. This can mostly be attributed to archaeological sites or ancient monuments.

Types of Cultural Heritage

The state of Rajasthan exhibits ample variety of cultural heritage. These may be broadly classified as:

(a) Built Heritage: One of the most visible forms of heritage is built heritage (Buildings, Townscapes, Archaeological remains). Built heritage should be deemed to mean those buildings, artifacts, structures, areas and precincts that are of historic, aesthetic, architectural or cultural significance and should include natural features within such areas or precincts of environmental significance or scenic beauty such as sacred groves, hills, hillocks, water bodies (and the areas adjoining the same), open areas, wooded areas, etc. On a daily basis we are reminded of historic events and past lives through the built legacy around us. e.g:- temple complex at Jhalarapatan (Jhalawar), Osian (Jodhpur), Badoli etc.

(b)Natural Heritage: Natural Heritage includes all components of our surroundings which have not been created by man and which are of cultural, aesthetic, spiritual, biotic or ecological value and which could also be of directly usable resource value. e.g:- Keoladeo National Park, Bharatpur, Rajasthan, India.

(c)Artefacts: Something made or given shape by man, such as a tool or a work of art, esp . an object of archaeological interest. An artifact is an object recovered by archaeological endeavour, which may have a cultural interest. Examples include dance forms, food, stone tools, documents, paintings, pottery vessels, metal objects such as weapons, and items of personal adornment such as buttons, jewellery and clothing etc.

Cultural Tourism in India and Rajasthan

India has had many rulers over the centuries and all of them made an impact on India's culture. One can see the influence of various cultures in

dance, music, festivities, architecture, traditional customs, food and languages. It is due to the influence of all these various cultures that the heritage and culture of India is exhaustive and vibrant. This richness in culture goes a long way in projecting India as the ultimate cultural tourism destination given boost to tourism in culture in India. India is known for its rich cultural heritage and an element of mysticism, which is why tourists come to India to experience it for themselves. The various fairs and festivals that tourists can visit in India are the Pushkar fair, Taj Mahotsav, and Suraj Kund mela. The types of tourism in India have grown and this has boosted the Indian economy. That it continues to grow efforts must be taken by the Indian government, so that the tourism sector can contribute more substantially to the nation's GDP.

Cultural tourism India is the predominant factor behind India's meteoric rise in the tourism segment in recent years, because from time immemorial, India has been considered the land of ancient of ancient history, heritage and culture.

The most popular states in India for cultural tourism are:

- Rajasthan
- Tamil Nadu
- Uttar Pradesh
- Uttaranchal

Among the various states for cultural tourism in India, Rajasthan is the most popular. The reason for this is that Rajasthan is famous for its rich cultural heritage. The state is renowned for many magnificent palaces and forts which showcase the rich cultural heritage of Rajasthan. The various folk songs and music also reflect the cultural heritage of Rajasthan. A large number of festivals and fairs are held in Rajasthan such as the camel festival, Marwar festival, and Pushkar festival. All these attract many tourists to Rajasthan for they get to see the rich culture of the state. The Fairs and festivals of Rajasthan are the example of State's lively cultural heritage. Through the organization of these fairs and festivals and cultural programmes, attracting tourists promote tourism promotion. They have a great appeal for tourists. Cultural tourism India has witnessed a lot of growth in recent years. For this growth to continue, the government of India needs to take further pro-active steps and measures.

Role of Govt. bodies in Conservation of Cultural Heritage in India and Rajasthan

Public sectors of the tourism industry refer to government departments and some public tourism organizations which provide a wide range of services in order to promote or to encourage tourism development of a destination. Public tourism organizations can be further divided into government funded statutory bodies and other non-profit organizations formed by enterprises under the same industry sector. In general cases, different departments or organizations have their unique positions and are performing their specific functions or duties related to tourism. Different from the private sectors, their main objective is not for profit but to achieve wider social and economic aims for the community, such as creating jobs through tourism and improving tourist facilities which can be used by both visitors and local citizens. Governments devise policies and plans for development. These include the generation of guidelines and objectives for the growth and management of tourism, both in short and long term, and devising of strategies to achieve their objectives.

The Archaeological Survey of India (ASI), as an attached office under the Department of Culture, Ministry of Tourism and Culture, is the premier organization for the archaeological researches and protection of the cultural heritage of the nation. Maintenance of ancient monuments and archaeological sites and remains of national importance is the prime concern of the ASI. Besides it regulate all archaeological activities in the country as per the provisions of the Ancient

Monuments and Archaeological Sites and Remains Act, 1958. It also regulates Antiquities and Art Treasure Act, 1972.

For the maintenance of ancient monuments and archaeological sites and remains of national importance the entire country is divided into 24 Circles. The organization has a large work force of trained archaeologists, conservators, epigraphist, architects and scientists for conducting archaeological research projects through its Excavation Branches, Prehistory Branch, Epigraphy Branches, Science Branch, Horticulture Branch, Building Survey Project, Temple Survey Projects and Underwater Archaeology Wing.

The Archaeological Survey of India's Science Branch is responsible mainly for the chemical conservation treatment and preservation of some three thousand five hundred ninety three protected monuments besides chemical preservation of museum and excavated objects countrywide.

Similarly GOI through ITDC has undertaken following works at following important tourist places: **1.** Light and sound show at Chittorgarh fort. **2.** Light and sound show at Khumbhalgarh Fort. **3.** Integrated development of Pushkar Ghat. The development works are also being executed by the tourism department on the basis of joint venture of GOI and State Govt. 4. Cent per cent State Govt. Financed Dev. Projects.

The Department has also represented Rajasthan in overseas this year at WTM, London, TAAI, Malaysia and PATA, Singapore and for tourism promotion has participated in different International / national level conferences, seminars, exhibitions etc. Apart from that Road Shows were also organized in U.S.A. For increasing tourist arrivals, wide promotion & aggressive marketing of tourism in the state, Department has made efforts through Print Media. Department participats in various exhibitions, trade fairs, conferences etc.

Public Security

Public security is one of the major issues to governments around the world, in particular public security at the airports. Though TAF (Tourist Police) was started in State from 01-08-2000, for the safety, security and assistance to the tourist, department made efforts to resolve the problems experienced by tourist and to protect them from anti-social element, so that they had hassle free stay in the State. Presently the force has been deployed at Jaipur, Udaipur, Jodhpur, Jaisalmer, Pushkar (Ajmer) and Mt. Abu.

Impact Of Tourism on Cultural Heritage of India and Rajasthan:

Tourism industry in India has several positive and negative impacts on the economy and society. These impacts are highlighted below.

Positive Impacts

1. Generating Income and Employment: Tourism in India has emerged as an instrument of income and employment generation, poverty alleviation and sustainable human development. It contributes 6.23% to the national GDP and 8.78% of the total employment in India. Present scenario due to Covid -19 has created instability, but it is temporary phase.

3. Source of Foreign Exchange Earnings: Tourism is an important source of foreign exchange earnings in India. This has favourable impact on the balance of payment of the country. The tourism industry in India generated about US$100 billion in 2008 and that is expected to increase to US$275.5 billion by 2018 at a 9.4% annual growth rate.

4. Preservation of National Heritage and Environment: Tourism helps preserve several places which are of historical importance by declaring them as heritage sites. For instance, the Taj Mahal, the Qutab Minar, Ajanta and Ellora temples, etc, would have been decayed and destroyed had it not been for the efforts taken by Tourism Department to preserve them. Likewise, tourism also helps in conserving the natural habitats of m any endangered species.

5. Developing Infrastructure: Tourism tends to encourage the development of multiple-use infrastructure that benefits the host community, including various means of transports, health care facilities, and sports centres, in addition to the hotels and high-end restaurants that cater to foreign visitors. The development of infrastructure has in turn induced the development of other directly productive activities.

6. Promoting Peace and Stability: Honey and Gilpin (2009) suggests that the tourism industry can also help promote peace and stability in developing country like India by providing jobs, generating income, diversifying the economy, protecting the environment, and promoting cross-cultural awareness. However, key challenges like adoption of regulatory frameworks, mechanisms to reduce crime and corruption, etc, must be addressed if peace-enhancing benefits from this industry are to be realized.

Negative Impacts

1. Undesirable Social and Cultural Change: Tourism sometimes led to the destruction of the social fabric of a community. The more tourists coming into a place, the more the perceived risk of that place losing its identity. A good example is Goa.

2. Increase Tension and Hostility: Tourism can increase tension, hostility, and suspicion between the tourists and the local communities when there is no respect and understanding for each other's culture and way of life. This may further lead to violence and other crimes committed against the tourists.

3. Creating a Sense of Antipathy: Tourism brought little benefit to the local community. In most all-inclusive package tours more than 80% of travellers' fees go to the airlines, hotels and other international companies, not to local businessmen and workers. Moreover, large hotel chain restaurants often import food to satisfy foreign visitors and rarely employ local staff for senior management positions, preventing local farmers and workers from reaping the benefit of their presence. This has often created a sense of antipathy towards the tourists and the government.

4. Adverse Effects on Environment and Ecology: One of the most important adverse effects of tourism on the environment is increased pressure on the carrying capacity of the ecosystem in each tourist locality. Increased transport and construction activities led to large scale deforestation and destabilisation of natural landforms, while increased tourist flow led to increase in solid waste dumping as well as depletion of water and fuel resources. Flow of tourists to ecologically sensitive areas resulted in destruction of rare and endangered species due to trampling, killing, disturbance of breeding habitats. Noise pollution from vehicles and public address systems, water pollution, vehicular emissions, untreated sewage, etc. also have direct effects on bio-diversity, ambient environment and general profile of tourist spots.

(i) Noise pollution from airplanes, cars, and buses, as well as recreational vehicles is an ever-growing problem of modern life. In addition to causing annoyance, stress, and even hearing loss for humans, it causes distress to wildlife, especially in sensitive areas (www.gdrc.org/uem/eco-tour/envi/index.html).

(ii) Solid waste and littering: In areas with high concentrations of tourist activities and appealing natural attractions, waste disposal is a serious problem and improper disposal can be a major despoiler of the natural environment - rivers, scenic areas, and roadsides.

In mountain areas, trekking tourists generate a great deal of waste. Tourists on expedition leave behind their garbage, oxygen cylinders and even camping equipment. Such practices degrade the environment particularly in remote areas because they have few garbage collection or disposal facilities (www.gdrc.org/uem/eco-tour/envi/index.html).

(iii) Sewage: Construction of hotels, recreation

and other facilities often leads to increased sewage pollution. Wastewater has polluted seas and lakes surrounding tourist attractions, damaging the flora and fauna. Sewage runoff causes serious damage to coral reefs because it stimulates the growth of algae, which cover the filter-feeding corals, hindering their ability to survive. Changes in salinity and siltation can have wide-ranging impacts on coastal environments. And sewage pollution can threaten the health of humans and animals. Examples of such pollution can be seen in the coastal states of Goa, Kerela, Maharashtra, Tamil Nadu, etc.

(iv) Destruction and Alteration of Ecosystem: An ecosystem is a geographic area including all the living organisms (people, plants, animals, and micro-organisms), their physical surroundings (such as soil, water, and air), and the natural cycles that sustain them. Attractive landscape sites are often transitional zones, characterized by species-rich ecosystems. The threats to and pressures on these ecosystems are often severe because such places are very attractive to both tourists and developers. An area of concern which emerged at Jaisalmer is regarding the deterioration of the desert ecology due to increased tourist activities in the desert.

Moreover, habitat can be degraded by tourism leisure activities. For example, wildlife viewing can bring about stress for the animals and alter their natural behaviour when tourists come too close. Safaris and wildlife watching activities have a degrading effect on habitat as they often are accompanied by the noise and commotion created by tourists.

Conclusion

The Tourism industry in our country is growing, with new ideas and approach to attract travellers, leaving aside the impact of Corona crisis which is a temporary phase, and it has vast potential for generating employment and earning large amount of foreign exchange besides giving a fillip to the country's overall economic and social development. But much more remains to be done. Eco-tourism needs to be promoted so that tourism in Rajasthan helps in preserving and sustaining the diversity of the Rajasthan's natural and cultural environments. Tourism in Rajasthan should be developed in such a way that it accommodates and entertains visitors in a way that is minimally intrusive or destructive to the environment and sustains & supports the native cultures in the locations it is operating in. Moreover, since tourism is a multi-dimensional activity, and basically a service industry, it would be necessary that all wings of the Central and State governments, private sector and voluntary organisations become active partners in the endeavour to attain sustainable growth if tourism in Rajasthan is to become a world player in the tourism industry.

References

1. *Krishna, A.G., 1993 "Case study on the effects of tourism on culture and the environment: India; Jaisalmer, Khajuraho and Goa"*
2. *Honey, Martha and Gilpin, Raymond, Special Report, 2009, "Tourism in the Developing World - Promoting Peace and Reducing Poverty"*
3. *Market Research Division, Ministry of tourism, GOI, 2009 "Tourism Statistics 2008"*
4. *www.ibef.org*
5. *www.incredibleindia.org*
6. *http://en.wikipedia.org/wiki/Tourism*
7. *http://www.gdrc.org/uem/eco-tour/envi/index.html*

Social Transformation - An Analysis Concerning Freedom of Religion

Ashima Jain
Research Scholar, University of Rajasthan, Jaipur

shodhshree@gmail.com

Abstract

Social Transformation is an entirely new concept wherein the law transforms every area and brings growth. There is a requirement to have planned development where all the sections of society have equal say. Religion and its rights including freedom to practice, propagate and modern trends in its dimensions are included and safeguarded by the judiciary and also protected under Article 25-30 of The Constitution of India, 1950 In this paper, it has been analyzed how law is required to be changed as the society grows and the only focus is on freedom of religion and its law and how a secular state is maintained and how the judiciary has upheld rights in maintaining religious neutrality and equality among citizens of India. It has also been analyzed how law ensures democracy even in such a multicultural society where different religions exist and their rights are being protected and how heterogeneous interests are being maintained without any conflicts.

Keywords *: Social, Society, Interests, Democracy Transformation, Religion, Freedom.*

Law and Justice go hand in hand. The courts in India interpret the constitution by following all the rules of interpretation of statutes. The credit for social transformation not only goes to legislation but also judiciary which has revolutionized socio-legal structure. The social interest litigation is always being promoted and brings a legal revolution in society. Where judiciary not only uphold rights, it also put a check on frivolous petitions. (Dr. G.P. Tripathi, 2015) And if we look towards guaranteeing freedom of religion, we find numerous legislation in varied forms to protect this fundamental right and uphold the dignity of an individual. One such Fundamental Right is freedom of religion which propagates that state have no religion of its own and secular structure to be established in India.

Analysis

In Pomal Kanji Govindji v. Vrajlal Karsandas Purohit, the Supreme Court has stated that law must require to be responsive to discernible circumstances. In M.C. Mehta v. Union of India, the requirement today is the court is required to evolve a new law if the law of past does not fit in present times.

Also, in National Workers Union v. P.R. Ramakrishnan, it was again reiterated that to have changes in law as per requirement in the society. If a change is not there it will bring stifle in growth and hence it is required to be the part of the dynamic process of social transformation. Hence it has been observed that judiciary had been active in interpreting the law according to the needs of society. In matters of religious rights, for example, the court did not move behind in declaring Triple Talaq as invalid or be it giving daughters their right in property or giving rights to victims of riots and also in different case as per

changing needs of the society it has also allowed access to women in Sabrimala Temple in Indian Young Lawyers Association and Ors. v. The State of Kerela and Ors. The judiciary had always been active in bestowing rights.

Earlier if we analyze the women were restricted on varied grounds for entry in the temple but due to changing needs of society the court allowed access for the same. The law grows with time and harmonious interpretation is always done.

Apart from judiciary the Constitution also vision a social transformation, there are amendments so that there is a break in discrimination in identities and a vision for equality. In such a pluralistic society like ours, the constitution perceives a social order not only through Fundamental rights but also Directive Principles.

Article 38 which reads as

- State need to strive for promotion of welfare of people by securing a social order where justice, social, economic, and political shall inform all institutions of national life.
- Need for minimizing inequalities in income, status, facilities, and opportunities among individuals and different groups.

Even court has also in bestowing freedom in respect of religion has also interpreted restrictions given under Article 25 as that every citizen is entitled for freedom of conscience, profess, practice and propagate religion but subject to these restrictions:

a) Public order
b) Morality
c) Health
d) Other fundamental rights

Freedom of speech and expression is guaranteed and freedom of conscience, practice, propagate their religion. And one such judicial pronouncement where restrictions where is Moulana Mufti Syed Md. Noorur Rehman Barkati and Ors. V. state of West Bengal and Ors. where Supreme Court has said that use of microphone cannot be said to be an integral of Azan and use of microphones cannot be allowed in excess to disturb others human rights of sleep or leisure.

With the onset of adoption on 26 November 1949, India became the largest democratic country. India is a land where socially and economically retarded, culturally diverse achieved unity under a democratic constitution. (Granville Austin, 2012) Dicey, in 19th century enunciated the doctrine of rule of law i.e. supremacy of law consisting:

a) Absence of arbitrary power by Government
b) Equality of all persons in eyes of law.
c) Rules of constitutional Law are results of ordinary law of land. (Dr. Durga Das Basu, 2018)

By these rules, the law of land was held high. Sri Aurobindo also wrote that GITA teaches to rise above natural being, above all personal emotions and where divine spirit works out through its purpose in the world. (Sri. Aurobindo, Gita 240) It is also to be pointed writing which depicts that Karma is nothing to do with ethics but a biological law of causality linked with rebirth (Lannoy, 1974)

The judiciary has constantly worked to uphold religious rights enshrined under the Indian Constitution from Article 25-30). There are many landmark judgements which have not only settled for social transformation in religious matters but also protected religious freedom. In Bal Patil v. Union of India, the Supreme Court noted that differential treatments on basis of religion is not right as it will foster more conflicts and riots and stated on the concept of secularism state shall have no religion. The state shall treat all with equality and respect without any interference with their rights of worship and faith. In-State of Gujarat and Ors. V.The IRCG and Ors., It was held that the state is having a duty to all faiths and religion with equality. Both freedom and tolerance have to be respected and adhered to.

Conclusion

Thus, it can be said as religious tolerance is persisted in India, we require social transformation too with the advent of changing times so that law is interpreted as per the current situation and not the historical ones. But it is also advised not to change the intent of the legislature while interpreting the constitution. The intent and object behind the statue or a provision of law should not be changed. National unity and brotherhood have to be maintained and for this, the harmonious environment is required from every corner. And the complete autonomy should be bestowed to citizens in matters of religion but subject to reasonable restrictions. A country where everyone can live peacefully if called for. The three wings of Indian Constitution are required to work together so that higher levels of justice could be achieved and we move forward to higher strides of excellence in all sphere of life and higher levels of endeavor and achievement as enshrined under Article 51 A(j) of The Constitution of India, 1950. Education on wider scale is called for and should be given in every stage of education to every student so that no misunderstandings are created. Law is required to be flexible where needed and strict too where sanctions are required to be imposed. Riots have to be avoided and peace and harmony has to be maintained.

References

1. *Tripathi Dr G.P, (2015) Law and Social Transformation, pg. 12*
2. *Austin Granville, (2012) The Indian Constitution, Cornerstone of a Nation, pg. 385*
3. *Dr Basu Durga Das (2018) Comparative Constitutional Law, pg. 328*
4. *Sri Aurobindo, (1976.) Essays on the Gita, Pondicherry, India, Sri. Aurobindo Ashram Press,*
5. *Lannoy, Richard, (1974) The Speaking Tree, A Study of Indian Culture and Society, London and Oxford: Oxford University Press, pg. 284.*
6. *Bal Patil v. Union of India, AIR 2005 SC 3172*
7. *Pomal Kanji Govindji v. Vrajlal Karsandas Purohit, AIR 1989 SC 436*
8. *M.C. Mehta v. Union of India,1987SCR819*
9. *National Workers Union v.P.R. Ramkrishnan,1983 ILLJ4 5SC*
10. *Indian Young Lawyers Association and Ors. v. The State of Kerela and Ors, (2019) 11 SCC 1*
11. *Moulana Mufti Syed Md. Noorur Rehman Barkati and Ors. V. state of West Bengal and Ors.AIR1999Cal 15*
12. *State of Gujarat and Ors. V.The IRCG and Ors, (2018) 13 SCC 687*
13. *Bibhu Padhi, Minakshi Padhi, Indian Philosophy and Religion, A Reader's Guide,1998*

Shodh Shree

(A Peer Reviewed International Refereed Journal)

ISSN 2277-5587 RNI No. RAJHIN / 2011 / 40531

Published by Dr. S. N. Tailor Foundation

54A, Jawahar Nagar Colony, Tonk Road, Jaipur - 302018

E-mail : shodhshree@gmail.com • Web : www.shodhshree.com

Individual Subscription Form

Name .....

Designation .....

Name of Organization .....

.....

Address .....

.....

District .....

State

.....

Pin .....

Tel. No. (R) .....

Mobile .....

e-mail .....

Date (Signature)

Frequency	:	Shodh Shree is Published four time in a year (Quarterly) i.e. January, April, July & October.
Mode of Payment	:	Subscription fee can be deposit through online Banking.
Bank Details	:	**DR S N TAILOR FOUNDATION** Union Bank of India, Beawar -305901 Account Number : 326321010000001 **IFS Code :** UBIN0932639 • **MICR Code :** 305026014 **Account Type :** Current • **Subscription Fees :** 1800 Rs.

Membership No. ..... Date .....

(For Office Use only)

DECLARATION FORM FOR CONTRIBUTORS

I.....

hereby declared that the paper entitled'.....

.....'is unpublished original paper which is not sent any where for publication.

This paper is prepared by me/jointly with.....

.....which is exclusively for your journal entitle 'Shodh Shree'.

I/We will not demand any honorarium for the same expect one copy of the Journal in which this paper will appear. Please send copy of the Journal at the address of author whose name is appeared at first,

Copy right of matter is with Shodh Shree. I/We will not reproduce it in any other journal of book except prior permission of the Chief Editor.

Signature .....

Name .....

Designation .....

Official Address .....

.....

Residential Address .....

.....

.....

Phone No. ..... Pin No. .....

e-mail Address .....

Shodh Shree

(A Peer Reviewed International Refereed Journal)

ISSN 2277-5587 RNI No. RAJHIN / 2011 / 40531

Published by Dr. S. N. Tailor Foundation

54A, Jawahar Nagar Colony, Tonk Road, Jaipur - 302018

E-mail : shodhshree@gmail.com • Web : www.shodhshree.com

Institutional Membership Form

The Editor
Shodhshree
Jaipur

Dear Sir
I want to become a member of this Journal for -

☐ 1 year	☐ 2 years	☐ 3 years
(Rs. 1000/-)	(Rs. 1800/-)	(Rs. 2500 /-)

I am sending here with Rs..... through online banking/cash for membership of your Journal.

Name of Institution .....

.....

Address.....

..... Pin Code.....

Phone/Mobile No. .....

E-mail ID .....

Date: Signature

For Office Use Only

Membership No. _____ Date _____

Frequency : Shodhshree is Published four time in a year(Quarterly) i.e. January, April, July, October.

Mode of Payment : Subscription fees can be deposit through online Banking.

Bank Details : **DR S N TAILOR FOUNDATION**
Union Bank of India, Beawar -305901
Account Number : 326321010000001
IFS Code : UBIN0932639 • **MICR Code :** 305026014
Account Type : Current • **Subscription Fees :** 1800 Rs.

Guidelines for the Contributors

1. All research paper must be typed in Microsoft Word and use KRUTI DEV 010 font for Hindi or Times New Roman Font for English can submit by C.D. or through e-mail.

2 All manuscripts must be accompanied by the brief abstract, Abstract including Keywords must not exceed more then 150 words.

3. A separate list of references should be given at the end of the paper and not at each page. Footnotes may be given on the same page if any technical term needs some explanation.

4. Table, Model, Graph or Chart should be on separate pages and numbered serially with appropriate heading.

5. Maximum word limit of research paper up to 2500 words.

6. Special care must be taken to avoid spelling errors and grammatical mistakes in the paper, otherwise it will not be accepted for publication.

7. The author(s) should certify on a separate page that the manuscript is original and it is not copyrighted.

8. The copyright is Reserved for 'Shodhshree' for All Research papers and Book Reviews, published in this journal.

9. Publication of research paper would be decided by our editorial board or subject specialist.

Book Review : For Book Review to be included in this journal only reference books and research publications are considered. One copy of each such publication must be submitted to the Editor.

Note : Shodh Shree have copyright on papers published in the journal therefore, prior permission is necessary for reproduction of paper, anywhere by author or other person. However, papers published in the journal may be freely quoted in further study. All disputes are subject to jaipur jurisdiction.

Research Paper may be sent to our e-mail: shodhshree@gmail.com
For any assistance, Please Contact Dr. Ravindra Tailor - 09413224134

To,

प्रिन्टेड मैटर
If undelivered please return to :

शोध श्री (त्रैमासिक)
54-ए, जवाहर नगर कॉलोनी
टोंक रोड, जयपुर-302018

स्वात्त्वाधिकारी, मुद्रक, प्रकाशक, प्रधान सम्पादक – वीरेन्द्र शर्मा के लिए मुद्रित व 54–ए,
जवाहर नगर कॉलोनी, टोंक रोड़, जयपुर–302018 मो. 9460124401 से प्रकाशित।